

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में जीवन मूल्य

A Thesis
Submitted in partial fulfilment of the requirements
For the award of the degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

IN

HINDI

By

Ramnik Mohani

11719792

Supervised By

Dr. Vinod Kumar



LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
PUNJAB
2023

UNDERTAKING

मैं रमणीक मोहनी यह प्रमाणित करती हूँ कि "हरीश नवल की व्यंग्य साहित्य में जीवन मूल्य" विषय पर लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा के समाज-विज्ञान संकाय में पीएच.डी की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध केवल मेरे व्यक्तिगत अध्यवसाय का फल है।

दिनांक-

शोधार्थी

(रमणीक मोहनी)

Certificate

this is to certify that, to the best of my knowledge and belief, the student's declaration statement is correct. Under my direction and supervision, she completed her ph.D thesis on **Harish naval ke vyangya sahitya main jeevan mulya.**

Signature of the Supervisor

सारांश

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। प्रत्येक काल के साहित्य सृजन के परिप्रेक्ष्य में, तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, तथा अन्य परिस्थितियों का प्रभाव निहित रहता है। मनुष्य, समाज की इकाई है, किसी भी काल के अंतर्गत मनुष्य के अंतर्मन में जैसी प्रवृत्तियां होंगी, जो 'मूल्य' उसके जीवन के केंद्र में प्रमुखता से विद्यमान होगा, उसका प्रतिबिंब तत्कालीन साहित्य द्वारा प्रतिबिंबित होगा।

वर्तमान समय जीवन -मूल्यों का संक्रमण- काल है। समाज में सर्वत्र विसंगतियों का प्राधान्य दृष्टिगत हो रहा है। विसंगतियों के इस कालखंड में, 'व्यंग्य' एक ऐसा अचूक अस्त्र है, जो आलंबन की जीवन- दिशा भले ही बदल न पाए, उसे झकझोरता अवश्य है, उसके हृदय में हलचल अवश्य उत्पन्न करता है। यद्यपि साहित्य की प्रत्येक विधा का चरम लक्ष्य समाज हित होता है, परंतु व्यंग्य एक ऐसी विधा है, जो समाज के अहित के प्रति सजग करने के लिए प्रयत्नशील रहती है। व्यंग्य, समाज में व्याप्त विद्रूपताओं की नकाब उतारता है और नीर - क्षीर विवेकी बनते हुए विभिन्न संदर्भों में से उचित/अनुचित की निष्पक्षता के साथ परख करता है। संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने भी व्यंग्य को उत्तम काव्य की संज्ञा से विभूषित किया है। व्यंग्य, व्यंजना शब्द शक्ति से निसृत होता है।

मानव की मानवीयता को जीवन -मूल्यों के निर्वहण द्वारा ही, सुनिश्चित किया जा सकता है। गोरखनाथ, कबीर, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी से लेकर रविंद्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, शंकर पुणतांबेकर तथा अन्य सभी व्यंग्यकार, जीवन मूल्यों के संवर्धन के लिए तथा विसंगतियों के परिष्कार के लिए आजीवन तत्पर रहे। हरीश नवल, प्रेम जनमेजय सुरेश सेठ, ज्ञान चतुर्वेदी, विष्णु नागर गिरीश पंकज आदि व्यंग्यकार अब तक भी समाज के अंतर्गत, विकृतियों की निवृत्ति के लिए प्रतिबद्ध हैं। उनकी व्यंग्यधर्मिता, सदैव एक परिष्कृत समाज की संकल्पना को साकार करने के लिए निरंतर कार्यशील है। व्यंग्य, पारिवारिक या सामाजिक घटना से लेकर, राष्ट्रीय, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों के अपघटन की ओर संकेत करता है। व्यंग्य यद्यपि छिद्रान्वेषी है, परंतु सत्यान्वेषी भी है। उसका उद्देश्य जीवन के विभिन्न संदर्भों में, मानव जीवन की विसंगतियों का परिशोधन करना है। किसी व्यंग्यकार ने ठीक कहा है कि पहाड़ खोदकर चूहा निकालने वाले तो बहुत से मिल जाएंगे, परंतु जो पहाड़ सिर पर लाद कर चल दें, वे व्यंग्यकार ही हो सकते हैं। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के परिप्रेक्ष्य में, उपर्युक्त पंक्ति बिल्कुल सटीक सिद्ध होती है, क्योंकि हरीश नवल, दिल्ली को पहाड़ पर चढ़ा देने का सामर्थ्य रखते हैं, उनकी एक व्यंग्य पुस्तक '*दिल्ली चढ़ी पहाड़*' उपर्युक्त कथन का सशक्त प्रमाण है।

व्यंग्य, समाज के अंतर्गत एक सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए क्रियाशील रहता है। वही साहित्यिक रचना सर्वकालिक, प्रासंगिक होती है, जो युगीन पीड़ा को स्वर देती है। वर्तमान समय में, मुखौटेधारी व्यक्तित्व के अंतर्गत, व्यक्ति का वास्तविक और स्वाभाविक चेहरा कौन सा है? व्यंग्य उसे उघाड़ता है, उसे बेनकाब करता

है। हरीश नवल, परसाई परंपरा के वाहक व्यंग्यकार हैं, उनके व्यंग्य कथनों की हरिशंकर परसाई के द्वारा लिखे व्यंग्यात्मक कथनों से अधिकाधिक, तुलनात्मकता यह सिद्ध करती है।

प्रस्तुत शोध कार्य के अंतर्गत, व्यंग्य तथा जीवन मूल्य के सैद्धांतिक पक्षों को विभिन्न चिंतकों द्वारा प्रतिपादित किए गए, सिद्धांतों के आधार पर उल्लेखित किया गया है। संस्कृत आचार्यों से लेकर हिंदी के विभिन्न व्यंग्यकारों द्वारा निर्मित किए गए सिद्धांतों को रेखांकित करते हुए, सुरेश माहेश्वरी द्वारा निर्मित, सिद्धांत को शोध कार्य का आधार बनाया गया है। उनके सिद्धांत को आधार बनाने के परिप्रेक्ष्य में आधारभूत कारणों को प्रमाणित भी किया गया है। इसी प्रकार जीवन- मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में, अनेक विचारकों के मत को उद्धृत करते हुए, धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित मानव मूल्य व्याख्या कोश के छह खंडों को शोध कार्य का आधार बनाया गया है। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य को जीवन मूल्यों के 4 पक्षों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया गया है-हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में सामाजिक मूल्य, राष्ट्रीय मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य तथा राजनीतिक मूल्य। शोध कार्य को अति विस्तार से बचाने के उद्देश्य से उपर्युक्त 4 पक्ष संदर्भित किए गए हैं।

शोध कार्य के अंतर्गत, आलोचनात्मक शोध प्रविधि, तुलनात्मक शोध प्रविधि, ऐतिहासिक शोध प्रविधि तथा मनोविश्लेषणात्मक शोध प्रविधियां प्रयुक्त की गई हैं। हरीश नवल के व्यंग्य कथनों की कबीर से लेकर, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, सुरेश सेठ, प्रेम जनमेजय तथा अनेक व्यंग्यकारों के उद्धरणों से तुलना की गई है। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य को, निष्पक्षता से विश्लेषित करने हेतु आलोचनात्मक शोध प्रविधि का आश्रय लिया गया है। व्यंग्य रचनाएं लिखते समय, व्यंग्यकार के मानसिक व्यवहारों की जांच के लिए मनोविश्लेषणात्मक शोध प्रविधि अपनाई गई है। हरीश नवल द्वारा जीवन मूल्यों के सम्वर्द्धन के लिए, किए गए व्यंग्य प्रहार को ऐतिहासिक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित किया गया है। हरीश नवल से दूरभाष पर संपर्क स्थापित करते हुए, तथा उनके द्वारा संचालित विभिन्न वेबीनारों में, सक्रिय प्रतिभागिता करते हुए शोध कार्य की गतिशीलता के संदर्भ में जानकारी प्राप्त की गई है। शोध कार्य के प्रत्येक सोपान को शोध निर्देशक माननीय विनोद कुमार के अप्रतिम दिशानिर्देशों द्वारा तय किया गया है।

एक प्रखर और प्रतिबद्ध व्यंग्यकार के रूप में, हरीश नवल समाज और राष्ट्र के अंतर्गत, एक सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए प्रयासरत दृष्टिगत होते हैं। 'विक्रमार्क, बुढ़िया और सराय रोहिल्ला' व्यंग्य रचना में हरीश नवल ने भग्न होते सामाजिक मूल्यों की ओर संकेत किया है। संतान का अपनी माता के प्रति, अवहेलना पूर्ण व्यवहार किसी भी दृष्टि से उचित नहीं, क्योंकि सृजनात्मक शक्ति से संपन्न होने के कारण माता, प्रकृति की रचना धर्मिता का प्रतिनिधित्व करती है। 'मंड़ी नहीं है नर्सिंग होम मंड़ी' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल ने समाज के चिकित्सा जगत की विसंगतियों को उजागर किया है। चिकित्सक, जिसे संसार में ईश्वर के बाद दूसरा स्थान दिया जाता है, जब वह अर्थ लिप्सा के चक्रव्यूह में उलझ जाएगा, तब वह जीवन दान देने के उत्कृष्ट उद्देश्य से विचलित हो जाएगा।

'मिलना डिग्री का चिमनलाल बंसल को 'व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल ने शैक्षणिक जगत की विसंगतियों की ओर इंगित किया है। 'संस्कृति बनाम अपसंस्कृति' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल खंडित होते सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए व्यग्र दृष्टिगत होते हैं। 'आली! क्या चुनाव आने वाले हैं' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने दो सखियों के मध्य वार्तालाप को प्रतीक बनाते हुए, सामान्य जनता के अंतर्भावों की परिकल्पना की है। चुनाव से पहले नेता लोग, अपने भव्य बिलों को त्याग कर विस्तृत धरा पर अपने कोमल चरण रखते हैं। उनके अकस्मात अवतरित होने से जनता को पूर्वाभास हो जाता है कि अवश्य ही चुनाव की बेला निकट है। जनता के मनोभावों को अभिव्यक्त करते हुए हरीश नवल ने, राजनीतिक क्षेत्र की विसंगतियों को बड़ी सत्यता के साथ उद्घाटित किया है।

'दिल्ली चढ़ी पहाड़' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल न केवल राष्ट्रीय मूल्यों के विघटन की ओर इशारा करते हैं, अपितु ध्वस्त होते पर्यावरणीय मूल्यों को वर्णित करते हुए, मानव जगत को भविष्य में होने वाले प्राकृतिक खतरों की ओर से भी सजग बनाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में अधिकतर दिल्लीवासी, पर्वतीय क्षेत्रों की ओर अग्रसर हो जाते हैं। उस समय समाज के उच्च वर्गीय धनी लोगों के मध्य यह दौड़ लगी रहती है कि येन केन प्रकारेण उन्हें पहाड़ी स्थानों पर, सुविधाओं से युक्त कोई रिहायशी स्थान उपलब्ध हो जाए। वे भूल जाते हैं कि जिस प्रकार मानव निर्मित यंत्रों की एक सीमित और निश्चित धारण क्षमता होती है, उसी प्रकार प्रकृति निर्मित तत्व एक निश्चित सीमा तक बोझ उठा सकते हैं। अपरिमित वाहनों और मनुष्यों के अत्यधिक बोझ से, पर्वतों का धैर्य जवाब दे गया और पर्वत श्रृंखला ने हल्की सी अंगड़ाई ली। उपर्युक्त तथ्य के परिप्रेक्ष्य में हरीश नवल ने उत्तरकाशी में आए हुए पर्वतीय भूस्खलन की ओर इशारा किया है, तथा मानव को पृथ्वी के अवैध दोहन से होने वाले दुष्परिणामों की ओर से सावधान किया है। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य का संक्षिप्त उल्लेख, शाश्वत जीवन मूल्यों तथा समसामयिक जीवन मूल्यों के प्रति उनकी दूरदर्शिता को प्रतिबिंबित करता है, जीवन मूल्यों की स्थापना के प्रति उनकी उच्च प्रतिबद्धता को भी सुनिश्चित करता है। उनके व्यंग्य लेखन के अंतर्गत, प्रखर आलोचक, सुवास कुमार के कथन की भी पुष्टि होती है, जिसमें उन्होंने किसी भी श्रेष्ठ रचना को अंततः व्यंग्य ही माना है।

उपर्युक्त विवरण से सिद्ध होता है कि व्यंग्य लेखन प्रतिबद्धता का साहित्य लेखन है। व्यंग्य, एक समर-भूमि का निर्माण करता है, इसके योद्धाओं को अटल और अडिग भाव अपनाते हुए, निष्पक्ष और सत्य पथ पर अग्रसर होना पड़ता है। व्यंग्य के सत्यान्वेषी स्वरूप को कोई आघात न पहुंचे, इसके लिए व्यंग्यकार अपने आप को भी घायल होने की स्थिति तक पहुंचा देता है। हरिशंकर परसाई को उनके व्यंग्य लेखों के लिए लाठियों का प्रहार सहना पड़ा, 'पीपली और मैं' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, निर्धन किसानों की अंतर्व्यथा का उल्लेख करते- करते हरीश नवल स्वयं को भी धिक्कार के योग्य लिख देते हैं, व्यंग्यकारों के, सत्य के प्रति आग्रही होने के सशक्त प्रमाण हैं।

धन्यवाद ज्ञापन

प्रस्तुत शोध कार्य की निर्विघ्न संपन्नता के लिए, मैं शोध निर्देशक डॉ विनोद कुमार, प्रवक्ता हिंदी विभाग लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी की हार्दिक आभारी हूँ। मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे उनका मेधा-मंडित तथा गुणवत्तापूर्ण मार्गदर्शन मिला। उनका विस्तृत अनुभव, गहन अध्ययन, विषय की पकड़, असीम धैर्यशीलता तथा प्रखर विद्वता मेरे शोध कार्य के सर्वोत्तम सहयोगी रहे। मैं स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज के डीन, प्रोफेसर पवित्तर प्रकाश सिंह तथा विभागाध्यक्ष डॉ अजोय बत्ता के प्रति भी हार्दिक आभार की अभिव्यक्ति करती हूँ। मैं हिंदी विभाग के प्रवक्ता डॉक्टर अनिल पांडे तथा डॉ रीता जी की भी हार्दिक धन्यवादी हूँ, जिन्होंने प्रत्येक सोपान पर न केवल सहयोग दिया, अपितु अपने अमूल्य सुझावों से लाभान्वित भी किया। मैं आरडीसी की समग्र टीम के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, उन्होंने विभिन्न प्रस्तुतियों के दौरान अत्यंत सहयोगी भावना से मेरा मार्गदर्शन किया, तथा शोध कार्य की कमियों की ओर सहृदयता के साथ, इंगित करते हुए उनका परिष्कार करवाया।

परम उदार और प्रखर व्यंग्यकार, डॉ हरीश नवल के प्रति भी मैं हार्दिक आभार अभिव्यक्त करती हूँ, उन्होंने दूरभाष द्वारा मेरी जिज्ञासाओं की निवृत्ति की, तथा आभासी पटल पर अनेक वेबीनारों में मेरी सक्रिय प्रतिभागिता करवाई। श्री हर्ष महता के सहयोग के बिना संगणक कार्य सिद्ध नहीं हो सकता था इसलिए मैं उनका भी हार्दिक आभार अभिव्यक्त करती हूँ। शोध कार्य में संलग्न सभी शोधार्थी, साथियों के अप्रतिम सहयोग के लिए भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

(रमणीक मोहनी)

समर्पण
माँ वागेश्वरी को सादर समर्पित

प्राक्कथन

व्यंग्य की अवस्थिति, सृष्टि में आदिम युग से ही विद्यमान थी। भाषा के उद्भव से पूर्व, मानव भाव-भंगिमाओं द्वारा अपने अंतर्मन में स्थित रोष, विरोध तथा उपालम्भ की अभिव्यक्ति करता था। समाज और राष्ट्र में व्याप्त विसंगतियों के प्रति मेरे मन में हर समय एक संग्राम छिड़ा रहता था। मेरे अंतर्भावों को देखते हुए मार्गदर्शक, श्रद्धेय विनोद कुमार तथा हिंदी विभाग के सभी विद्वानों ने मुझे व्यंग्य विधा पर शोध कार्य करने के लिए प्रेरित किया। व्यंग्य विधा के अंतर्गत अनेक व्यंग्यकारों ने, अप्रतिम व्यंग्य साहित्य रचित किया है, परंतु परसाई परंपरा के वाहक व्यंग्यकार हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य ने अंतर्मन पर बहुत प्रभाव डाला। अतः मैंने मां शारदा की अंतः प्रेरणा से तथा गुरुवर विनोद कुमार की सहमति से **हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में जीवन मूल्य** विषय को शोध कार्य हेतु चयनित किया।

वर्तमान समय में चतुर्दिक, अन्याय, अनाचार, भ्रष्टाचार इत्यादि विसंगतियां, समाज के ढांचे को जर्जर किए जा रही हैं। मानव, चरम सीमा तक अर्थ संस्कृति का दास बनते हुए, जीवन मूल्यों की अवहेलना किए जा रहा है। उसकी स्वार्थी वृत्ति की पराकाष्ठा असीम हो चुकी है। वह अपने क्षणिक सुख की खातिर प्रकृति की अतुल्य संपदा के नष्टीकरण पर तुला हुआ है। व्यंग्य लेखन, नाथ साहित्य, कबीर साहित्य, तुलसीदास और सूर साहित्य से लेकर बिहारी, भारतेन्दु, निराला तथा बालमुकुंद गुप्त इत्यादि के लेखन के अंतर्गत भी चिन्हित हुआ है, पर इसका सर्वाधिक क्रांतिकारी विस्फोट, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के व्यंग्यकारों द्वारा हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीयों ने जिस रामराज्य का स्वप्न देखा था, तत्कालीन नेताओं द्वारा उसे भाड़ में झोंकते देखकर व्यंग्यकारों का खून खौला, जिसकी परिणति व्यंग्य लेखन के रूप में हुई। इस व्यंग्यात्मक लेखन के सूत्रधार परम श्रद्धेय हरिशंकर परसाई थे। उनके समानांतर शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, तथा रविंद्रनाथ त्यागी के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस शोध कार्य में कुल 6 अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में व्यंग्य तथा जीवन मूल्यों की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि वर्णित की गई है। द्वितीय अध्याय के अंतर्गत, हरीश नवल के पूर्ववर्ती कुछ व्यंग्य कारों के विषय में संक्षिप्त वर्णन किया गया है, ताकि हरीश नवल का व्यंग्य साहित्य व्यंग्य परंपरा से सूत्रबद्ध हो सके। तीसरे अध्याय से लेकर छठे अध्याय तक, हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य को क्रमशः सामाजिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक पक्ष के अंतर्गत विप्लेषित किया गया है। अंत में उपसंहार के अंतर्गत, सभी अध्यायों का निष्कर्ष, शोध कार्य की उपलब्धियां तथा संभावनाएं संश्लिष्ट की गई हैं।

व्यंग्य की प्रवृत्ति परिष्कारक होती है। व्यंग्यकार, एक बुद्धिजीवी सामाजिक घटक होने के कारण, एक बेहतर समाज की संरचना के लिए व्यंग्य को अपना शस्त्र बनाता है। व्यंग्य लेखन के लिए

निष्पक्षता, सत्यता, संवेदना, निस्वार्थ भाव तथा करुणा अपेक्षित है, जो हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में अनेक स्थलों पर चिन्हित हुई है ।

समग्र शोध कार्य की निर्विघ्न संपन्नता के लिए मार्गदर्शक एसोसिएट प्रोफेसर, सामाजिक विज्ञान तथा भाषा संकाय लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, डॉ विनोद कुमार की उदारता और सहयोगी वृत्ति असंदिग्ध रूप से, श्लाघनीय है। वे धैर्यवान और उच्च कोटि के मनोविश्लेषक हैं, वे शोधार्थी की बौद्धिकता का पूर्वानुमान करते हुए दिशा निर्देश देते हैं। हिंदी विभाग के एसोसिएट प्रोफेसर डॉक्टर अनिल पांडे तथा रीटा मैडम की भी मैं हृदय से आभारी हूं। उनके अतुल्य सहयोग से, शोध कार्य का मार्ग प्रशस्त होता रहा। मैं सामाजिक विज्ञान और भाषा संकाय के अध्यक्ष परम आदरणीय डॉक्टर पी. पी. सिंह तथा विभागाध्यक्ष डॉक्टर अजोय बत्ता के प्रति भी हार्दिक धन्यवादी हूं। विभिन्न प्रस्तुतियों के पैनल में, जो-जो विद्वान शामिल थे, उन सब के प्रति श्रद्धा भाव समर्पित करती हूं, उनकी उदारता तथा सहयोग सदैव स्मरण रहेगा।

मैं अपनी मौसी स्वर्गीय ललिता शर्मा तथा श्वसुर श्रद्धेय मदन मोहन शास्त्री को श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूं, उनकी यह हार्दिक इच्छा थी, कि मैं उच्च शिक्षा प्राप्त करूं। अन्त में मैं अपने जीवन-साथी प्रोफेसर (डॉ) हर्ष महता द्वारा दिए गए सहयोग के प्रति भी हार्दिक आभार अभिव्यक्त करती हूं।

रमणीक मोहनी

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय-सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

1.1 व्यंग्य : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

1.1.1 व्यंग्य का स्वरूप

1.1.2 व्यंग्य का रस के परिप्रेक्ष्य में विवेचन

1.1.3 व्यंग्य अलंकार के रूप में

1.1.4 व्यंग्य के तत्व : 1.1.4.1 आलोचना, 1.1.4.2 हास्य का प्रेरक, 1.1.4.3 परिष्कार में सहायक

, 1.1.4.4 समृद्ध एवं कलात्मक भाषा)

1.1.5 व्यंग्य की परिभाषा

1.1.5.1 पाश्चात्य विचारक

1.1.5.2 भारतीय विचारक

1.1.6 व्यंग्य की विशेषताएं: 1.1.6.1 प्रतिबद्धता, 1.1.6.2 वक्रता, 1.1.6.3 सामाजिकता, 1.1.6.4

प्रहारात्मकता, 1.1.6.5 सजगता, 1.1.6.6 आक्रोश

1.1.7 व्यंग्य के साधन: 1.1.7.1 उपहास, 1.1.7.2 अपकर्ष, 1.1.7.3 उपालंभ, 1.1.7.4 वैदग्ध्य, 1.1.7.5

विडंबना

, 1.1.7.6 अतिशयता

1.1.8 हास्य-व्यंग्य में अंतर

1.1.9 व्यंग्य लेखन क्यों? : 1.1.9.1 व्यंग्य में निष्पक्षता होती है, 1.1.9.2 व्यंग्य लेखन सत्यान्वेषी होता है,

1.1.9.3 व्यंग्य सशक्त मार्गदर्शक भी

1.2 जीवनमूल्य: सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

1.2.1 मूल्य की परिभाषा

1.2.2 जीवन मूल्यों के आधार: 1.2.2.1 मनुष्य का विवेक, 1.2.2.2 जीवन के प्रति विश्वास, 1.2.2.3 लोकमंगल, की कामना, 1.2.2.4 जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण

1.2.3 मूल्य का स्वरूप

1.2.4 मूल्यों का वर्गीकरण

1.2.4.1 सामाजिक मूल्य

1.2.4.2 राष्ट्रीय मूल्य

1.2.4.3 सांस्कृतिक मूल्य

1.2.4.4 राजनीतिक मूल्य

द्वितीय अध्याय : हिंदी व्यंग्य परंपरा में जीवन मूल्य

2.1 पूर्व भारतेंदु युग

2.2 भारतेंदु युग

2.3 उत्तर भारतेंदु युग

तृतीय अध्याय : हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में सामाजिक मूल्य

3.1 शौर्य, मैत्री, संवेदनशीलता, स्वास्थ्य।

3.2 कर्तव्यपरायणता, शरीर-रक्षा, अनासक्ति, सुख, निस्पृहता, तृप्ति, प्रमोद।

3.3 कार्यकुशलता, स्वावलंबन, अध्यवसाय, प्रेम, गार्हस्थ्य, उपकारशीलता, करुणा, कोमलता, निर्मलता, सदाचार, प्रसन्नता, विश्वास, उर्ध्व चिंतन, सद्ब्यवहार।

3.4 व्रत पालन, संबद्धता, स्थिरचित्तता, सूझबूझ, पारिवारिकता, आत्मीयता।

3.5 नम्रता, सम्मान, शिष्टाचार, मातृप्रेम, कृतज्ञता, आशीष, संतोष, अपनापन, सहृदयता, औचित्य, सबलता, स्फूर्ति।

3.6 आत्मनिरीक्षण, विवेक, सर्वहितकारिता, अनुशासन, आत्म संयम, गवेषणा चिंतनशीलता।

चतुर्थ अध्याय : हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में राष्ट्रीय मूल्य

4.1 कर्तव्यपरायणता, प्रियवादिता, राष्ट्रभाषा प्रेम तथा मौलिकता।

4.2 अतीत गौरव, राष्ट्र निर्माण, बलिदान, राष्ट्रीय विकास तथा विकासप्रियता।

4.3 रचनात्मकता, तन्मयता, चारुता, सौंदर्य बोध, राष्ट्र-सुरक्षा, सुराज, मंगल कामना, भलाई तथा परहित।

4.4 राष्ट्र निर्माण, मनुष्यत्व, मनोविनोद तथा करुणा ।

4.5 स्वाधीनता, उत्तुंगता, निष्कलुषता तथा राष्ट्रीय एकता।

4.6 उत्सर्ग, विश्व बंधुत्व, रक्षण, परमार्थ-दृष्टि तथा लोकप्रियता।

पंचम अध्याय : हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में सांस्कृतिक मूल्य

5.1 सुकृत, प्रेरकता, संतुलन, लज्जा, विनय, विनीतता, निष्ठा, सुनीति, समदर्शिता तथा लोक कल्याण।

5.2 सत्संगति, नियम, समचित्तता, सज्जनता तथा विश्वास।

5.3 अनासक्ति, उद्देश्य, समदर्शिता, विनम्रता, धर्म-निष्ठा, आचार, आत्मबल, विमलता, तथा नैतिकता।

5.4 प्रार्थना, धर्म, धैर्य और स्थैर्य।

5.5 सदाशयता, निर्वेद, उद्यम, श्रमशीलता, अध्यवसाय, ध्यान तथा साधना।

5.6 निर्मलता, आत्मबोध, संतुलन, नैतिकता, शुभ कर्म तथा निर्विकारिता।

षष्ठम् अध्याय : हरीश नवल के साहित्य में राजनीतिक मूल्य

6.1 गणतंत्र, महत्वाकांक्षा, राष्ट्रीय एकता, दायित्व बोध, सामाजिक अवरोधों को दूर करना तथा प्रजा प्रेम।

6.2 मितव्ययिता, युद्धक्षय, सेवा परायणता, रहस्य गोपन, शासकत्व, उपलब्धता तथा समानता।

6.3 जनहित, अखंडता, नेतृत्व तथा प्रजातंत्र।

6.4 वाणी का कौशल, व्यक्ति की गरिमा, उपलब्धता, तत्परता तथा अपरिग्रह।

6.5 न्याय, अवसरवादिता तथा नीतिज्ञता।

6.6 प्रजातंत्र, धनार्जन, नेतृत्व, तथा गवेषणा।

उपसंहार :

उपलब्धियां :

संभावनाएं :

साक्षात्कार

ग्रन्थ सूची :

1. आधार ग्रन्थ
2. सन्दर्भ ग्रन्थ
3. कोश ग्रन्थ
4. पत्रिकाएं

प्रथमअध्याय-
सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

1.1 व्यंग्य : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि :

1.1.1 व्यंग्य का स्वरूप

व्यंग्य शब्द 'अञ्ज' धातु में 'वि' उपसर्ग व 'ण्यत्' प्रत्यय के संयोग से बनता है, जिसका अर्थ है- परोक्ष संकेत के माध्यम से दिशा निर्देश देना । श्यामसुन्दरदास *हिंदी शब्द सागर* में व्यंग्य शब्द का अर्थ बताते हुए कहते हैं- "शब्द का वह गूढ़ अर्थ जो उसकी व्यंजना वृत्ति द्वारा प्रकट हो।" (931)

व्यंग्य, व्यंजना शब्दशक्ति द्वारा निस्त है। धीरेन्द्र वर्मा कृत *हिंदी साहित्य कोश* के अनुसार "व्यंग्य, संकेतित, संकेतार्थ और गूढ़ार्थ, व्यंजना बोधगम्य शब्दशक्ति द्वारा व्यंग्योक्ति, व्याजोक्ति है।" (804) हिंदी में व्यंग्य का तात्पर्य परिहास, विकृति अथवा मजाक द्वारा जाना जाता है। अंग्रेजी भाषा में व्यंग्य का तात्पर्य 'सैटायर' है। अंग्रेजी में आईरनी (Irony) शब्द भी व्यंग्यार्थ में प्रयुक्त होता है।

ओम प्रकाश गुप्त ने *व्यंग्य पर बहस* पुस्तक के अंतर्गत व्यंग्य के सैद्धांतिक पक्ष में, व्यंग्य के भेद तथा व्यंग्य की प्रविधियों को सम्मिलित किया है। व्यंग्य के भेदों के अंतर्गत विनोद, परिहास, उपहास तथा शुद्ध व्यंग्य-चार भेद दर्शाए गए हैं । प्रस्तुत शोध कार्य में विनोद तथा परिहास को व्यंग्य के तत्व 'हास्य का प्रेरक' के अंतर्गत लिया गया है। उपहास को व्यंग्य के साधन के अंतर्गत, तथा शुद्ध व्यंग्य तो समग्र रूप से शोध कार्य में है ही। ओम प्रकाश गुप्त ने अतिरंजना, वाग्वैदग्ध्य, वक्रोक्ति, कथन की व्याख्या, उपालंभ, अप्रत्याशित घटना, असामान्य व्यवहार, व्यंग्यात्मक उपमानों का प्रयोग, असामान्य भाषा, शब्द क्रीड़ा तथा पैरोडी को व्यंग्य की प्रविधियों के रूप में लिया है। प्रस्तुत शोध कार्य में अतिरंजना अथवा अतिशयता, वाग्वैदग्ध्य, उपालंभ को व्यंग्य के साधन के अंतर्गत लिया गया है। वक्रोक्ति और वक्रता परस्पर पर्याय हैं। वक्रता को व्यंग्य की विशेषताओं के अंतर्गत लिया गया है। अप्रत्याशित घटना को विडंबना, व्यंग्य के साधन के रूप में लिया गया है। असामान्य व्यवहार को आक्रोश के अंतर्गत माना गया है। कथन की व्याख्या तथा शब्द क्रीड़ा, वैदग्ध्य के उपांग हैं, असामान्य भाषा, व्यंग्यात्मक उपमानों का प्रयोग तथा पैरोडी को समृद्ध तथा कलात्मक भाषा, व्यंग्य के तत्वों के अंतर्गत, परिगणित किया गया है।

हरीश नवल ने *कुछ व्यंग्य की, कुछ व्यंग्यकारों की* पुस्तक के अंतर्गत परिष्कार, आलोचना, आक्रोश, वैदग्ध्य तथा प्रहार को व्यंग्य के तत्वों के रूप में स्वीकार किया है। सामाजिकता, निष्पक्षता तथा गंभीरता को उन्होंने व्यंग्य की विशेषताएं माना है। प्रस्तुत शोध कार्य में परिष्कार और आलोचना व्यंग्य के तत्व के रूप में लिए गए हैं, सामाजिकता तथा गंभीरता अर्थात् सजगता को व्यंग्य की विशेषताओं के रूप में चित्रित किया गया है, तथा निष्पक्षता को, 'व्यंग्य लेखन क्यों' के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है।

एस.के. मंजुनाथ ने *हिंदी व्यंग्य साहित्य: एक समीक्षात्मक अध्ययन* पुस्तक के अंतर्गत, व्यंग्य के प्रेरक तत्वों में, कटाक्ष, उपहास, विडंबना, अतिशयोक्ति तथा अन्योक्ति को परिगणित किया है। आगे जाकर उन्होंने समाज सुधार, तथा आलोचना को भी व्यंग्य के तत्वों के रूप में स्वीकार किया है। प्रस्तुत शोध कार्य में कटाक्ष को हास्य का प्रेरक मानते हुए, व्यंग्य के तत्वों के अंतर्गत तथा आलोचना और समाज सुधार को भी व्यंग्य के तत्वों में ही अंतर्निहित किया गया है। उपहास, विडंबना, तो यथा शब्द व्यंग्य के साधन के अंतर्गत लिए गए हैं जबकि अतिशयोक्ति, अतिशयता का पर्याय है। अन्योक्ति, व्यंजना शब्द शक्ति का पर्याय है। यद्यपि व्यंग्य की विशेषताएं, एस. के. मंजुनाथ ने, लिखित रूप से लिपिबद्ध नहीं कीं, परंतु व्यंग्य की सैद्धांतिक व्याख्या के अंतर्गत स्पष्टवादिता, संवेदनशीलता तथा कठोरता को व्यंग्य की विशेषताएं माना है। प्रस्तुत शोध कार्य में, स्पष्टवादिता को निष्पक्षता, संवेदनशीलता को सामाजिकता, तथा कठोरता को प्रहारात्मकता, कहा गया है।

व्यंग्य की सैद्धांतिकता के परिप्रेक्ष्य में, ओम प्रकाश गुप्त, हरीश नवल तथा एस.के. मंजुनाथ द्वारा दिए गए विचार, सुरेश माहेश्वरी द्वारा लिखित व्यंग्य की सैद्धांतिकता में अंतर्निहित हो जाते हैं। प्रस्तुत शोध कार्य में सुरेश माहेश्वरी द्वारा लिखित पुस्तक *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य का मूल्यांकन* के अंतर्गत बनाई गई, व्यंग्य की सैद्धांतिकता को आधार बनाया गया है, क्योंकि उन्होंने व्यंग्य के सैद्धांतिक पृष्ठभूमि का विशद विवेचन किया है। उन्होंने व्यंग्य को ध्वनि, अलंकार तथा रस के परिप्रेक्ष्य में वर्णित करते हुए, व्यंग्य के तत्व, साधन, विशेषताएं तथा व्यंग्य के कार्य को व्यंग्य की सैद्धांतिकता के अंतर्गत शामिल किया है। सुरेश माहेश्वरी ने हास परिहास, उपहास, वागवैदग्ध्य, उपालंभ, अतिशयोक्ति, वक्रोक्ति, असंगत कथन को व्यंग्य के साधन के रूप में लिया है। व्यंग्य के तत्वों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है-" यथार्थता, संवेदनशीलता, गंभीरता, प्रौढ़ भाषा, बौद्धिकता, सांकेतिकता, तथा तटस्थ विश्लेषण।" (39)

हास परिहास, प्रौढ़ भाषा, तथा बौद्धिकता को व्यंग्य के तत्वों के रूप में क्रमशः हास्य का प्रेरक, कलात्मक तथा समृद्ध भाषा, तथा बौद्धिकता को आलोचना शीर्षक से उल्लेखित किया गया है। यथार्थता को 'व्यंग्य सत्यान्वेषी होता है' के अंतर्गत माना गया है, तथा संवेदनशीलता को व्यंग्य की विशेषता सामाजिकता के अंतर्गत लिया गया है, क्योंकि संवेदनशीलता, सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत एक उपमूल्य स्वीकार किया गया है। गंभीरता और तटस्थ विश्लेषण को 'व्यंग्य लेखन में निष्पक्षता होती है' के अंतर्गत समाहित किया गया है। सांकेतिकता को 'व्यंग्य एक सशक्त मार्गदर्शक भी' शीर्षक के अंतर्गत उल्लेखित किया गया है।

आनन्दवर्धन कृत *ध्वन्यालोक* में टीकाकार आचार्य लोकमणि ध्वनि के परिप्रेक्ष्य में तीन पक्षों की उपस्थिति अनिवार्य मानते हैं- "व्यंग्य अर्थ, व्यंजक शब्द एवं व्यंजना वृत्ति। जो ध्वनित है वह व्यंग्य अर्थ, जो ध्वनित करता है, वह व्यंजक शब्द और जो ध्वनित कराता है, वह व्यंजना शक्ति।" (47)

उपर्युक्त कथन के द्वारा यह कहा जा सकता है कि ध्वनि के संदर्भ में प्रधान तत्व व्यंग्य है क्योंकि व्यंग्य साधन है जो ध्वनित कराने का सामर्थ्य रखता है और इस का उद्बोधन व्यञ्जना के द्वारा ही होता है।

पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी *ध्वन्यालोकसारः* में आचार्य आनंदवर्धन के *ध्वन्यालोक* का निम्नलिखित श्लोक व्यंग्य के परोक्ष संकेत के भाव का समर्थन करता है-

"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनिकृत्स्वार्थो।

व्यंग्यक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिती सुरभिः कथितः।" (6)

अर्थात् शब्द या उसका अर्थ जब स्वयं को सामान्य अर्थ से भिन्न अर्थ में अभिव्यक्त करता है तब वह काव्य विशेष बनकर उभरता है, इस विशेष स्थिति में यह ध्वनि बनकर परिलक्षित होता है। जहां शब्द अपने अभिधात्मक अर्थ को गौण रखकर प्रतीकात्मक अर्थ का बोध कराए, उस काव्य विशेष को विद्वत जनों ने ध्वनि कहा है। आनंदवर्धन के अनुसार जहां वाच्य और वाचक अपने अर्थ को गौण बनाकर किसी विशिष्ट अर्थ को प्रकट करते हैं वह ध्वनि कहलाता है, अर्थात् जो अर्थ वाच्यार्थ से भिन्नता दर्शाता है वह ध्वनि है।

पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी *ध्वन्यालोकसारः* में आचार्य आनंदवर्धन के निम्नलिखित श्लोक को उद्धृत करते हुए लिखते हैं-

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वसत्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवानासु॥" (2)

अर्थात् महाकवियों की वाणी में वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान अर्थ कुछ और ही वस्तु है जो सुन्दरियों के लावण्य के समान अलग ही भासित होता है। आनंदवर्धन के कहने का भाव यह है कि वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान अर्थ अर्थात् व्यंग्य की चमत्कारिकता सहृदयों को प्रभावित भी करती है और आनंद भी प्रदान करती है। सहृदय व्यंग्य की रचनात्मकता से चमत्कृत होते हैं और आलंबन पर उसके अभीष्ट प्रभाव द्वारा आनंद की अनुभूति भी करते हैं।

ध्वनि की व्यापकता की ओर संकेत करते हुए *ध्वन्यालोक एक अध्ययन* पुस्तक में थानेशचंद्र उप्रेती कहते हैं-"वर्षों पुरानी कविता वाल्मीकि, व्यास, कालिदास व भवभूति की, आज भी अपने में वही अभिन्न आस्वाद प्रदान कर रही है।" (12) थानेशचंद्र उप्रेती के कहने का भाव यह है कि उपर्युक्त कवियों की काव्यात्मक प्रतिभा अप्रतिम है, विलक्षण है। उनके कवित्व में वह प्रभाव है कि उनके समकालीन सहृदय भी उनकी कविता के आस्वादन से, रसात्मकता अनुभव करते रहे और उनके बाद भी उनकी काव्यात्मकता में अद्भुत प्रभाव है, जिसकी वजह से वर्तमान समय में भी उनकी कविताएं सहृदयों को रसानुभूति करवाने में समर्थ है। इसके परिपेक्ष्य में जो कारण हैं, उसे वर्णित करते हुए वे आगे लिखते हैं- "उक्त कविताएं ध्वनि सिद्धांतान्तर्गत व्यंजनावृत्ति से अनुप्राणित है। अनिर्वाच्य व्यंग्य से अनुग्रहित कविता काव्य के महनीय लक्ष्य की पूर्ति कर सकती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। कुशल कवि के तीक्ष्ण व्यंग्य से ही बिद्ध हुए व्यक्ति अपने सहज-दुर्गुणों को भी पल भर में छोड़ देते हैं।" (12)

इतिहास साक्षी है महाकवि तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली के व्यंग्य बाणों से आहत होकर ही काव्य रचना में प्रवृत्त हुए और एक महान महाकाव्य *श्रीरामचरितमानस* के रचयिता बने। तुलसीदास जी की पत्नी रत्नावली अत्यंत सुंदर एवं विदुषी थी। एक बार वह मायके चली गई तो उसके पीछे पीछे तुलसीदास जी भी ससुराल जा पहुंचे। रत्नावली को तुलसीदास जी का उतावलापन अच्छा नहीं लगा। रत्नावली के कथन को रामचंद्र शुक्ल *हिंदी साहित्य का इतिहास* पुस्तक में बताते हुए कहते हैं-

“लाज न आवत आपको, दौरे आएहूँ साथ। धिक -धिक ऐसे प्रेम को, कहां कहां मैं नाथ॥

अस्थि चर्म मय देह मम, तामें ऐसी प्रीति। वैसी जो श्रीराम महं, होती ना भवभीति॥” (120)

रत्नावली तुलसीदास जी के आसक्ति युक्त प्रेम को धिक्कारते हुए व्यंग्यात्मक प्रहार करती हैं कि हड्डी, मांस और मज्जा से निर्मित देह के प्रति वे जितना प्रेम प्रकट कर रहे हैं यदि इतना ही प्रेम भगवान श्री राम से किया होता तो उन्हें संसार का भय न व्यापता। रत्नावली के व्यंग्य कथन तुलसीदास जी पर जो प्रभाव पड़ा, वह सर्वविदित है। रत्नावली की व्यंग्यात्मक वाणी ने उन्हें साधारण ब्राह्मण से महाकवि तुलसीदास बना दिया।

रिमझिम पुस्तक में रामकुमार वर्मा कहते हैं- “ध्वनि विकार व्याजोक्ति और वक्रोक्ति के रूप में प्रकट होता है, व्याजोक्ति में प्रकट को गुप्त कर देने का वाणी चातुर्य है और वक्रोक्ति में संदर्भ को बदल देने की मनोवृत्ति है जो ध्वनि विकार से ही संभव है।” (14)

श्रृंगार प्रकाश में वी. राघवन आनंद वर्धन के विचार को भोज के विचार से समन्वित करते हुए कहते हैं- “वक्रोक्ति ही काव्य का प्राण है और ध्वनि उन तत्वों में से एक है जो या तो वक्रता में सहायक होते हैं या वक्रता से प्रसूत।” (133)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि व्यंग्य ध्वनि के अंतर्गत आता है क्योंकि उपर्युक्त कथन ध्वनि को वक्रता में सहायक या उससे उत्पन्न मानता है और व्यंग्य में वक्रता होना स्वयं सिद्ध है क्योंकि व्यंग्य अभिधात्मक नहीं व्यंजनात्मक होता है।

श्रृंगार प्रकाश में वी. राघवन आनंद वर्धन के कथन को उद्धृत करते हुए कहते हैं- “अभिधा का संबंध केवल शब्दों से होता है किंतु व्यंजना और व्यंजकत्व का संबंध शब्द के अतिरिक्त अर्थ से भी होता है..... व्यंग्यार्थ मुख्य होता है और अभिधार्थ गौण।” (165)

संगीत से संबद्ध अनुभूतियों में ध्वनि की प्रधानता होती है, इस संबंध में वे आगे कहते हैं- “ध्वनि या व्यंग्य संगीत जैसी अवाचक ध्वनियों और संकेतों में भी रहता है। जबकि संगीत में कोई शब्द नहीं होता और सबसे बड़ी बात यह कि रसानुभूति के प्रसंगों में ध्वनि को स्वीकार करना ही पड़ेगा। रसानुभव अभिधा द्वारा नहीं किया जा सकता, यह अनुभव सिद्ध है।” (167)

उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि संगीतात्मकता के अंतर्गत यह आवश्यक नहीं कि शब्दों का प्रयोग किया ही जाए, वाद्य यंत्रों की ध्वनि द्वारा संगीत की रसात्मकता को अनुभव किया जा

सकता है। 'ध्वनि या व्यंग्य' कहकर आनंद वर्धन ध्वनि और व्यंग्य को परस्पर सापेक्ष सिद्ध कर देते हैं।

ध्वनि वह काव्य रूप है जहां व्यंजक शब्दों के प्रयोग द्वारा किसी अन्य अर्थ का अनुभव हो और वही अर्थ उद्देश्य को सुनिश्चित भी करता हो, इस प्रकार व्यंग्य का तात्पर्य भी स्पष्ट हो जाता है क्योंकि व्यंग्य व्यंजना शब्द शक्ति द्वारा ही उद्बोधित होता है।

व्यंग्य के बीज केवल भारतीय काव्यशास्त्र में ही विद्यमान नहीं हैं, अपितु पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भी व्यंग्य का पर्याप्त भाव से उल्लेख हुआ है। अरस्तु ने त्रासदी और कामेदी को काव्य के रूप में स्वीकारा है। कॉमेडी के अंतर्गत, अतिशयतापूर्ण शैली में यथार्थ स्थितियों का अंकन होता है। व्यंग्य के अंतर्गत, समाज में व्याप्त विसंगतियों को, तीक्ष्ण कटाक्ष के द्वारा निर्ममतापूर्वक दर्शाया जाता है, क्योंकि व्यंग्य लेखन तभी रचनात्मक रूप ग्रहण करता है जब कहीं, अघटित स्थिति घटित हो जाती है। ऐसी स्थिति में कोई भी रचनाकार प्रसन्नतापूर्वक, आनंद की अनुभूति करता हुआ तो अपनी रचना का सृजन नहीं कर सकता। पाश्चात्य विचारक गार्नेट, शिष्ट, शालीन और साहित्यिक शब्दावली तथा यत्किंचित हास्य को, व्यंग्य लेखन अथवा व्यंग्यात्मक कथन के लिए अपेक्षित मानते हैं। सुरेश माहेश्वरी ने *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य का मूल्यांकन* पुस्तक के अंतर्गत, गार्नेट का कथन उद्धृत करते हुए लिखा है-"व्यंग्य में साहित्यिकता और हास्य का समावेश होना आवश्यक है, अन्यथा वह गाली गलौज बन जाएगा।" (29)

पाश्चात्य विचारक इयान जैक ने व्यंग्य का निसृण, मानव की उस आकांक्षा के अंतर्गत माना है जिसके द्वारा वह समाज की विसंगतियों से, विडंबनाओं से, स्वयं को बचाने का प्रयास करता है। इयान जैक पहले स्वयं को विकृत अथवा विसंगतियुक्त व्यवहार करने से रोकने के पक्ष में हैं, क्योंकि मनुष्य जब तक स्वयं को नहीं सुधारता, तब तक किसी दूसरे को सुधारने की दिशा में प्रवृत्त कैसे हो सकता है? उनके मत को उद्धृत करते हुए संतोष बिश्रोई ने *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य विधा की परंपरा तथा रवींद्रनाथ त्यागी* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है-"बचाव की शक्ति व्यंग्य को जन्म देती है। कलात्मक बचाव ही व्यंग्य है।" (21)

दोनों पाश्चात्य विचारकों के विचारों की परिप्रेक्ष्य में एक तथ्य तो स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आता है कि व्यंग्य के अंतर्गत, एक विलक्षण तथा कलात्मक रचनात्मकता का समाविष्ट होना आवश्यक है। व्यंग्य की मारक क्षमता तब तक प्रभावी सिद्ध नहीं हो सकती, जब तक

उसकी संप्रेषण-क्षमता में वैशिष्ट्य सम्मिलित नहीं होता। व्यंग्य का सृजन मानव मूल्यों की स्थापना तथा चरित्र निर्माण के उत्कृष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। पाश्चात्य विचारक स्विफ्ट ने व्यंग्य की उत्पत्ति का कारण ही, मानव के चरित्र निर्माण को माना है। उनके कथन को उद्धृत करते हुए बापूराव देसाई ने *हिंदी व्यंग्य विधा शास्त्र और इतिहास* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "वे लोग.... जिनको न धर्म का भय है, न नैतिकता का मूल्य है और न ही दंड का डर है। हो सकता है ऐसे लोगों का व्यंग्य द्वारा पर्दाफाश किया जाए और वे शर्म खाकर मानवता को नष्ट करने से रोके जा सकें।" (21)

स्विफ्ट के कथन से स्पष्ट है कि समाज में जो लोग, सर्वथा निरंकुश भाव से विचरण करते हैं, शक्तिशाली होने के कारण उन्हें किसी का भय नहीं सताता। अभिमानी होने के कारण, वे नैतिक मूल्यों की भी धज्जियां उड़ाते हैं, उन्हें व्यंग्य के अप्रत्यक्ष प्रहार द्वारा ही, सीधी राह पर लाया जा सकता है। उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आलोक में कहा जा सकता है कि पाश्चात्य साहित्य व्यंग्य के रचना कर्म का प्रथम उद्देश्य यह मानता है कि व्यक्ति और समाज के अंतर्गत, समकालीन विद्रूपताओं का अन्वेषण किया जाए तथा उनकी निवृत्ति के उपाय सुनिश्चित करते हुए नैतिक मूल्यों के संवर्धन की दिशा में प्रयास किए जाएं।

1.1.2 व्यंग्य का रस के परिप्रेक्ष्य में विवेचन

व्यंग्य में परिष्कारक तत्व होता है विकृत व्यवहार को अथवा विकृत भाव को परिष्कृत करने के लिए व्यंग्य प्रयत्नशील रहता है। रस, मानवीय संवेदनाओं को जागृत करता है, किसी प्राणी को दयनीय अवस्था में देखकर मानव-हृदय में करुण रस का संचार होता है। रस के परिप्रेक्ष्य में व्यंग्य को संदर्भित करना, दशरथ द्विवेदी द्वारा लिखित पुस्तक *अभिनव रस सिद्धांत* के आलोक में देखा जा सकता है, दशरथ द्विवेदी लिखते हैं-"रस, संवेदनाओं और अनुभूतियों से संबंध रखता है।" (6)

उपर्युक्त पंक्ति के आधार पर रस का व्यंग्य से संबंध स्वतः सिद्ध है क्योंकि व्यंग्य और संवेदनाओं के मध्य घनिष्ठ संबंध है। 'संवेदना' एक जीवन मूल्य है, रस, संवेदना को जागृत करता है और व्यंग्य, समाज में संवेदनहीनता के भाव को ध्वस्त करता है तथा संवेदना की पुनर्स्थापना करने का प्रयास करता है। रस का उद्देश्य, संवेदना को जगाना है और व्यंग्य का उद्देश्य समाज के अंतर्गत संवेदना को क्षीण होने से बचाना है। पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी

ध्वन्यालोकसारः में आचार्य आनंदवर्धन के निम्नलिखित श्लोक से व्यंग्य का रस से संबंध पुष्ट होता है।

"व्यंग्यव्यंजक भावेऽस्मिन् विवेधे सम्भवत्यपि।

रसादिमय एकास्मिन्कविः स्यादवधानवान्।" (83)

आचार्य आनंदवर्धन के कथनानुसार काव्य मूलतः व्यंग्य प्रधान है परन्तु अनेक प्रकार के व्यंग्य कथनों में उन्होंने रसयुक्त व्यंग्य को ही काम्य माना है।

आचार्य विश्वनाथ *साहित्य दर्पण* में कहते हैं- "रस को व्यंग्य कहने से यह तात्पर्य है कि अभिधा आदि पराभिमत वृत्तियों से रसोद्बोध शक्य नहीं है, अतः उसके लिए कोई अतिरिक्त वृत्ति अवश्य माननी पड़ेगी अतः रस को व्यंजना का स्वरूप विशेष मानने में कोई हानि नहीं है।" (51)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यंग्य, शब्द शक्तियों में से तीसरी और अंतिम शब्द शक्ति व्यंजना को ही उद्बोधित करता है। अभिधा तथा लक्षणा शब्द शक्ति से इतर विलक्षण अर्थ का बोधन करवाने वाली व्यंजना शब्द शक्ति व्यंग्य का ही प्रतिरूप है।

साहित्य दर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने रस और व्यंग्य में सूत्र बद्धता स्थापित करते हुए लिखा है-"काव्य के आत्मभूत रस, उसके सहकारी भावों तथा अंतर्जगत की विभिन्न अनुभूतियों को अभिव्यक्ति व्यंजना शक्ति ही देती है। इसके द्वारा बोध्य अर्थ व्यंग्यार्थ कहा जाता है।" (11)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से आचार्य विश्वनाथ ने व्यंग्य के, सूक्ष्म जगत तक विस्तारित प्रभाव को वर्णित किया है। व्यंग्य, काव्य के अंतर्गत विद्यमान रस की अनुभूति को अभिव्यक्ति गम्य बनाने में सशक्त भूमिका निभाता है। व्यंजना के विस्तृत कार्य क्षेत्र का वर्णन करते हुए उन्होंने आगे लिखा है- "व्यंजना क कार्य क्षेत्र बहुत ही बड़ा है। यह अभिधा और लक्षणा के साथ रहकर भी कार्य करती है और इसका स्वतंत्र क्षेत्र भी बड़ा व्यापक है... रसानुभाव करना भी इसी का काम है। इसके द्वारा बताया जाने वाला अर्थ व्यंग्य कहलाता है।" (11)

ऊपर लिखा कथन रस और व्यंग्य के अंतर्संबंध को प्रामाणिक आधार प्रदान करता है। व्यंजना, अभिधामूलक और लक्षणामूलक होते हुए भी अपने आप में एक अप्रत्यक्ष और विलक्षण अर्थ संजोए रखती है। सामान्य लोग अभिधात्मक और लक्षणात्मक अर्थ ग्रहण करते हैं

और सहृदय लोग व्यंजनात्मक अर्थ की प्रतीति करते हैं। वक्रता, क्योंकि व्यंग्य की एक विशेषता है, आचार्य कुंतक द्वारा रस को वक्रता से संबद्ध करना भी व्यंग्य और रस की सूत्रबद्धता को प्रमाणित करता है। भोजकृत *शृंगार प्रकाश* को संपादित करते हुए वी.राघवन ने कुंतक का मत उद्धृत करते हुए लिखा है-"कुंतक ने रस का कुछ इस प्रकार निरूपण किया है जैसे वह वक्रता अर्थात् कवि की विशिष्ट कथन प्रणाली का ही एक भाग हो।" (134)

उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि वक्र कथन द्वारा कवि अपनी काव्यात्मकता को वैशिष्ट्य प्रदान करता है। जब-जब कवि के कथन में वक्रता का समावेश होता है, तब-तब पाठकों को रसानुभूति होती है। अभिधा में कहा गया कथन, शाब्दिक अर्थ ही सम्प्रेषित करता है, लेकिन वक्रता के द्वारा कवि किसी न किसी विशिष्ट अर्थ का बोध करवाना चाहता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत ग्रंथ *रस मीमांसा* को संपादित करते हुए विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के विचार वर्णित करते हुए लिखा है- "अभिधा और लक्षणा पहले से ही सिद्ध वस्तुओं का बोधन कराती हैं, किंतु शब्द जब तक विशेष प्रकार से अपना कार्य संपन्न नहीं कर लेते, तब तक रस की सत्ता नहीं रहती।" (405)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन रस और व्यंग्य के परस्पर संबंध का स्पष्ट रूप से प्रामाणिक आधार है। अभिधा और लक्षणा तो उसी अर्थ की प्रतीति कराती हैं, जो पहले से ही स्वयं सिद्ध है। कवि अथवा किसी भी विधा के साहित्य के अंतर्गत, शब्द जब तक विशेष रूप से कार्य सम्पन्न नहीं करते, तब तक रस निष्पत्ति नहीं होती। शब्दों द्वारा, अभिधा और लक्षणा से पृथक, विशेष प्रकार से कार्य की संपन्नता केवल व्यंजना शब्द शक्ति के प्रभाव को ही सुनिश्चित करती है। व्यंजना शब्द शक्ति के द्वारा रस-निसृण को सुनिश्चित करते हुए उन्होंने आगे लिखा है-"यदि व्यंजना किसी तथ्य की व्यंजना करती है तो यही कि व्यंजित भाव की, श्रोता या दर्शक के द्वारा रस रूप में अनुभूति होती है, इस प्रकार रस व्यंजना के द्वारा उत्पन्न होता है।" (409)

रस का व्यंजना के द्वारा निसृत होना, रस और व्यंग्य के अंतर्संबंध की पुष्टि करता है। व्यंजना में कहे गये कथन श्रोताओं या दर्शकों के अंतर्मन में रस का संचार करते हैं। और व्यंग्य, व्यंजना द्वारा ही बोधित होता है। नामवर सिंह ने *कविता के नए प्रतिमान* पुस्तक के अंतर्गत व्यंग्य और रस के अंतर्संबंध को सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन अज्ञेय के कथन के परिप्रेक्ष्य में वर्णित करते हुए लिखा है- "केशव को व्यंग्यों का सफल कवि माना गया है।" (31)

केशव रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं और रीतिकाल के अंतर्गत कवियों ने श्रृंगार रस पर आधारित रचनात्मकता का निर्वहण किया है। केशव यदि व्यंग्य के सफल कवि हैं तो व्यंग्य का रस से संश्लिष्ट होना स्वयं प्रमाणित है। अज्ञेय के कथन को उद्धृत करते हुए उन्होंने आगे लिखा है-"कहीं-कहीं जहां चमत्कार की कोई तारीफ करता है और कोई निंदा, वहां भी असल में केशव थोड़ा सा व्यंग्य जरूर करते रहे होंगे।" (31)

अज्ञेय ने प्रस्तुत कथन के द्वारा रस और व्यंग्य को और भी अधिक सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। केशव ने अपनी रचनाओं के अंतर्गत प्रशंसा अथवा निंदा को अपनी काव्यात्मकता में समाविष्ट करते हुए व्यंग्य का अवश्य आश्रय लिया होगा, अज्ञेय का यह विचार भी किसी ने किसी तथ्य पर आधारित ही होगा, उन्होंने रस और व्यंग्य के परस्पर संबंध को पुख्ता बनाने के लिए ही उपर्युक्त कथन कहा। केशव के काव्य में व्यंग्य का निहित होना व्यंग्य के महत्व और उसकी रसात्मकता के भाव को परिपुष्ट करता है। इसी पुस्तक के अंतर्गत नामवर सिंह आगे लिखते हैं- "रस हमेशा व्यंग्य होता है.... गीत, सुप्त भाव संस्कारों को उद्बुध करते हैं, व्यंग्य-वक्रताएं गुदगुदी पैदा करती हैं।" (56)

ऊपर लिखा गया कथन व्यंग्य और रस के संबंध को असंदिग्ध रूप से प्रमाणित करता है। रस का सदैव व्यंग्य माना जाना निर्विवाद रूप से दोनों के अंतर्संबंध की पुष्टि करता है। इस कथन के पश्चात यह सिद्ध हो जाता है कि रसात्मक वाक्य सदैव व्यंग्य की परिधि में अंतर्निहित होता है।

1.1.3 व्यंग्य अलंकार के रूप में

अन्य अलंकार रस को भूषित करते हैं परंतु व्यंग्य अलंकार स्वयं भूषित होते हैं किसी अन्य को भूषित नहीं करते क्योंकि व्यंग्य अर्थ सबसे प्रधान माना जाता है। ब्याज स्तुति अलंकार में व्यंग्य तत्व की प्रधानता है। आचार्य विश्वनाथ *साहित्य दर्पण* में कहते हैं- "वाच्य निंदा से स्तुति के व्यंग्य होने पर और वाच्य स्तुति से निंदा के व्यंग्य होने पर व्याज स्तुति अलंकार होता है। इसी प्रकार समासोक्ति में भी अप्रस्तुत व्यंग्य रहता है।" (345)

आचार्य विश्वनाथ के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यंग्यार्थ स्वयं अपने भीतर इतना गहन अर्थ संजोए रहते हैं कि उन्हें किसी अन्य अलंकार को धारण करने की आवश्यकता नहीं रहती, वे स्वतः और स्वयं अलंकृत होते हैं। *ध्वन्यालोक एक अध्ययन* पुस्तक

में थानेशचंद्र उप्रेती कहते हैं-"अलंकारों में अलंकारत्व का संपादक यह वक्रोक्ति ही है..... वक्रोक्ति का अर्थ है किसी बात को अलौकिक रूप से प्रकट करना।" (30)

थानेशचंद्र उप्रेती के कथन के आलोक में अलंकार की परिभाषा भी सिद्ध होती है, साहित्यकार शब्द अथवा अर्थ के द्वारा अपने कथन में विशिष्टता अथवा अलौकिकता का भाव दर्शाता है और अपनी कविता अथवा किसी अन्य विधा की रचना को प्रभावी बनाता है। साहित्य की किसी भी विधा का वैशिष्ट्य-बोध कराने में वक्र कथन का एक अलग ही महत्व है। किसी भी कथन को जब सीधे स्पष्ट तौर पर न कह कर यत्किंचित वक्र भंगिमा द्वारा प्रस्तुत किया जाए तो उसमें वक्रता तो समाविष्ट होती ही है, इसके साथ ही साहित्यकार द्वारा कहा गया कथन भी साधारण न होकर अलंकारिक स्वरूप धारण कर लेता है।

1.1.4 व्यंग्य के तत्व :

निम्नलिखित तत्वों के आधार पर किसी कृति को व्यंग्य कृति कहा जा सकता है।

1.1.4.1 आलोचना

रचना और आलोचना परस्पर संबंधित तत्व हैं। किसी भी कृति की रचना के उपरांत उसकी गुणवत्ता के संबंध में विभिन्न लोगों के भिन्न-भिन्न विचार हो सकते हैं। रचना की परख के लिए, प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग होता है। व्यंग्य-क्षेत्र में, आलोचना एक महत्वपूर्ण घटक है। व्यंग्य का कार्य है-मानव समाज से विसंगतियों का निवारण। यह तभी संभव होगा जब विसंगतियों के मूल में जो कारण हैं, उनके प्रति आलंबन को सजग किया जाए, विसंगतियों के परिप्रेक्ष्य में रहने वाले कारकों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया जाए, इसके लिए व्यंग्यकार, अपनी व्यंग्य-रचनाओं के माध्यम से, विसंगतियों के लिए उत्तरदायी कारणों की आलोचना करता है।

ओम प्रकाश अवस्थी *आलोचना की फिसलन* पुस्तक में कहते हैं- "समीक्षा.....जब रूढ़ियों परंपराओं की संकीर्णता से ऊपर उठ जाती है, घेराबंदी की सीमाओं को तोड़ देती है, उस स्थिति में एक प्रकार का असीमितपन समीक्षा में आ जाता है तभी आलोचना की निष्पत्ति होती है। आलोचना का विषय मर्यादित है, उसकी संवेदना उन्मुक्त और उसका रचना कौशल असीमित।" (1)

ओम प्रकाश अवस्थी के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि समीक्षा जब हर प्रकार के पक्षपात के घेराव से मुक्त हो जाती है तब उसके कथन का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है, तब यह बृहद स्वरूपा समीक्षा, आलोचना का रूप धारण कर लेती है। आलोचना का क्षेत्र असीम होते हुए भी वह अपने सुनिश्चित, अनुशासनात्मक क्षेत्र से पृथक नहीं होती। आलोचना में संयम होता है और संवेदना के स्तर पर उन्मुक्तता का भाव होता है। अगर कहीं संवेदनशीलता अपक्षित है तो वह निष्पक्ष रूप से सभी मनुष्यों के लिए, सभी वर्गों के लिए और समग्र समाज के लिए अभिव्यक्त होगी। व्यंग्य के अंतर्गत आलोचना की उपस्थिति सुनिश्चित करते हुए वे आगे कहते हैं-"व्यंग्यकार में एक प्रखर छिद्रान्वेषी आलोचक होता है।" (27)

ओम प्रकाश अवस्थी के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यंग्यकार की भेदक दृष्टि सूक्ष्मतम विसंगतियों के तह तक जाकर, उनकी पहचान करने में सक्षम सिद्ध होती है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें जरा-सा स्थान पाते ही, गुफाओं और कंदराओं के भीतर तक प्रवेश कर जाती हैं उसी प्रकार व्यंग्यकार की दृष्टि भी छोटी सी छोटी विसंगति को भी ताड़ जाती है।

उपर्युक्त संदर्भ में *रचना और आलोचना* के अन्तर्गत विश्वंभर प्रसाद उपाध्याय के विचार दृष्टव्य है, "आलोचना में नीर-क्षीर विवेक शालिनी प्रज्ञा की प्रधानता होती है।" (131) जिस प्रकार हंस नीर-क्षीर में अंतर करना जानता है, उसी प्रकार आलोचना के अंतर्गत सामान्य और गुणवत्ता युक्त लेखन में अंतर स्पष्ट हो जाता है। आलोचना के अंतर्गत निष्पक्षता का भाव अंतर्निहित होता है। विश्वंभर प्रसाद उपाध्याय के विचार से पता चलता है कि आलोचना सर्वथा निष्पक्ष, तार्किक और सत्यता पर आधारित होती है।

समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना के अन्तर्गत राहुलदेव व्यावहारिक आलोचना को बढ़ावा दिए जाने को आवश्यक समझते हुए लिखते हैं- "प्रत्येक रचना को उसके निजी वैशिष्ट्य के साथ उद्घाटित करने में आलोचना की यही पद्धति काम आती है।" (4)

राहुल देव के कहने का भाव है कि प्रत्येक रचना के निर्माण में, उसके रचयिता की मौलिक साधना समाहित रहती है। रचनाकार अपनी कृति के रचाव में भिन्न-भिन्न तत्वों का प्रयोग करता है, प्रत्येक रचना का अलग शिल्प-विधान होता है, प्रत्येक रचना को रचने में रचनाकार का अपना निजी अथवा समाजहित से जुड़ा हुआ उद्देश्य निहित होता है। आलोचना, रचनाकार के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, उसकी कृति का मूल्यांकन करती है।

व्यंग्य रचना के निर्माण में आलोचना मुख्य तत्व के रूप में विद्यमान रहती है व्यंग्य की प्रवृत्ति क्योंकि प्रहारक रहती है अतः उसके अंतर्गत आलोचना की समाविष्टि अनिवार्य हो जाती है क्योंकि आलोचना ही प्रहारात्मकता का प्रथम चरण है। *कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्य कारों की* पुस्तक में हरीश नवल लिखते हैं-“व्यंग्य रचना करते समय हम लोग कहीं न कहीं आलोचक होते हैं। हमारी आलोचनात्मक दृष्टि ही लक्षित मुद्दे या वस्तु पर आक्रमण करने का आधार बनाती है। एक दृष्टि से व्यंग्य का मुख्य उद्देश्य भी लक्षित मुद्दे या वस्तु की आलोचनात्मक प्रस्तुति करना होता है।” (25)

हरीश नवल के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यंग्य लेखन के मूल में व्यंग्यकार समाज या राष्ट्र में व्याप्त किसी विसंगति पर जब आक्षेप करता है तो उस आक्षेप के प्रक्षेपण में आलोचना का भाव निहित रहता है। व्यंग्यकार निष्पक्षता से समग्र वस्तुस्थिति पर दृष्टिपात करता हुआ आलोचना के विचारबिंदुओं का निर्धारण करता है। आलंबन पर प्रहार करने से पूर्व व्यंग्यकार, आलोचनात्मक दृष्टि से उसकी कृति की निष्पक्षता के साथ जांच करता है उसकी आलोचना ही उसकी व्यंग्यात्मकता का आधार बिंदु बनती है।

1.1.4.2 हास्य का प्रेरक

आचार्य भरतमुनि द्वारा रचित *हिंदी नाट्य शास्त्र* में हास्य रस प्रकरण में कहा गया है- “अथ हास्योनाम..... तदा परस्थ” (316) अर्थात् हास्य रस का स्वरूप हास नामक स्थायी भाव से अनुरंजित है। यह व्यक्ति के विकृत वेश, चंचलता, अलंकार ढिठाई, कुहुक, व्यर्थ बोलना, हीन अवयवों के दर्शन, दोषों को देखने वाले विभावों से व्यंजित होता है। इसका अभिनय होंठ, नाक तथा गले को फड़काने, दृष्टि को सिकुड़ाने या फैलाने, मुख के लाल होने तथा स्वेद उत्पन्न होने इत्यादि अनुभावों के साथ किया जाता है। जब मनुष्य स्वयं हंसने लगे तो आत्मस्थ यदि दूसरों को हंसाए तो परस्थ होता है।

व्यंग्य हास्य का उत्प्रेरक तत्व है। इस तथ्य को सुभाषचन्द्र कृत *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* के अन्तर्गत रामकुमार वर्मा के निम्नांकित कथन द्वारा सिद्ध किया जा सकता है- “आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।” (24)

सुभाषचन्द्र कृत *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* के अन्तर्गत इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार- “ व्यंग्य उपहासास्पद अथवा अनुचित वस्तुओं से उत्पन्न विनोद या घृणा के भाव को

समुचित रूप से अभिव्यक्त करने का नाम है, बशर्ते उस अभिव्यक्ति में हास का भाव निश्चित रूप से विद्यमान हों।" (24) अर्थात् व्यंग्य समाज के अंतर्गत, अनोचित्य पूर्ण कार्यों के प्रति उपहास अथवा घृणा के भाव को प्रक्षेपित करता है। व्यंग्य के द्वारा घृणा का भाव व्यंजित होता है, अथवा उपहास का, अप्रत्यक्ष रूप से किए गए, प्रहार का अभीष्ट प्रभाव पड़ता है। उपहास के प्रयोग से, आलंबन को अनुचित व्यवहार त्यागने के प्रति सजग करने का प्रयास किया जाता है।

1.1.4.3 परिष्कार में सहायक

व्यंग्य वेदना और आक्रोश से उत्पन्न होता है रोष युक्त होने पर भी व्यंग्यकार अधीर नहीं होता, असंयमित नहीं होता, व्यंग्य के आक्रोश की अग्नि में समाज, राष्ट्र और व्यक्ति की विकृत मानसिकता को तपाकर वह उसका निखरा हुआ, परिष्कृत रूप निर्मित करना चाहता है ताकि समाज व राष्ट्र का सकारात्मक रूप प्रतिष्ठित हो सके, हर मनुष्य औचित्य व अनौचित्य के अंतर को जानते हुए उसके प्रति जागरूक हो सके। उसके मस्तिष्क पर अच्छाई के भाव विजय पाएं और बुराई के भाव पराजित हों। रविन्द्र नाथ त्यागी *प्रतिनिधि व्यंग्य रचनाएं* पुस्तक के अन्तर्गत "व्यंग्यकार समाज का निन्दक अथवा छिद्रान्वेषी ही नहीं परिशोधक भी है।" (8)

व्यंग्यकार निन्दक नहीं होता, उसकी प्रवृत्ति समाज सुधार की होती है। निन्दक व्यक्ति को प्रत्येक व्यक्ति में, अथवा उसके प्रत्येक कार्य में सदैव त्रुटि ही दिखाई देती है, जबकि व्यंग्यकार केवल असंगत व्यवहार को त्रुटिपूर्ण मानता है। वह निष्पक्ष भाव से आलोचना करता हुआ व्यक्ति और समाज के परिष्कृत स्वरूप की स्थापना के लिए प्रयासरत रहता है।

व्यंग्य मूल रूप से बुराई को पहचानने, समग्रतः जानने तथा उस बुराई को, विकृति को समूल नष्ट करने की चेतना जीवंत करता है। समाज अथवा राष्ट्र में जहां कहीं उसे विसंगति दृष्टिगत होती है उसे जानकर, समझ कर, उसके कारण और कारकों की पहचान करते हुए उनकी निवृत्ति करने में व्यंग्य प्रवृत्त हो जाता है।

कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्य कारों की पुस्तक में हरीश नवल कहते हैं- "व्यंग्य सामाजिक बदलाव के लिए वैचारिक संघर्ष को पुष्पित करता है, व्यंग्य कंटकों में फूल की संभावनाएं निर्मित करता है, इसकी प्रवृत्ति दुर्गंध में से सुगंध खोजने की कोशिश है।" (19)

हरीश नवल द्वारा कहे गए कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि मानव समाज के अंतर्गत वैचारिक मतभेद तो होता ही है, जब हाथों की पांच उंगलियां ही बराबर नहीं होती तो भिन्न व्यक्तित्व को धारण करने वाले मानव समाज के विचार समान कैसे हो सकते हैं? मानव समाज में ध्वंसात्मक और निर्माणात्मक शक्तियों के मध्य संघर्ष चलता रहता है। व्यंग्य, मानव की ध्वंसात्मक प्रवृत्ति को नष्ट करके निर्माणात्मक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर करना चाहता है।

व्यंग्य का समाजदर्शन में सुरेश आचार्य कहते हैं- "व्यंग्य मूलतः सफाई का काम करता है, वह जो विधिवत है और जिसे लोग संतोष पूर्वक स्वीकार कर रहे होते हैं उसे नष्ट करता है।" (42)

सुरेश आचार्य के कहने का भाव यह है कि व्यंग्य के मूल में सामाजिक परिवेश को परिष्कृत करने की भावना विद्यमान रहती है। सामान्य जन विसंगति युक्त परिवेश में भी जीने के अभ्यस्त हो जाते हैं, सोचते हैं कि वे सामर्थ्यवान नहीं हैं कि सामाजिक तंत्र में बदलाव ला सकें, अतः वे उसे अपनी नियति मानते हुए मौजूदा हालातों से समझौता कर लेते हैं। व्यंग्यकार ऐसा नहीं कर पाता। इस विषय में कमला प्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित पुस्तक *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* के अंतर्गत हरिशंकर परसाई ने लिखा है- "जागने वालों का रोना कभी खत्म नहीं होता। व्यंग्य लेखक की गर्दिश भी खत्म नहीं होगी।" (118)

हरिशंकर परसाई के कथन से स्पष्ट है कि व्यंग्यकार क्योंकि चेतना संपन्न व्यक्तित्व का धारक होता है, इसलिए वह विसंगतियों की ओर से आंखें मूंदे हुए नहीं रह सकता। व्यंग्यकार अपने व्यंग्य-लेखन के द्वारा बेहतर समाज का निर्माण चाहता है। इसलिए वह स्वयं तो जागरूक होता ही है, वह यह भी चाहता है कि अन्य लोग जो चुपचाप विसंगति युक्त परिवेश को स्वीकार किए जा रहे हैं, उनकी चेतना में हलचल हो और वे एक सामाजिक क्रांति के द्वारा, विसंगतियों को ध्वस्त करते हुए, एक परिष्कृत समाज का निर्माण करें।

साहित्यिक परिवेश के व्यंग्य में गिरिराज शरण अग्रवाल लिखते हैं- "साहित्यकार एक प्रकार का सफाई कर्मचारी ही होता है यदि उसकी लंबी झाड़ू मनुष्य के भीतर की गंदगी तक नहीं पहुंच रही है तो निसंदेह उसे बाहर की गंदगी साफ करने पर पिल पड़ना चाहिए।" (7)

अर्थात् यदि व्यंग्यकार की प्रहारात्मकता आलंबन की विकृत मनोवृत्ति पर अभीष्ट प्रभाव डालने में सक्षम सिद्ध नहीं हो रही तो उसके विसंगति पूर्ण व्यवहार पर आक्षेप करने में भी कोई त्रुटि नहीं है, हां इतना अवश्य है कि वह आक्षेप अप्रत्यक्ष हो क्योंकि व्यंग्य लेखन की यही आधारभूत विशेषता है।

1.1.4.4 समृद्ध एवं कलात्मक भाषा

व्यंग्य लेखन में भाषा व शिल्प विधान का बड़ा योगदान है। व्यंग्य की भाषा प्रहारक होते हुए भी, आक्रमक होते हुए भी, पाठक के अंतर्मन में करुणा के भाव जागृत करने में सफल हो, तभी व्यंग्य कृति की सफलता सुनिश्चित हो सकती है। राहुलदेव द्वारा संपादित *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* पुस्तक में पूरन सरमा कहते हैं-“ व्यंग्य की भाषा स्वाभाविक समृद्ध होना जरूरी है, यदि वह कृत्रिम होगी तो संप्रेषणीय नहीं होगी और उसकी असलियत को सजग पाठक भी पहचान लेंगे।” (136)

पूरन सरमा के कथन का अभिप्राय यह है कि व्यंग्य-लेखन में, समृद्ध भाषा का होना आवश्यक है और वह स्वाभाविक भी लगनी चाहिए। व्यंग्यकार, अपने व्यंग्य लेखन में जिन कलात्मक शब्दों का प्रयोग करे, उनकी प्रयुक्ति अनायास लगनी चाहिए, सायास नहीं। वर्तमान पाठक सरलता से स्वाभाविकता और कृत्रिमता में अंतर की परख कर लेता है।

हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे पुस्तक में शरद जोशी लिखते हैं-“यह मिट्टी बड़ी उर्वरा है, शस्य श्यामल काले करमों के लिए..... आजादी के आंदोलन में जेल जाने वाले, चरखे के कतैया, गांधी जी के चेले..... कैसे खा रहे हैं रिश्वत गप-गप।” (7)

उपर्युक्त कथन के द्वारा शरद जोशी उन लोगों को लज्जित कर रहे हैं जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान एक-दो दिन जेल में रहे और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वे अपनी देशभक्ति का मूल्य भुनाने की इच्छा रखने लगे। जो लोग अपने नीति-नैपुण्य के द्वारा, राष्ट्र के सर्वोच्च पदों पर आसीन हो गए, वे रिश्वत के धन से धड़ाधड़ अपने खजाने भर रहे हैं और भारत माता के बलिदानी सपूत बन कर, अपना नाम और काम, दोनों रोशन कर रहे हैं।

उपर्युक्त कथन के द्वारा शरद जोशी कितने कलात्मक ढंग से भ्रष्टाचारियों को लज्जित किए जा रहे हैं। इस कथन के द्वारा शरद जोशी ने बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के लिए अति समृद्ध और प्रांजल भाषा का उपयोग किया है, विसंगतियों पर कलात्मक व्यंग्य शरों से प्रहार किया गया

है। साहित्यिक परिवेश के व्यंग्य की भूमिका में गिरिराज शरण अग्रवाल लिखते हैं- "चाटुकारिता कुछ भी हो, लेकिन साहित्यकारिता की तुलना में कहीं अधिक लाभदायक होती है। चाटुकारिता और वह भी किसी ऊंचे दर्जे के धनपति की, बस समझ लीजिए कि पांचों उंगलियां घी में हैं और सिर कड़ाही में, और कड़ाही भी ऐसी जिसमें हाथी डूब जाए तो पता न चले।" (3)

उपर्युक्त कथन में लेखक ने कृत्रिम भाषा का प्रयोग न करते हुए आज की अवसरवादिता की भ्रष्ट मनोवृत्ति पर स्पष्ट व्यंग्य किया है। वर्तमान युग में मनुष्य अर्थ प्रधान वृत्ति से इतना अधिक आवृत हो चुका है कि वह परिश्रम के मार्ग पर न चलकर चाटुकारिता के पिछले द्वार से धन, यश और प्रतिष्ठा पाने का प्रयास करता रहता है।

उपर्युक्त कथन द्वारा व्यंग्यकार चाटुकारिता की तथा स्वार्थ लिप्सा की स्वाभाविक तस्वीर प्रस्तुत करने में बनावटी शब्दों की शरण नहीं लेता। राहुलदेव द्वारा संपादित *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* में भाषा की कलात्मक प्रस्तुति के विषय में बताते हुए गिरीश पंकज कहते हैं- "कलात्मक तरीके से सच की अभिव्यक्ति होनी चाहिए ऐसा करने से रचना की संप्रेषणीयता बढ़ जाती है..... विसंगतियों की रंजक अभिव्यक्ति ही व्यंग्य है, व्यंग्य को यदि रोचकता, रंजकता के साथ प्रस्तुत न किया जाए तो उसमें एक तरह की जड़ता या कटुता आ जाती है।" (47)

गिरीश पंकज के कथन के आलोक में यह समझा जा सकता है कि विसंगतियों का उल्लेख, समाज अथवा राष्ट्र में मूल्यहीन स्थिति को दर्शाना है। पढ़ने अथवा सुनने वाले को तो 'विसंगतियां' शब्द सुनते ही सांप सूँघ जाता है। भले ही विसंगतियों का संकेत, उसकी ओर न होकर, किसी और की ओर होता हो, श्रोता अथवा पाठक पर कुछ समय तो व्यंग्य कथन का प्रभाव रहता ही है, वह कुछ समय के लिए राष्ट्र अथवा समाज में व्याप्त विसंगतियों की तरफ से चिंतित तो होता ही है। यदि विसंगतियों का उल्लेख कलात्मक ढंग से किया जाएगा तो व्यंग्य के, संप्रेषण में वृद्धि हो जाएगी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि व्यंग्य सच्चाई को जनमानस के समक्ष लाकर खड़ा करने का बीड़ा उठाता है अतः उसकी रचनाधर्मिता में कलात्मकता का सहज संयोजन आवश्यक है। व्यंग्य लेखन में चाहे उपहास का प्रयोग हो, आक्रोश का प्रकटन हो, उपालंभ दिया जाए अथवा

विडंबना दर्शाई जाए, उसका लक्ष्य आलंबन पर प्रहार करना है। प्रहारात्मकता प्रभावी सिद्ध हो, इसके लिए कलात्मक और समृद्ध भाषा का प्रयोग अपेक्षित हो जाता है।

1.1.5 व्यंग्य की परिभाषा :

1.1.5.1 पाश्चात्य विचारक

सुभाषचन्द्र *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* पुस्तक में स्विफ्ट के कथन का उल्लेख करते हुए कहते हैं- "व्यंग्य एक प्रकार का शीशा है जिसमें देखने वाले को अपने मुंह के अतिरिक्त प्रत्येक का मुंह दिखाई देता है, यही कारण है कि विश्व में व्यंग्य का स्वागत किया जाता है तथा बहुत कम लोग इससे अपने को पीड़ित अनुभव करते हैं।" (25)

ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार "व्यंग्य वह पद्यमय अथवा गद्यमय रचना है जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का कभी-कभी कुछ अतिरंजना के साथ मजाक उड़ाया जाता है, इसका अभीष्ट किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह का उपहास करना होता है।" (165)

सुभाषचन्द्र के *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* में प्रसिद्ध आलोचक ए. निकाल के विचार उद्धृत करते हुए कहते हैं-"व्यंग्य इस सीमा तक कटु हो सकता है कि किंचित भी हास्य जनक न हो। व्यंग्य बहुत तीखा वार करता है इसमें दया, विनम्रता एवं उदारता का लेश नहीं होता।..... यह युग की समूची परिस्थितियों की धजियां किसी को भी क्षमा किए बगैर उड़ाता है।" (25)

आइडिया ऑफ कॉमेडी पुस्तक में मैरिडिथ ने व्यंग्य को परिभाषित करते हुए लिखा है-"व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है। बहुधा, वह समाज की गंदगी की सफाई करने वाला होता है। उसका कार्य सामाजिक विकृतियों की गंदगी को साफ करना होता है।"(82) मैरिडिथ के कथन से स्पष्ट है कि व्यंग्य, समाज को विकृति रहित बनाते हुए उसका परिष्कार करता है, उसे सुंदर और परिष्कृत स्वरूप प्रदान करता है।

श्री लाल शुक्ल व्यंग्य के विविध आयाम पुस्तक के अंतर्गत अर्चना दुबे पाश्चात्य विचारक जेम्स सदरलैंड के द्वारा दी गई व्यंग्य की परिभाषा को उद्धृत करते हुए लिखती हैं-"व्यंग्यकार का कार्य न्यायाधीश की भांति, न्याय पालन कराने का तथा शिष्ट समाज की

मर्यादाओं की रक्षा करना है। उसका कार्य स्त्री पुरुष को नैतिक, बौद्धिक सामाजिक एवं अन्य कसोटियों पर, खरे उतरने के लिए सचेत करने का है।" (17)

जेम्स सदरलैंड के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि व्यंग्य, समाज को नैतिक और बौद्धिक दृष्टि से दृढ़ता प्रदान करता है। व्यंग्य, मानव को, मानव मूल्यों के निर्वहण के प्रति सजगता धारण करने के लिए प्रेरित करता है, ताकि मानव, मानव होने की कसौटी पर खरा उतर सके और मनुष्यता के भाव को सार्थकता प्रदान कर सके।

पाश्चात्य विचारकों द्वारा दी गई व्यंग्य की, विविध परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि व्यंग्य, समाज में विद्यमान, प्रत्येक विसंगति को निष्पक्षता के साथ अनुभव करता है, आलंबन पर अप्रत्यक्ष तौर पर मारक प्रहार करता है। व्यंग्य का अतिरेक समाज में व्याप्त दोषों की निवृत्ति में सहायक सिद्ध होता है। व्यंग्य का कार्य किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह को उसके दोषों से अवगत कराना है, इसलिए व्यंग्य में कड़वाहट तो होती ही है। कभी-कभी यह कड़वाहट इतनी तल्ल हो जाती है कि उस में विद्यमान हास्य का जरा सा अंश भी शेष नहीं रहता। व्यंग्य की तीखे प्रहारात्मकता से दया, विनम्रता एवं उदारता लुप्त होते दिखाई देते हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। व्यंग्य, समाज को स्वच्छ स्वरूप प्रदान करने के लिए ही कटु प्रतीत होता है। व्यंग्य का प्रभाव औषधि सदृश है, जिस प्रकार औषधि सेवन करते समय कड़वी अनुभव होती है, परन्तु उसका प्रभाव सकारात्मक होता है क्योंकि वह मनुष्य को आरोग्यता प्रदान करती है।

1.1.5.2 भारतीय विचारक

कमलाप्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएँ* पुस्तक में हरिशंकर परसाई लिखते हैं-“व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार कराता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।” (352)

व्यंग्य का अर्थ बताते हुए वे आगे लिखते हैं-“लोगों से बात करते समय किसी स्थिति का विद्रूप मन में चमक उठता है और व्यंग्य की रेखाएं खिंच जाती हैं तब व्यंग्य के फिकरे निकलने लगते हैं।” (355) व्यंग्य प्रणेता हरिशंकर परसाई व्यंग्य को जीवन का आलोचक तत्व मानते हैं, क्योंकि व्यंग्य मनुष्य को आत्मावलोकन की दृष्टि प्रदान करता है। मनुष्य के व्यक्तित्व में अदृश्य भाव से स्थित विसंगतियां भी, व्यंग्य की बेधक दृष्टि से, बच नहीं सकती। समाज में विचरण

करते समय लोगों से वार्तालाप के दौरान, व्यंग्यकार की पकड़ में यदि कोई विसंगति आ जाती है तो व्यंग्यकार टिप्पणी किए बगैर रह नहीं सकता। इस आधार पर व्यंग्यकार को छिद्रान्वेषी भी कहा जा सकता है।

पुस्तक *कबीर* में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी व्यंग्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं- "व्यंग्य वह है जिसे कहने वाला अधरोष्ठों में हंस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठता हो फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहास जनक बना लेना हो जाता हो।" (164) हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार में व्यंग्य की उपस्थिति, उस समय अनुभव की जा सकती है, जब व्यंग्यकार की व्यंग्यात्मक मुस्कुराहट से आलंबन खीझता है, लेकिन व्यंग्यकार को प्रत्युत्तर नहीं दे पाता। वह इस तथ्य से भली-भांति प्रतीत होता है कि व्यंग्यकार, ने अपनी मुस्कुराहट द्वारा उसकी जिस त्रुटि की ओर इशारा किया है, यदि उस विषय में उसकी तरफ से कुछ कहा गया, तो स्थिति और भी अधिक उपहासास्पद हो सकती है। *आलोचना की फिसलन* में ओम प्रकाश अवस्थी कहते हैं- "व्यंग्य विद्वत समाज का धर्म है और कूटनीतिज्ञ का अस्त्र।" (32)

सुभाषचन्द्र *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* में बरसाने लाल चतुर्वेदी के विचार उद्धृत करते हुए कहते हैं- "आलंबन के प्रति तिरस्कार या भर्त्सना की भावना को लेकर बढ़ने वाला हास्य ही व्यंग्य है।" (23)

व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न के अन्तर्गत शेरजंग गर्ग लिखते हैं- 'व्यंग्य ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, कथनी एवं करनी के अंतरों की समीक्षा अथवा निंदा, भाषा को टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए भी की जाती है।' (26) शेरजंग गर्ग के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि व्यंग्य सर्वदा निष्पक्ष होता है और सत्यता पर आधारित होता है। व्यंग्य विधा मानव की कमजोरियों के प्रति इंगित करती है। व्यंग्य मानव की कथनी और करनी में अंतर अनुभव करते हुए, उसे विसंगतिपूर्ण व्यवहार करने से बरजता है।

सुभाषचन्द्र *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* में सुरेश माहेश्वरी द्वारा व्यंग्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं- "व्यंग्य युगीन विसंगतियों की वैद्ग्यपूर्ण शैली में जीवन का तीखा प्रहारात्मक स्वर है।" (25)

राहुलदेव द्वारा संपादित *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* पुस्तक में गिरीश पंकज कहते हैं-“व्यंग्य हस्तक्षेप की सशक्त विधा है, अपने समय की विसंगतियों पर व्यंग्य के माध्यम से हमला किया जा सकता है, व्यंग्य अपने आप में प्रगतिशील नजरिया है, संकुचित मन वाला व्यंग्यकार हो ही नहीं सकता।” (45)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से गिरीश पंकज ने स्पष्ट किया है कि व्यंग्य, अपनी आक्रामक प्रवृत्ति के कारण समकालीन विसंगतियों पर प्रहार करता है। व्यंग्य विधा के रचनाकार का, जीवन के प्रति दृष्टिकोण विस्तृत होता है। संकीर्ण मनोवृत्ति का धारक व्यंग्य-लेखन के क्षेत्र में प्रवृत्त हो ही नहीं सकता। मानव जीवन में क्या हो रहा है, व्यंग्य इस स्थिति पर, विचार नहीं करता। मानव जीवन में क्या होना चाहिए, व्यंग्य का आग्रह इस स्थिति को, सुनिश्चित करने की तरफ केंद्रित रहता है।

राधा वल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित *नाट्यशास्त्र विश्वकोश* में व्यंग्य को निम्नांकित तरीके से परिभाषित किया गया है-“काव्य में व्यंजनावृत्ति के द्वारा अन्य अर्थ का सूचित होना-

“अङ्गनेपथ्यसत्त्वानि वाक्यार्थं व्यञ्जयन्ति हि” (1523)

यहां रस तथा अभिनय में व्यङ्ग्य-व्यञ्जक संबंध सूचित है।

कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्य कारों की पुस्तक में हरीश नवल कहते हैं- “गद्य में ध्वनि और व्यंजना के माध्यम से जब रचनाकार विसंगतियों, विद्रूपताओं और विडंबनाओं को उभारे, वे रचनाएं...व्यंग्य विधा कहलाती हैं।” (15) हरीश नवल व्यंजना शब्द शक्ति को व्यंग्य के संप्रेषण का माध्यम मानते हैं। व्यंग्यकार को जब-जब समाज और राष्ट्र के स्वरूप में कुरूपता दृष्टिगत होती है, जब-जब वह अघटित, को घटित होते देखता है, तब -तब व्यंग्यकार, व्यंग्याघात के लिए, अपने शस्त्र उठाता है।

सुरेश आचार्य *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक में व्यंग्य के विषय में भागीरथ मिश्र द्वारा दी गई परिभाषा का उल्लेख करते हुए कहते हैं-“ऐसी साहित्यिक रचना, जो मानवीय और व्यक्तिगत दोषों, मूर्खताओं, दुर्बलताओं एवं अभावों को निजी आलोचना या ठिठोली या अन्य माध्यम द्वारा रोकती है, व्यंग्य कहलाती है।” (60)

हरीश नवल के परवर्ती व्यंग्यकार राहुलदेव द्वारा संपादित पुस्तक *चयन और चिंतन व्यंग्य के संग* में नितिन सेठी व्यंग्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं- "दैनिक जीवन की व्यवस्थाएं, विसंगतियां, विद्रूपताएं और विरोधाभास आदि सभी कुछ जब सामने आते हैं, व्यंग्य का निर्माण करते हैं।" (129) नितिन सेठी के कहने का भाव यह है कि मनुष्य की दैनिक व्यवस्था जब अव्यवस्था बनने लगे, समाज के अंतर्गत संगत व्यवहार के स्थान पर जब असंगत व्यवहार दृष्टिगत होने लगे, जीवन मूल्यों का स्वरूप ध्वस्त होने लगे, मानव की कथनी और करनी में विरोध दिखाई देने लगे, उस समय साहित्य में व्यंग्य की सृष्टि होती है। नरेन्द्र कोहली *त्राहि-त्राहि* व्यंग्य-पुस्तक में लिखते हैं- "अनासक्त विवेक जब न्याय के पक्ष में अपने आक्रोश को कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करता है तो व्यंग्य का जन्म होता है।" (1)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यंग्य, समाज की विद्रूपताओं से उपजा प्रतिक्रियात्मक, विद्रोहात्मक स्वर है जो प्रकट में आक्रामक होता हुआ भी अंततः सर्वथा सजग, विवेक युक्त, सुधारात्मक तथा परिष्कारात्मक प्रवृत्ति का धारक होता है। व्यंग्य मनुष्य को आत्म बोध कराता है बशर्ते, उस मनुष्य में निष्पक्षता के साथ आत्मनिरीक्षण का गुण हो। व्यंग्य में, मनुष्य जीवन की दिशा तक परिवर्तित कर देने का सामर्थ्य होता है।

1.1.6 व्यंग्य की विशेषताएं :

साहित्य लेखन में व्यंग्य एक प्रभावी विधा है, उसकी कतिपय विशेषताएं निम्नलिखित हैं- प्रतिबद्धता, वक्रता, सामाजिकता, प्रहारात्मकता, सजगता, आक्रोश।

1.1.6.1 प्रतिबद्धता

व्यंग्य लेखन के अंतर्गत व्यंग्यकार प्रतिबद्धता को धारण करते हुए व्यंग्य क्षेत्र में पदार्पण करते और गतिशील होते हैं। व्यंग्य लेखन में आबद्ध व्यंग्यकार को जीवन के प्रति शाश्वत दृष्टिकोण अपनाते हुए व्यंग्यधर्मिता का निर्वहण करना होता है। *व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न* पुस्तक में शेरजंग गर्ग व्यंग्य की प्रतिबद्धता के विषय में लिखते हैं- "व्यंग्य की प्रतिबद्धता होती है-सत्य कथन के प्रति, बौद्धिक और विवेक सम्मत दृष्टिकोण के प्रति तथा जीवन, जगत तथा मनुष्य के हर पक्ष में व्याप्त विसंगतियों को संवेदना देते हुए, आवश्यकता पड़ने पर उसकी आलोचना करने के प्रति।" (64)

शेरजंग गर्ग के उपर्युक्त कथन से यह लक्षित होता है कि व्यंग्य लेखन के दौरान व्यंग्यकार को अपनी बौद्धिक मनीषा के आधार पर विसंगतियों के उल्लेख के लिए प्रतिबद्ध होना पड़ता है। प्रतिबद्धता का अभाव व्यंग्य लेखन की निष्पक्षता के मार्ग में अवरोधक सिद्ध होता है।

व्यंग्यकार का स्वर सत्यता का आग्रही होता है। व्यंग्यकार न केवल अन्य लोगों को सत्य पथ पर, अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है अपितु स्वयं भी सत्य पथ का अनुगमन करने के लिए प्रयासरत रहता है। शरद जोशी को एक संस्था के द्वारा "गांधीवाद की वर्तमान युग में सार्थकता" विषय पर आयोजित विचार गोष्ठी में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया। इस आयोजन में प्रतिभागिता के लिए, उन्हें संस्था की ओर से रेलवे की प्रथम श्रेणी का किराया देने का प्रावधान होता है। शरद जोशी रेलवे की तीसरी श्रेणी में यात्रा करते हैं। संस्था द्वारा प्रथम श्रेणी का किराया लेने में उन्हें संकोच का अनुभव होता है, वे इसे मिनी भ्रष्टाचार की संज्ञा देते हैं। इस विषय में शरद जोशी ने *झरता नीम: शाश्वत थीम* पुस्तक में लिखा है- "पिछले दिनों मैंने एक भ्रष्टाचार किया। उसे भ्रष्टाचार कहना देश के परम भ्रष्टाचारियों की शान में गुस्ताखी होगी, मगर अपने कर्म के लिए इसके अतिरिक्त कोई शब्द मिल नहीं रहा जिसका उपयोग करूं और कलंक से बरी हो जाऊं।" (91)

शरद जोशी द्वारा किए गए कार्य क्रियान्वयन में कोई त्रुटि नहीं थी, क्योंकि संस्था के आयोजक सभी वक्ताओं को एक निश्चित राशि प्रदान कर रहे थे। शरद जोशी आत्मावलोकन करते हुए इस सच्चाई को भूल नहीं पा रहे थे कि उन्होंने यात्रा तो रेलवे के तीसरे दर्जे में की, और जैसे रेलवे के प्रथम दर्जे के वसूल कर लिए। शरद जोशी सत्यता के साथ अपनी द्वारा किए गए इस सही व्यवहार को भी भ्रष्टाचार के नाम से अभिहित करते हैं। सार्वजनिक स्तर पर उपर्युक्त सत्य का उद्घाटन करना, उनके सत्याग्रही होने की पुष्टि करता है। अपने द्वारा किए गए छोटे से भ्रष्टाचार के माध्यम से वे राष्ट्र के महान भ्रष्टाचारियों पर व्यंग्याक्षेप करते हैं, जो बड़े से बड़ा भ्रष्टाचार करने के उपरांत भी सफेदपोश बने रहते हैं।

व्यंग्य का समाज दर्शन में सुरेश आचार्य लिखते हैं- "सामाजिक यथार्थ एवं प्रतिबद्धता का लेखन होने के कारण..... व्यंग्य समाज के दलित, शोषित और पीड़ित लोगों के लिए, उनके अधिकारों के लिए और उनकी स्वायत्तता के लिए न्याय पूर्ण संघर्ष की अगुवाई करता है।" (10) सदियों से समाज के धनी वर्ग द्वारा निर्धन वर्ग का और शक्तिशाली वर्ग द्वारा निर्बल वर्ग का

शोषण होता रहा है। व्यंग्य, सामाजिक सरोकारों को, स्पष्ट करता हुआ, समाज के शोषित वर्ग को न्याय दिलवाने के लिए उनका प्रतिनिधित्व करता है।

सुरेश आचार्य के उपर्युक्त कथन से भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि व्यंग्य मनुष्य मात्र के अस्तित्व के लिए, उसके सामाजिक अधिकारों की सुनिश्चितता के लिए सशक्त उपकरण का कार्य करता है। प्रतिबद्धता को व्यंग्य लेखन में अनिवार्य समझते हुए राहुलदेव द्वारा संपादित पुस्तक *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* में ज्ञान चतुर्वेदी लिखते हैं- "मेरी पहली और आखिरी प्रतिबद्धता व्यंग्य से है" (20)

उपर्युक्त कथन के द्वारा ज्ञान चतुर्वेदी व्यंग्य -लेखन के प्रति, अपनी निष्ठा को स्पष्ट रूप से वर्णित करते हैं। वे निर्भीक भाव से यह स्वीकार करते हैं कि साहित्य रचना की विधा चयन करते हुए, उनकी पहली और आखिरी रुचि, व्यंग्य लेखन के प्रति है। राहुलदेव द्वारा संपादित पुस्तक *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* में व्यंग्य की प्रतिबद्धता के प्रति पूर्ण समर्पण भाव दर्शाते हुए गिरीश पंकज लिखते हैं- "मेरा अपना संकल्प है कि मुझे पूरी प्रतिबद्धता के साथ व्यंग्य लिखना है।" (53)

उपर्युक्त विचारों के आलोक में कहा जा सकता है कि व्यंग्य लेखन के अंतर्गत व्यंग्यकार का अपने कथन के प्रति प्रतिबद्ध होना आवश्यक है। यदि उसकी कथनी और करनी में अंतर होगा तो उसकी व्यंग्यात्मकता सशक्त और प्रभावी रचित नहीं हो सकती।

1.1.6.2 वक्रता

वक्रता व्यंग्य लेखन की अन्यतम विशेषता है। व्यंग्यकार अपने आक्षेप को कभी सीधे तौर पर अभिव्यक्त नहीं करता, क्योंकि उसका आक्षेप एक व्यक्ति के विसंगतिपूर्ण व्यवहार के प्रति उजागर नहीं होता अपितु उस समग्र विसंगतिपूर्ण परिवेश के प्रति होता है, जो जीवन मूल्यों के निर्वाह के मार्ग में बाधक सिद्ध होता है। *व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न* पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर जयदेव तनेजा कहते हैं- "आज के मूल्यहंता परिवेश के प्रति विद्रोह/विरोध की तीखी और रचनात्मक चेतना ही साहित्यकार की भंगिमा को वक्र बना देती है। यही कारण है कि अपने समय के भ्रष्ट, असंगत, शोषण भरे, अन्याय पूर्ण और अमानवीय समाज को जगाने और सुधारने के लिए रचनाकार के पास आज व्यंग्य ही अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावशाली माध्यम रह गया है।" (1)

जयदेव तनेजा के विचारों के आलोक में कहा जा सकता है कि जीवन मूल्यों के ध्वंसनात्मक दौर में साहित्यकार सीधे स्पष्ट कथन की बजाय वक्र कथन द्वारा भाव संप्रेषित करना अधिक समीचीन और प्रभावी समझता है। वक्र कथन के द्वारा व्यंग्यकार के भाव संप्रेषण की क्षमता बढ़ जाती है। समकालीन परिदृश्य के अंतर्गत भ्रष्ट व्यवहारों को देखकर व्यंग्यकार, कभी सपाट बयानी द्वारा और कभी वक्र कथन द्वारा, जन सामान्य को विसंगतियों के प्रति सजग रहने के लिए प्रेरित करता है। श्री रामचरितमानस में, श्रीराम के राज्याभिषेक के समाचार से, महारानी कैकेई की दासी मंथरा विचलित हो जाती है। महारानी कैकेई, उसके माथे पर चिंता की रेखाएं देखती है और उससे चिंतित होने का कारण पूछती है। मंथरा द्वारा कोई उत्तर न दिए जाने पर, महारानी कैकेई उसके स्वरूप और कार्य के आधार पर वक्र कथन द्वारा, व्यंग्य वचन कहती है-"काने, खोरे, कूबरे, कुटिल कुचालि जानि। तिय, बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि।" (338)

कैकेई के कहने का भाव यह है कि अधिकतर शारीरिक तौर पर अपंग व्यक्ति, मानसिक रूप से कुटिल और कुचाली होते हैं। मन ही मन हीन भावना से ग्रस्त होने के कारण वे कुंठा ग्रस्त हो जाते हैं। मंथरा क्योंकि कूबड़ी थी, इसलिए भरत की माता मुस्कुराकर वक्र भंगिमा द्वारा, अपना विचार अभिव्यक्त करती हैं। वे स्पष्ट तौर पर मंथरा को कुटिल नहीं कहती अपितु शारीरिक तौर पर अपंग व्यक्तियों को प्रतीक बनाते हुए, अपने हार्दिक विचार प्रकट करती है।

राहुलदेव द्वारा संपादित पुस्तक *चयन और चिंतन व्यंग्य के संग* में वक्रता को व्यंग्य की अनिवार्य विशेषता बताते हुए नितिन सेठी लिखते हैं- "शास्त्र में तीन प्रकार की उक्तियां को स्थान दिया गया है वक्रोक्ति, रसोक्ति तथा स्वाभावोक्ति। इनमें से वक्रोक्ति के अंतर्गत ही व्यंग्य आता है।" (129) वक्रोक्ति के अंतर्गत व्यंग्य की अवस्थिति दर्शाते हुए नितिन सेठी वक्रता को व्यंग्य की महत्वपूर्ण विशेषता सिद्ध करते हैं।

आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा माना है। रविंद्रनाथ श्रीवास्तव *साहित्य का भाषिक अध्ययन* पुस्तक में आचार्य कुंतक का कथन उद्धृत करते हुए कहते हैं- "वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितिरुच्यते।" (82)

आचार्य कुंतक के कहने का भाव यह है कि प्रसिद्ध कथन से इतर, विलक्षण वर्णनात्मक शैली वक्रोक्ति है। वैदग्ध्य कवि के काव्य कौशल को प्रतिबिंबित करता है। कवि

अपने काव्य कथन की चमत्कारिकता को वैदग्ध्य द्वारा दर्शाता है। वक्रोक्ति का अर्थ है-कवि के कथन की वह रीति जिस पर कवि के काव्य कौशल से उत्पन्न चमत्कार आश्रित होता है।

1.1.6.3 सामाजिकता

व्यंग्य समाज में व्याप्त विसंगतियों के मूल से ही उपजता है। व्यंग्य समाज की परिस्थितियों, प्रवृत्तियों व कुरीतियों का सम्यक अध्ययन करके गतिशील होता है। व्यंग्य प्राचीनता के सकारात्मक तथ्यों को स्मरण कराता हुआ वर्तमान नकारात्मक भावों को स्पष्ट करता है तथा प्राचीन और नवीन तथ्यों में तुलनात्मक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करता हुआ भविष्य में संतुलित निष्कर्ष तक पहुंचने में सहायक सिद्ध होता है। व्यंग्य समाज के प्रति समग्र रूप से समर्पित और चिंतनशील विधा है।

व्यंग्य की सामाजिकता को भारतेंदु युग के परिप्रेक्ष्य में दर्शाते हुए *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* में सुभाषचन्द्र लिखते हैं- "सही मायनों में इस युग के व्यंग्यकारों ने अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए हर टूटने लायक वस्तु पर लक्ष्य संधान किया।" (45) सुभाषचंद्र के कथन से स्पष्ट है कि भारतेंदु युग के व्यंग्यकारों ने, ध्वस्त होते जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना हेतु व्यंग्यात्मकता का प्रयोग किया। व्यंग्य, सामाजिक दायित्व के प्रति सजग होने के कारण, जीवन मूल्यों के विघटन को रोकने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

राहुलदेव द्वारा संपादित पुस्तक *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* में चित्तरंजनकर लिखते हैं- "आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजन के रूप में जो स्थापनाएं की हैं, उनमें से व्यंग्यकार 'शिवेतरक्षतये' (अकल्याण के विनाश के लिए) प्रयोजन को चुनता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शिव समुद्र मंथन से निसृत अमृत और विष में से विष को चुनते हैं और सृष्टि का कल्याण करते हैं।" (149)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि व्यंग्यकार समाज कल्याण के लिए, समाज में सुकृत भावों के संरक्षण के लिए, विकृत भावों के विषरूपी विसंगतिपूर्ण तत्वों को अपने मस्तिष्क में रखते हैं और विसंगतियों के निराकरण का समाधान अमृत रूप में करते हैं।

व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न पुस्तक में शेरजंग गर्ग लिखते हैं- "प्रगतिशील लेखन में जहां व्यंग्य आया है वहां युवा वर्ग की निष्क्रियता, बापदादाओं के माल पर पलने की मनोवृत्ति और

अपने सामाजिक तथा राष्ट्रीय उत्तरदायित्व से बेखबर होने पर भी कम कचोट भरे आक्रमण नहीं किए गए हैं।" (82)

उपर्युक्त कथन द्वारा स्पष्ट है कि व्यंग्य लेखन में सामाजिक विसंगतियों पर आक्रामक वार किए गए हैं। व्यंग्य साहित्य युवा पीढ़ी को अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति भी सचेष्ट करने के लिए कटिबद्ध दृष्टिगत होता है। क्योंकि युवा पीढ़ी के कंधों पर राष्ट्र और समाज की उन्नति का, सामाजिक मूल्यों के रक्षण का भार होता है। वर्तमान समय में अधिकांश लोग अपनी आगामी पीढ़ी के जीवन को, सुख-सुविधा युक्त बनाने के लिए, अपार धन एकत्रित करने में संलग्न रहते हैं। अगली पीढ़ियां भी बाप-दादा द्वारा संचित किए धन का स्वच्छंदपूर्वक उपभोग करती हैं। जिस पीढ़ी पर, पारिवारिक उत्तरदायित्व का यत्किंचित बोझ भी नहीं डाला जाएगा, वह सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति सचेत कैसे हो पाएगी? माता-पिता संतान को सुख देने के संबंध में, अपने प्रयासों को मन ही मन बखानते हुए, अघाते नहीं हैं। वे मन ही मन पुलकित होते रहते हैं और निश्चिंतता का अनुभव करते हैं कि उन्होंने अपनी भावी पीढ़ियों के लिए पर्याप्त धन का संग्रह किया है, उन्हें धनाभाव का सामना नहीं करना पड़ेगा। अभिभावक, इस तथ्य से अपरिचित रह जाते हैं कि धन संग्रह की अंधी दौड़ में उन्हें लाभ नहीं, अपितु हानि ही अधिक होगी। प्रथम, उन्हें धन संग्रह करने के लिए अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ेगा। द्वितीय, उनकी संताने, परिश्रम से जी चुराने लगेगी। अकर्मण्य लोगों द्वारा क्रियाशील न रहने की स्थिति में, धन के अपार भंडार भी समाप्त हो जाते हैं।

जिस व्यंग्य रचना में सामाजिक मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयास दिखाई न दे उसे व्यंग्य कृति ही नहीं माना जाता। इस विचार का उद्घाटन करते हुए शेरजंग गर्ग *व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न* पुस्तक में कहते हैं- "व्यंग्य में जब तक आगे की ओर देखने की प्रवृत्ति, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति और व्यक्ति तथा समाज में, सम्प्रदाय तथा जाति में विद्यमान कूप मंडूकता को कचोटने, उसे प्रहार का बिंदु बनाने की क्षमता नहीं होती, तब तक उसका होना न होना बराबर ही है।" (83) जिस साहित्यिक रचना के माध्यम से मानव जगत में सहृदयता, परदुःख कातरता, तथा संवेदनशीलता के भाव जागृत करने की क्षमता नहीं, उस कृति को व्यंग्य कृति नहीं कहा जा सकता।

शेरजंग गर्ग के कथन से स्पष्ट है कि व्यंग्य कृति सामाजिक सरोकारों से सम्पृक्त होनी चाहिए। उसके अंतर्गत सामाजिक पक्षपात, अन्याय, अनाचार इत्यादि विकृतियों की निवृत्ति के प्रति प्रबल प्रयत्नों की वैचारिकता के प्रकटन का सामर्थ्य होना चाहिए।

व्यंग्य समाज सापेक्ष होता है, सामाजिक सरोकारों से सम्पृक्त होता है, इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए *ऐसा भी सोचा जाता है* पुस्तक में हरिशंकर परसाई कहते हैं- "व्यंग्य का मूल उद्देश्य समाज की आलोचना है। वैसे तो सब प्रकार का साहित्य जीवन की आलोचना होता है पर व्यंग्य यह कार्य विशिष्ट और प्रभावशाली ढंग से करता है।" (137)

व्यंग्यकार, समाज के परिष्कार के लिए आलोचना करता है, उसकी शैली में प्रहारात्मकता होती है। समाज में व्याप्त विसंगतियों, अव्यवस्थाओं तथा शोषण इत्यादि, व्यंग्यकार के हृदय को व्यथित करते हैं, इस विषय में हरिशंकर परसाई ने आगे लिखा है- "मूलतः व्यंग्य लेखक समाज में व्याप्त इन बुराइयों को उजागर करके उससे आत्म-साक्षात्कार कराता है और उसकी संवेदना जगाता है।" (137)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यंग्य समाज में व्याप्त अनाचारों, विद्रूपताओं और विकृतियों को समाज के सामने अनावृत करने का कार्य करता है। वह समाज को पतनोन्मुख देखकर उसे रोकने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। व्यंग्य मनुष्य को आत्म निरीक्षण की ओर प्रवृत्त करता है, उसके अंतर्मन में सुप्त संवेदनाओं को जागृत करता है और उसके उत्कृष्ट भविष्य के प्रति आशान्वित होता है।

1.1.6.4 प्रहारात्मकता

व्यंग्य की प्रभावशीलता को व्यंग्य के आघातक भली प्रकार अनुभव कर सकते हैं। राष्ट्र की गरिमा को खंडित करने वाले, राष्ट्रहित के विरुद्ध कार्य करने वाले तथा अराजक तत्वों के चारों और जब व्यंग्य पाश का घेरा दृढ़ किया जाता है तो वे लोग निर्लज्जता की चरम सीमा पर पहुंचकर ऐसे भाव दर्शाते हैं मानो व्यंग्य बाण उनकी तरफ नहीं, कहीं अन्यत्र संधान किए जा रहे हों। *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक के अन्तर्गत "चुनाव गीतिका" व्यंग्य रचना में शरद जोशी नेताओं के विषय में कहते हैं- "जिनके कर्म देखकर सहज लज्जा स्वयं लज्जित हो।" (194)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से शरद जोशी, नेताओं की स्वार्थी वृत्ति के अपकर्ष का अतिशयतापूर्ण उल्लेख करते हैं। जिनके कार्य व्यापार को देखकर, शर्म भी शर्मिदा हो जाए,

ऐसे लोग किस सीमा तक भर्त्सना के लायक हैं, इसका सहजता से अनुमान लगाया जा सकता है।

ऐसा भी सोचा जाता है पुस्तक के अन्तर्गत हरिशंकर परसाई व्यंग्य की प्रहार क्षमता के विषय में कहते हैं- "व्यंग्य के प्रहार कठोर भी होते हैं जो पढ़ने वाले में बेचैनी भर देते हैं। मैं व्यंग्य लिखता हूँ..... मुझे गालियां भरी चिट्ठियां भी मिलती हैं और धमकी भरी भी।" (137)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि व्यंग्य विकृत मनोवृत्ति पर प्रहार करके उसे चोट पहुंचाता है, जिससे विसंगति पूर्ण व्यवहार करने वाला झल्लाता है, तिलमिलाता है और आवेश में आकर सत्यान्वेषी के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग करता है।

प्रेम जन्मेजय और श्रीलाल शुक्ल द्वारा संपादित पुस्तक *हिंदी हास्य-व्यंग्य संकलन* में श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं- "व्यंग्य वस्तुतः एक सुशिक्षित मस्तिष्क की देन है..... वह पाठक को गुदगुदाने के लिए नहीं बल्कि किसी विसंगति या विडंबना के उद्घाटन से उसके संपूर्ण संस्कारों को विचलित करने की प्रक्रिया है।" (9)

उपर्युक्त कथन द्वारा यह तथ्य उद्घाटित होता है कि व्यंग्य की प्रहारात्मकता पाठक के हृदय को विचलित करने में सक्षम सिद्ध होती है। जिसके द्वारा पाठक विसंगतियों और विडंबनाओं को अनुभव करते हुए उनके प्रति सजग हो जाता है।

भ्रष्टाचार तथा बेईमानी पर प्रहार करते हुए हरिशंकर परसाई, कमलाप्रसाद दुबे द्वारा संपादित पुस्तक *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* में लिखते हैं- "आपकी चिंता है कि शांति व सहानुभूति से यदि परिवर्तन नहीं हुआ तो हिंसक क्रांति होगी।..... इस देश में यह रस्म पड़ गई है कि जो क्रांति की जितनी ज्यादा बात करता है, वह उतने ही जोर से वास्तविक क्रांति को रोकना चाहता है।" (36)

अंतिम पंक्ति में हरिशंकर परसाई नेताओं की कथनी और करनी में विरोधाभास पर प्रहार करते हुए दृष्टिगत होते हैं कि देश के नेता अपने स्वार्थ का उल्लू सीधा करने के लिए राष्ट्रीय अथवा सामाजिक क्रांति का झूठा आह्वान करते हैं। वास्तव में वे क्रांति के छद्म सूत्रधार बनकर जनता को दिग्भ्रमित करते रहते हैं ताकि जनता वास्तविकता को जानने न पाए, पहचानने न पाए और अपने अधिकारों के प्रति, न्याय रक्षण के प्रति सचेत न होने पाए।

1.1.6.5 सजगता

सजगता व्यंग्य साहित्य लेखन की एक अप्रतिम विशेषता है। जिस प्रकार व्यंग्यकार अपने परिवेश की वस्तुस्थिति के प्रति सजग होकर व्यंग्य लेखन में प्रवृत्त होता है उसी प्रकार व्यंग्य साहित्य का पाठक भी व्यंग्यकार की सजगता से प्रभावित होकर किसी न किसी निष्कर्ष पर अवश्य पहुंचता है। इस प्रकार व्यंग्यकार ना केवल समस्याओं के प्रति जागरूक करता है अपितु उनके निराकरण के लिए भी दिशा निर्देश देता है।

सुरेश आचार्यद्वारा लिखित *व्यंग्य का समाजदर्शन* पुस्तक में रविंद्रनाथ त्यागी राजनीतिक तंत्र के प्रति अत्यंत सजग भाव दर्शाते हुए कहते हैं- "एक नेता थे जो नशाबंदी पर इतने जोर से भाषण दे रहे थे कि जहां तक उनकी आवाज नहीं पहुंच रही थी, वहां तक उनके द्वारा पी गई देसी शराब की गंध पहुंच रही थी।" (65)

उपर्युक्त कथन द्वारा स्पष्ट है कि विभिन्न क्षेत्रों के नेता लोग कृत्रिम आवरण धारण कर जनता को उल्लू बनाने का भरसक प्रयास करते हैं, परंतु वे सजग नागरिकों की आंखों में धूल नहीं झोंक सकते और यदि दर्शक एक व्यंग्यकार रहा हो तो वह इन 'हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और' के विकृति युक्त व्यवहार को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करने और जनता को सजग करने की अवश्य चेष्टा करेगा।

हरिशंकर परसाई व्यंग्य की सजग करने की वृत्ति को उद्घाटित करते हुए *ऐसा भी सोचा जाता है* पुस्तक में कहते हैं- "व्यंग्य सहृदय में हलचल पैदा करता है। अपने प्रभाव में व्यंग्य करुण या कटु कुछ भी हो सकता है मगर वह बेचैनी जरूर पैदा करेगा।" (136)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि व्यंग्य पाठक को समाज और राष्ट्र की स्थिति के प्रति सजगता धारण करने के लिए प्रेरित करता है। वह विसंगति पूर्ण व्यवहारों को जनमानस के समक्ष उद्घाटित करता है, जिसके द्वारा पाठक समाज और राष्ट्र की परिस्थितियों के प्रति सजग रहता है।

सुरेश कांत *कुछ अलग* पुस्तक में व्यंग्य की उपर्युक्त विशेषता बताते हुए कहते हैं- "ऐसे व्यंग्य जो जीवन की समीक्षा ही नहीं करते, बल्कि उसकी लेखा परीक्षा भी करते हैं। पाठक को यह सोचने के लिए बाध्य कर देते हैं कि अरे, हमारा जीवन इतना विसंगति भरा है, इतना दूषित और विषमता पूर्ण है, यह तो बहुत गलत है।" (8)

सुरेश कांत द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन से यह तथ्य सत्य सिद्ध होता है कि व्यंग्य पाठकों को सजगता धारण करने के लिए प्रेरित करता है, उसे परिस्थितियों की विद्रूपताओं से अवगत कराता है, विसंगतियों के कारण अन्वेषित करने के लिए निर्देश देता है तथा उन विसंगतियों का समाधान करने की ओर प्रवृत्त करता है।

1.1.6.6 आक्रोश

आक्रोश की प्रवृत्ति के विषय में बताते हुए *व्यंग्य पर एक बहस* पुस्तक में ओम प्रकाश गुप्त कहते हैं- "आक्रामक प्रवृत्ति का आधार है क्रोध।" (12) व्यंग्य द्वारा जिन भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है, उनका मूलाधार क्रोध की भावना है। आक्रोश को व्यंग्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बताते हुए ओम प्रकाश गुप्त आगे कहते हैं- "सभ्य सामाजिक जीवन में क्रोध की अभिव्यक्ति का सही माध्यम है-व्यंग्य। इस प्रकार व्यंग्य क्रोध का उदात्तीकृत रूप है।" (12)

व्यंग्यकार समाज में व्याप्त विपरीत परिस्थितियों, समस्याओं तथा भ्रष्टाचारों को आक्रोश द्वारा अभिव्यक्त करता है व्यंग्य का सारभूत उद्देश्य साहित्य लेखन को उपयोगी और परिवेशगत बनाना है। परिवेश में जो कमी या विसंगति दृष्टिगत होती है व्यंग्यकार अपने नुकीले प्रहार द्वारा उसे सुधार कर एक परिष्कृत परिवेश की आधारशिला रखता है। व्यंग्यकार का आक्रोश पाठक के अंतर्मन में भी क्रोध की ज्वाला प्रज्वलित कर सकने में सक्षम होता है।

अमृतलाल नागर *मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं* पुस्तक में लिखते हैं- "व्यंग्य पाठक के क्रोध या क्षोभ को जगा कर प्रकारान्तर से उसे अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध करता है।" (3)

हरीश नवल ने *कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्यकारों की*, पुस्तक में व्यंग्य के आक्रोशात्मक रूप का विवेचन डेवि बरेस्टर के कथन को उद्धृत करते हुए लिखा है- "व्यंग्य आक्रोश का मूल होता है न कि आक्रोश की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति।" (25)

सुभाषचन्द्र *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* पुस्तक में कन्हैयालाल नंदन के कथन को उद्धृत करते हुए कहते हैं- "व्यंग्य आक्रोश का उबलता हुआ तूफान नहीं है, पीड़ा और आक्रोश का संयमपूर्ण सृजन है...। जहां आदमी आक्रोश में पागल नहीं हो जाता वह अपने आक्रोश को पिघले हुए तांबे के रूप में तपा कर रचनात्मक सांचे में ढालता है- ताकि विकृति चौराहे पर नंगी खड़ी की जा सके।" (24) कन्हैयालाल नंदन के कथन द्वारा स्पष्ट है कि

विकृतियों के परिष्कार के लिए, किए गए व्यंग्य-सृजन के अंतर्गत उपजा हुआ क्रोध, गंभीरता से आप्लावित, संयमित तथा उद्देश्य पूर्ण होता है।

कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्य कारों की पुस्तक में हरीश नवल लिखते हैं- "आक्रोश मूल चेतना को जगाता है और व्यंग्य प्रयोक्ता उसी जागृत चेतना के वशीभूत हो व्यंग्य लिखता है।" (63)

व्यंग्य का समाज दर्शन पुस्तक में सुरेश आचार्य कहते हैं- "जब हमारे भीतर असंतोष होता है, आक्रोश जन्म लेता है और उन्हीं से व्यंग्य की अभिव्यक्ति होती है। व्यंग्य आदर्श और यथार्थ की टक्कराहट से फूटी हुई चिंगारी है।" (56)

उपर्युक्त तथ्यों द्वारा यह स्वतः सिद्ध है कि आक्रोश एक ऐसा तत्व है जो व्यंग्य के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, व्यंग्य रचना के रचित होने का कारण बनता है। व्यंग्य क्योंकि विकृति की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न होता है और विकृति वीभत्सरूपा ही दृष्टिगत होती है। यह व्यंग्यकार के आक्रोश की अग्नि को प्रज्वलित करते हुए उसे व्यंग्यधर्मिता के निर्वहण के लिए बाध्य करती है।

1.1.7 व्यंग्य के साधन :

व्यंग्य की कार्य सिद्धि के लिए व्यंग्यकार विभिन्न साधनों का देश, काल, वातावरण तथा संदर्भ अनुसार प्रयोग करता है।

1.1.7.1 उपहास

शिवराम आटे ने *संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी* में उपहास का शाब्दिक अर्थ बताया है- 'व्यंग्यात्मक हंसी'। (297)

हिंदी नाट्य शास्त्र के अंक-6 में आचार्य भरतमुनि ने हास्य के 6 भेदों को उत्तम, मध्यम तथा अधम में वर्गीकृत करते हुए लिखा है- "उत्तम मनुष्यों में स्मित तथा हसित, मध्यम प्रकृति के मनुष्यों में विहसित तथा उपहसित तथा अधम प्रवृत्ति के मनुष्यों में अपहसित व अतिहसित माने गए हैं। (57-58)

उपहास आलंबन को लज्जित करने के उद्देश्य से किया जाता है। व्यंग्य जनित उपहास के अंतर्गत शिष्ट व्यवहार का प्रदर्शन करते हुए आक्षेपित पात्र को उसके मिथ्याचारों, विसंगति पूर्ण व्यवहारों, पाखंडों, छल और प्रपंच रचने से विरक्त रहने के लिए प्रेरित किया जाता है। उपहास के द्वारा व्यंग्यकार कथित रूप से समाजसेवी व्यक्तियों, कृत्रिम धर्मावलंबियों के पाखंड की भर्त्सना करता है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न लोगों के आडंबर पूर्ण व्यवहार, पद प्रतिष्ठा से संपन्न राजनेताओं की कथनी और करनी में अंतर की परख करते हुए कटु प्रहार करता है। समाज में तथाकथित शक्तिशाली व उन्मादित बुद्धिजीवियों के मिथ्या अभिमान पर उपहास द्वारा करारी चोट करता है।

सामर्थ्यवान मनुष्य के मन में अपने बल, धन और ज्ञान के कारण अपने ही प्रति मिथ्या विचार उत्पन्न हो जाते हैं। व्यंग्यकार उपहास के द्वारा उनके कृत्रिम मुखोटे उतारकर उनका वास्तविक और यथार्थ रूप प्रकट करता है। *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक में चुनाव प्रणाली पर उपहास करते हुए शरद जोशी कहते हैं- “भाषा में झूठ भरने का पर्व है यह। असत्य की स्याही में स्वार्थ की कलम डुबोकर आशावाद के कागज काले करने का वक्त फिर आ गया। आओ, फिर साधारण आदमी को धोखे में डालें।” (15) उपर्युक्त कथन के माध्यम से, शरद जोशी ने चुनाव के दौरान आडंबरपूर्ण, और असत्य से अनुप्राणित क्रियाकलापों को वर्णित किया है। सामान्य व्यक्ति मतदान करते समय अपने उज्ज्वल भविष्य के प्रति पुनः आशान्वित होता है, और सत्ता धारियों द्वारा दोबारा छला जाता है।

नेताओं की सत्ता प्राप्ति के प्रति लालची वृत्ति का उपहास करते हुए विजय कुमार *कुर्सी तू बड़ी बड़भागिनी* पुस्तक में लिखते हैं- “कुर्सी की महिमा अपरंपार है। यह सताती, तरसाती और तड़पाती है..... धरती सूर्य की परिक्रमा कर रही है और धरती का आदमी कुर्सी की।” (12)

व्यंग्यकार ने उपहास के माध्यम से मनुष्य के मस्तिष्क को झकझोरने का सफल प्रयास किया है। धरती सूर्य की परिक्रमा अपने गतिशीलता के नियम के पालन के अनुसार कर रही है। उसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं अपितु परमार्थ भाव निहित है, क्योंकि पृथ्वी की यही गतिशीलता ऋतु चक्र का कारण बनती है, मौसम की भिन्नता का सूचक बनती है परंतु मनुष्य के कुर्सी प्रेम के केन्द्र में उसका स्वार्थ निहित है।

1.1.7.2 अपकर्ष

श्री मम्मटाचार्यकृत काव्यप्रकाशः पुस्तक में काव्यदोष के संबन्ध में आचार्य मम्मट कहते हैं-“मुख्यार्थहति दोषः” (3) अर्थात् दोष वह है जिससे काव्य के मुख्य अर्थ का अपकर्ष हो जाता है। दोष को संदर्भित इसलिए किया गया है, क्योंकि मनुष्य अथवा मनुष्यों के समूह द्वारा किया गया व्यवहार जब दोष युक्त सिद्ध होता है, तो स्थिति व्यंग्य के क्षेत्र में प्रविष्ट होती दृष्टिगत होती है। दोषों की निवृत्ति के लिए व्यंग्य क्रियाशील हो जाता है। व्यंग्य दोष, आडंबर तथा पाखंड पर ही लिखा जाता है।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कहते हैं- “दोषस्तस्यापकर्षकाः” (21) मानव जीवन में जब करुण रस का अपकर्ष दिखाई देता है, तो वह व्यंग्य लेखन का आधार बनता है क्योंकि व्यंग्य की परिणिति करुणा में होती है। मानव हृदय में करुणा उद्वेलित होना, उसका परदुःख-कातरता के भाव से अनुरंजित होना, मानव को जीवन मूल्यों से समन्वित करता है, इस भाव का अपकर्ष होने से, जीवन मूल्यों का क्षरण होने लगता है और व्यंग्य का लक्ष्य, जीवन मूल्यों की स्थापना करना है।

अर्थात् रस के अपकर्ष के जो कारण हैं वे दोष हैं। पाश्चात्य विचारक चार्ल्स आर ग्रूनर ने *अंडरस्टैंडिंग लाफ्टर द किंग ऑफ विट* में कहा है- “व्यंग्य का मूल उद्देश्य है असत्य के प्रयोग को रोकना।” (109) चार्ल्स के कथन का अभिप्राय है कि व्यंग्य सत्य के अपकर्ष को रोकने में मुख्य भूमिका निभाता है। व्यंग्य सत्यता के पक्ष में स्वर बुलंद करता है। इस संदर्भ में व्यंग्यकार अपने दोषों को, वर्णित करने से भी गुरेज नहीं करता।

किसी प्रतिष्ठित व्यापार के साथ, निन्दित और प्रतिष्ठा विहीन व्यापार को वैदग्ध्यपूर्ण रीति से सामंजस्य स्थापित करते हुए रखना तथा उनसे साम्यभाव की स्थापना सहित निर्णय देने की प्रवृत्ति अपकर्ष कहलाती है। अपकर्ष प्रत्येक प्रकार के व्यंग्य की आधारशिला है क्योंकि किसी भी प्रकार की मूल्यहीन स्थिति अपकर्ष की द्योतक होती है। व्यंग्य का सृजन ही समाज और राष्ट्र में व्याप्त असंगत व्यवहारों, विकृत भावनाओं और विद्रूपताओं के प्रकटन के कारण होता है।

कोई मैं झूठ बोलया व्यंग्य कृति में प्रेम जन्मेजय अपकर्ष का सार्थक उदाहरण देते हुए कहते हैं- "कौन कहता है हमने प्रगति नहीं की है? आजादी के बाद हमने भ्रष्टाचार, अनैतिकता, शोषण..... आदि क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति की है।" (131)

उपर्युक्त कथन के द्वारा व्यंग्यकार ने अपकर्ष को दर्शाते हुए व्यंग्य-शर का संधान किया है। भ्रष्टाचार का प्रसार जीवन मूल्यों के आधार पर निंदनीय है परंतु व्यंग्यकार व्यंग्यात्मक रूप से इसे प्रगति का प्रसार बताकर भ्रष्ट आचरण के प्रति वास्तव में तिरस्कार-भाव अभिव्यक्त कर रहा है।

1.1.7.3 उपालंभ

उपालंभ में अप्रत्यक्ष रूप से शिकायत का भाव निहित रहता है, आशा के प्रतिकूल व्यवहार दृष्टिगत होने पर मनुष्य उपालंभ देने लगता है तथा परोक्ष रूप से दूसरे व्यक्ति की त्रुटि पर इंगित करने लगता है। व्यंग्य के क्षेत्र में भी परोक्ष रूप से ही अपनी बात कही जाती है। उपालंभ का सजीव चित्र हमें श्रीनिवास शर्मा कृत *सूरदास और उनका भ्रमरगीत* से सहज उपलब्ध हो जाता है। उद्धव श्री कृष्ण का संदेश लेकर जब गोपियों के पास जाते हैं तब गोपियां उनकी योग व ज्ञान की बातों को सुनकर प्रत्युत्तर में कहती हैं-

"उधौ जाके माथे भाग, कुब्जा को पटरानी कीजो हमही देत बैराग।" (158)

उद्धव गोपियों को ज्ञान मार्ग पर चलने का उपदेश देते हैं और श्री कृष्ण के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति के स्थान पर निराकार ईश्वर की उपासना करने के लिए परामर्श देते हैं, उद्धव के इस उपदेश पर गोपियां उन्हें उपालंभ देती हैं कि मथुरा में रहने वाली कुब्जा को तो श्री कृष्ण ने पटरानी बना लिया और हमें वैराग्य के मार्ग पर अग्रसर करने के लिए उद्धव को दूत बना कर भेज दिया। गोपियों के कहने का भाव यह है कि कुब्जा और गोपियां श्री कृष्ण से समान भाव से प्रेम करती हैं फिर श्री कृष्ण का व्यवहार गोपियों से भिन्न और कुब्जा से भिन्न क्यों है ?

ओम प्रकाश शर्मा द्वारा संपादित *बिहारी सार्धशती* में बिहारी के निम्नांकित दोहे में नायिका अपने ही नेत्रों को उपालंभ देते हुए कहती है-

"लाज लगाम न मानही, नैना जो बस नाहीं।

ए मुंहजोर तुरंग क्यो, ऐचत हुं चली जाहीं।। " (148)

नायिका अपने ही नेत्रों के प्रति उपालंभ के भाव व्यक्त कर रही है, नायक को निरख उसके नेत्र लोक लाज को विस्मृत कर देते हैं और उसके बस में नहीं रहते। नायिका अपने नेत्रों को धृष्ट घोड़े की संज्ञा देते हुए कहती है कि नायक को देखते ही, उसके चक्षु रूपी घोड़े बेलगाम हो जाते हैं और समाज की लाज-शर्म को ताक पर रखते हुए, नायक के मुख मंडल को निहारने लगते हैं।

तुलसीदास कृत *श्रीरामचरितमानस* में शिव पार्वती विवाह के प्रसंग में पार्वती की माता मैना उस समय नारद मुनि के प्रति उपालंभ देती हैं जब वे शिव को दूल्हे के रूप में देखती हैं-

"नारद कर मैं काह विगारा, भवन मोरा जिन बसत उजारा।" (95)

पार्वती की माता के कहने का भाव यह है कि नारद ऋषि का उन्होंने क्या अहित किया था जो उन्होंने ऐसे बावले वर के लिए पार्वती को तपस्या करने की ओर प्रवृत्त किया और उनके बसे हुए घर को उजाड़ दिया।

भुवनेश्वर उपाध्याय द्वारा संपादित *व्यंग्य व्यंग्यकार...और जो जरूरी है* पुस्तक में प्रमोद तांबर चुनाव के बाद नेताओं द्वारा विभागीय बंदरबांट को उपालंभ के माध्यम से, एक प्रतिभागी द्वारा व्यक्त करते हुए कहते हैं- " हुजूर, हमने तो आपकी सेवा में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी..... फिर भी आपने मलाईदार विभाग हमारे जूनियर को दे दिया"। (50-51)

उपर्युक्त उपालंभ के द्वारा व्यंग्यकार इस तथ्य को पूर्ण क्षमता के साथ वर्णित करता है कि चुनाव के दौरान नेता, उनके कारिंदे और चाटुकार इसलिए जी-जान से परिश्रम करते हैं ताकि पार्टी के वरिष्ठ नेताओं द्वारा उन्हें ऐसा विभाग मिले जहां उनकी जेबों को निरंतर गर्मी मिलती रहे। वोटों की राजनीति करते समय वे देश सेवा की बात तो बहुत करते हैं परंतु उन्हें स्वयं की सेवा से अवकाश ही नहीं मिलता और यदि मिलता भी है, तो नाते रिश्तेदारों की सेवा में जुटना पड़ता है तो बेचारे देश सेवा के लिए समय कहां से निकालें ? इतना भी क्या कम है कि साढ़े चार साल बाद एकाएक वे दोबारा देश सेवा के व्रतधारी बन जाने का सजीव अभिनय, पूर्ण दक्षता के साथ कर लेते हैं।

उपर्युक्त कथन के माध्यम से राजनीतिक दल का एक कार्यकर्ता, दल के वरिष्ठ नेता को उपालंभ देता है कि चुनाव के दौरान उसके द्वारा समग्र दल की अथक सेवा की गई, परंतु दोनों हाथों से घर भरने का जो विभाग था, उसे वरिष्ठ नेता द्वारा एक ऐसे व्यक्ति को सौंप दिया गया, जो वरीयता क्रम में उससे कनिष्ठ था।

1.1.7.4 वैदग्ध्य

हिंदी साहित्य में हास्य रस पुस्तक में बरसाने लाल चतुर्वेदी लिखते हैं- “भाषण या लेखन का वह गुण या तत्व जो किसी विचार और उसकी अभिव्यक्ति के ऐसे सुघड़ और सुंदर संबन्ध से उत्पन्न होता है जो अपने अप्रत्याशित स्वरूप के द्वारा लोगों के मन में आश्चर्य उत्पन्न करता है, वैदग्ध्य है।” (39)

शब्दों और विचारों के चमत्कारिक प्रयोग द्वारा वैदग्ध्य की योजना की जाती है। वैदग्ध्य का संबंध बुद्धि से है। वैदग्ध्य दो प्रकार का होता है। 1. वाग्वैदग्ध्य 2. क्रियावैदग्ध्य। वाग्वैदग्ध्य का अर्थ है वाणी का वैदग्ध्य, क्रियावैदग्ध्य का अर्थ है कार्य क्रियान्वयन में कौशल।

“हरषी ना बोली लल्लनु निरखि अमिलु संग साधु,

आंखिनही में हंसि, धरयो सीसहिय परि हाथु।” (132)

ओम प्रकाश द्वारा संपादित *बिहारीसार्धशती* में बिहारी के द्वारा रचित उपर्युक्त दोहे में नायिका एक भी शब्द न बोलकर अपने हाथों की क्रियाओं से अपना मंतव्य स्पष्ट कर देती है।

वाग्वैदग्ध्य का सुंदर उदाहरण श्रीनिवास शर्मा कृत *सूरदास और उनका भ्रमरगीत* में देखने को मिलता है। उद्धव गोपियों को साकार ईश्वर की पूजा के स्थान पर निराकार ईश्वर से प्रेम करने का उपदेश देते हैं तब एक गोपी कहती है-“ऐसे ही जन दूत कहावत मोको एक अचंभो आवत, या में यह कह पावत।” (132)

गोपी के कहने के भाव यह है कि सामान्य स्थिति में दूत इसलिए भेजा जाता है कि दूत, दूसरे पक्ष में जाकर विद्यमान समस्या का कोई समाधान प्रस्तुत करता है। उद्धव के ब्रज में आने से गोपियों की समस्या और भी अधिक बढ़ जाती है। उद्धव के ब्रज आगमन से पहले, गोपियों को श्री कृष्ण की प्रतीक्षा रहती थी। गोपियों को विश्वास था कि उनके निस्वार्थ प्रेम को देखते हुए, कृष्ण उनसे मिलने अवश्य आएंगे। उद्धव के द्वारा योग का संदेश दिये जाने से गोपियों की

आशाओं पर तुषारापात हो गया। उनकी विरहाग्नि में घी की आहुति पड़ गई। उद्धव जैसे लोग जब दूत बनकर आते हैं तो उन्हें बहुत आश्चर्य होता है। किसी दूसरे द्वारा दिया गया ऐसा संदेश, जो प्राप्तकर्ता की पीड़ा में वृद्धि करता हो, संप्रेषित करने में उद्धव जैसे लोगों को आखिर क्या आनंद आता है ?

वाग्वैदग्ध्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रेम जन्मेजय कृत *कौन कुटिल खल कामी* के अन्तर्गत दृष्टिगत होता है। जिसके अंतर्गत व्यंग्यकार वाणी के चातूर्य से आज के कलयुगी संतों के भोग विलास में लिपटे हुए मुखौटों को उतारता है- “धन्य हैं हमारे कलयुगी संत, जो सदा अपने भक्तों के बारे में ही सोचते हैं। वे माया मोह के विष को शिव की तरह इसलिए गले लगाते हैं कि उनके भक्त माया मोह से मुक्त हो सकें।” (20)

उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य से यह सत्य उभरकर सामने आता है कि वाग्वैदग्ध्य के द्वारा व्यंग्यकार ने वर्तमान समय के संतों की स्वार्थी और भोग विलासी वृत्ति को दर्शाया है। आजकल के संत वातानुकूलित, हर प्रकार की सुख सुविधा से युक्त बंगलों में निवास करते हैं, वातानुकूलित कारों में घूमते हैं, स्वादिष्ट पकवानों का सेवन करते हैं, चेलों की लंबी कतार उनकी सेवा के लिए हरदम तैयार खड़ी रहती है और वे भक्तों को माया से दूर रहने के लिए प्रेरित करते हैं। उनकी कथनी और करनी के अन्तर को व्यंग्यकार ने वाणी के कौशल से प्रकट किया है। वे माया के आवरण में स्वयं को इसलिए आवृत करते हैं ताकि उनके भक्त गण मोह माया से दूर रह सकें। अपने भक्तों के पक्ष में, उनका यह अनुपम त्याग निसंदेह श्लाघनीय है।

1.1.7.5 विडंबना

शिवराम आष्टे कृत *प्राैक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी* में विडंबना का शाब्दिक अर्थ है- विचलित होना, अघटित का घटित हो जाना। (854-855)

हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे पुस्तक में शरद जोशी ने भारत में भ्रष्टाचार की विडंबनापूर्ण स्थिति को दर्शाते हुए लिखा है- “सारे सागर की मसी करें और सारी जमीन का कागज, फिर भी भ्रष्टाचार का भारतीय महाकाव्य अलिखित ही रहेगा।” (9) व्यंग्यकार अनुभव करता है कि भारत के अधिकांश लोग सिर से लेकर पैर तक भ्रष्टाचार में डूबे हुए हैं। यह घोर विडंबना का विषय है कि वे भ्रष्टाचार की दलदल में आकंठ डूबे हुए भी प्रसन्नता का अनुभव करते हैं और उस दलदल से बाहर निकलना ही नहीं चाहते।

उपर्युक्त पंक्ति द्वारा भारतीय व्यंग्यकार और व्यंग्य पाठक दोनों ही विडंबना पूर्ण स्थिति के शिकार हैं। व्यंग्यकार विडंबित परिस्थिति को उल्लेखित करके दुखी हैं और पाठक पढ़कर दुखी है। विडंबना की कारुणिक स्थिति हरीश नवल, शरद जोशी के निधन पर तब अभिव्यक्त करते हैं जब भोपाल से उन्हें पत्र आता है कि भारत भवन में शरद जोशी से संदर्भित कार्यक्रम में उन्हें उपस्थित होना है। *कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्य कारों की* पुस्तक में हरीश नवल विडंबना पूर्ण स्थिति के विषय में लिखते हैं- "भारत भवन के निर्देशक का यह संदेश मुझे भीतर से बींध गया, जिस शरद जोशी को जीते जी भारत भवन में नहीं आने दियाजिस शरद जोशी को मध्य प्रदेश से भावात्मक रूप से निष्कासित कर दिया गया था उसी शरद जोशी पर भव्य कार्यक्रम आयोजित हो रहा है।" (73)

कितनी वेदना पूर्ण विडंबित परिस्थिति वर्णित की गई है। जीवित मनुष्य को जिस स्थान पर स्वीकार नहीं किया गया, मरणोपरांत उसी स्थान पर उस व्यक्ति की स्मृति में कार्यक्रम आयोजित हुआ। उपर्युक्त विडंबना को हरीश नवल *कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्य कारों की* पुस्तक में चित्रित करते हुए मानो व्यंग्य के लिए अपने द्वारा दी गई परिभाषा को ही प्रमाणित करते दृष्टिगत होते हैं। उन्होंने व्यंग्य को इस प्रकार परिभाषित किया है- "व्यंग्य की परिणति करुणा में होती है।" (8)

प्रशासनिक क्षेत्र की मूल्यहीन विडंबित परिस्थिति का सत्य आंकलन करते हुए *कुसीं तू बड़ी बड़भागिनी* पुस्तक में विजय कुमार ने निर्धन किसानों की दशा वर्णित करते हुए लिखा है- "वे आज भी फटे कपड़े पहने खेत जोत रहे हैं, पर सरकारी आंकड़ों में वे गरीबी रेखा से ऊपर हैं। शासन कहता है कि करोड़ों लोग गरीबी रेखा से ऊपर उठे हैं काश! कोई यह भी देखे कि कर्ज, भूख, दहेज, बेरोजगारी और फसल बर्बाद होने के कारण कितने लोग इस धरती से ही उठ गए हैं।" (15)

उपर्युक्त कथन के द्वारा व्यंग्यकार ने प्रशासनिक क्षेत्र की विडंबना को दर्शाते हुए व्यंग्य शर का संधान किया है। सरकारी सर्वेक्षण के दौरान गरीबी रेखा से ऊपर उठे नागरिकों के आंकड़े एकत्रित करने पहुंचे सरकारी कर्मचारी उन्हीं लोगों को गरीबी रेखा से नीचे मानते हैं जो सरकार द्वारा तय किए गए मापदंड के अनुसार गरीबी रेखा से नीचे पाए जाएं। गरीबी की मार न झेल पाने के कारण कई किसान आत्महत्या करने पर विवश हो जाते हैं। गरीबी रेखा को

रेखांकित करने वाले मापदंड व्यक्ति के समग्र परिवेश को देखते हुए निर्धारित नहीं किए जाते, यह घोर विडंबना है।

1.1.7.6 अतिशयता

भरतमुनिविरचित *नाट्यशास्त्र* में लिखा है- “उत्तमार्थविशेषो यः स चाप्यतिशयः स्मृतः” (1272) अर्थात् जो अर्थ उत्तम अर्थ से भी विशेष हो जाता है उसे ‘अतिशय’ कहा गया है। विसंगति को प्रभावशीलता के साथ दर्शाने के लिए अतिशयता का आश्रय लिया जाता है। व्यंग्यकार व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर समाज और राष्ट्र में व्याप्त विसंगतियों का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। जितना सूक्ष्म अवलोकन होगा, उतनी ही विस्तृत अभिव्यक्ति होगी। अतिशयता तभी प्रभावी सिद्ध होगी, यदि व्यंग्यकार विसंगति को स्पष्ट करने के उद्देश्य से उसका प्रयोग करेगा। कलेवर को विस्तार देने के उद्देश्य से यदि अतिशयता को प्रयुक्त किया जाएगा तो व्यंग्यकार की रचना में कृत्रिमता का समावेश हो जाएगा।

हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे पुस्तक में राजनीतिक विसंगतियों पर शरद जोशी निम्न पंक्तियों के माध्यम से अतिशयता पूर्ण प्रहार करते हैं- “कहां पर नहीं खेल रहे भ्रष्टाचार के फूल, जहां जहां जाती है सरकार उसके नियम, कानून मंत्री, अमला और कारिंदे साथ होते हैं.....खूब बॉटनी है इसकी, बड़ी फैली ज्योग्राफी, मोटा इतिहास।” (8)

यत्र-तत्र-सर्वत्र भ्रष्टाचार की फसल उग रही है। जो लोग सरकारी तंत्र से जुड़े हैं, वे भी इस उपजाऊ फसल से पूर्ण रूप से लाभान्वित हो रहे हैं। शरद जोशी सरकारी विभाग से संबंधित, सभी कर्मचारियों को भ्रष्टाचार से लिप्त हुआ मानते हैं। हर क्षेत्र में कुछ लोग ईमानदार भी होते हैं, परंतु व्यंग्यकार, बहुमत के आधार पर अतिशयता का आश्रय लेता है और आटे के साथ घुन को भी पीस डालता है।

शरद जोशी भ्रष्टाचार के इतिहास को भूगोल के साथ जोड़ते हैं और भूमंडल पर भ्रष्टाचार के विस्तृत वनस्पति जगत का वर्णन करते हैं। शरद जोशी नेताओं को भ्रष्टाचार के सर्वोच्च सिंहासन पर विराजमान दर्शाते हैं। उनकी क्रियाओं द्वारा राष्ट्र का साधन-संपन्न होने का, स्वप्न साकार होना तो दूर रहा, उन्हें मिट्टी में मिलता नजर आता है। राष्ट्र भक्तों ने तन-मन-धन को समर्पित करते हुए, जिस इरादे से राष्ट्र को स्वतंत्र कराया था, उन नेक इरादों को नेताओं

रूपी मूषकों ने कुतर डाला। नेताओं के चारित्रिक अपकर्ष को दर्शाते हुए शरद जोशी ने आगे लिखा है- "फैल रहे हैं चूहे, सपनों के गोदाम में, कुतर गए इरादे इस देश के।" (9)

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से भली-भांति ज्ञात हो जाता है कि बेशक शरद जोशी राजनीतिक तंत्र में तेजी से पनपते हुए भ्रष्टाचार का अतिशयतापूर्ण वर्णन कर रहे हैं परंतु साधारण जनमानस में राजनीतिक चेतना के भावों को जागृत करने के लिए व्यंग्यकार को कभी-कभी अतिशयता का सहारा लेना ही पड़ता है, जब वह अनुभव करता है कि लोगों को राजनीतिक विसंगतियों के प्रति जागरूक करने की प्रबल आवश्यकता है। राजनेताओं को सत्ता रूपी कुर्सी से बहुत लगाव होता है। कुर्सी हथियाने के लिए वे साम, दाम, दंड तथा भेद का प्रयोग करते हैं। नेताओं के कुर्सी प्रेम का अतिशयता पूर्ण उपहास करते हुए *कुर्सी तू बड़ी बड़भागिनी* में विजय कुमार कहते हैं- "कुछ राजनेता तो सोते भी कुर्सी पर ही हैं, एक नेता लिख गए थे कि उनके साथ उनकी कुर्सी का भी दाह संस्कार कर दिया जाए जिससे अगली बार वे कुर्सी सहित ही पैदा हों।" (10)

नेताओं की कुर्सी लोलुपता पर अतिशयोक्ति पूर्ण प्रहार किया गया है क्योंकि सच्चाई तो कुछ भिन्न ही है। कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु के साथ भस्म भले ही हो जाए परंतु उस वस्तु सहित जन्म नहीं ले सकता। नेता लोग कुर्सी अर्थात् सत्ता के प्रति इतना अधिक लोभ रखते हैं कि व्यंग्यकार अतिशयतापूर्ण ढंग से उनकी लालची वृत्ति का वर्णन करता है।

1.1.8 हास्य-व्यंग्य में अंतर :

हास्य और व्यंग्य में पर्याप्त भिन्नता है हास्य में मनोरंजकता, रोचकता और विनोद प्रियता होती है, जब कि व्यंग्य में पीड़ा जनित विक्षोभ का भाव होता है। *कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्य कारों की* पुस्तक में हरीश नवल कहते हैं- "हिंदी में हास्य व्यंग्य को एक मानकर उसे हास्य और व्यंग्य के मध्य हाईफन लगाकर सचमुच एक हाई-फन बना दिया गया है हास्य की परिणिति निर्मल आनंद और व्यंग्य की परिणिति करुणा में होती है।" (8)

गिरिराज शरण अग्रवाल और काका हाथरसी द्वारा संपादित पुस्तक *श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य रचनाएं* में काका हाथरसी कहते हैं- "हास्य से मिश्रित व्यंग्य सीधा प्रहार करता है और आपको चोट भी नहीं लगती, लगती भी है तो वह चोट हृदय परिवर्तन में सहायक होती है।" (7)

काका हाथरसी के कथन का भाव यह है कि व्यंग्य में यदि जरा सा हास्य का मिश्रण मिला दिया जाए तो आलंबन तिलमिलाता नहीं, अपितु अपनी कमियों के सुधार के विषय में सोचने पर बाध्य हो जाता है। उपर्युक्त पुस्तक के अंतर्गत गिरिराज शरण अग्रवाल हास्य और व्यंग्य में अंतर बताते हुए लिखते हैं- "हास्य संवेदनशील होता है व्यंग्य ज्ञानाश्रित होता है हास्य और व्यंग्य मिलकर ज्ञान व संवेदना को समन्वित करते हैं।" (8) व्यंग्य संवेदना को जागृत करता है, जबकि हास्य स्वयं संवेदनशील होता है। संवेदना के क्षेत्र में व्यंग्य, उत्प्रेरक का कार्य करता है। दोनों तत्वों के गुम्फन से, विसंगतियों के परिष्कार की संभावना द्विगुणित हो जाती है। हास्य विकृति बोध करवाता है और व्यंग्य विकृति की निवृत्ति करवाता है। हास्य मानव की सौंदर्य प्रियता का वाहक है और व्यंग्य मनुष्य के परिष्कार का कारक है।

मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं पुस्तक में अमृतलाल नागर लिखते हैं- "हास्य और व्यंग्य दोनों का लक्ष्य अमंगल का प्रतिकार व मंगल की प्रतिष्ठा है, सत्य का आग्रह भी दोनों में एक जैसा ही पाया जाता है परंतु व्यंग्य के लिए वह न्याय अन्याय का प्रश्न होता है और हास्य के लिए सुंदर-असुंदर का।" (भूमिका)

हास्य और व्यंग्य एक ही सिक्के के दो पहलू भले ही कहे जाएं परंतु दोनों में एक आधारभूत अंतर अवश्य है। हास्य में व्यंग्य का छींटा पड़ जाने से वह अधिक प्रभावशाली हो जाता है परंतु व्यंग्य के अंतर्गत हास्य का होना अनिवार्य नहीं, अपितु व्यंग्य यदि हास्य मिश्रित अधिक हो जाए तो उसकी प्रहारात्मकता क्षीण होने की संभावना बढ़ जाती है।

हास्य और व्यंग्य की चिंतन शैली में भारी अंतर है। व्यंग्य हास्य रचना को उत्तमतर बनाता है, जबकि व्यंग्य में हास्य की अधिकता व्यंग्य की संप्रेषणीयता में बाधक बन जाती है। कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्य कारों की पुस्तक में हास्य-व्यंग्य में अंतर बताते हुए हरीश नवल कहते हैं- "हास्य आनंद देता है, व्यंग्य न्याय की मांग करता है, दोनों तभी श्रेष्ठतर होते हैं जब वे विद्रूप, विडंबना या विसंगति से उपजे हों। हास्य में भाव की तथा व्यंग्य में बुद्धि की प्रधानता होती है।" (31-32)

हरीश नवल के कथन का अभिप्राय है कि हास्य मनोरंजन का साधन है जबकि व्यंग्य न्याय का। हास्य, सभा में उपस्थित सभी व्यक्तियों को आनंद प्रदान करता है जबकि व्यंग्य विसंगतियों के उत्तरदायी पर निशाना साधता है। हास्य, रुचि संपन्नता का द्योतक है और व्यंग्य,

आदर्श रूप से कार्य निर्वहण को सुनिश्चित करता है। व्यंग्य में बौद्धिकता का प्राधान्य होता है और हास्य में भावात्मकता का।

कमलकिशोर गोयनका द्वारा संपादित *गरीब होने के फायदे* पुस्तक में रविंद्रनाथ त्यागी ने लिखा है- "हास्य और व्यंग्य की मूल आत्मा भिन्न भिन्न है। हास्य में आलंबन के प्रति सहानुभूति रहती है, जबकि व्यंग्य में घृणा इत्यादि भावों का बाहुल्य रहता है।" (12) रविंद्रनाथ त्यागी के कथन से स्पष्ट है कि हास्य और व्यंग्य के मौलिक तत्वों में भिन्नता है। व्यंग्यकार को, असंगत स्थिति को सुधारने के लिए व्यंग्य का अवलंब लेना पड़ता है। इस लक्ष्य की सिद्धि हेतु आलंबन के प्रति रोष भी अभिव्यक्त करना पड़ता है और कभी-कभी घृणा भी दर्शानी पड़ती है। हास्य के अंतर्गत, आलंबन की, किसी त्रुटि को देखते हुए होंठों पर मुस्कुराहट आते हुए भी, अंतर्मन में सहानुभूति का भाव रहता है।

सुभाषचन्द्र द्वारा लिखित *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* पुस्तक में शंकर पुणतांबेकर का मानना है- "हास्य का स्थायी भाव हास है जो नौ रसों में से एक है, जबकि व्यंग्य एक नया रस है जिस का स्थायी भाव है विचार या बुद्धि।" (27)

हास्य व्यंग्य में अंतर स्पष्ट करते हुए सुभाषचन्द्र ने *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* पुस्तक में लिखा है- "एक पौधे से गुलाब के फूल को तोड़ना और उसकी खुशबू लेने का आनंद हास्य है तो व्यंग्य उसी पौधे की टहनी पर लगे कांटों के दर्द का एहसास है। हास्य का आधार मनोरंजन है, व्यंग्य का संवेदना।" (28)

व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न पुस्तक में शेरजंग गर्ग हास्य व्यंग्य के अंतर को स्पष्ट करते हुए कहते हैं- "व्यंग्य रचनाएं त्रासद क्षणों की, स्थितियों की अभिव्यक्ति होने के कारण जीवन और मानव मूल्यों की पहचान कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है..... हास्य रचनाओं में गुदगुदाते-गुदगुदाते सुन्न करने की पूर्ण क्षमता होती है।" (32) शेरजंग गर्ग के कथन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यंग्य रचनाएं मनुष्य के मस्तिष्क को झकझोरती हैं, उसे एहसास कराती हैं कि एक मानव के रूप में, उसे जिन कर्तव्यों का पालन करना है, उनके प्रति वह किस सीमा तक प्रतिबद्ध है, और वास्तव में, किस सीमा तक प्रतिबद्ध होना अपेक्षित है। हास्य रचनाएं मानव-मस्तिष्क को ताजगी प्रदान करती हैं, आनंद प्रदान करती हैं। हंसते-हंसते मनुष्य, हास्य के उद्वेग में कुछ क्षणों के लिए जीवन के संघर्षों को विस्मृत कर देता है और तनाव मुक्त हो जाता है।

हरीश नवल कृत *कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्य कारों की पुस्तक* में सूर्य बाला लिखती हैं- "हास्य-व्यंग्य का सारथी है, हास्य व्यंग्य की नक्काशी है।" (157) सूर्य बाला के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि हास्य, व्यंग्य के उद्देश्य को अग्रसर करने का कार्य करता है। हास्य के सम्मिश्रण से, व्यंग्य का स्वरूप निखरा हुआ प्रतीत होता है। हास्य, व्यंग्य को प्रभावशाली बनाने का कार्य करता है।

हिन्दी व्यंग्य का इतिहास पुस्तक में सुभाषचन्द्र लिखते हैं- "हास्य वह रचना है जो विसंगति से छेड़छाड़ कर हंसाने का कार्य करती है..... जबकि व्यंग्य वह रचना है जो विसंगति पर प्रहार करके पाठक को करुणा अथवा आक्रोश से भर देती है।" (27)

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि हास्य और व्यंग्य पृथक-पृथक विधाएं हैं। रस विवेचन के अंतर्गत नव रसों में से हास्य रस भी एक रस है। व्यंग्य और हास्य भिन्न होते हुए भी परस्पर सहयोगी सिद्ध होते हैं। हास्य-व्यंग्य के साधारणीकरण का काम करता है और व्यंग्य लेखन की रोचकता में अभिवृद्धि करता है, पठनीयता को सशक्तता के साथ संप्रेषित करता है। यहां यह ध्यातव्य रखना आवश्यक है कि हास्य का मिश्रण व्यंग्य में उसी सीमा तक होना चाहिए कि वह व्यंग्य की प्रहारात्मकता को कुंठित न करे, उसके उद्देश्य की पूर्णता में बाधक न बने। श्रेष्ठ व्यंग्य रचना तभी सार्थकता के मापदंड पर खरी उतरती है जहां हास्य साधन मात्र होता है, साध्य नहीं।

1.1.9 व्यंग्य लेखन क्यों ?

व्यंग्य समाज और राष्ट्र में प्रचलित अनाचारों, अत्याचारों और विसंगतियों के प्रतिक्रिया स्वरूप आवश्यक समझा गया, इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए श्रीलाल शुक्ल और प्रेम जनमेजय द्वारा संपादित *हिंदी हास्य व्यंग्य संकलन* पुस्तक में भारत की स्वतन्त्रता से पहले साहित्यकारों की मनःस्थिति के विषय में श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं- "राजनीतिक स्तर पर उस समय के अधिकांश बुद्धिजीवी एक अंतर्विरोध का अनुभव कर रहे थे सत्ता तन्त्र के उपेक्षापूर्ण रुख के लिए उनके मन में प्रबल आक्रोश था और उनकी सीधी और कड़ी आलोचना करना संभव नहीं था। ऐसी दशा में प्रबुद्ध साहित्यकारों ने व्यंग्य का माध्यम चुना।" (8)

श्रीलाल शुक्ल के कथन से स्पष्ट है कि परतन्त्र भारत में, समाज का बुद्धिजीवी वर्ग, ब्रिटिश शासन के अत्याचारों के कारण, अपने स्वाभिमान को कुंठित हुआ अनुभव करता था। विदेशी शासकों के सम्मुख सीधे तौर पर, विद्रोहात्मक स्वर में कुछ कहा नहीं जा सकता था,

चुप्पी साधे वे रह नहीं सकते थे, क्योंकि अत्याचार करना और अत्याचार सहना दोनों ही, अनुपयुक्त हैं। भारतीय जनता के अंतर्मन में चेतना जागृत करने के लिए, उन्हें एकमात्र व्यंग्य-लेखन ऐसा माध्यम लगा, जिसके द्वारा सांप भी मारा जाता और लाठी भी न टूटती।

व्यंग्य का समाज दर्शन पुस्तक में सुरेश आचार्य लिखते हैं- "साहित्य में समाज परिवर्तन और न्याय पूर्ण समाज व्यवस्था के लिए चिंतन एक निरंतर प्रक्रिया रही है। व्यंग्य इस प्रक्रिया की श्रेष्ठतम विधा है।" (33)

उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य द्वारा भली-भांति सिद्ध होता है कि समाज के सकारात्मक परिवर्तन में व्यंग्य प्रभावी ढंग से क्रियाशील होता हुआ सफल सिद्ध हो सकता है क्योंकि व्यंग्य का उद्देश्य ही न्याय की प्रतिष्ठा और अन्याय का विरोध करना है।

भुवनेश्वर उपाध्याय, वर्तमान विसंगति पूर्ण सामाजिक स्थिति पर दृष्टिपात करते हुए राहुल देव द्वारा संपादित पुस्तक *चयन और चिंतन व्यंग्य के संग* पुस्तक में व्यंग्य लेखन की आवश्यकता बताते हुए कहते हैं- "आज आदमी जिस तेजी से नैतिक और चारित्रिक पतन की ओर अग्रसर हो रहा है, व्यंग्य की आवश्यकता बढ़ी है क्योंकि व्यंग्य लेखन अपने आप में एक दायित्वबोध है।" (157)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि व्यंग्यकार मनुष्य के चरित्र को उन्नत देखना चाहता है और उसका नैतिक विकास चाहता है इसलिए वे उसे पतन के मार्ग पर चलने से रोकना चाहता है। व्यंग्य सौद्देश्यपूर्ण विधा है, व्यंग्य लेखन, व्यंग्यकार के अंतर्मन की पीड़ा की अभिव्यक्ति है। समाज में व्याप्त असमानता, अन्याय, शोषण तथा अनाचारों को देखते हुए, व्यंग्यकार का धैर्य चुक जाता है, परिणाम स्वरूप उसका अधीर मन मूल्यहीन स्थितियों के प्रति विद्रोही हो जाता है। विसंगतियों की भूमि पर जब विद्रोह के बादल, आच्छादित हो जाते हैं तो व्यंग्य का बीज अंकुरित होता है।

राहुल देव द्वारा संपादित पुस्तक *चयन और चिंतन व्यंग्य के संग* में विवेक मिश्र व्यंग्य लेखन की आवश्यकता पर बल डालते हुए लिखते हैं- "आज जब हमारे चारों ओर विसंगतियों का घटाटोप है और ऐसे में हम अपने को तर्कशील और परिवर्तनगामी समझते हैं तो व्यंग्य की आवश्यकता से कैसे इन्कार कर सकते हैं?" (57)

विवेक मिश्र के कथन से स्पष्ट है कि वर्तमान समाज को विसंगतियों के अंधकार से बाहर निकालने के लिए व्यंग्य रूपी प्रकाश की आवश्यकता है। व्यंग्य की तेज आंधी ही विसंगतियों के घटाटोप को उड़ा कर दूर भगाने में सक्षम है।

कोई मैं झूठ बोलया पुस्तक में व्यंग्य लेखन की आवश्यकता का कारण बताते हुए प्रेम जन्मेजय कहते हैं- "बहुत आवश्यक है सामाजिक एवं आर्थिक विसंगतियों को पहचानने तथा उन पर दिशा युक्त प्रहार करना।" (1)

प्रेम जन्मेजय ने आर्थिक और सामाजिक विसंगतियों पर सर्वाधिक ध्यान केंद्रित करने पर इसलिए बल दिया है क्योंकि वर्तमान समय में समाज में अर्थ प्रधान संस्कृति तेजी से गतिशील हो रही है, जिस वजह से सामाजिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है। प्रेम जन्मेजय सामाजिक भेदभाव के मूल में, आर्थिक विषमता को कारण मानते हैं। धनी और निर्धन वर्ग के मध्य आर्थिक खाई, सामाजिक रूप से भी उन्हें पृथक कर देती है। एक धनी व्यक्ति अपने पड़ोस में रहने वाले निर्धन परिवार को, अपने पारिवारिक उत्सव में सम्मिलित करना अपनी शान के खिलाफ समझता है और निर्धन व्यक्ति भी उसके घर जाने में संकोच का अनुभव करता है, आर्थिक वैषम्य की दीवार, ईट और सीमेंट से बनी दीवार से भी अधिक मजबूत होती है।

नशतर की मुस्कान पुस्तक में व्यंग्य लेखन की आवश्यकता अनुभव करते हुए सुरेश सेठ कहते हैं, "कोई भी सही रचनाकार आज अन्याय और शोषण के विरुद्ध शोषित का पक्षधर होने से बच नहीं सकता।" (भूमिका) सुरेश सेठ के कहने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक विधा का रचनाकार, शोषण और अन्याय के विरोध में आवाज उठाता है। बात कहने के ढंग में अवश्य अंतर हो सकता है, परंतु रचना रचित करने के परिप्रेक्ष्य में उद्देश्य एक ही निहित रहता है-शोषित वर्ग की पक्षधरता। सभी व्यंग्यकारों के कथन के आधार पर यह सिद्ध होता है कि समाज में विद्यमान विसंगतियों के निराकरण के लिए व्यंग्य एक प्रभावी विधा है। व्यंग्य का लक्ष्य व्यक्ति, समाज, विचारधारा या सांस्कृतिक विसंगतियों पर प्रहार करना है। विसंगतियों से घिरे हुए समाज के परिष्कार के लिए, व्यंग्य लेखन एक सशक्त माध्यम है। व्यंग्य की पैनी नजर, व्यक्ति से लेकर वर्ग तक, वर्ग से लेकर समाज तक तथा मनुष्य के अंतर्मन में स्थित विचारात्मकता तक पहुंचती है

1.1.9.1 व्यंग्य में निष्पक्षता होती है-

धन्धे मातरम पुस्तक में राष्ट्र के नेताओं का निष्पक्षता से मूल्यांकन करते हुए पीयूष पांडे कहते हैं-

यह देखो मुल्क मराठों का, यहां आदर्श घोटाला है,

सिंचाई के पानी को नेताओं ने बेच डाला है,

किसानों की खुदकुशी को भी नोच डाला है.....। (18-19)

पीयूष पांडे का कथन व्यंग्य की निडर निष्पक्षता का संकेतक है। नेताओं द्वारा किए गए घोटालों पर तो पीयूष पांडे आक्षेप करते ही हैं, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक जल को भी नेताओं द्वारा अपनी स्वार्थ लिप्सा का निशाना बनाए जाने पर कटाक्ष करते हैं।

समग्र मानव जाति का पोषक किसान जब अभावों की चरम सीमा तक पहुंच कर आत्मविश्वास से विहीन होता हुआ आत्मघात कर लेता है तब ये राजनेता उसकी अकाल मृत्यु के दुखद अवसर पर भी राजनीति करने से बाज नहीं आते। पीयूष पांडे व्यंग्य के विडंबना साधन का प्रयोग करते हुए निष्पक्षता से राजनीतिज्ञों की स्वार्थी वृत्ति की भर्त्सना करते हैं। समाचार पत्रों में तथा दूरदर्शन के पटल पर, नेताओं, प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किए गए घोटालों के विषय में जानकारी दी जाती है। ये घोटाले तो वे हैं, जो किसी ईमानदार सरकारी कर्मचारी द्वारा, सामने लाए जाते हैं, परंतु पर्दे की आड़ में भी बहुत से घोटाले किए जाते हैं, जिनका 'चोर का गवाह गिरहकट' के आधार पर पता ही नहीं चलता।

विष्णु नागर व्यंग्य की निष्पक्षता को *भारत एक बाजार है* पुस्तक में प्रमाणित करते हैं। वे भारत की नारी के प्रति पुरुषों द्वारा, किये जा रहे अत्याचारों के विषय में निष्पक्ष रूप से लिखते हैं- "हे देवी! तुम हमारी अनिच्छा के बावजूद इस देश की धरती पर चतुर्दिक छाती चली जा रही हो। हम भ्रूण हत्याएं करा रहे हैं, दहेज हत्याएं करा रहे हैं, चीरहरण से लेकर चरित्र हनन तक करा रहे हैं।" (107)

उपर्युक्त कथन में विष्णु नागर स्वयं पुरुष होते हुए भी नारी के प्रति पुरुषों द्वारा किए गए अत्याचार और विसंगति पूर्ण व्यवहार पर बिना किसी पक्षपात के आक्षेप कर रहे हैं। जो न केवल उनकी निष्पक्ष व्यंग्यात्मक मनोवृत्ति का संकेतक भी है, उनके उच्चतम सामाजिक

सरोकारों को उद्घाटित भी करता है कि वे मनुष्य की हीनतम सीमा तक स्वार्थी वृत्ति के प्रखर विरोधी हैं। वे निष्पक्ष भाव से पूरूष समाज द्वारा, स्त्री के शोषण को समाज के समक्ष वर्णित करते हैं। विज्ञान की प्रगति का अनुचित लाभ उठाते हुए, स्त्री को जन्म लेने के अधिकार से भी वंचित कर दिया जाता है, यह स्थिति अमानवीय है, घोर विडंबनाओं की सूचक है। जब मानव ईश्वर प्रदत्त संतान प्राप्ति के वरदान को भी अपनी इच्छा के आधार पर उपलब्ध करना चाहेगा, अभिभावक बनने के परिप्रेक्ष्य में भी हानि लाभ का आकलन करेगा तो इससे जीवन मूल्यों का हनन ही होगा, और कुछ नहीं।

उपर्युक्त विचार उनकी उच्चतम स्तर की निष्पक्ष वैचारिकता को प्रमाणित करते हैं। मनुष्य समाज में नर और नारी के सहयोग से ही सृष्टि रचना अनवरत रूप से गतिशील है, फिर एक पक्ष के प्रति दूसरे पक्ष द्वारा अनुचित व्यवहार सर्वथा अशोभनीय है। उपर्युक्त कथन के द्वारा व्यंग्यकार ने पुरुष समाज को नारी समाज के प्रति हो रहे अत्याचारों के प्रति संवेदनशील होने के लिए प्रेरित किया है।

व्यंग्य के रंग पुस्तक में व्यंग्य की निष्पक्षता को प्रमाणित करते हुए अशोक गुजराती लिखते हैं- "जिस काम में रिश्वत की दरकार हो या भ्रष्टाचार उसे सफलतापूर्वक संपन्न कराता हो, वही लाभ के पद के अंतर्गत आएगा।" (95)

उपर्युक्त कथन के द्वारा व्यंग्यकार ने समग्र निष्पक्षता से भारत के अधिकांश लोगों की विकृत और स्वार्थी मानसिकता को उद्घाटित किया है। शिक्षा ग्रहण करते समय विद्यार्थी पग-पग पर विसंगतियों की गिरफ्त में आता है। उसे सर्वत्र भ्रष्टाचार के शिकारी अपनी स्वार्थी वृत्ति को सिद्ध करने में प्रयासरत नजर आते हैं। तब वह भी विवश होकर भ्रष्ट व्यवस्था के रंग में स्वयं को रंग लेता है। जब वह नौकरी की खोज करने लगता है तो उसका ध्यान केंद्रित होता है ऐसे पदों पर जो मासिक वेतन के साथ साथ भ्रष्ट विधियों से उसकी मुट्टी गर्म कर सकें। आज व्यक्ति अर्थ प्रधान संस्कृति का दास हो गया है, उसे कम से कम समय में अधिक से अधिक धन अर्जित करना है। वह ईमान के सीधे मार्ग का त्याग करके बेईमानी की पगडंडियों पर चलने लगता है।

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य लेखन में निष्पक्षता का भाव चरम सीमा तक देखने को मिलता है। कहीं-कहीं तो उनके व्यंग्य लेखन की निष्पक्षता की धार इतनी पैनी हो जाती है कि वह एक मनुष्य पर ही नहीं समग्र मनुष्य जाति पर ही प्रहार करते नजर आते हैं। उनके निष्पक्ष

लेखन का चरमोत्कर्ष उनकी कृति *कहत कबीर* में निम्न पंक्तियों द्वारा स्वतः सिद्ध हो जाता है- "हम बहुत पाखंडी लोग हैं।..... हमसे ज्यादा क्रूर और नीच जाति दुनिया में कोई नहीं। अफ्रीका के जंगली कबीलों में भी नारी पर उतने अत्याचार नहीं होते जितने हम करते हैं और कहते हैं कि नारी पवित्र है, पूज्या है।" (73)

कितनी वेदना कितना आक्रोश है व्यंग्यकार के हृदय में कि वह स्वयं पुरुष होते हुए भी पुरुष जाति के मानसिक, आत्मिक और सामाजिक अपकर्ष को भी वर्णित करने से पीछे नहीं हटते। उपर्युक्त कथन के द्वारा हरिशंकर परसाई ने भारत की पुरुष जाति द्वारा नारी पर किए जा रहे अत्याचारों की कठोर भर्त्सना की है। एक ओर वे स्वजाति के असंगत व्यवहार की निष्पक्ष आलोचना करते हैं और दूसरी तरफ नारी जाति के प्रति अपने हार्दिक सम्मान को सुनिश्चित करते हैं। भारत के पुरुषों द्वारा नारी के प्रति किए गए अत्याचारों को उन्होंने विराट स्तर पर उद्घाटित किया है और उसे घोर निंदनीय माना है। वे नारी के प्रति हो रहे अशोभनीय व्यवहार को महान भारतीय संस्कृति की उच्चतम गरिमा का अवरोधक मानते हैं। पुरुषों द्वारा नारी के प्रति हो रहे शोषण को वे पशु तुल्य व्यवहार समझते हैं। हरिशंकर परसाई, पुरुषों के लिए 'क्रूर' और 'नीच' विशेषणों का प्रयोग करते हुए स्वयं को भी लपेट में ले लेते हैं, जिससे उनकी व्यावहारिकता में निष्पक्षता का उज्ज्वल और विराट रूप देखने को मिलता है।

1.1.9.2 व्यंग्य लेखन सत्यान्वेषी होता है-

व्यंग्य लेखन इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि व्यंग्य सत्यान्वेषी होता है। व्यंग्यकार की पैनी दृष्टि सत्य के अन्वेषण के प्रति सदैव सजग रहती है। *व्यंग्य समय शरद जोशी* पुस्तक में सुशील सिद्धार्थ लिखते हैं-" बिना गहरी और प्रशस्त राजनीतिक समझ के व्यंग्य लिखा ही नहीं जा सकता। कोई व्यंग्यकार जब समस्याओं की तह में जाता है तो पता चलता है कि कैसी-कैसी तिकड़में सांस ले रही हैं।" (6)

उपर्युक्त कथन द्वारा स्पष्ट है कि जब व्यंग्यकार किसी समस्या के कारण अन्वेषित करने के पथ पर अग्रसर होता है तो उसके सामने कई सत्य उजागर हो जाने की स्थितियां उपस्थित हो जाती हैं।

बेईमानी की परत पुस्तक में निंदकों की निंदा प्रवृत्ति का सत्यता से अन्वेषण करते हुए हरिशंकर परसाई कहते हैं- "निंदक..... ईर्ष्या-द्वेष से चोबीसों घंटे जलता है और निंदा का जल छिड़ककर शांति का अनुभव करता है।" (36)

निंदक व्यक्ति किसी कार्य के क्रियान्वयन में जब सफल नहीं हो पाता, और उस कार्य के क्रियान्वयन में कोई अन्य व्यक्ति सफलता प्राप्त कर लेता है तो दूसरे व्यक्ति की सफलता, उसे कांटों की तरह चुभने लगती है। वह 'खिसियानी बिल्ली खंबा नोचे' की कहावत को सार्थक करता हुआ, सफल व्यक्ति का निंदा पुराण बखानने लगता है। निंदक के प्रति व्यंग्यात्मक सहानुभूति दर्शाते हुए हरिशंकर परसाई ने आगे लिखा है- "ईर्ष्या द्वेष से प्रेरित निंदा करने वाले को कोई दंड देने की जरूरत नहीं है, वह निंदक बेचारा स्वयं दंडित होता है। आप चैन से सोइए और वह जलन के कारण सो नहीं पाता। उसे और क्या दंड चाहिए।" (36)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरिशंकर परसाई ने निंदक की मनोवृत्ति और उस मनोवृत्ति के कुप्रभाव को सत्यता के साथ अन्वेषित करते हुए उद्घाटित किया है। निंदक द्वारा स्वयं के लिए होने वाली हानि पर व्यंग्य करते हुए परोक्ष रूप से वे इस विकृति से दूर रहने का परामर्श ही देते हैं, क्योंकि निंदक भी एक सामाजिक प्राणी है और व्यंग्यकार की दृष्टि तो रहती ही है सामाजिक विकृतियों के अन्वेषण और उसकी निवृत्ति की ओर।

व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न पुस्तक में शेरजंग गर्ग लिखते हैं- "व्यंग्य, व्यंग्य के लिए नहीं होता अपितु सत्य के लिए होता है और सत्य का संप्रेषण व्यंग्यकार के नैतिक साहस, शाब्दिक आक्रमण क्षमता एवं विसंगति की गहरी समझ से पूर्णतः संबद्ध होता है।" (117)

उपर्युक्त कथन द्वारा यह पता चलता है कि व्यंग्य लेखन सत्य के उद्घाटन के लिए कृतसंकल्प होता है। जिस व्यंग्य कृति में सत्य का उल्लेख जिस अनुपात में होगा व्यंग्य कृति उसी अनुपात में तीव्र संप्रेषणीय, गुणवत्ता संपन्न तथा जीवंतता को धारण करने वाली सिद्ध होगी।

1.1.9.3. व्यंग्य सशक्त मार्गदर्शक भी है-

व्यंग्य के पथ प्रदर्शन को आवश्यक बताते हुए पीयूष पांडे *धन्धे मातरम* पुस्तक में लिखते हैं- "व्यंग्य समाज की विसंगतियों पर ऐसा कटाक्ष करे कि पाठक मुस्कराते हुए पीड़ा का अनुभव करें, वह पीड़ा, जो उसे समाज की विसंगतियों को दूर करने के लिए प्रेरित करे।"

(8) पीयूष पांडे व्यंग्य की सार्थकता तब समझते हैं, जब व्यंग्य, पाठक के हृदय में समाज में व्याप्त विसंगतियों के प्रति, पीड़ा का आविर्भाव करता है। स्वयं को पीड़ित अनुभव करने वाला, अपनी पीड़ा को दूर करने के लिए, विसंगतियों की निवृत्ति के पथ पर अग्रसर, निश्चित रूप से होगा।

व्यंग्य केवल विसंगतियों विद्रूपताओं पर प्रहार ही नहीं करता अपितु उन विसंगतियों के निराकरण का मार्गदर्शक भी बनता है। वर्तमान अर्थ प्रधान संस्कृति के बढ़ते प्रभाव को निष्प्रभावी बनाने के लिए व्यंग्य मार्ग प्रशस्त करता है।

व्यंग्य का समाज दर्शन पुस्तक में व्यंग्य के सशक्त मार्गदर्शन का उल्लेख करते हुए सुरेश आचार्य कहते हैं- "भविष्य में जब जब राजनीतिक पतन, सामाजिक मूल्यहीनता और घटती हुई अर्थवत्ता का इतिहास लिखा जाएगा, तब तब इतिहासकार प्रामाणिक तथ्यान्वेषण के लिए समसामयिक व्यंग्य लेखन का अध्ययन करेगा।" (77)

उपर्युक्त कथन द्वारा सुरेश आचार्य ने व्यंग्य की उत्कृष्ट मार्गदर्शिता का उल्लेख किया है कि राजनीतिक और सामाजिक मूल्यों के विघटन की तात्विक छानबीन का इतिहास व्यंग्य लेखन के आधार पर ही लिखा जाएगा क्योंकि व्यंग्य लेखन में न तो छद्म आवरण औढ़ा जाता है न ही कथनी और करनी में अंतर दर्शाया जाता है। अतः प्रामाणिक साक्ष्यों के अन्वेषण के लिए व्यंग्य ही मार्गदर्शक का कार्य करने में सक्षम सिद्ध हो सकता है।

ज्ञान चतुर्वेदी व्यंग्य को जीवन का पथ प्रदर्शक मानते हुए राहुलदेव द्वारा संपादित *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* पुस्तक में लिखते हैं- "एक संपूर्ण व्यंग्य, मात्र जीवन की खुरदरी विसंगतियों भरी सतह को छीलकर ही नहीं रुक जाता, वह इसे घिसकर आत्मा की कोमल सतहों को भी उजागर करता है और फिर जीवन कैसा होना चाहिए, वैसी शकल भी बनाने की कोशिश करता है।" (25)

उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि व्यंग्य केवल कटु सत्य का उद्घाटन मात्र नहीं करता अपितु हृदय की गहरी संवेदना को भी जागृत करता है, कोमल और करुण भावों की सृष्टि का भी निर्देश देता है। जीवन कैसा होना चाहिए, इस संबंध में वह कोरे उपदेश ही नहीं देता अपितु प्रायोगिक रूप में वैसा जीवन जीने के उपायों को भी सुनिश्चित करता है।

उपर्युक्त कथन के अधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि व्यंग्य आदिकाल से अनवरत चली आ रही प्रहारक विधा है परंतु इसका विस्तार स्वतंत्रता के पश्चात अबाध गति से हुआ। उपर्युक्त तथ्य की सत्यता *व्यंग्य का समाज दर्शन* में सुरेश आचार्य के निम्न कथन से परिपुष्ट होती है- "स्वतंत्रता के बाद धीरे-धीरे मूल्यों के विघटन की गति तीव्र होती गई। जिस व्यापक और विराट सांस्कृतिक, धार्मिक और नैतिक चेतना पर राष्ट्रीयता का ध्वज दंड खड़ा किया गया था, उस पर पहला आघात देश के विभाजन का होता है।" (71)

देश का विभाजन क्यों हुआ? उसकी कीमत भारतीयों को कैसे-कैसे चुकानी पड़ी? यह तथ्य किसी से छिपा नहीं है। जिन लोगों ने राष्ट्र के विभाजन का दंश झेला है, वे उसे याद करते हुए आज भी खून के आंसू बहाते हैं। राष्ट्र की स्वतंत्रता की घोषणा के साथ ही, तत्कालीन नेताओं ने अपने-अपने स्वार्थी मंसूबों को अमली जामा पहनाने का षड्यंत्र प्रारंभ कर दिया। स्वातंत्र्योत्तर, मूल्यहीन परिदृश्य को वर्णित करते हुए, सुरेश आचार्य आगे लिखते हैं- "फिर क्रमशः आरंभ होता है राजनीतिक अधः पतन का युग। चारों ओर एक आपाधापी का वातावरण, निरंतर एक विसंगत, विद्रूप और विरोधाभासों से भरा हुआ समाज पनपने लगता है। इस विकृत होती हुई सामाजिक मूल्यवत्ता की रक्षा के लिए व्यंग्य सामने आता है।" (71)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से सुरेश आचार्य व्यंग्य की सशक्त आवश्यकता को प्रमाणित करने में सफल दृष्टिगत होते हैं। व्यंग्य का उद्देश्य विकृति की निवृत्ति करना है और जब जब विकृतियों का आधिक्य हो जाता है तब तब व्यंग्य लेखन की आवश्यकता प्रबल होती जाती है। राष्ट्रीय, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों का जब विघटन होने लगता है तब व्यंग्य लेखन उपर्युक्त परिस्थितियों में सुधार लाने हेतु प्रखर रूप से सामने आता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राष्ट्र में अनियमितताओं का जो दौर प्रारंभ हुआ, वह आज तक नहीं थमा। राष्ट्र के शासन -भार को संभालना कोई बच्चों का खेल नहीं है। राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए जुलूस निकालना, लोगों की भीड़ में ऊर्जस्वित वक्तव्य देना, राष्ट्र के प्रति नेताओं की, भक्ति भावना को तो सुनिश्चित करता है, लेकिन राष्ट्र के शासन संबंधी कार्यभार को संभालने में उनकी योग्यता सुनिश्चित नहीं करता। *महाभारत* के शांति पर्व में राजा की योग्यता वर्णित करते हुए कहा गया है-"यस्मिन् धर्मो विराजेत तं राजानं प्रचक्षते।"(10/318) अर्थात् जिसके अंतर्मन में धर्म निवास करता है, वह राजा है। धर्म को आत्मसात करने वाला व्यक्ति राजा कहलाने का अधिकारी है। धर्म, कर्तव्यों के समुचित निर्वहण को कहा गया है।

कल्याण के हिंदू संस्कृति अंक में "हिंदू राजा के लक्षण और कर्तव्य" आलेख के अंतर्गत जानकीनाथ शर्मा ने, भगवान राम द्वारा बताए गए राजा के लक्षणों को वर्णित करते हुए लिखा है- "दृढभक्तित्व, अविस्वादिता, कृतज्ञता, देव-संपन्नता,.. दीर्घदर्शिता, पवित्रता, स्थूललक्ष्यता, धार्मिकता, वृद्धसेवा, सत्य और उत्साह आदि गुणों से संपन्न व्यक्ति ही राजा होने योग्य है।" (447)

उपर्युक्त गुणों को देखते हुए भारत के शासकों में प्रायः एक भी लक्षण देखने को नहीं मिलता। शासक के गुणों-लक्षणों से विहीन लोगों के हाथ में शासन की बागडोर सौंप देने पर, सर्वत्र विसंगतियां तो प्रसारित होंगी ही। जिस राष्ट्र में योग्य प्रशासक नियुक्त नहीं होंगे, वहां विसंगतियां अविराम गति से बढ़ती जाएंगी। राष्ट्र का कार्यभार संभालने वाला व्यक्ति, सर्वथा निस्वार्थ, निष्पक्ष, भाई-भतीजावाद की प्रवृत्ति से मुक्त तथा हर समय, राष्ट्र की उन्नति और सुरक्षा के प्रति चिंतनशील होना चाहिए। भारत में ऐसे अनेक प्रजावत्सल शासक हुए हैं, जो रात्रि के समय वेश बदलकर, प्रजा की स्थिति जानने के लिए, भ्रमण किया करते थे।

1.2 जीवनमूल्य, सैद्धांतिक पृष्ठभूमि :

मनुष्य ने जब से सामाजिक जीवन जीना प्रारंभ किया तब से धीरे-धीरे उसने मनुष्यता को विशिष्टतर बनाने हेतु एक सभ्य सुसंस्कृत पारंपरिक जीवन पद्धति निर्मित की जिसके अंतर्गत उसने धर्म, न्याय, अहिंसा, सत्यता तथा लोक कल्याण जैसी वैचारिकता को आचरण में ढालना उपयुक्त समझा। अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए वह जीवन मूल्यों के बिंदु निर्धारित करने की ओर अग्रसर हुआ।

नारायण पण्डित संगृहीत *हितोपदेश* में लिखा है-

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्॥ (67)

अर्थात् यह अपना है, यह उसका है, ऐसी सोच संकुचित चित्त वाले व्यक्तियों की होती हैं। उदारचरित मनुष्यों के लिए पूरी वसुधा ही एक कुटुंब है। समग्र विश्व को परिवार मानने के परिप्रेक्ष्य में, विश्व बंधुत्व की भावना के प्रसार का उद्देश्य मुख्य रूप से, निहित रहता है। जिसके व्यक्तित्व में, उदारता का भाव समन्वित होगा, वही मनुष्य समग्र विश्व को एक कुटुंब की भांति

मानेगा। ऐसी विचारात्मकता को धारण करने वाला व्यक्ति अपने और पराए में भेद नहीं करता। वह समग्र जीव-जगत में एकात्मता का अनुभव करता हुआ, सर्व हितार्थ कार्य करने में क्रियाशील रहता है।

भारतीय परंपरा की खोज पुस्तक में भगवान सिंह लिखते हैं- "हमारे जीवन मूल्य और मानव मूल्य का स्रोत आसुरी परंपरा ही है.... जिस वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा को हम भारतीय, मूल्य व्यवस्था का वैशिष्ट्य मानते हैं, उसका स्रोत वह आदिम अवस्था ही है, जिसमें किसी का कुछ भी निजी और पराया नहीं था।" (17)

उपर्युक्त कथन के आलोक में यह स्पष्ट है कि जीवन-मूल्यों के बीज मनुष्य में आदिम अवस्था से ही विद्यमान थे, तब मानव संग्रह की प्रवृत्ति से अनभिज्ञ था। एक व्यक्ति के पास जो वस्तु थी, उसका उपयोग अन्य व्यक्ति भी निसंकोच कर सकता था। जैसे-जैसे मनुष्य सभ्य होता गया, सामाजिक होता गया, अपरिग्रह की प्रवृत्ति कम होती गई, अपने पराए का भेद बढ़ने लगा। उसी अनुपात में जीवन-मूल्यों के संरक्षण के प्रति उदासीनता की भावना भी बढ़ती गई। साहित्य, क्योंकि समाज का प्रतिबिंब है अतः साहित्यकार चाहे किसी भी विधा से संबंधित कृति की रचना रचे, जीवन-मूल्यों के प्रति उसका आग्रह सदैव दृष्टिगत होता रहा है। व्यंग्य विधा का तो सृजन ही विघटित होते जीवन मूल्यों के रक्षण हेतु हुआ है, अतः जीवन मूल्यों का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक हो जाता है।

जीवन मूल्य की परिभाषा देते समय जीवन और मूल्यों को अलग अलग जानना आवश्यक है। *संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ* में तारिणीश झा लिखते हैं- "जीवन का अर्थ है जीवनी शक्ति देने वाला, अस्तित्व तथा संजीवनी शक्ति।" (462)

आदर्श हिंदी शब्दकोश में रामचंद्र पाठक जीवन का अर्थ बताते हुए कहते हैं- "वृत्ति, जीविका, प्राणधारण.....जन्म और मरण के बीच का काल, जीवित रखने वाली वस्तु, प्राणप्यारा, परम प्रिय व्यक्ति।" (269)

भाई काहन सिंह नाभा के *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सिख लिटरेचर* के अनुसार जीवन का अर्थ है- "जिंदगी, उपजीविका, घी, घृत।" (527)

अरुणेश नीरन और दिनेश कुशवाह द्वारा संपादित *मूल्यों के निर्माण कलश* पुस्तक के अंतर्गत "एक मुखर किस्सागो: एक प्रखर चिंतक" आलेख में कृष्ण शलभ जीवन को परिभाषित

करते हुए लिखते हैं- "जीवन सांसो के सहारे बढ़ती एक यात्रा है।" (85) उपर्युक्त कथन का भाव है कि प्रत्येक सांस, प्राणी के जीवन की इकाई है। सांसों की अनवरत गतिशीलता ही जीवन है। जिस प्रकार मनुष्य एक-एक कदम चलता हुआ गंतव्य तक पहुंच जाता है, उसी प्रकार जीवन एक-एक सांस लेता हुआ अपने लक्ष्य तक जा पहुंचता है।

जीवन सरल है पुस्तक के अंतर्गत विनीता वर्मा जीवन का अर्थ बताते हुए लिखती हैं- "जीवन हमारे कर्मों, हमारी सोच और हमारी मान्यताओं का दर्पण है।" (29) जीवन रूपी दर्पण में मनुष्य का आचरण तथा उसके अंतर्मन में निहित, विचार प्रतिबिंबित होते हैं। यदि मनुष्य का दृष्टिकोण सकारात्मक है, तो जीवन रूपी दर्पण में सुख प्रतिबिंबित होगा। यदि मनुष्य नकारात्मक विचारों को धारण करेगा तो यह दर्पण दुःख प्रतिबिंबित करेगा। जीवन को सार्थक बनाने के लिए, अपने विचारों को सार्थक बनाना अत्यावश्यक है।

आदर्श हिंदी शब्दकोश में रामचंद्र पाठक की दृष्टि में मूल्य का अर्थ है- "किसी वस्तु के बदले मिलने वाला धन, दाम।" (625)

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सिख लिटरेचर में भाई काहन सिंह नाभा मूल्य का अर्थ बताते हुए कहते हैं- "कीमत, खरीदने योग्य, लायक।" (992)

अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश में स्वस्ति मिश्रा मूल्य का अर्थ बताती हुई कहती हैं- "गुणवत्ता तथा महत्व की प्रविधि... राशि, धन।" (1128)

1.2.1 मूल्य की अवधारणा

मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति 'मूल' धातु में यत् प्रत्यय लगाने से हुई है। जिसका अभिप्राय है किसी वस्तु के विनिमय में दिया जाने वाला धन, दाम इत्यादि। मूल्य कोई साकार वस्तु नहीं जिस का अवलोकन किया जा सके। मूल्य स्वयं में एक नजरिया है, अनुभूत करने की शक्ति है तथा धारणा है। जो मूल्यवान है, उसी धारणा का मूल्य है। आचरण संबंधी जो धारणाएं, मनुष्य को पशुता से पृथक करती हैं, वे धारणाएं मूल्य हैं। मनुष्य का जो कार्य-व्यापार उसकी मनुष्यता को, गौरवमंडित करता है, उसे प्रकृति की सर्वोत्तम कृति के रूप में प्रमाणित करता है, वह मूल्य है। मानव के अस्तित्व को सुनिश्चित करने वाले मापदंड जीवन-मूल्य कहलाते हैं।

जीवन-मूल्य ही वह आधार है, जिस पर मानवता का उच्च स्तंभ टिका हुआ है। जीवन-मूल्यों का निर्वहण ही, मानव के अंतर्मन में यह आत्मविश्वास जगाता है कि उसने एक मानव के रूप को, अपने आचरण द्वारा सत्यापित किया है। मूल्य अमूर्त सद्गुण हैं जो किसी वस्तु, विचार अथवा धारणा के महत्व की ओर संकेत करता हैं। बाल्यकाल में मनुष्य, अनुकरण प्रविधि के द्वारा, अपने अग्रजों को देखते हुए, जीवन मूल्यों को अपनाता है, जैसे बड़ों का आदर करना, सत्य बोलना, मृदु बोलना, चोरी न करना इत्यादि। उम्र के बढ़ने के साथ-साथ वह ईमानदारी, राष्ट्रभक्ति, सादगी, उदारता तथा परदुख-कातरता इत्यादि जीवन मूल्यों को अपने आचरण में ढालता है।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (विस्तारक मूल्य : भाग 2) में लेखिका नीरू जीवनमूल्यों के निर्वहण का दायित्व मनुष्य जाति पर डालते हुए लिखती है- "व्यक्ति ही वह प्रस्थान बिंदु है जहां से मूल्य अपनी विकास यात्रा शुरू करते हैं और परिवार, समाज तथा राष्ट्र के विभिन्न चरणों से गुजरते हुए अंततः विश्व के महाकाय में लीन हो जाते हैं।" (17)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि ईश्वर निर्मित सभी प्राणियों में मानव सर्वश्रेष्ठ है, ईश्वर ने उसे ही चिंतन शक्ति प्रदान की है, अतः सभी जीवन मूल्यों का उदभव और विकास मानव समाज द्वारा ही क्रियात्मक स्वरूप पाने में समर्थ सिद्ध हो सकता है।

1.2.2 मूल्य की परिभाषा

जीवन मूल्यों पर शोध कार्य करते हुए, विभिन्न विचारकों द्वारा, मूल्य की परिभाषा जानना अपेक्षित हो जाता है। *समकालीन कविता में मानव मूल्य* पुस्तक में हुकमचंद राजपाल पाश्चात्य विचारक कलकहॉन तथा उसके सहयोगियों द्वारा दी गई 'मूल्य' की परिभाषा उद्धृत करते हुए कहते हैं- "मूल्य स्पष्ट अथवा स्पष्ट रूप से व्यक्तिगत परिधियों में अथवा सामुदायिक विशेषता के नाते एक ऐसी वांछित संकल्पना है जो उपलब्ध लक्ष्यों, साधनों एवं साध्यों के चुनाव को प्रभावित करती है।" (32)

फंडामेंटल ऑफ एथिक्स पुस्तक में अर्बन कहते हैं- "वही वस्तु अंतिम रूप से तथा स्वलक्ष्य की दृष्टि से मूल्यवान है जो कि व्यक्तियों को विकास अथवा आत्म विकास या आत्मानुभूति की ओर ले जाती है।" (16-18)

अर्बन के कथन से स्पष्ट है कि मानव को उत्तरोत्तर विकास की ओर उन्मुख करना ही मूल्य का चरम लक्ष्य है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन का लक्ष्य भिन्न हो सकता है, होता भी है परंतु सभी लक्ष्यों की सिद्धि का आधार अपना अभ्युदय अथवा समाज का अभ्युदय होना चाहिए।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार- "मूल्यों की व्याख्या जीवन के अस्तित्व एवं उनकी प्रगति के संदर्भ में की जाती है।" (962) उपर्युक्त कथन का आशय है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में, प्रगति करने का अभिलाषी होता है, उसके लिए उद्योगरत भी रहता है, जीवन मूल्यों पर आधारित प्रगति ही, उसके मानवीय अस्तित्व को सुनिश्चित करती है।

आचार्य नगेंद्र *मानविकी पारिभाषिक कोश* के अंतर्गत 'मूल्य' को परिभाषित करते हुए कहते हैं- "मूल्य किसी कृति का ऐसा गुण है, जिसके सद्भाव से कृति मूल्यवान बनती है तथा जिससे उसे उत्कर्ष प्राप्त होता है।" (266) आचार्य नगेंद्र के कथन से जाना जा सकता है कि प्रकृति द्वारा निर्मित मानव, जीवन मूल्यों के संयोजन से ही, समग्र जीव-जगत में सर्वोत्कृष्ट कहलाने का अधिकारी बनता है। विकसित मस्तिष्क, मनुष्य की उत्कृष्टता का मापदंड है, इसी के द्वारा मानव उत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर होता है। मूल्यों के अभाव से, मनुष्य तथा पशु में अंतर ही क्या रहेगा? भोजन ग्रहण करना, शयन करना तथा संतानोत्पत्ति इत्यादि कार्य तो अन्य जीव-जगत के अंतर्गत भी संपन्न होते हैं। जो विशेषता, मानव को अन्य जीवों से पृथक करती है, वह है, जीवन-मूल्यों का निर्वहण। जीवन मूल्यों के आधार पर, जिंदगी बिताना मनुष्य के मनुष्यत्व को सार्थकता प्रदान करता है।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (उदात्त मूल्य : भाग 4) में मृत्युंजय उपाध्याय लिखते हैं- "जो भी इच्छित है, वांछित है, आदर्श है, मानवता का हितकामी है वही मूल्य है।" (9) मृत्युंजय उपाध्याय के कथन का अभिप्राय है कि मनुष्य अपने जीवन में जो आकांक्षा करता है, जिस मूर्त अथवा अमूर्त वस्तु की इच्छा करता है, वही वस्तु मूल्यवान है। उस वस्तु की प्राप्ति के परिप्रेक्ष्य में, उसका जो उद्देश्य निहित हो, वह मानवता के लिए हितकारी सिद्ध होना अनिवार्य है। मानवीय आदर्श के विरुद्ध किया गया कोई भी इच्छित कार्य मूल्य के अंतर्गत गणनीय नहीं होगा।

हिन्दी साहित्य मूल्यान्वेषण पुस्तक में मंगला रानी लिखती हैं- "मूल्य वे मान्यताएं हैं जिन्हें मार्गदर्शक ज्योति मानकर सभ्यता चलती रही है और जिसकी उपेक्षा करने वालों की परंपरा अनैतिक उच्छृंखल या बागी कहलाती है।" (9) मंगला रानी के कथन के आधार पर

कहा जा सकता है कि मूल्य वह अवधारणा है, जो मनुष्य को किंकर्तव्यविमूढ़ता के अंधकार से बाहर लाकर, उसका पथ प्रशस्त करती है और उसे अंधकार से प्रकाश की ओर लाती है।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (विस्तारक मूल्य:भाग 2) में लेखिका नीरू जीवन मूल्यों से समन्वित व्यक्तित्व की विशेषताएं बताते हुए कहती हैं- “अनुशासन, कर्तव्य परायणता, शिष्टता, सहिष्णुता सादगी इत्यादि मूल्यों को अंगीकार करने से व्यक्ति की वैयक्तिकता निखरती है।” (28) नीरू के कथन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनुशासित रहना, अपनी स्थिति के अनुरूप कर्तव्यों का निर्वहण करना, शालीनता तथा सादगी को अपने आचरण में ढालना, मनुष्य की मूल्यबद्धता प्रमाणित करता है।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (मूल्य परिभाषा कोश: भाग 6) में मूल्य को परिभाषित करते हुए रामकृष्ण सर्राफ ने लिखा है- “मूल्य व्यक्ति का वह नैतिक मूल धन है जो उसके जीवन को सदैव आत्मविश्वास तथा आत्मानुभूति की ओर ले जाता है।” (71) रामकृष्ण सर्राफ के कथन से स्पष्ट है कि मूल्य -आश्रित जीवन ही मनुष्य के, मनुष्य होने की पहचान है। मूल्यों से पृथक जीवनयापन, पाशविकता की निशानी है। जिस प्रकार जल का मौलिक गुण है-शीतलता, अग्नि का मौलिक गुण है-उष्णता, उसी प्रकार मानव का मौलिक गुण है-मानवता।

भारतीय परंपरा की खोज पुस्तक में भगवान सिंह मूल्य और दर्शन में सामंजस्य स्थापित करते हुए कहते हैं- “दर्शन जीवन से पैदा हुआ था और मूल्य बनकर आगे जारी रहा।” (19) उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि दर्शन, जीवन में यथार्थ की परख का दृष्टिकोण है। किसी भी वस्तु के मूल्यांकन के लिए, विभिन्न लोगों के विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं। किसी वस्तु की प्रकृति के आधार पर उसका आकलन जितनी सत्यता के साथ किया जाएगा, वह वस्तु उसी अनुपात में मूल्यवान सिद्ध होगी।

संस्कृत व्याकरण में मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है ‘मूलेन समो मूल्य’ अर्थात् मूल के समान।’ जिस प्रकार जड़ से पृथक किसी पौधे या पेड़ की संकल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार मूल्य के बिना मनुष्यता की अवस्थिति असंभव है। जीवन मूल्यों के बिना जीवन में जीवंतता का समावेश नहीं हो सकता।

अतुल्य भारत पुस्तक में, सुरेश चतुर्वेदी "जीवन मूल्य से ही भारत अतुल्य है" आलेख के अंतर्गत, सुप्रसिद्ध संविधान विशेषज्ञ एवं चिंतक लक्ष्मीमल सिंघवी द्वारा दी गई मूल्य की परिभाषा, उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "मूल्य एक सद्गुण है, एक भाव है, एक सैद्धांतिक प्रस्थापन अवधारणा और जीवन शैली है। किंतु वह आचरण भी है, व्यवहार का आधार भी है।" (51)

लक्ष्मी मल्ल सिंघवी के कथन के आधार पर यह स्पष्ट है कि मूल्य, एक ऐसा सद्गुण है, जो व्यक्ति के आचरण और व्यवहार के द्वारा प्रतिबिंबित होता है। मनुष्य का व्यवहार ही यह सुनिश्चित करता है कि वह किस सीमा तक जीवन-मूल्यों के निर्वहण का आग्रही रहा है।

विभिन्न विचारकों द्वारा दिए गए अर्थ और परिभाषा को *जैनेंद्र और नैतिकता* पुस्तक में ज्योतिष जोशी के कथन के परिप्रेक्ष्य में अवलोकित किया जा सकता है- "परंपरा से आए जीवन-व्यवहार तथा सामाजिक व्यवस्थाओं का नियमन करने वाली धारणा ही मानवीय मूल्य या जीवन मूल्य कहलाती है।" (184) ज्योतिष जोशी के कथन का अभिप्राय है कि जैसा व्यवहार परंपरा द्वारा, आने वाली पीढ़ियों के लिए दिशा निर्धारित करता आया है, और उस व्यवहार के अंतर्गत सामाजिक व्यवस्था सुचारू रूप से गतिमान रही है, उन व्यवहारों को अपने आचरण द्वारा नियमित रूप से दर्शाना जीवन-मूल्य कहलाता है। जीवन-मूल्यों से संयोजित व्यक्ति सभी स्तरों पर, सुव्यवस्थित रूप से अपना कर्तव्य निभाता है। एक नागरिक के रूप में, राष्ट्र के प्रति उसके जो कर्तव्य हैं, समाज की इकाई होने के कारण, समाज के प्रति जो कर्तव्य हैं, परिवार के सदस्य के रूप में जिन कर्तव्यों का पालन अपेक्षित है, तदनुसार आचरण करने वाला व्यक्ति जीवन-मूल्यों से समन्वित कहा जा सकता है।

सुरेश चतुर्वेदी ने *अतुल्य भारत* पुस्तक में "जीवन मूल्यों से ही भारत अतुल्य है" आलेख के अंतर्गत, ज्योतिष जोशी के कथन से, साम्य भाव दर्शाते हुए लिखा है- "मानव जीवन को अभ्युदय की ओर ले जाने वाले और निःश्रेयस की सिद्धि कराने वाले जो भी व्यवहारिक तत्व व्यक्ति के आचरण में परिलक्षित होते हैं, वे जीवन मूल्यों के नाम से जाने जाते हैं।" (51) सुरेश चतुर्वेदी का कथन दर्शाता है कि मानव-जगत को चतुर्दिक विकास की ओर उन्मुख करने वाले, उसके द्वारा किए गए कार्यों से लोकमंगल का उद्देश्य फलीभूत करने वाले, जो व्यवहार मानव के आचरण से लक्षित होते हैं, वे जीवन मूल्यों के नाम से अभिहित किए जा सकते हैं। जीवन-मूल्यों का निर्वहण करने वाले व्यक्ति के समग्र क्रिया व्यापार में, व्यष्टि-हित के साथ-साथ,

समष्टि-हित भी निहित रहता है। जब मनुष्य सर्वत्र मंगल चाहने का भाव हृदय में रखकर, क्रियाशील होगा तो वह स्वयं भी उत्तरोत्तर, उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा।

उपर्युक्त समग्र विवेचन के बाद कह सकते हैं कि जीवन मूल्य मनुष्य के मनुष्यत्व के वे मापदण्ड हैं जो मनुष्य के सामाजिक आचरण को, परिवार और राष्ट्र के प्रति उसके उत्तरदायित्व के निर्वहण के निस्वार्थ समर्पण बिंदुओं को सुनिश्चित करता है और उसके मानव होने को सार्थकता प्रदान करता है। जीवन मूल्यों के निर्वहण के प्रति सचेत मानव अपने हृदय में करुणा, सद्भावना तथा परदुःख-कातरता के भाव को अपने आचरण का स्थायी भाव बनाता हुआ जीवन पथ पर अग्रसर होता है।

1.2.3 जीवन मूल्यों के आधार :

भारतीय सांस्कृतिक मूल्य पुस्तक में बजरंग लाल गुप्ता कहते हैं- "जीवन मूल्यों का आधार होती है जीवन दृष्टि और जीवन मूल्यों से बनते हैं जीवनादर्श।" (43) अर्थात् जीवन की सकारात्मक गतिशीलता के लिए एक मर्यादित, अनुशासनात्मक, समन्वयात्मक, और व्यापक दृष्टिकोण अपेक्षित है। इस उदात्त दृष्टिकोण के अंतर्गत समग्र जीव-जगत का कल्याण निहित है। जीवन के इस विराट और उदार दृष्टिकोण पर ही जीवन मूल्य आधारित रहते हैं।

भारतीय जीवन मूल्य पुस्तक में धर्मपाल मैनी जीवन मूल्यों के निम्नांकित आधार बताते हैं।

1.2.3.1 मनुष्य का विवेक

हुकुमचंद राजपाल *समकालीन कविता में मानव मूल्य* पुस्तक में मूल्यों के निर्धारण के लिए विवेक का योगदान बताते हुए कहते हैं- "सब प्रतिमानों अथवा मूल्यों का स्रोत मानव का विवेक है। सभी मूल्यवेत्ताओं ने विवेक को मूल्य का मूल स्वीकार किया है। वही उसे सद् और असद् का ज्ञान देते हैं। विवेक से ही मूल्यों का निर्माण होता है।" (17)

विवेक के द्वारा ही मानव लोक कल्याण की कामना करता है, यथा संभव लोकमंगल के विस्तृत उद्देश्य को सम्मुख रखकर जीवन पथ पर अग्रसर होता है। विवेक युक्त बनकर ही वह जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाता है अर्थात् प्राणी मात्र के लिए हृदय में कोमल भावों को स्थापित करता है। वह मनुष्य जगत ही नहीं, अपितु पशु पक्षियों के प्रति भी उदारता का भाव

रखता है। ऐसे विवेकशील मनुष्य के अंतर्मन में ही जीवन के प्रति विश्वास पल्लवित होता है। जीवन मूल्यों को ध्यातव्य रखकर जीवन जीने वाला व्यक्ति ही यह समझ पाता है कि इस संसृति में सभी जीवों को जीवित रहने का तथा प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं का उपभोग करने का समान अधिकार है।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश*, के अन्तर्गत (उदात्त मूल्य: भाग 4) मृत्युंजय उपाध्याय कहते हैं- "विवेक ही वह सारथी है जो मन की लगाम पकड़े रहता है और रथ गंतव्य तक पहुंच जाता है। विवेक सभी मूल्यों को गति देता है और स्वयं भी यह एक प्रधान मूल्य है।" (11)

मृत्युंजय उपाध्याय के शब्दों से यह स्पष्ट है कि जीवन मूल्य की संतुलित गतिशीलता मनुष्य के विवेक पर अवलंबित है। विवेक ही मूल्यों की प्रतिबद्धता के प्रति सचेत रखता है तथा जीवन मूल्यों के क्षरण के कारणों की निवृत्ति करता है। विवेक के बिना जीवन मूल्यों की अवधारणा संभव नहीं। मानवता के विकास के लिए, देश और समाज के हित के लिए सदैव समर्पण भाव की आवश्यकता होती है और यह भावना जीवन मूल्यों से संचित मनुष्य के अंतर्मन में ही अवस्थित होती है।

मानव जीवन में विवेक का अनुगमन अनिवार्य बताते हुए आबिद रिज़वी द्वारा संकलित पुस्तक *चाणक्य सूत्र* में चाणक्य कहते हैं- "मनुष्य का अपना विवेक ही उसकी कर्तव्य-कर्तव्य की समस्या का अंतिम समाधान करने वाली वस्तु है।..... विवेक मानव हृदय में सच्चे मार्गदर्शक सत्पुरुष का रूप लेकर रहता है।" (99)

उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि विवेक का आश्रय लेने पर मनुष्य द्वारा प्रतिपादित कोई भी कार्य असंगत नहीं होता। विवेक ही मानव कृत कार्य के औचित्य की सुनिश्चित कसौटी है। जीवन मूल्यों की अक्षुण्णता बनाए रखने के लिए ही मनुष्य सर्वस्व समर्पित करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है, मूल्यों के रक्षण के लिए प्राण हथेली पर रखकर ही गतिशील हुआ जा सकता है। जीवन मूल्यों का समन्वय ही मनुष्य को जीवंत अनुभव करवाता है। वस्तुतः जीवंतता का आधार ही जीवन मूल्यों से समन्वित होना है।

1.2.3.2 जीवन के प्रति विश्वास

जीवन के प्रति विश्वास से अभिप्राय है जीवंतता का रक्षण। मानव जीवन अन्य सभी प्राणियों से उत्तम है अतः दुर्लभ है। इस जीवन का रक्षण हो, अन्य प्राणियों को हमारे जीवन से कुछ सहायता मिले, एक प्राणी दूसरे प्राणी के काम आए, इसी मनोवृत्ति ने मनुष्य को समूह में रहने के लिए प्रेरित किया, सामाजिक जीवन जीने के पथ पर अग्रसर किया। जीवन के प्रति विश्वास अन्य जीवों को भी जीवित रहने के अधिकार के प्रति सचेष्ट करता है।

भारतीय जीवन मूल्य पुस्तक में धर्मपाल मैनी कहते हैं- "समूह में जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा संभवतः आत्मरक्षा के सिद्धांत से मिली.....और वह अपने समूह व समाज के सभी मनुष्यों के जीवन के महत्व को अनुभव करने लगा। यही जीवन मूल्यों के प्रति उसके विश्वास का आरंभ था।" (5)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि जीवन के प्रति विश्वास होने का अर्थ जीवन की रक्षा प्रणाली से संबंधित है। अपने जीवन के प्रति विश्वास को अंतर्मन में स्थित करते हुए मनुष्य ने सामाजिक जीवन की नींव डाली ताकि एक समाज के सभी मनुष्य परस्पर एक दूसरे की रक्षा के प्रति जागरूक रह सकें। स्वरक्षण की चेतना जागृत होने के पश्चात, मानव के अंतर्मन में शनैः शनैः यह विश्वास भी प्रबलतर हुआ, कि जिस प्रकार उसका जीवन अमूल्य है; रक्षणीय है; उसी प्रकार समग्र मानव जगत का जीवन मूल्यवान है। किसी को हानि न पहुंचाने की भावना मन में रखते हुए यदि सभी परस्पर सहयोग से रहें, और दूसरे के जीवन को भी अपने जीवन की तरह महत्वपूर्ण और मूल्यवान समझें, तो जीवन के प्रति विश्वास सुदृढ़ होगा।

1.2.3.3 लोक मंगल की कामना

भारत सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान पुस्तक में बल्देव भाई शर्मा ऋग्वेद की ऋचा 'भद्रं इच्छन्ति ऋषयः' का उल्लेख करते हुए लिखते हैं- "ऋषि लोक कल्याण की कामना से जीवन जीते हैं, लोकहित के लिए सोचना और कर्म करना यही ऋषि की पहचान है।" (7)

उपर्युक्त कथन के द्वारा हमारी उत्कृष्ट गरिमा मंडित समृद्ध परंपरा का भान होता है। हमारे प्राचीन ग्रंथ समग्र मानव जाति को लोक कल्याण हेतु कर्मशील रहने को प्रेरित करते हैं।

जीवन अलभ्य है जीवन सौभाग्य है पुस्तक में जगत की आधारभूता शक्ति को नमन करते हुए विद्यानिवास मिश्र कहते हैं- 'सर्व मंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके, शरण्ये त्र्यंबके गौरी नारायणी नमोस्तुते।' (54) अर्थात् हे अखिल सृष्टि की अधिष्ठाता शक्ति! आप सभी मंगलों का मूल हैं; मंगलमय जीवन की अभिवृद्धि करने वाली हैं; आपकी अनुकंपा से लोकमंगल का उदात्त उद्देश्य पूर्ण होता है। समग्र पुरुषार्थ, अर्थात् सारी कर्मशीलता की सूत्रधार आप ही हैं। सभी महान लक्ष्यों की सिद्धि आपके अनुग्रह के द्वारा ही सिद्ध होती है।

उपर्युक्त कथन से उद्घाटित होता है कि ईश्वरीय शक्ति प्राणी मात्र के मंगल के आशीष को व्यावहारिक रूप देती है उस परम शक्ति को सभी मांगलिक कर्मों का आधार माना जाता है। मानव ईश्वर निर्मित जगत की लघुतम इकाई है उसके द्वारा फिर सभी प्राणियों के प्रति कल्याण की भावना क्यों कर अपेक्षित न होगी ?

मानव जीवन में लोक कल्याण को सर्वोच्च मूल्य मानते हुए *समकालीन कविता में मानव मूल्य* पुस्तक के अंतर्गत हुकुमचंद राजपाल कहते हैं - "मनुष्य के लिए मूल्य का प्रत्यय, इच्छा की पूर्ति एवं जैविक तथा शारीरिक हित से अधिक उच्च एवं विस्तृत होना चाहिए।" (31) हुकम चंद राजपाल के कथन से स्पष्ट है कि व्यक्तिगत इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के आधार पर जीवन की मूल्यवत्ता का आकलन नहीं करना चाहिए। अपनी इच्छा, जैविक आवश्यकता अथवा स्वहित साधना, जीवन मूल्यों के आधार नहीं है। इस भावना से ऊपर उठते हुए, समग्र प्राणी-जगत की आवश्यकताओं की पूर्ति, सबका साथ, सबका विकास, इस अवधारणा को ध्यातव्य रखते हुए, तदनुसार कार्य करना, जीवन मूल्यों का सशक्त आधार है।

संघर्ष के साथ-साथ पुस्तक में विनोद कुमार सरस्वती मां से अपनी कविता में प्रतिस्थापित होने का वरदान मांगते हैं ताकि लोक कल्याण की भावना समुन्नत हो सके।

"जो राष्ट्र का गुणगान करें, जो मानव का कल्याण करें ।

करुणा से कविता भर दो मां , तुम कलम को ऐसा वर दो मां ॥" (20)

उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि कवि जब अपनी शाब्दिक कविता के द्वारा लोक कल्याण की भावना संप्रेषित करना चाहता है तो वह अपनी व्यक्तिगत चेष्टाओं द्वारा लोक कल्याण के कार्यों में तत्पर कैसे नहीं रहेगा? लोक कल्याण की भावना भारतीयों की सांस्कृतिक धरोहर है। हमारे पूर्वज अपने प्रत्येक कार्य की रूपरेखा का निर्धारण करते समय उसके अंतर्गत लोक

कल्याण की भावना को प्रश्रय अवश्य देते थे। इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए नवल भामड़ा अरविन्द पराशर द्वारा संपादित *रामचरितमानस की प्रतीकार्थ विवेचना* पुस्तक में कहते हैं- "भारतीय जीवन दृष्टि एवं चिंतन परंपरा प्रकृत्या ही लोक मंगल साधक है।" (100) अर्थात् भारतीय परंपरा में लोगों की प्रवृत्ति में, यह भाव स्वतः होता है कि जीवन में लोकमंगल की कामना के साथ जीवन पथ पर अग्रसर होना है। समस्त संसार के प्रति मंगल भावना रखना, भारतीयों की परंपरागत स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

धर्मपाल मेनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (मूल्य परिभाषा कोश : भाग 6) में रामकृष्ण सराफ लिखते हैं- "निस्वार्थ भाव से सर्वसामान्य के हित की कामना से प्रेरित भाव, विचार और क्रिया की संज्ञा लोक-कल्याण है।" (75)

जीवन मूल्यों के निर्वहण में लोकमंगल की भावना का अंतर्निहित होना अत्यंत आवश्यक है। यदि जीवन मूल्यों के अंतर्गत व्यापक संसार का कल्याण निहित नहीं, यदि वे केवल व्याख्यान मात्र हैं तो उसे जीवन मूल्य माना ही नहीं जा सकता।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (सत्यं शिवं सुन्दरं परक मूल्य : भाग 3) में आदित्य प्रचण्डिया लिखते हैं "कल्याण भावना का अर्थ है- सद्बिचारों की उत्पत्ति एवं उनका प्राकट्य। कल्याण भावना मन की वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति आत्म संतुष्ट होकर अन्यो की भलाई की इच्छा व्यक्त करता है।" (68) आदित्य प्रचण्डिया के कथन का अभिप्राय है कि उत्तम विचारों को धारण करते हुए, जब उन्हें अपने आचरण द्वारा दर्शाया जाता है, तब मनुष्य को आत्म तुष्टि का अनुभव होता है। उसके अंतर्मन में संतोष होता है कि उसके सद्बिचार वाग्जाल मात्र नहीं है, उसने अपने व्यवहार द्वारा उन्हें प्रमाणित भी किया है।

लोक कल्याण की भावना के धारणकर्ता व्यक्ति की पहचान बताते हुए वे आगे लिखते हैं- "उदारचेता कभी भी किसी का अमंगल नहींवे चाहते हैं कि सब पर कल्याण की वर्षा हो। यही लोग कल्याण या सर्व कल्याण है।" (68) लोकमंगल की भावना में मानवमात्र से लेकर समग्र समाज और समूचे विश्व की मंगलकामना निहित रहती है। इसी चिंतन में भारतीय संस्कृति की उत्कृष्ट विचारात्मकता वसुधैव कुटुंबकम्' समाविष्ट है। इसी विचार का उत्कर्ष किसी समाज या राष्ट्र की अखंडता को सुनिश्चित करता है। राष्ट्र की अखंडता प्रत्येक नागरिक के अस्तित्व की सुरक्षा की साधक है। जब संपूर्ण मानवजाति एक परिवार के रूप में मिलजुल कर रहना प्रारम्भ करेगी तब अखंडता अपने शाश्वत स्वरूप को सुनिश्चित करेगी।

1.2.3.4 जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण

जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण हमें प्रकृति संरक्षण के कर्तव्य के प्रति सचेत करता है। प्रत्येक प्राणी का जीवन अमूल्य है। *भारतीय जीवन मूल्य* पुस्तक में धर्मपाल मैनी ने लिखा है- "प्राकृतिक संतुलन के स्थायित्व के लिए, प्रकृति-चक्र की निर्बाध गतिशीलता के लिए, पेड़, पौधे, वन, नभचर, जलचर, थलचर सभी प्राणियों की अवस्थिति आवश्यक है। उपर्युक्त चैतन्य भाव मनुष्य को जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करता है।" (7)

प्रकृति द्वारा समग्र जीवों के लिए, कोई न कोई कार्य निर्दिष्ट किया गया है। अन्य जीव अनजान भाव से, प्रकृति प्रदत्त कर्तव्यों के निर्वहण में तल्लीन रहते हैं और मनुष्य बुद्धि का धारक होने के कारण अपने विवेक द्वारा समस्त कार्यों का संपादन करता है। बौद्धिकता का प्रयोग करते हुए, मनुष्य को अपने कार्यों द्वारा यह सुनिश्चित करना अपेक्षित है कि प्रकृति-चक्र, सुचारु रूप से क्रियाशील रहे ताकि प्राकृतिक संतुलन में कोई बाधा उपस्थित न हो।

धर्मपाल मैनी का उपर्युक्त कथन भारतीय जीवन मूल्यों की इस वैचारिकता को प्रमाणित करता है कि जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण जीवन मूल्यों के निर्वहण का सशक्त आधार है। समग्र पर्यावरण को आदर की दृष्टि से देखना, तदनु रूप व्यवहार करना इस धारणा की पुष्टि करता है कि जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण होना जीवन मूल्यों की अवस्थिति की प्रामाणिक कसौटी है।

1.2.4 मूल्य का स्वरूप :

मनुष्य जीवन में जब यह विचार करता है कि उसके समग्र जीवन का संचालन किस विधि से हो रहा है, या किन प्राथमिकताओं के आधार पर वह जीवन में गतिशील हो रहा है। दूसरा प्रश्न उसके सम्मुख यह है कि प्रकृति निर्मित सर्वश्रेष्ठ कृति होने के कारण वास्तव में उसकी प्राथमिकताएं क्या होनी चाहिए इन दोनों प्रश्नों का सार्थक, तार्किक और निष्पक्ष उत्तर ही वास्तव में मूल्यों के स्वरूप का निर्धारण करता है।

साहित्य सौंदर्य और संस्कृति पुस्तक में मूल्य का स्वरूप बताते हुए गोविंद चंद्र पांडे कहते हैं- "मूल्य की कल्पना मानव अस्तित्व को उसके पूर्ण रूप में स्वीकृत किए बिना संभव नहीं, क्योंकि बोध का विकसित स्वर इसी में उपलब्ध होता है। मानवीय चेतना एवं प्रयत्न के बिना मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया ना तो घटित हो सकती है ना संचालित।" (4)

उपर्युक्त कथन द्वारा लेखक कहना चाहता है कि, ईश्वर ने पूर्ण विकसित मस्तिष्क मानव को ही प्रदान किया है, मानव ने ही आदिम अवस्था से ऊपर उठकर सामाजिक जीवन प्रारंभ किया। समाज की निर्बाध और अनुशासित गतिशीलता के लिए मानव ने ही कुछ मापदंड निर्धारित किए जिन्हें मूल्य कहा गया। प्रकृति निर्मित जीव-जगत में मानव ही ऐसा प्राणी है, जिसने बौद्धिकता के विकास के साथ मूल्यों की अनिवार्यता समझी, मूल्यों का निर्धारण किया, और मानव द्वारा ही मूल्यों का निर्वहण प्रयोगात्मक रूप ले पाया। वर्तमान समय में सर्वत्र विसंगतियों का साम्राज्य इसलिए दृष्टिगत होता है क्योंकि मानव ने जीवन मूल्यों के निर्वहण के प्रति, अवहेलना का भाव अपनाना प्रारंभ कर दिया। परिणाम स्वरूप जीवन मूल्यों के संचालन में गतिरोध उत्पन्न हो गया। मूल्य की विकास यात्रा के बारे में बताते हुए *समकालीन कविता में मानव मूल्य* पुस्तक में हुकमचंद राजपाल कहते हैं- “जिस वस्तु, क्रिया या परिस्थिति में जीवन का विकास द्रुतगति से होता है उसका अधिक मूल्य है। इसके विपरीत जिनसे जीवन में बाधा उपस्थित होती है, उनको मूल्य नहीं दिया जाता।” (31)

उपर्युक्त कथन के द्वारा भली-भांति भासित होता है कि मूल्यों की अवधारणा व्यष्टि और समष्टि के कल्याण से सुनिश्चित होती है। जो स्थितियां समग्र जीव जगत के सर्वांगीण विकास में सहायक होती हैं, उन्हें ही मूल्यपरक माना जा सकता है। जो स्थितियां प्राणी जगत के किसी भी क्षेत्र में अवरोधक सिद्ध हो, उन्हें मूल्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता ।

उदाहरण स्वरूप वर्तमान समय में मनुष्य अर्थ प्रधान संस्कृति के पथ पर चलता हुआ पर्वतीय स्थानों पर बड़े-बड़े आवास बना रहा है, होटल बना रहा है, परिणाम स्वरूप वन संपदा नष्ट हो रही है। वन्य जीवों के आश्रय स्थल समाप्त हो रहे हैं। इस कारण वन्यजीवों की संख्या में भारी कमी दृष्टिगत हो रही है और कुछ जीवों की प्रजातियां तो लुप्त भी हो चुकी हैं अथवा लुप्त होने की कगार पर हैं। वन्य जीवन व मानव जीवन के असंतुलन के कारण समग्र प्रकृति का संतुलन खंडित हो गया है इसलिए उपर्युक्त प्रकार की प्रगति जीवनमूल्यों के विरुद्ध है। प्रकृति और जीव जगत के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए *भारतीय सांस्कृतिक मूल्य* पुस्तक में बजरंग लाल गुप्ता कहते हैं- “प्रकृति के विभिन्न अवयवों भूमि, वायु, अग्नि, जीव जंतु, पेड़ पौधों को मिलाकर प्रकृति चक्र और एक जीवन धारण प्रणाली बनती है जो इन सब के बीच अन्योन्याश्रित संबंध को प्रकट करती है।..... हम इस प्रकृति चक्र को नष्ट न करें ।” (45)

बजरंग लाल गुप्ता के कथन से स्पष्ट है कि मानव को अपने विकास के ऐसे मार्ग तलाश करने चाहिए, जिनके अंतर्गत प्राकृतिक तत्वों के साथ छेड़छाड़ न हो, उनका संतुलन बिगड़ने न पाए। प्राणी जगत के अस्तित्व के लिए भूमि, वायु, जल, पेड़ पौधे तथा जीव जंतुओं का अन्यान्य महत्व है। इन सभी के सम्मिलन से, प्रकृति-चक्र निर्मित होता है। प्रकृति सर्व-नियंता है, उसके चक्र को नष्ट करने के प्रयास घातक सिद्ध हो सकते हैं। वर्तमान समय में कोरोना-संक्रमण, प्रकृति-चक्र को विध्वंस करने का ही दुष्परिणाम है।

मूल्य के कुछ समानार्थी शब्द भी कतिपय विचारकों ने बताए हैं धीरेंद्र वर्मा प्रतिमान को मूल्य का समानार्थी शब्द बताते हुए *हिंदी साहित्य कोश* में लिखते हैं- "मूल्य और प्रतिमान को समानार्थी माना गया है, दोनों ही मानव निर्मित निकष या कसौटियां हैं जिनके सहारे साहित्य की परख की जाती हैं।" (659)

कुछ विचारकों ने तथ्य और मूल्य को समानांतर माना है। दोनों में संबंध स्थापित करते हुए *सहचिंतन पुस्तक* में अमृतराय कहते हैं- "जीवन का तथ्य सर्जक मन की आग में तप कर कृति की आत्मा का सत्य बने..... तथ्य का आत्मा का सत्य बनना ही सामयिक का सनातन बनना भी है।" (19)

उपर्युक्त कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि तथ्य यथार्थ को प्रदर्शित करने का साधन है। जब इच्छित वस्तु की प्राप्ति वास्तव में हो जाती है, तब वह मूल्य का रूप धारण कर लेती है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि इच्छित वस्तु से अभिप्राय किसी सांसारिक भोग विलास से युक्त वस्तु से नहीं है अपितु ऐसी वस्तु से है जो जीवन की गतिशीलता के लिए अनिवार्य हो, आत्मिक उन्नति के लिए अभीष्ट हो, प्राणी जगत के मंगल का कारक हो।

मूल्य शब्द को सिद्धांत के साथ भी संश्लिष्ट किया जा सकता है। वस्तुतः सिद्धांत वह धारणा है जो मूल्यों की नियामक है, जो मूल्य के अंतर्गत अपेक्षित निष्कर्ष निर्धारित करती हैं। उपर्युक्त विचार की पुष्टि शिवराम आटे द्वारा *Sanskrit English practical dictionary* में बताए गए सिद्धांत शब्द के अर्थ द्वारा की जा सकती है- "one who establishes a conclusion after noticing and answering objections or one learned in scientific textbooks." (986).

अर्थात् प्रत्येक पक्ष को अवलोकित करके और आपत्ति का उत्तर देने के पश्चात् जो निष्कर्ष निकले अथवा विज्ञान संबंधी मूल पुस्तकों के अध्ययन द्वारा जिसे सीखा जाए, वह सिद्धांत है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि विज्ञान आधारित पुस्तकों द्वारा जिसे जाना जाएगा वह विचार तथ्यान्वेषण पर ही आधारित होगा और विज्ञान पर आधारित निष्कर्ष सिद्धांत कहलाता है। उपर्युक्त विचारों के परिपेक्ष्य में कहा जा सकता है कि मूल्य चाहे सिद्धांत माने जाए, चाहे प्रतिमान या फिर तथ्य, ये सभी मानव जीवन के उदात्तीकरण के संकेतक है, अनुशासनात्मकता के परिचायक हैं और मनुष्य की जीवन यात्रा की सकारात्मक गतिशीलता के द्योतक हैं।

1.2.5 मूल्यों का वर्गीकरण :

मूल्यों के वर्गीकरण से पूर्व रमेश कुंतल मेघ *सौंदर्य मूल्य और मूल्यांकन* पुस्तक में कहते हैं- "मूल्यों का एक चक्र होता है जो जैविक आवश्यकताओं से लेकर सौंदर्य अनुभव तक विकसित होता है। जो कार्य कारण श्रृंखला, विषय-विषयी संबंध, साधन-साध्य सोपानों को एक करता हुआ कुछ प्रमापनीय निष्कर्ष देता है। इस चक्र प्रवर्तन में मनुष्य इकाई की तरह स्थित है।" (5)

रमेश कुंतल मेघ कबीलाई मूल्यों को मानव समाज की प्रथम अवस्था मानते हैं। आदिम अवस्था के उपरांत, मानव के सामाजिक जीवन के, प्रथम चरण को वर्णित करते हुए उन्होंने *सौंदर्य-मूल्य और मूल्यांकन* पुस्तक में लिखा है-"बर्बर अवस्था के बाद आने वाले कृषि युग में, सभ्य निवासियों ने पशु, पक्षी, वन, पर्वत, सरिता, सूर्य, चंद्र, मेघ, ऋतु आदि की पूजा करके, व्यवहारिक धर्म के आधार स्थिर किए।" (61)

रमेश कुंतल मेघ द्वारा कहे गए कथन के आधार पर कबीलाई मूल्यों को सामाजिक मूल्य भी कहा जा सकता है क्योंकि उपर्युक्त कथन में, उन्होंने मानव के बर्बर स्वरूप के पश्चात् सभ्य स्वरूप में परिवर्तित होने की बात कही है और मानव का सभ्य होना उसके सामाजिक होने का संकेतक है। रमेश कुंतल मेघ का कथन यह भी दर्शाता है कि सामाजिकता के प्रथम चरण में ही, मानव ने प्रकृति के अन्य जीवत घटक जैसे पशु-पक्षी, वन, सूर्य, वारिद तथा ऋतुओं इत्यादि के महत्व को जान लिया था, और अपने व्यवहार द्वारा उनके प्रति आदर का भाव प्रकट किया था। विडंबना है कि वर्तमान मानव सामाजिकता के अनेक सोपान तय करने के बाद भी,

उपर्युक्त प्राकृतिक घटकों के महत्व को भूल गया है। कबीलाई मूल्यों के अंतर्गत रमेश कुंतल मेघ गर्व, साहस, दर्प, कबीले के प्रति वफादारी, आज्ञाकारिता इत्यादि मूल्यों को मुख्य रूप से स्वीकार करते हैं।

पारिवारिक मूल्य-कबीलाई मूल्यों का पारिवारिक पृष्ठभूमि पर और अधिक विस्तार हुआ और यत्किञ्चित् परिवर्तन के साथ, उनकी नियंत्रण रेखा को भी सुनिश्चित किया गया। व्यक्ति का अधिकांश समय परिवार के साथ व्यतीत होता है अतः सामाजिक अथवा कबीलाई अनुशासनबद्धता से पूर्व उसे, पारिवारिक नियमों का पालन करना पड़ता है पारिवारिक मूल्यों के संचरण का आधार बताते हुए रमेश कुंतल मेघ ने लिखा है-"हमारे पारिवारिक मूल्य श्रोतसूत्र, गृह्यसूत्र, तथा धर्मसूत्र द्वारा संचालित होते आ रहे हैं।"(62)

पारिवारिक मूल्यों में रमेश कुंतल मेघ ने पवित्रता, उदात्तीकरण, लोक संयम, मर्यादा, ग्राहस्थिक सदाचार इत्यादि को मुख्य रूप से स्वीकार किया है। रमेश कुंतल मेघ द्वारा उपर्युक्त दो मानवीय मूल्य , प्रमुख रूप से स्वीकार किए गए हैं। मूल्यों का अन्य विभाजन करते हुए, उन्हें प्रकृत मूल्य तथा साधन मूल्य में विभाजित किया गया है। प्रकृत मूल्यों की परिभाषा देते हुए रमेश कुंतल मेघ ने लिखा है-"जो अपने कारण ही मूल्यवान होते हैं तथा जिनमें युग-युग तक देश काल की जिज्ञासाएं, आदर्श, चरमोत्कर्ष तथा श्रेष्ठता प्रतीक हो जाती है, उन्हें साध्य मूल्य, प्रकृत मूल्य अथवा 'सार्वभौम'प्रणीत निर्विकल्प मूल्य कहा जाता है।"(64) प्रकृत मूल्य ही शाश्वत मूल्य हैं क्योंकि उनका कोई विकल्प नहीं। प्रकृत मूल्यों में रमेश कुंतल मेघ ने भोग वादी मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, व्यक्तिवादी मूल्य तथा धार्मिक मूल्यों को रखा है।

साधन मूल्यों को परिभाषित करते हुए रमेश कुंतल मेघ लिखते हैं-"जो अपने साधनों के द्वारा और परिणामों के कारण मूल्यवान होते हैं, उन्हें साधन मूल्य कहा जाता है।" (64) रमेश कुंतल मेघ के कहने का भाव है कि जो मूल्य देश-काल और परिस्थितियों द्वारा सकारात्मक परिणाम प्रदर्शित करते हैं, वे साधन मूल्य हैं। साधन मूल्यों के अंतर्गत उन्होंने आर्थिक, नैतिक, धार्मिक तथा वैज्ञानिक मूल्यों को सम्मिलित किया है।

रमेश कुन्तल मेघ कृत मूल्य-वर्गीकरण

1. कबीलाई मूल्य-गर्व, दर्प, वफादारी, आज्ञाकारिता।
2. पारिवारिक मूल्य- पवित्रता, उदात्तीकरण, लोक संयम, मर्यादा, ग्राहस्थिक सदाचार।

3. प्रकृत मूल्य
 - 3.1 भोगवादी मूल्य-संतुष्टि, सुख, तन्मयता, रसज्ञता, संयम।
 - 3.2 सौंदर्यत्मक मूल्य-सौंदर्य बोध, आत्मानुभूति, रमणीयता।
 - 3.3 व्यक्तिवादी मूल्य- भावनात्मकता, अस्मिता, क्षमता, ग्राह्यता, अनुराग।
 - 3.4 दार्शनिक मूल्य-उल्लास, बुद्धि का संयोजन, लोकमंगल।
4. साधन मूल्य
 - 4.1 आर्थिक मूल्य-श्रम, इच्छा, सामर्थ्य, उपयोगिता।
 - 4.2 नैतिक मूल्य-समन्वय, स्व -संरक्षण, सदाचरण, शुभ, औचित्य, कर्तव्य।
 - 4.3 धार्मिक मूल्य-करुणा, श्रद्धा, पवित्रता, भोलापन, अहिंसा।
 - 4.4 वैज्ञानिक मूल्य-मध्यमान, क्रियात्मकता, संवेग, बौद्धिकता।

धर्मपाल मैनी, जीवन मूल्यों के महान अध्येता रहे हैं। जीवन मूल्यों के प्रति चरम सीमा तक, प्रतिबद्धता होने के कारण उन्होंने मानव मूल्य व्याख्या कोश, के 6 खंड रचित किए। धर्मपाल मैनी ने *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत स्थूल रूप से मूल्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है –

1. प्राकृतिक मूल्य-शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, हार्दिक और आत्मिक मूल्य।
2. विस्तारक मूल्य- वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक मूल्य।
3. सत्यम शिवम सुंदरम परक मूल्य- मनोरंजनात्मक, सौंदर्यात्मक, लोक कल्याणकारी, साहित्यिक तथा पर्यावरणपरक मूल्य।
4. उदात्त मूल्य- चारित्रिक, नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य।
5. आधुनिक मूल्य-राजनीतिक, आर्थिक, संवैधानिक, भारत सरकार के मूल्य तथा वैज्ञानिक मूल्य।

धर्मपाल मैनी कृत मूल्य-वर्गीकरण

1. प्राकृतिक मूल्य

1.1 शारीरिक मूल्य-उद्यम, कर्मण्यता, कार्यकुशलता, क्षमता, तेजस्विता, पवित्रता, प्रियदर्शिता, ब्रह्मचर्य, मनोज्ञता, विश्राम, वीरता, व्रत पालन, शक्तिमत्ता, शरीर- रक्षा, शुश्रूषा, श्रमशीलता, सबलता, सहिष्णुता, सुषमा, सौष्ठव, स्वास्थ्य।

1.2 मानसिक मूल्य-अध्यवसाय, अनुभूति-प्रवणता, अहिंसा, आधुनिकता, उत्सुकता, उमंग, ऊर्जस्विता, एकाग्रता, क्षमाशीलता, ग्रहणशीलता, जागरूकता, तृप्ति, दृढ़ प्रतिज्ञता, धैर्य, निस्पृहता, प्रमोद, प्रसन्नता, प्रेरणा, मनस्विता, मनोयोग, महत्वाकांक्षा, रहस्य गोपन, विरक्ति, विश्वास, शम, शांति, शालीनता, संतुलन, संतोष, संवेद , समर्पणशीलता , सुख, सुशीलता, स्थिर चित्तता, स्पृहा, हर्ष।

1.3 बौद्धिक मूल्य-उर्ध्वचिन्तन, ऋत, औचित्य, कर्तव्य, कुशाग्रता, गवेषणा, चातूर्य, चिंतनशीलता, जिज्ञासा, ज्ञान, तत्वज्ञान, निपुणता, नीतिज्ञता, न्यायवृत्ति, प्रवीणता, बुद्धिमत्ता, मनीषिता, मेधाविता, युक्तियुक्तता, वाग्मिता, विचार क्षमता, विज्ञता, विवेक, विश्लेषणशीलता, व्यवहार, शिक्षा, संबद्धता, सदाचार, सद्दिचार, सन्मति, सहमति, समचित्तता, सिद्धांत, सुपात्रता, सुख में दृष्टि, सूझ- बूझ, स्पष्टता, स्वाध्याय।

1.4 हार्दिक मूल्य-अनुकंपा, आनंद, आह्लाद, उदारता, उपकारशीलता, करुणा, कृपा, कोमलता, क्षमता, नम्रता, निर्मलता, निर्वैरता, पावनता, प्रमुदितता, मधुरिमा, रसज्ञता, रसमग्नता, रुचि संपन्नता, विशालता, शिवत्व, शुद्धता, श्रद्धा, सरसता, सर्वहितकारिता, सहृदयता, सृजनात्मकता, स्नेह।

1.5 आत्मिक मूल्य-अंतर्गतता, अंतर्ज्ञान, अनासक्ति, आत्मगौरव, आत्मज्ञान, आत्मबल, आत्म बोध, आत्मानुभूति, चैतन्य, निर्विकारिता

2. विस्तारक मूल्य

2.1 वैयक्तिक मूल्य- अच्छाई, अध्यवसाय, अनासक्ति, अनुकंपा, अनुपमता, अनुभूति, अनुराग, अनुशासन, अपनापन, आत्मत्याग, आत्म नियंत्रण, आत्मनरीक्षण, आत्म संयम, आत्मीयता, इंद्रिय -निग्रह , उत्साह, उपलब्धि, ओजस्विता, कर्तव्य परायणता, निपुणता, नियमितता, प्रेम, मधुभाषिता, मितभाषिता, वीरता, शिष्टता, शुचिता, शौर्य, संवेदनशीलता, सरलता, सहिष्णुता, सादगी, स्नेह, स्वावलंबन।

- 2.2 पारिवारिक मूल्य- अभिवादन, आज्ञाकारिता, आतिथ्य, आदर, आशीर्वाद, आशीष, एकता, ग्राहस्थ्य, पत्नीव्रतीत्व, पारिवारिकता, पतिव्रत्य, पितृ सेवा, भ्रातृ भावना, ममता, मातृप्रेम, सतीत्व, सद व्यवहार, सहोदरता, स्वच्छता।
- 2.3 सामाजिक मूल्य- अछूतोद्धार, अनुगृहीतता, अनुग्रह, अनुनय, अनुशासन, अवलंबन, आदर, आदेश पालन, आभार, कृतज्ञता, नमनशीलता, नमस्कार, नम्रता, पर -सम्मान, बंधुत्व, मैत्री, शालीनता, शिष्टाचार, सद व्यवहार, समन्वय, सम्मान, सहयोग, सांत्वना, साम्य।
- 2.4 राष्ट्रीय मूल्य- अखंडता, अतीत गौरव, एकता, कर्तव्य परायणता, दूरदर्शिता, देश भक्ति, प्रजातंत्र, बलिदान, राष्ट्र निर्माण, राष्ट्रप्रेम, राष्ट्र विकास, राष्ट्र सुरक्षा, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीयता, विकास प्रियता, सुराज, स्वातंत्र्य- प्रेम, स्वाधीनता।
- 2.5 वैश्विक मूल्य- मनुष्यत्व, विश्व बंधुत्व, युद्धक्षय, सर्वहितकारिता, सार्वभौमिकता।
3. सत्यम शिवम सुंदरम परक मूल्य
- 3.1 मनोरंजनात्मक मूल्य - आनंदोत्सव, प्रमोद, प्रमुदितता,, प्रियभाषिता, प्रिय वादिता, मनोविनोद, मुदिता, रुचिरता, विनोदप्रियता। ।
- 3.2 लोक कल्याणकारी मूल्य - आशीर्वाद, उत्सर्ग, उद्धार, करुणा, कल्याण, कृतार्थता, कृपा, कृपालुता, दानशीलता , दीनबंधुता, परमार्थ दृष्टि, परहित, परोपकार, बलिदान, भलाई, मंगल ्रक्कामना, मधुभाषिता, रक्षण, लोकप्रियता, लोक संग्रह, वरदान, विजय, शिष्टता, शुद्धता, सर्व भद्रता, सर्व हितैषिता, सहानुभूति, सेवा वृत्ति, सहारा, स्वस्तिवाचन।
- 3.3 सौंदर्यात्मक मूल्य- आभा, कोमलता, चारुता, निष्कलुषता, परिहार, भव्यता, प्रियदर्शिता, माधुर्य, मृदुलता, रमणीयता, रम्य, रुचिरता, विभुता, विमल ता, शालीनता, शील, शोभा, सुकुमार ता, सुषमा, सौंदर्य, सौंदर्य बोध।
- 3.4 साहित्यिक मूल्य- अनुभूति प्रवणता, आनंद, उदात्त, तन्मयता, मंगलाचरण, मौलिकता, रचनात्मकता, रसज्ञता, रसमग्नता, रागात्मकता, रुचि संपन्नता, रसानुकूलता, लालित्य, शिवत्व, सरसता, सहृदयता।

3.5 पर्यावरणपरक मूल्य- उत्तुंगता, नैसर्गिकता, पर्यावरण प्रेम, प्रकृति प्रेम, विशालता, शीतलता।

4. उदात्त मूल्य

4.1 चारित्रिक मूल्य- आचार, आत्मबल, आत्मबोध, उत्सर्ग, उद्देश्य, उद्यम, कर्मठता, कीर्ति, क्षमाशीलता, गंभीरता, धैर्य, निर्भयता, निःशंकता, पराक्रम, परिश्रम, पुण्य- आचरण, प्रताप, प्रेरकता, ब्रह्मचर्य, विनय, विनीतता, विश्वास -वृत्ति, क्षमशीलता, सत्य निष्ठा, सावधानी, सद्गुणयुक्तता, साहस, सुस्थिरता, स्पष्टवादिता, स्वाभाविकता, स्वाभिमान।

4.2 नैतिक मूल्य- अस्मिता, नियम, निर्विकारिता, निष्ठा, पावनता, पुण्य, प्रोत्साहन, लज्जा, विमलता, विश्वास, व्रत पालन, शुभ कर्म, सच्चरित्रता, सज्जनता, सदाशयता, सम दर्शिता, सुकृत, सुनीति, स्वामी भक्ति।

4.3 धार्मिक मूल्य- अर्चना, आरती, उपासना, पूजा, प्रार्थना, यज्ञ, स्तुति, धर्म -सम्मान, धर्म-सापेक्षता, भक्ति, नाम -स्मरण।

4.4 सांस्कृतिक मूल्य- उत्सर्ग, चरितार्थता, धर्मनिरपेक्षता, निर्वेद, प्रणिधान, प्रसाद, मंगलाचरण, लोक कल्याण, राष्ट्रभाषा प्रेम, वंदना, विनम्रता, विराग, संत वृत्ति, संतुलन, सन्यास, सत्त्व, सत्संगति, सम्यक, समचित्तता।

4.5 आध्यात्मिक मूल्य- अध्यवसाय, आध्यात्म- चिंतन, अनासक्ति, आत्मानुभूति, आस्था, ध्यान, समाधि, साधना।

5. आधुनिक मूल्य

5.1 राजनीतिक मूल्य -क्रांति, जनहित, जागरूकता, उपलब्धता, तत्परता, दायित्व बोध, निष्पक्षता, नीतिज्ञता, नेतृत्व, प्रजा प्रेम, महत्वाकांक्षा, रहस्य गोपन, वाणी कौशल, शासकत्व, सेवा परायणता।

5.2 आर्थिक मूल्य -अनुदान, अपरिग्रह, ऐश्वर्य, धनार्जन, दान, मितव्ययता, संपन्नता, वैभव पूर्णता।

- 5.3 संवैधानिक मूल्य -न्याय, प्रजातंत्र, गणतंत्र, प्रभु सत्ता, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय अखंडता, व्यक्ति की गरिमा, भ्रातृत्व, समाजवाद, समानता, सर्वधर्म समभाव, स्वतंत्रता।
- 5.4 भारत सरकार के मूल्य-छोटा परिवार, पर्यावरण रक्षा, राष्ट्रीय गौरव, लिंग समानता, वैज्ञानिक स्वभाव, संवैधानिक बाध्यता, सांस्कृतिक विरासत, सामाजिक अवरोधों को दूर करना, राष्ट्रीय गौरव, स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास।
- 5.5 वैज्ञानिक मूल्य -तथ्य बोध, गवेषणा, युक्ति युक्तता, मौलिकता, सूक्ष्मशीलता।
- 5.6 ऐतिहासिक मूल्य -अतीत गौरव, अतीत प्रेम, जाति गौरव।

बजरंग लाल गुप्ता *भारतीय सांस्कृतिक मूल्य पुस्तक* में जीवन मूल्यों को सामयिक जीवन मूल्य एवं शाश्वत जीवन मूल्य में वर्गीकृत करते हैं। सामयिक जीवन-मूल्यों की पहचान बताते हुए उन्होंने लिखा है-"सामयिक जीवन मूल्यों से तात्पर्य उन जीवन-मूल्यों से है जो देश, काल व परिस्थिति सापेक्ष होते हैं।" (44)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि सामयिक मूल्य परिस्थितियों के अनुसार, परिवर्तित होते रहते हैं। समय के अनुसार अथवा स्थान के अनुसार, इनमें बदलाव आ सकता है। उदाहरण स्वरूप, भारत की स्वतंत्रता से पहले, अधिकांश लड़कियों को घर की चारदीवारी तक सीमित रखा जाता था। मध्यमवर्गीय परिवारों में लड़कियां उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं करती थी। उन्हें गृह कार्य में पारंगत करना अधिक उचित माना जाता था। परंतु समय के अनुसार परिस्थितियां बदलीं और लड़कियों को भी उच्च शिक्षित करना अनिवार्य माना जाने लगा। पुरातन समय में राजा महाराजा शासन करते थे, तब राज भक्ति को मूल्य समझा जाता था। अपने राजा के स्वाभिमान की रक्षा के लिए, प्रजा सर्वस्व त्यागने के लिए प्रस्तुत हो जाती थी। भारत जब ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन हुआ, उस समय राष्ट्र को स्वतंत्र कराने के लिए राष्ट्रभक्ति एक उच्च मूल्य के रूप में उभर कर सामने आया।

शाश्वत जीवन मूल्य हर युग में, हर परिस्थिति में और हर समय प्रासंगिक होते हैं। शाश्वत मूल्यों की पहचान बताते हुए बजरंग लाल गुप्ता आगे लिखते हैं-"शाश्वत जीवन मूल्य वे होते हैं जो देश, काल, परिस्थिति के परे सब स्थितियों में और सदैव प्रासंगिक होते हैं।"(44) शाश्वत जीवन मूल्य कभी बदले नहीं जा सकते। जब-जब इन्हें बदलने का कुप्रयास किया गया, तब-तब जीवन-मूल्यों का क्षरण हुआ। शाश्वत जीवन मूल्य कभी पुरातन नहीं होते, सदा नूतन

ही रहते हैं। जैसे सत्य, अहिंसा, उदारता, प्रेम, संवेदनशीलता इत्यादि जीवन मूल्य हर युग में, हर स्थिति में समान रूप से प्रासंगिक रहे हैं, और रहेंगे। शाश्वत जीवन मूल्यों के विघटन से, सामाजिक अनुशासनबद्धता, अवरोधित होती है। उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से शाश्वत मूल्यों और सामयिक जीवन मूल्यों में अंतर स्पष्ट हो जाता है।

बजरंगलाल गुप्ता कृत मूल्य-वर्गीकरण

1. समसामयिक मूल्य
 - 1.1 देश, काल, परिस्थिति सापेक्ष
2. शाश्वत मूल्य
 - 2.1 एकलघता, 2.2 एकरसता, 2.3 प्रकृति-प्रेम 2.4 सदवृत्ति, 2.5, सामाजिक-कल्याण,
 - 2.6 समन्वय, 2.7 सन्तलुन

रमेश पोखरियाल ने *मूल्य आधारित शिक्षा* पुस्तक में, मूल्यों का वर्गीकरण करते हुए, उन्हें सात भागों में बांटा है। व्यक्ति परिवार की और परिवार समाज की इकाई है इसलिए व्यक्तिगत मूल्यों और पारिवारिक मूल्यों को सामाजिक मूल्यों में परिगणित करते हुए, ईमानदारी, साहस और प्रतिबद्धता, दया और सहानुभूति, धीरज, आभार, प्रशंसा, माफी, प्रेम, दान, सत्य और अहिंसा, विविधता का सम्मान, पारस्परिक और अन्तर्वैयक्तिक संबंध, सकारात्मक और रचनात्मक सोच, व्यक्तिगत आचरण और सामाजिक व्यवहार इत्यादि मूल्यों का उल्लेख किया है।

धार्मिक मूल्य शैक्षिक मूल्य, वित्तीय मूल्य तथा परिवार का स्वास्थ्य इत्यादि मूल्यों के विषय पर भी उन्होंने विचार प्रकट किए हैं। राष्ट्रीय मूल्यों के अंतर्गत रमेश पोखरियाल ने देश भक्ति, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय एकता, कानून का नियम, लोकतंत्र, समानता, न्याय, सुशासन, अखंडता इत्यादि मूल्यों को परिगणित किया है। राजनीतिक मूल्यों को उन्होंने राष्ट्रीय मूल्यों के साथ संश्लिष्ट कर दिया है। सांस्कृतिक मूल्यों के अंतर्गत, रमेश पोखरियाल लिंग समानता, मुखरता, सामूहिकतावाद, सोंपी गई भूमिकाओं की श्रेणीबद्ध प्रणाली, अनिश्चितता से बचाव, समय का अभिविन्यास मूल्यों को सम्मिलित करते हैं।

रमेश पोखरियाल कृत मूल्य-वर्गीकरण

- 1.व्यक्तिगत 2.सामाजिक 3.नैतिक 4.सांस्कृतिक 5.आध्यात्मिक 6.राष्ट्रीय
7.सार्वभौमिक

रमेश कुंतल मेघ द्वारा बताए गए कबीलाई मूल्य, धर्मपाल मैने कृत मूल्य -वर्गीकरण में, सामाजिक मूल्य में अंतर्निहित हो जाते हैं। रमेश कुंतल मेघ ने मनुष्य के सामाजिक परिवेश में, प्रविष्ट होने के प्रथम चरण को अपने वर्गीकरण का आधार बनाया है। उस समय मानव छोटे-छोटे कबीलों में ही निवास करता था। व्यक्तिवादी मूल्य, पारिवारिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, नैतिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, तथा वैज्ञानिक मूल्य स्पष्ट रूप से ही, धर्मपाल मैने कृत मूल्य वर्गीकरण में समाहित हो जाते हैं। दार्शनिक मूल्यों को, सांस्कृतिक मूल्यों के अंतर्गत माना जा सकता है, क्योंकि हमारे दर्शन शास्त्रों में भूषणभूत, सम्यक चेष्टाओं को करणीय माना गया है। सम्मेलन चेष्टा को आचरण में ढालना हमारी संस्कृति है।

बजरंग लाल गुप्ता ने अत्यंत संक्षिप्त ढंग से मूल्यों का वर्गीकरण किया है। समसामयिक मूल्य को उन्होंने देश काल और परिस्थिति सापेक्ष माना है, जो मूल्य, परिवर्तनशील हैं, उनके विषय में उन्होंने आगे कोई वर्गीकरण नहीं किया। शाश्वत मूल्यों के अंतर्गत, एकरसता और एकलयता को एकता 'मूल्य' के अंतर्गत लिया जा सकता है। 'प्रकृति प्रेम', पर्यावरण परक मूल्य के अंतर्गत माना जा सकता है। 'सद-वृत्ति', 'समन्वय' और 'सामाजिक कल्याण' सामाजिक मूल्य में समाहित हो जाते हैं। 'संतुलन' सांस्कृतिक मूल्य में अंतर्निहित हो जाता है।

रमेश पोखरियाल ने मूल्य के सात श्रेणियां, वर्गीकृत की हैं। राष्ट्रीय मूल्य, व्यक्तिगत, पारिवारिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, नैतिक मूल्य, आध्यात्मिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य तो स्पष्ट रूप से, धर्मपाल मैनी कृत मूल्य वर्गीकरण में समाहित हो जाते हैं। सार्वभौमिक मूल्य, वैश्विक मूल्य में अंतर्निहित हो जाता है।

धर्मपाल मैनी ने प्राकृतिक मूल्यों के अंतर्गत शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, हार्दिक और आत्मिक मूल्यों को सम्मिलित किया है। उपर्युक्त सभी मूल्य, मनुष्य के साथ संबंधित हैं, इसलिए प्रस्तुत शोध कार्य में प्राकृतिक मूल्यों को वैयक्तिक मूल्य के अंतर्गत लिया गया है। इसका कारण यह है कि शरीर, मन, बुद्धि, हृदय और आत्मिक अनुभूति मनुष्य से ही संबंधित

हैं। धर्मपाल मैनी, विस्तारक मूल्यों को वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक मूल्यों में वर्गीकृत करते हैं। व्यक्ति परिवार की इकाई है, परिवार समाज की इकाई है, इसलिए प्रस्तुत शोध कार्य में वैयक्तिक मूल्य और पारिवारिक मूल्य, सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत विवेचित किए गए हैं।

राष्ट्रीय मूल्यों की संकल्पना समग्र राष्ट्र से संबंधित है। सीमा सुरक्षा दल, राष्ट्र का प्रशासनिक तंत्र, ये सभी राष्ट्रीय स्तर पर अपने-अपने कर्तव्यों का निर्वहण करते हैं, इसलिए राष्ट्रीय मूल्यों को स्वतंत्र रूप से उल्लेखित किया गया है।

सत्यम शिवम सुंदरम परक मूल्यों के अंतर्गत धर्मपाल मैनी ने मनोरंजनात्मक, सौंदर्यात्मक, लोक कल्याणकारी, साहित्यिक तथा पर्यावरणपरक मूल्यों को सम्मिलित किया है। प्रस्तुत शोध कार्य में मनोरंजनात्मक तथा सौंदर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत विवेचित किए गए हैं, साहित्य और पर्यावरण का राष्ट्र के साथ सीधा संबंध है इसलिए साहित्यिक और पर्यावरण परक मूल्यों का उल्लेख राष्ट्रीय मूल्यों के अंतर्गत किया गया है।

उदात्त मूल्यों के अंतर्गत उन्होंने चारित्रिक, नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य रखे हैं। चारित्रिकता, नैतिकता, धार्मिकता आध्यात्मिकता, संस्कृति के उपांग हैं, इसलिए प्रस्तुत शोध कार्य में इन्हें, सांस्कृतिक मूल्यों के अंतर्गत लिया गया है।

राष्ट्रीय मूल्यों की संकल्पना समग्र राष्ट्र से संबंधित है। सीमा सुरक्षा दल, राष्ट्र का प्रशासनिक तंत्र, ये सभी राष्ट्रीय स्तर पर अपने-अपने कर्तव्यों का निर्वहण करते हैं, इसलिए राष्ट्रीय मूल्यों को स्वतंत्र रूप से उल्लेखित किया गया है। सत्यम शिवम सुंदरम परक मूल्यों के अंतर्गत धर्मपाल मैनी ने मनोरंजनात्मक, सौंदर्यात्मक, लोक कल्याणकारी, साहित्यिक तथा पर्यावरणपरक मूल्यों को सम्मिलित किया है।

प्रस्तुत शोध कार्य में मनोरंजनात्मक तथा सौंदर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत विवेचित किए गए हैं, साहित्य और पर्यावरण का राष्ट्र के साथ सीधा संबंध है इसलिए साहित्यिक और पर्यावरण परक मूल्यों का उल्लेख राष्ट्रीय मूल्यों के अंतर्गत किया गया है। उदात्त मूल्यों के अंतर्गत उन्होंने चारित्रिक, नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य रखे हैं। चारित्रिकता, नैतिकता, धार्मिकता आध्यात्मिकता, संस्कृति के उपांग हैं, इसलिए प्रस्तुत शोध कार्य में इन्हें, सांस्कृतिक मूल्यों के अंतर्गत लिया गया है।

धर्मपाल मैनी ने आधुनिक मूल्यों के अंतर्गत राजनीतिक, आर्थिक, संवैधानिक, भारत सरकार के मूल्य तथा वैज्ञानिक मूल्यों को सम्मिलित किया है। आर्थिक, संवैधानिक, भारत सरकार के मूल्य तथा वैज्ञानिक मूल्य राष्ट्र के राजतंत्र द्वारा ही, नियमित किए जाते हैं इसलिए प्रस्तुत शोध कार्य में इन्हें राजनीतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में लिया गया है।

वैयक्तिक मूल्य व्यक्ति के स्वाभिमान तथा स्वरक्षा से संबंध रखते हैं जबकि पारिवारिक मूल्य समग्र परिवार से संबंधित हैं। परिवार द्वारा ही व्यक्ति संस्कारित होता है, परिवार प्रदत्त संस्कार ही उसे सामाजिक मूल्यों और राष्ट्रीय मूल्यों के निर्वहण के प्रति सचेत करते हैं। *मानव मूल्य व्याख्या कोश विस्तारक मूल्य* में धर्मपाल मैनी कहते हैं- " मनुष्य मूल्यों का पहला पाठ परिवार में ही पढ़ता है। परिवार बचता है मूल्यों से पोषित होने पर। पारिवारिक संबंध बचते हैं पारिवारिक मूल्यों से सिंचित होने पर।..... आज के मनुष्य को जरूरत है पारिवारिक मूल्य अपनाने की।" (28) धर्मपाल मैनी के कथन द्वारा यह सिद्ध होता है कि व्यक्ति, परिवार की इकाई है और परिवार, समाज की इकाई है।

मूल्यों के वर्गीकरण से संबंधित उपर्युक्त सभी विचारकों के मत, धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित मानव मूल्य व्याख्या कोश के छः बृहद खंडों में, समाहित हो जाते हैं। इसलिए धर्मपाल मैनी द्वारा किए गए मूल्यों के वर्गीकरण को प्रस्तुत शोध कार्य का आधार बनाकर हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में सामाजिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक मूल्यों के बिन्दु अन्वेषित किए जाएंगे।

1.2.6 सामाजिक मूल्य :

मनुष्य को आदिम अवस्था से सामाजिक व्यवस्था तक लाने के परिप्रेक्ष्य में, जीवन मूल्य ही वास्तविक आधार थे। यह एक मनुष्य की जैविक तत्व से, एक विशिष्ट मानवीय तत्व में परिवर्तित होने की दीर्घ यात्रा थी। मूल्य, किसी वस्तु की केंद्रीय गुणवत्ता के संकेतक हैं। मूल्यों की प्रतिष्ठा मानव जीवन के आरंभ से लेकर अंत तक है। मानव एक सामाजिक जीवधारी है। वह समाज में रहता है और समाज के अंतर्गत ही विचरण करता है। सामाजिक जीवन जीते हुए, उसे समाज द्वारा निर्धारित नियमों को मानना पड़ता है, अनुशासनात्मक मापदंडों पर खरा उतरना पड़ता है। सामाजिक मूल्यों के केंद्र में समाज है, समाज द्वारा बनाए गए मानक हैं, जिनका पालन करना अपरिहार्य है। सामाजिक मूल्यों का आकलन मनुष्य के सामाजिक

व्यवहार द्वारा सुनिश्चित होता है। मनुष्य, जिस सीमा तक सामाजिक नियमों का निर्वहण करता है, उसी अनुपात में सामाजिक मूल्यों के प्रति उसकी प्रतिबद्धता सुनिश्चित होती है।

वर्तमान समय में पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण के कारण मनुष्य, भौतिक साधनों के द्वारा प्राप्त सुख को ही मूल्यवान समझने लगे हैं। उसी के प्रति प्रयत्नशील भी हो रहे हैं, जिससे सामाजिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है। मनुष्य यदि सामाजिक मूल्यों के निर्वहण से विमुख हो जाएगा, केवल अपने आप को केंद्र में रखते हुए, सभी कार्य संपन्न करेगा तो वह सामाजिक जीवन से कट जाएगा। सामाजिक जीवन से पृथक होते ही उसका जीवन पशु-तुल्य हो जाएगा, क्योंकि स्वकेंद्रित मनुष्य संवेदनहीन हो जाता है, व्यवहारिक रूप से कठोर हो जाता है, परदुःख कातरता का भाव, उसके अंतर्मन से विलुप्त हो जाता है। ऐसा प्राणी मनुष्य देह में होते हुए भी, मनुष्य नहीं रह जाता।

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता पुस्तक में सत्य प्रकाश शर्मा समाज की परिभाषा देते हुए कहते हैं- "सम् उपसर्ग और 'अज' धातु से समाज शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ है- मनुष्यों का समुदाय।" (63)

समाज का अर्थ बताते हुए जोगा सिंह *पंजाबी कोश* में लिखते हैं- "समाज एक प्रकार से विहार करने वाले लोग, भाईचारा, जत्थे बंदी, सभा इत्यादि को कहते हैं।" (111) अर्थात् एक जैसी जीवन प्रणाली अपनाने वाले, परस्पर सहयोग की भावना से रहने वाले, तथा भाईचारे की भावना को प्रश्रय देने वाले समूह का नाम समाज है।

आदर्श हिंदी शब्दकोश में रामचंद्र पाठक समाज का अर्थ बताते हुए लिखते हैं- "मनुष्य का संगठित समूह, संघ, सभा, समुदाय।" (453-454)

जे.एस.मेनैनी सोशियोलॉजी पुस्तक में पाश्चात्य विचारक पेज के द्वारा दी गई समाज की परिभाषा बताते हुए कहते हैं- "society is the system of social relationship through which we live." (99) अर्थात् समाज सामाजिक संबंधों का एक ऐसा तंत्र है जिसके अंतर्गत हम सब रहते हैं।

सामाजिक मूल्य वे मानक हैं जिनके द्वारा हम किसी वस्तु, व्यवहार, लक्ष्य, साधन, गुण आदि को अच्छा या बुरा, या अनुचित, वांछित या अवांछित ठहराते हैं। प्रत्येक मनुष्य के अंतर्मन में सत्य- असत्य, उचित-अनुचित, करणीय-अकरणीय में भेद करने की शक्ति होती है, स्वार्थ

वश वह उस शक्ति को अनदेखा भले ही कर दे। इसीलिए व्यंग्यकार व्यंग्यात्मकता के द्वारा उसे उसकी आंतरिक शक्ति से परिचित कराना चाहता है।

मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास सुकरात के शब्दों में, "व्यक्तियों में वास्तविक तार्किक शक्ति होती है जिससे व्यक्ति को अपनी सामाजिक जिंदगी में नैतिक रास्ते पर चलने की उत्तम प्रेरणा मिलती है।" (14)

सुकरात द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने द्वारा किए गए कृत्यों का अच्छी तरह भान होता है कि उसके द्वारा किए गए कर्म सामाजिकता की कसौटी पर कितने खरे उतरते हैं, अनुचित कार्य करने से पहले उसकी बुद्धि, उसका विवेक उस कार्य को तार्किकता के आधार पर उचित अनुचित का भेद अवश्य समझाते हैं। यदि मनुष्य उन तर्कों को मानकर उचित मार्ग का चुनाव कर लेता है जीवन मूल्यों के निर्वहन की सुनिश्चितता सिद्ध हो जाती है परंतु यदि वह नश्वर स्वार्थों के समक्ष घुटने टेक देता है तो जीवन मूल्यों का हास हो जाता है। इसीलिए व्यंग्यकार व्यंग्य प्रहार के द्वारा उसे कचोटता है ताकि वह स्वहित के सम्मुख समाज हित को नजरअंदाज न करें।

सामाजिक मूल्यों के निर्वहण की अनिवार्यता, सर्वेद्र विक्रम सिंह के कथन द्वारा परिपुष्ट होती है। अरुणेश नीरन और दिनेश कुशवाह द्वारा संपादित पुस्तक *मूल्यों के निर्माण कलश* के अंतर्गत "धरती पर धूल-कण खोजती वर्षा की बूंदे" आलेख में वे लिखते हैं-"मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज के बिना व्यक्ति का कल्याण संभव नहीं है, इसलिए व्यक्ति का कल्याण समाज के कल्याण से पृथक नहीं हो सकता।"(61)

उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक मूल्यों का महत्व सुनिश्चित हो जाता है, सामाजिक सरोकारों की प्रतिबद्धता की अनिवार्यता, सुनिश्चित हो जाती है, तथा वैयक्तिक मूल्यों की सामाजिक मूल्यों से संश्लिष्टता प्रमाणित हो जाती है। मनुष्य समाज से अलग नहीं है, इसलिए सामाजिक मूल्यों को अपनाए बिना, जीवन में वैयक्तिक मूल्यबद्धता समाविष्ट नहीं हो सकती। सामाजिक उत्सवों के आयोजन के परिप्रेक्ष्य में, यही उद्देश्य नीहित रहता है कि उत्सवों के दौरान प्रत्येक व्यक्ति, परस्पर सहयोग, प्रेम, आत्मीयता, उदारता, संवेदनशीलता, समानता इत्यादि सामाजिक मूल्यों को अनायास ही परिपक्व कर लेता है।

सामाजिक मूल्यों के निर्वहण के अंतर्गत, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से और एक परिवार दूसरे परिवार से, व्यावहारिक संबंध रखता है। इन व्यवहारों के प्रति प्रत्येक व्यक्ति अथवा प्रत्येक परिवार का दृष्टिकोण जितना उदार और परस्पर सहयोगी और हितकामी होगा, सामाजिक मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता उतनी ही सुदृढ़ होगी। सामाजिक मूल्यों को अपनाने से व्यक्ति और समाज के मध्य संबंधों में, घनिष्ठता स्थापित होती है। सामाजिक मूल्य ही समाज व्यवस्था को संतुलित और अनुशासनात्मक आधार प्रदान करते हैं। सामाजिक मूल्य, मनुष्य जीवन को सुचारू रूप से गतिशील रखते हैं, उसका विकास करते हैं और सभी मनुष्यों में अंतःसंबंधों को मजबूत करते हैं। सामाजिक मूल्यों का लक्ष्यार्थ, मानव मात्र का कल्याण है।

1.2.7 राष्ट्रीय मूल्य :

राष्ट्र शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है संस्कृत में मूल शब्द राज् में ष्ट्रन प्रत्यय लगने से राष्ट्र शब्द की निष्पत्ति होती है। भारत के प्राचीन ग्रंथ वेदों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। *यजुर्वेद* में लिखा है- "आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथोजायताम् ।" (22/22) अर्थात् राष्ट्र में राजा शूरवीर होना चाहिए और क्षत्रिय लक्ष्य का बेधन करने वाले महारथी होने चाहिए।

यजुर्वेद में ही कहा गया है- "वयं राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहितः।" (9/23) अर्थात् हम पुरोहित (नेता) राष्ट्र के प्रति जागरूक रहें।

अथर्ववेद में 'राष्ट्र' एक भाव धारा है जिसमें एकता, निष्ठा और धरती से प्रेम का माधुर्य युक्त भाव प्रवाहित होता रहता है- "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" (12/1/12) अर्थात् भूमि माता है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ।

देवेंद्र स्वरूप *अखंड भारत* पुस्तक में विपिन चंद्र पाल द्वारा राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के विषय में लॉर्ड कर्जन को कहे गए कथन को उद्धृत करते हुए कहते हैं- "राष्ट्र एक जीवमान इकाई होता है। इस इकाई के प्रति इसके प्रत्येक अंग का पूर्ण समर्पण एवं भक्ति ही राष्ट्रभक्ति भाव की कसौटी है।" (21)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि एक ही भू भाग पर स्थित व्यक्तियों का समूह अथवा राजतंत्र में संलिप्त व्यक्तियों का एकत्रीकरण अथवा एक समान आर्थिक स्थितियों वाले व्यक्तियों का जमाव राष्ट्रीयता नहीं कहलाता क्योंकि एक समूह का

सदस्य होने पर भी उन सब की मानसिकता पृथक-पृथक हो सकती है, राष्ट्र के प्रति समर्पण के भाव न्यूनाधिक हो सकते हैं। राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत तो वही व्यक्ति या वही समूह कहा जाएगा जो अपने प्रत्येक कार्य से, अपनी प्रत्येक क्रियाकलाप से राष्ट्र के प्रति संपूर्ण समर्पण की भावना सुनिश्चित करे।

साहित्य का क्षेत्र इतिहास और वर्तमान से संबंधित होता हुआ राष्ट्र के भविष्य निर्माण के बिन्दु निर्धारित करता है और प्रशासनिक मूल्य राष्ट्र की संचालन व्यवस्था से संबंधित हैं। इसलिए इन सभी मूल्यों को राष्ट्रीय मूल्यों के अंतर्गत समाहित किया जा सकता है। राष्ट्रीय मूल्यों में राष्ट्रप्रेम, समर्पण और त्याग की भावना अपेक्षित है।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (विस्तारक मूल्य:भाग 2) में लेखिका नीरू कहती हैं- "जब स्वार्थ भावना से ऊपर उठकर ऐसे राष्ट्र का निर्माण किया जाए जो समानता तथा सर्वोदय जैसे लक्ष्यों को समर्पित हो तथा जो विशाल मानवता का हितैषी हो तो यह राष्ट्र निर्माण का विधिपरक रूप है।" (187)

नीरू के कथन का भाव यह है कि राष्ट्रीयता का भाव अंतर-मन में रखते हुए, राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए निस्वार्थ भाव से प्रयासरत होते हुए, राष्ट्रीय मूल्यों के रक्षण का पथ प्रशस्त हो सकता है। राष्ट्रीयता के भाव से ओतप्रोत मनुष्य सर्वहितैषिता, का उद्देश्य सम्मुख रखते हुए कार्य करता है। वह व्यक्ति-हित का नहीं अपितु समष्टि-हित का आग्रही होता है। मानवता के भाव को पुष्ट करते हुए, राष्ट्र की प्रगति में संलग्न रहना ही राष्ट्र निर्माण की कसौटी है, इस भाव की अभिव्यक्ति करते हुए नीरू आगे लिखती हैं- "निजी लाभ हानि की आकांक्षा से सर्वथा मुक्त होकर मानवता के पोषक राष्ट्र का निर्माण ही राष्ट्र निर्माण की सच्ची कसौटी है।" (188)

उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि प्रत्येक नागरिक राष्ट्रहित का विराट उद्देश्य सम्मुख रखते हुए ही अपने व्यक्तिगत लाभ हानि के मापदंड सुनिश्चित करें तभी राष्ट्र कल्याण का उदात्त लक्ष्य फलीभूत हो सकेगा। राष्ट्र निर्माण के कार्य में निस्वार्थ भाव से तल्लीन मनुष्य, जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता है। उसके हृदय में अपने राष्ट्र वासियों के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहता। वह जाति, धर्म तथा वर्ग की, संकीर्ण विचारधारा से ऊपर उठकर राष्ट्र के सभी नागरिकों के प्रति अपनत्व का भाव रखता है। राष्ट्र की सीमा पर सतर्क भाव से तैनात सैनिकों में, कोई पंजाब से होता है, कोई राजस्थान से, कोई गुजरात से और कोई असम से। सभी

सैनिक एकजुट होकर राष्ट्र की सुरक्षा में तत्पर रहते हैं। उनके मध्य भेदभाव की कोई दीवार नहीं होती।

राष्ट्रीय मूल्यों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए *मानव मूल्य व्याख्या कोश*, के अंतर्गत (विस्तारक मूल्य:भाग 2) में नीरू कहती हैं- "जब तक राष्ट्र का एक एक घटक अपने कर्तव्य का पालन पूर्ण निष्ठा से नहीं करेगा तब तक राष्ट्र की समृद्धि कैसे संभव है? राष्ट्र समृद्ध होता है राष्ट्रीय मूल्यों के पालन से, राष्ट्रीय मूल्यों के अभाव में स्वतंत्रता भी सिल की तरह गिरती है।" (29)

नीरू के कथन के आधार पर कह सकते हैं कि राष्ट्र की उन्नति सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत नागरिक को निष्ठा पूर्वक कार्य करना पड़ेगा क्योंकि राष्ट्रीय मूल्यों से हीन हो जाने पर राष्ट्र की स्वतंत्रता भी संदिग्ध हो जाएगी क्योंकि पड़ोसी राष्ट्र तो रहते ही इसी घात में है कि दूसरे देश में अव्यवस्था हो, परस्पर वैमनस्य हो, अराजकता का वातावरण हो और वे इस दुरावस्था का लाभ उठाकर अपने राष्ट्र की सीमा में अभिवृद्धि कर सकें।

उपर्युक्त विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि समान रूप से सुसंस्कृत, समान रूप से अनुशासित जीवन के लिए बनाए गए मापदंडों पर अग्रसर मानव समूह के सुमेल को राष्ट्र कहा जा सकता है जहां राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित मनुष्य राष्ट्र हित के लिए हर प्रकार का बलिदान करने को समग्र रूप से समर्पित रहता है।

1.2.8 सांस्कृतिक मूल्य :

'सम्' उपसर्ग 'कृ' धातु 'क्तिन्' प्रत्यय के संयोग से संस्कृति शब्द की निष्पत्ति होती है। भूषणभूत सम्यक् चेष्टा अथवा सम्यक् कृति ही संस्कृति है। किसी भी समाज के धर्म शास्त्रों अथवा दर्शन शास्त्रों में मनुष्य के लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्ष के लिए जिस प्रकार के कर्म अथवा आचरण आदि का विधान है वहीं आचार विचार उस समाज की संस्कृति के आधार होते हैं, जो मानव जीवन के लिए सकारात्मक ऊर्जा के स्रोत होते हैं तथा जीवन मूल्यों की स्थापना करते हैं। *अशोक मानक हिंदी शब्दकोश* में शिवप्रसाद भारद्वाज, संस्कृति का अर्थ बताते हुए लिखते हैं- "शुद्धि, सफाई, संस्कार, सुधार, किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि की वे सब बातें, जो उसके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती हैं।" (988)

प्रभात झा द्वारा संपादित *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद* पुस्तक में राजनाथ सिंह संस्कृति का अर्थ बताते हुए लिखते हैं- "संस्कृति का अर्थ होता है सम्यक कृति।"(70) अर्थात् जिन कार्यों के निर्वहण के परिप्रेक्ष्य में सत्य, कल्याण और सौंदर्य का पथ निर्दिष्ट हो, वही कार्य संस्कृति के अंतर्गत माना जा सकता है। *संस्कृति के चार अध्याय* पुस्तक में रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति का अर्थ बताते हुए लिखते हैं- "यह जीवन का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिस समाज में हम रहते हैं।"(653) रामधारी सिंह दिनकर के कथन के आधार पर यह स्पष्ट है कि संस्कृति मानव जीवन में व्याप्त एक अविभाज्य तत्व है जो कई लोगों के अनुभव के पश्चात एक स्थायी स्वरूप ग्रहण करता है।

भारतीय धर्म और संस्कृति में रामजी उपाध्याय सौंदर्य विधान के प्रति मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति को वर्णित करते हुए, उसके विकास को संस्कृति बताते हुए लिखते हैं- "मानव स्वभावतः प्रकृति की किसी रचना को..... अधिक पूर्ण या सुंदर बनाने का प्रयत्न करता रहा है। सुंदर बनाने, सुधारने और पूर्ण बनाने के प्रयत्न मनुष्य की बुद्धि और सौंदर्य भावना के विकास का परिचय देते हैं, मानव का यही विकास संस्कृति है।" (7)

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह हर वस्तु को सुंदर रूप में देखना चाहता है। मनुष्य की इसी प्रवृत्ति ने, उसे आदिम जगत से सामाजिक जगत में प्रविष्ट करवाया। सामाजिकता के उत्तरोत्तर विकास के परिप्रेक्ष्य में भी, सौंदर्य के प्रति उसका आग्रह था। मानव की सौंदर्यपरक वृत्ति के द्वारा ही, अनेक सुंदर-सुंदर उपकरणों की रचना हुई। मिट्टी को तराश कर उसने सुंदर मूर्तियों का निर्माण किया, लकड़ी को तराश कर अनेक उपकरण बनाए, धातु को तराश कर, आभूषणों का निर्माण किया, यहां तक कि पेड़ पौधों की कटाई-छटाई करके उन्हें उनके, स्वाभाविक रूप से भी अधिक सुंदर बनाया।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (मूल्य परिभाषा कोश: भाग 6) में रामकृष्ण सराफ संस्कृति का अर्थ बताते हुए लिखते हैं- "किसी देश समाज जाति या जनसमूह का दर्शन, धर्म, साहित्य, कला, रीति-रिवाज, परंपराएं और मान्यताएं ही उनकी संस्कृति होती हैं।" (84)

भारत सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान पुस्तक में बल्देव भाई शर्मा दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दी गई संस्कृति की परिभाषा बताते हुए कहते हैं- "खुद कमाना और खाना प्रकृति है और दूसरों का छीन कर खाना विकृति है, लेकिन खुद कमाना और दूसरों को

खिलाना संस्कृति है।" (8) दीनदयाल उपाध्याय दूसरों को सुख पहुंचाने की इच्छा से किया गया श्रम, संस्कृति के अंतर्गत मानते हैं। अपना पेट भरने का प्रयास प्रत्येक जीवधारी का कर्तव्य है। चींटी से लेकर हाथी तक इसी प्रयास की साधना में संलग्न रहते हैं। किसी दूसरे का अधिकार छीन कर, अपने लाभ को सुनिश्चित करना विकृति है। अपने श्रम से अपना पेट भरना प्रकृति है, तथा अपना भरण-पोषण करते हुए किसी दूसरे की क्षुधा को शांत करना संस्कृति है। जिस प्रकार की जीवन शैली अपनाते हुए मानव, मानवीय कर्तव्यों को अपने आचरण द्वारा सिद्ध करता है, वही जीवन सांस्कृतिक है।

साहित्य और संस्कृति का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। संस्कृति से संयुक्त साहित्य ही सार्वयुगीन बन पाता है। जिस साहित्य में संस्कृति का वर्णन ना हो वह साहित्य दीर्घायु नहीं बन पाता, इस तथ्य को रेखांकित करते हुए प्रभात झा द्वारा संपादित पुस्तक *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद* में "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य" आलेख के अंतर्गत दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' कहते हैं- "साहित्य संस्कृति का संवाहक है और संस्कृति साहित्य की आशा है। संस्कृति साहित्य से लिपटी रहती है। कभी कथानक के रूप में तो कभी शिल्प के रूप में। वही साहित्य श्रेष्ठता अर्जित करता है, जो संस्कृति को अधिकाधिक आत्मसात किए होता है।" (188)

दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' के कथन के द्वारा यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि आगामी पीढ़ियों तक सांस्कृतिक मूल्यों का समृद्ध कोश पहुंचाने का गरिमामंडित कार्य, साहित्य द्वारा ही संपन्न होता है। साहित्य के पठन-पाठन से ही, अगली पीढ़ी अपने पूर्वजों के आचार-विचार और जीवन-पद्धति के विषय में जानकारी प्राप्त करती है और उनमें से शाश्वत जीवन मूल्यों को चयनित कर, अपने वर्तमान को सुखद, सार्थक और उन्नत करती है। वही साहित्य अमरत्व को प्राप्त करता है जिसके अंतर्गत आगामी पीढ़ियां, समकालीन परिदृश्य में अपना योग्य मूल्य तलाश कर, हृदयंगम कर लेती हैं। तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस वर्तमान समय में भी भारत के घर-घर में विद्यमान है, जिसका पठन-पाठन भारतवासी समय और सुविधा के अनुसार करते हैं और अपने जीवन में शांति, संतोष और सुख का अनुभव करते हैं।

संस्कृति के उदात्त स्वरूप को वर्णित करते हुए *ऐसा भी सोचा जाता है* पुस्तक के अंतर्गत हरिशंकर परसाई लिखते हैं- "मनुष्य केवल बाहरी सुख-साधनों से संतुष्ट नहीं होता। वह मंगलमय जीवन मूल्यों को ग्रहण करना चाहता है। वह आत्मा का उदात्तीकरण और उन्नयन भी चाहता है। यह संस्कृति है। (50) हरिशंकर परसाई के कथन द्वारा यह स्पष्ट है कि

सुख-सुविधा के साधन मानव को शारीरिक संतुष्टि तो दे सकते हैं परंतु आभ्यांतर संतुष्टि उसे तभी मिलती है, जब वह अपने आसपास सभी को सुखी अनुभव करता है। पड़ोस के घर में यदि आग लगी हो तो दूसरा पड़ोसी कितना भी अप्रभावित रहने का दिखावा करे, धूँआ उसके घर तक भी अवश्य पहुंचेगा। अपने चारों तरफ हर प्रकार के सुख-सुविधा के साधन एकत्रित करने के पश्चात भी, वास्तविक सुख तभी मिलता है जब वह चतुर्दिक मंगलमय परिवेश अनुभव करता है। ऐसा परिवेश तभी निर्मित हो सकता है, जब समाज का प्रत्येक घटक अपने अपने स्तर पर, अपने कार्यों को सम्यक रीति से निष्पादित करें। हरिशंकर परसाई अपने कथन द्वारा संस्कृति के विराट स्वरूप को वर्णित करते हैं।

धर्म और संस्कृति परस्पर सापेक्ष हैं। संस्कृति, सम्यक कृति निर्मित करने के पथ पर अग्रसर करती है। जो कार्य मानव-मूल्यों के आधार पर उचित हो, मानवीयता की कसौटी पर खरा उतरता हो, मनुष्य को कर्तव्यों के निर्वहण के प्रति सचेत करता हो, उस कार्य को संस्कृति पर आधारित कहा जा सकता है। धर्म भी, मनुष्य को कर्तव्य-बोध करवाता है। एक मानव के रूप में, एक नागरिक के रूप में और एक परिवार के सदस्य के रूप में, उसके क्या कर्तव्य हैं, धर्म इसके प्रति मनुष्य को सचेत करता है, प्रतिबद्ध करता है।

मानव जीवन में सभी जीवन मूल्य संस्कृति के अंतर्गत आते हैं, इस विषय में हरिशंकर परसाई ने *तुलसीदास चंदन घिसें पुस्तक* में लिखा है-"संस्कृति जीवन मूल्यों का समुच्चय है।"(40) जीवन मूल्यों को आचरण में ढालना धर्म है, इस विषय पर प्रकाश डालते हुए *सांस्कृतिक उत्थान का मार्ग* पुस्तक में रामसहाय ने लिखा है-"मंदिर जाना ही केवल धर्म नहीं है, अपितु मानव मूल्यों को व्यावहारिक जीवन में आत्मसात करना इसका सही मापदंड है।"(162)

उपर्युक्त दोनों विचारकों के मतानुसार, यह सिद्ध होता है कि जीवन मूल्यों का समूह संस्कृति है और जीवन मूल्यों को व्यवहार द्वारा दर्शाना, धर्म है। रामसहाय ने अपने विचार द्वारा यह स्पष्ट किया है कि विभिन्न प्रकार के पूजा स्थलों पर जाना धर्म नहीं कहलाता, अपितु मानव मूल्यों को अपने आचरण में ढालना, उन्हें व्यावहारिक रूप देना धर्म है।

रमेश पोखरियाल *भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं परंपरा* पुस्तक में संस्कृति और धर्म में एकरूपता स्थापित करते हुए लिखते हैं- "संस्कृति सर्वस्वीकृत जीवन पद्धति है, जिसमें धर्म एवं दर्शन का भी गहरा प्रभाव पड़ता है।" (9) रमेश पोखरियाल के कथन के आधार पर कहा जा

सकता है कि समग्र समाज द्वारा जिस जीवन पद्धति को मान्यता प्राप्त होती है, जीवन जीने की जिस विधि को अपनाकर मानव अपने कर्तव्यों का भली-भांति निर्वहण करता है, वह संस्कृति है। कर्तव्य क्या है? दूसरे शब्दों में कहा जाए, तो कर्तव्य ही धर्म है।

कल्याण के हिंदू संस्कृति अंक में "भारतीय संस्कृति" आलेख के अंतर्गत श्रीशिवचरण लिखते हैं-"संस्कृति शब्द का लक्ष्यार्थ धर्म, विद्या आदि की उन्नति है।"(97) उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि संस्कृति का उद्देश्य मनुष्य को अधिक से अधिक कर्तव्य परायण बनाना, अधिक से अधिक विद्वान बनाना है। संस्कृति का संवाहक, अपने धर्म-पालन के प्रति समग्र रूप से कटिबद्ध रहता है। वह विद्याध्ययन के द्वारा अज्ञान से, ज्ञान की दिशा की ओर अग्रसर होता है।

उपर्युक्त विचारकों के मंतव्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि धर्म और संस्कृति परस्पर अंतर्गुम्फित हैं, उन्हें भिन्न नहीं किया जा सकता।

1.2.9 राजनीतिक मूल्य :

राजनीतिक मूल्य किसी भी राष्ट्र के प्रबंधन, शासन व्यवस्था तथा संचालन से संबंधित अनिवार्य गुणवत्ता है। *पोलिटिकल थ्योरी* पुस्तक के अंतर्गत रवींद्रनाथ दुग्गल डेविड ईस्टन द्वारा दी गई राजनीति की परिभाषा को उद्धृत करते हुए कहते हैं- "राजनीति मूल्यों का सत्तात्मक निर्धारण है जैसे कि यह शक्ति के वितरण और प्रयोग से प्रभावित होता है।"(6) उपर्युक्त परिभाषा 'राजनीति' और 'मूल्य' के मध्य संबंध स्थापित करती है। राजनीति राज्य के सम्यक संचालन के लिए नागरिकों के द्वारा मूल्य आधारित जीवन निर्वाह करना आवश्यक समझती है जिसके द्वारा यह सुनिश्चित होता है कि सार्वजनिक स्तर पर प्रत्येक नागरिक को कुछ नियमों का प्रतिबद्धता के साथ पालन करना होगा जिससे राजकीय कार्य बिना किसी गतिरोध के उचित प्रकार से प्रबंधित होता रहे।

शिवराम आटे *the practical Sanskrit-English dictionary* में राजनीति का निम्नलिखित अर्थ बताते हैं- "administration of a state, administration of government, statesmen ship." (799) अर्थात् किसी प्रांत का प्रशासन अथवा सरकार का प्रशासन, राष्ट्र कर्मों की प्रतिभा।

आदर्श हिंदी शब्दकोश में राजनीति का अर्थ बताते हुए रामचंद्र पाठक कहते हैं- "वह नीति जिसके अनुसार राजा अपने राज्य का शासन तथा प्रजा की रक्षा करता है।" (650-651)

प्राचीन समय के दौरान भारत में राजनीति की जो परिभाषा थी, उसे वर्णित करते हुए आशुतोष पार्थेश्वर *राजनीति और नैतिकता* पुस्तक में लिखते हैं- "स्वयं 'राजनीति' शब्द ही अपने में, नीति को समाहित किए हुए था, वह नीति जो नैतिकता की ही मांगों की पूर्ति के लिए थी।"(154)

आशुतोष पार्थेश्वर के कथन का भाव यह है कि प्राचीन समय में भारत में, नीति युक्त राजनीति थी। राज्य का शासन, नीति के आधार पर चलाया जाता था। शासन के समस्त प्रबंधन में नीतियुक्तता दृष्टिगत होती थी। वर्तमान समय में राजनीति से नैतिकता विच्छिन्न हो गई है, जिसका एकमात्र कारण यह है कि मानव चरित्र का पतन हो गया है। एक सामान्य व्यक्ति के चरित्र से, उस व्यक्ति का चरित्र अधिक महत्व रहता है, जिसके कंधे पर शासन-प्रबंधन का दायित्व होता है। उस व्यक्ति के शासन-सूत्र, शासकीय आदर्श माने जाते हैं। इसलिए शासन-तंत्र से संश्लिष्ट व्यक्तियों से यह अपेक्षा रहती है कि उनका चरित्र उज्ज्वल हो ताकि अन्य लोग, उसे आदर्श मानते हुए उसका अनुगमन कर सकें। महात्मा गांधी ने भारत में रामराज्य के आदर्श की संकल्पना, इसीलिए की थी क्योंकि उस राज्य के शासक, राजा राम, उच्च शासकीय गुणों से समन्वित थे।

देश की राजनीति का लक्ष्य हर दिशा से, हर क्षेत्र से जनहित ही होना चाहिए। राजनेताओं में उच्चतम स्तर की नीतिज्ञता हो, नेतृत्व की क्षमता हो, उनके व्यवहार में परिवार-प्रेम नहीं, प्रजा-प्रेम की भावना का आधिक्य हो। राजनीतिक स्तर पर निर्णय लेते समय निष्पक्षता का भाव प्रमुख हो। वे आत्मविश्वासी तथा ऊर्जा से भरपूर हों। उनकी वाणी मां शारदा के वरदान से अभिषिक्त हो ताकि सामान्य जनता उनके विचारों को आत्मसात कर सके। सबसे आवश्यक गुण यह है कि उनमें सेवा परायणता की भावना हो क्योंकि यही भाव जिसके मानस में प्रतिस्थापित होगा वही निस्वार्थ भाव से राष्ट्र हित और समाज हित संबंधी कार्यों में तत्पर हो सकेगा।

प्रभात झा द्वारा संपादित सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पुस्तक में नरेन्द्र मोहन "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद अनेकता को प्रश्रय देती है" आलेख में भारत की जनता के अन्तर्मन में जीवन मूल्यों के निर्वहण के प्रति समर्पण भाव वर्णित करते हैं। भारतीय संविधान की रचनात्मक कमियां वर्णित करते हैं। उनके अनुसार, भारतीय संविधान के अंतर्गत भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों की अवहेलना की गई। एक आदर्श राष्ट्र के रूप में, भारतीय नागरिक के अंतर्मन में क्या स्वरूप विद्यमान था, इसे अनदेखा किया गया। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है- "जब

भारत का संविधान रचा गया तब न तो भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों की ओर ही गंभीरता से निहारा गया और न ही भारतीय मूल्यों, आदर्शों, श्रेष्ठ परंपराओं तथा भारतीय मन की अभिलाषाओं को ही समझने का प्रयास किया गया।" (88) उपर्युक्त कथन के माध्यम से नरेंद्र मोहन ने दर्शाया है कि भारत की स्वतंत्रता के पश्चात, राजनेताओं के सिर से राष्ट्रभक्ति का जुनून उतर गया और वे सत्ता प्राप्ति की अंधी दौड़ में शामिल हो गए। उन्हें उस वक्त केवल कुर्सी हथियाने की सुध रही। वे भूल गए कि स्वतंत्रता प्राप्ति की वृहद सफलता के परिप्रेक्ष्य में उनसे इतर, अनेक लोगों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान है। भारतीय जनता ने किन मूल्यों की रक्षा के लिए डेढ़ हजार वर्ष तक, विदेशी आक्रांताओं से अनवरत संघर्ष किया, यह सब जानने का प्रयास नहीं किया गया।

राष्ट्र की स्वतंत्रता प्राप्ति के उल्लास में हमारे राजनेता इतने निमग्न हो गए कि जिन मानदंडों के आधार पर राष्ट्र की समग्र उन्नति अवलंबित थी, उसी की ओर से आंखें मूंद ली गईं। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भारत के वीरों- प्रवीरों ने प्राणों का उत्सर्ग किया, कितनी माताओं ने अपने युवा पुत्रों को स्वतंत्रता की बलिवेदी पर न्योछावर किया, हमारे राजतंत्र ने उन महान जीवन मूल्यों के संरक्षण के प्रति उदासीनता प्रदर्शित की जिसके कारण समाज में व्यक्तिगत स्वार्थ मानव जीवन का केंद्र बिंदु बन गया और राष्ट्रीयता की भावना पददलित होती गई।

जीवन मूल्यों के विघटन के लिए कुछ हद तक हमारे राजनीति के धुरंधर नेता भी जिम्मेवार हैं। उस समय जो संविधान बनाया गया उसके अंतर्गत समग्र भारतीय संस्कृति तथा उसके जीवन मूल्यों की ओर आग्रह की दृष्टि से नहीं देखा गया। क्या राष्ट्र की स्वतंत्रता के बाद सभी राजनेता अपनी-अपनी कुर्सी हथियाने और उसे सुरक्षित रखने की कोशिश में नहीं लगे रहे ? राष्ट्रीय चेतना के भावों का लोप हो गया और स्वार्थ की राजनीति उग्र हो गई।

भारत सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान पुस्तक में राजनीति के अंतर्गत नागरिक चेतना की जागृति को अनिवार्य बताते हुए बल्देव भाई शर्मा कहते हैं- "नागरिक चेतना किसी भी देश के शुभ संकल्पों को पूरा करने का सबसे मजबूत आधार है; जिसे जगाने की बजाय आम जन को सिर्फ वोट समझा गया कि वह बस सरकार बनाने के लिए वोट दें, बाकी काम सरकार करेगी।" (54)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि नीति-निपुण नेता, जनता को केवल वोट देने का माध्यम समझते हैं। चुनाव में विजय प्राप्त करने के पश्चात, वे जनता के अंतर्मन में झांकना तो दूर, उसके

साए से भी दूर भागने की कोशिश करते हैं। भारतीय नागरिक जब तक अपने मताधिकार का प्रयोग सूझ-बूझ और गंभीरता से नहीं करेंगे, तब तक राष्ट्र में स्वार्थ की रोटियां सेकने वाले राजनीतिज्ञ, इसी प्रकार अपनी धूर्त चालों में सफल होते रहेंगे। राजनीतिक विसंगतियां ही, प्रशासनिक क्षेत्रों में विसंगतियों का कारण बनती हैं, क्योंकि 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति के आधार पर, जनता शासन तंत्र के पद चिन्हों पर चलती है। इसलिए सभी नागरिक अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को भुलाते हुए तथा राष्ट्रहित को सामने रखते हुए, अपने मताधिकार का प्रयोग करें ताकि भारत एक विसंगति-रहित राष्ट्र के रूप में विश्व पटल पर अपनी समग्र तेजस्विता के साथ दृष्टिगत हो। उपर्युक्त जीवन मूल्यों से संबंधित समग्र चिंतन से स्पष्ट है कि भारतीय चिंतन में समग्र रूप से संतुलित एवं समन्वयात्मक जीवन मूल्यों से संचित जीवन को ही एक आदर्श जीवन माना गया है।

मनुष्य को जीवन-पथ पर गतिशील होते हुए जीवन मूल्यों के निर्वहण के साथ अनेक सोपानों से गुजरना पड़ता है। उन सोपानों को रेखांकित करते हुए और मानव मूल्यों की कसौटी को सुनिश्चित करते हुए विनोद कुमार *संघर्ष के साथ-साथ* पुस्तक में लिखते हैं- "मनुष्य को जीवन में व्याप्त.... दुर्दम्य संघर्ष के साथ-साथ चलते हुए अपना पथ बनाना पड़ता है और साथ ही निवृत्ति मूलक भावों से ऊपर उठकर अपने जीवन में सदाशयता एवं पारस्परिकता को भी बनाए रखना होता है, जो आदर्श मानवीयता की कसौटी है।" (11) विनोद कुमार का कथन सामाजिक मूल्यों के प्रति उनके आग्रह और दृढ़ विश्वास को दर्शाता है। सामाजिक जीवन में पारस्परिक सहयोग वृत्ति पल्लवित तभी हो पाएगी, जब सभी व्यक्ति सामाजिक मूल्यों के निर्वहण के प्रति, सतर्क और प्रतिबद्ध रहेंगे। एक आदर्श और सार्थक मानव जीवन उसी व्यक्ति का माना जाएगा, जिसका आचरण मानवीय कसौटी पर खरा उतरेगा।

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य का जीवन प्रवृत्ति मूलक और निवृत्ति मूलक वृत्तियों से संचालित रहता है। प्रवृत्ति मूलक वृत्तियां जीवन में सकारात्मकता का समावेश करती हैं, जीवन को आनंददायक, प्रेममय और करुणा के भावों से संपृक्त करती हैं।

निवृत्ति मूलक वृत्तियां मनुष्य के हृदय को कुत्सित भावनाओं, अवांछित महत्वकांक्षाओं, ईर्ष्या, द्वेष तथा घृणास्पद भावों से भर देती हैं। निवृत्ति मूलक वृत्तियों से स्वयं को बचाते हुए जीवन में प्रवृत्ति मूलक वृत्तियों को धारण कर मानव मूल्यों का संरक्षण करना होगा।

जीवन मूल्यों के संदर्भ में अनेक विचारकों के वैचारिक बिंदुओं के परिप्रेक्ष्य में, यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में, समग्र विश्व विसंगतियों और विषमताओं के घेरे में इसलिए घिरा हुआ है, क्योंकि मानव ने जीवन मूल्यों के पथ का त्याग करते हुए भोग, विलासिता, स्वच्छंदता तथा चरम सीमा तक स्वार्थी वृत्ति को अपना लिया है।

वर्तमान समय में पारिवारिक संबंध विखंडित हो रहे हैं परिणाम स्वरूप वर्तमान युवा पीढ़ी अनुशासनहीनता को आधुनिकता समझते हुए, अपने जीवन में गतिशील हो रही है। भारतीयों द्वारा पाश्चात्य देशों का अधानुकरण हर स्तर पर किया जा रहा है परंतु स्वच्छता के प्रति उनकी सतर्कता और प्रतिबद्धता को अनदेखा किया जा रहा है। हर मनुष्य आत्म केंद्रित होकर कार्य कर रहा है। मनुष्य बहुत अधिक वैज्ञानिकता के आधार पर भले ही प्रगति कर ले, लेकिन जीवन तो उसे पृथ्वी पर ही बिताना है और प्रकृति के सहारे ही बिताना है। पृथ्वी का स्थल भाग, जितना है उतना ही रहेगा, पृथ्वी पर बसने वाले सर्वोत्कृष्ट जीवधारी मानव को, प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, उचित प्रबंधन करते हुए करना चाहिए। पर्यावरण परक मूल्य, शाश्वत जीवन मूल्य हैं। प्राणी जगत के अस्तित्व की अक्षुण्णता के लिए स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु और परिष्कृत भूमि अपेक्षित है, परंतु मानव ने इनके संरक्षण के विषय में किसी प्रकार का प्रबंधन नहीं किया। मानव ने वैज्ञानिक उन्नति को ही समग्र सुखों का कारक समझ लिया और भौतिक साधनों की प्राप्ति को जीवन का चरम सुख समझ लिया। वर्तमान समय में मनुष्य की वैज्ञानिक उपलब्धियां, एक कोने में दम साधे पड़ी हुई हैं, और प्रकृति के सूक्ष्म विषाणु ने समग्र विश्व को अनिश्चितता के वातावरण में लाकर पटक दिया है।

उपर्युक्त वैचारिकता को भारत की सार्वयुगीन संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति के अंतर्गत, जिन कर्तव्यों को मनुष्य के आचरण में सम्मिलित करने पर बल दिया गया है, वे सभी आचरण, प्रकृति रक्षण की ओर संकेत करते हैं। यज्ञ करना, जल, पृथ्वी, पवन और अग्नि को देवता मानना, वृक्षों की पूजा करना, वास्तव में प्रकृति रक्षण के ही उपाय हैं, जो हमारे पूर्वजों द्वारा निर्देशित किए गए हैं। इन कृत्यों को ईश्वरीय सत्ता के साथ सूत्रबद्ध करके, हमारे पूर्वजों ने इनकी अनिवार्यता को सुनिश्चित कर दिया था।

द्वितीय अध्याय-

हिन्दी की व्यंग्य परंपरा में जीवन मूल्य

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य का अनुशीलन करने से पूर्व व्यंग्य परंपरा पर एक विहंगम दृष्टि डालना समीचीन होगा। व्यंग्य की प्राचीन अनवरत अवस्थिति बताते हुए ओम प्रकाश गुप्त *व्यंग्य पर एक बहस* पुस्तक में कहते हैं- "जीवन में जहां-जहां विसंगति है, वहां-वहां व्यंग्य है और जीवन में विसंगति कहां नहीं है। इस काजल की कोठरी में सब कुछ काला ही काला है। इसलिए जीवन में व्यंग्य की विद्यमानता अनादि काल से ही रही है। वस्तुतः व्यंग्य का इतिहास मानवीय संवेदनाओं के इतिहास जितना ही प्राचीन है।" (1)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव की आदिम वृत्ति ने जिस समय सामाजिक प्रांगण में कदम रखा, जिस समय-अंतराल के बाद वह पशुता से मनुष्यता की श्रेणी में आया, तबसे उसके हृदय में संवेदनाओं के अंकुर फूटे, उसी समय से विसंगतियों के प्रति उसका विवेक जागृत हुआ, उसी समय व्यंग्य के भाव का भी सूत्रपात हुआ क्योंकि सामाजिकता के प्रथम चरण में भी समाज में बलवान और निर्बल जीवों के मध्य विषमता व्याप्त थी, मानव के हृदय में भलाई और बुराई दोनों प्रकार की भावना थी, समाज में सुकृति के साथ-साथ विकृति भी विद्यमान थी और व्यंग्य का उद्देश्य समाज में विकृति की निवृत्ति है। हरीश नवल से पूर्व व्यंग्य के संदर्भ में हमारे साहित्य मनीषियों ने समाज की किन-किन विसंगतियों पर प्रहार किया, तत्कालीन परिस्थितियों कैसी थी ? यह जानना अति आवश्यक है।

2.1 पूर्व भारतेन्दु युग :

व्यंग्य की विशेषता विसंगतियों, मिथ्याचारों, पाखंडों और विकृतियों पर प्रहार करना है । नाथ संप्रदाय की प्रवृत्तियों में उपर्युक्त विशेषताओं को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी *नाथ संप्रदाय* पुस्तक में निम्नांकित कथन से परिपुष्ट करते हैं- "गोरखनाथ ने निर्मम हथौड़े की चोट से साधु और गृहस्थ दोनों की कुरीतियों को चूर्ण विचूर्ण कर दिया, लोक जीवन में जो धार्मिक चेतना पूर्ववर्ती सिद्धों से आकर उसके पारंपरिक उद्देश्य से विमुख हो रही थी, उसे गोरखनाथ ने नई प्राणशक्ति से अनुप्राणित किया।" (भूमिका)

उस समय वर्णाश्रम में विकृतियां आ गई थी, साधु और गृहस्थ अपने अपने कर्म क्षेत्र में निष्ठा पूर्वक कार्यरत नहीं थे। *राम कथा में नैतिक मूल्य* पुस्तक में उपर्युक्त कथन को विनोद बाला अरुण के विचारों के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है- "वर्णाश्रम के अनुरूप कर्म का पालन लौकिक धर्म है।" (121)

विनोद बाला अरुण द्वारा कथित उपर्युक्त कथन को गोरखनाथ के कथन के परिप्रेक्ष्य में देखकर कहा जा सकता है कि हर मनुष्य का अपनी सामाजिक स्थिति के अनुरूप क्रियाशील होना अपेक्षित है। भारतीय परंपरा में कर्म के आधार पर वर्णाश्रम निर्धारित किए गए थे। ब्राह्मण का कार्य विद्या प्रदान करते हुए, राष्ट्र के लिए आदर्श नागरिकों का निर्माण करना था। क्षत्रिय अपने बाहुबल से राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा करते थे। राष्ट्र के भीतर असामाजिक तत्व सर न उठाने पाएं इसके लिए भी क्षत्रिय-वर्ग सतत् क्रियाशील रहता था। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का दायित्व वणिकों के कंधों पर था, और राष्ट्र के पर्यावरण को स्वच्छ और स्वस्थ रखने का कार्यभार हरिजन संभालते थे। किसी भी वर्ण के कार्य को कमतर नहीं समझा जा सकता। चारों वर्ण राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति के लिए अपने-अपने क्षेत्रों में प्रतिबद्धता से कार्य करें, तो राष्ट्र की उन्नति सुनिश्चित है।

सामाजिक तौर पर भी मनुष्य-जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है- ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तथा संन्यास आश्रम। गोरखनाथ के समय में, गृहस्थ आश्रम का निर्वहण करने वाले, अपने क्षेत्र के कार्य को प्रतिबद्धता के साथ संपन्न नहीं कर रहे थे। 'अतिथि देवो भव'की परंपरा न्यून होती जा रही थी, भोग-विलास में तल्लीन रहना उनकी दिनचर्या बन चुकी थी। साधु-जन भी समाज को दिशा देने के स्थान पर, परस्पर ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा की भावना से ग्रस्त रहने लगे थे।

गोरखनाथ ने अपने पूर्ववर्ती सिद्ध संप्रदाय के परमार्थिक उद्देश्यों के प्रति उदासीनता को न केवल पहचाना अपितु उनकी धार्मिक चेतना के प्रति विमुखता को उचित दिशा-निर्देश भी दिया। गोरखनाथ नाथ संप्रदाय में सर्वोत्कृष्ट माने जाते हैं। वे महान धर्म नेता, उत्कृष्ट संगठनात्मक शक्ति से संपन्न परम तेजस्वी और ब्रह्मचर्य से प्रदीप्त युगपुरुष थे। *नाथ संप्रदाय* पुस्तक में द्विवेदी हजारी प्रसाद द्विवेदी गोरखनाथ की निर्भीक वैचारिकता का उल्लेख करते हुए कहते हैं- "किसी भी रूढ़ि पर चोट करते समय उन्होंने दुर्बलता नहीं दिखाई। वे स्वयं पंडित व्यक्ति थे पर अच्छी तरह जानते थे कि पुस्तक लक्ष्य नहीं, साधन है।" (210)

उपर्युक्त पंक्तियों के आलोक में यह जाना जा सकता है कि गोरखनाथ सर्वथा निर्भीक, स्पष्टवादी तथा जीवन मूल्यों के निर्वाहन के पथ में बाधक रूढ़ियों के प्रखर विरोधी थे। वह कोरे पुस्तकीय ज्ञान को आत्मसात करने के पक्ष में नहीं थे अपितु ज्ञात ज्ञान को जीवन में ढालने के

पक्षधर थे। गोरखनाथ वियोगी हरि द्वारा संपादित *संत सुधा सार* पुस्तक में उस युग में प्रचलित बलि प्रथा की व्यर्थता पर प्रहार करते हुए कहते हैं-

"पसु क्या हतिए रे प्यंडधारी,

मारिबे पंच भू मृखला जे चरै बुद्धि बाड़ी।" (49)

अर्थात् हे जीवधारी, पशुओं का वध क्यों करता है ? यदि मारना है तो पंच भौतिक मृग रूपी मन को मार जो बुद्धि रूपी बगीचे को चर रहा है। कहने का भाव यह है कि मन में उपस्थित विकारों के नष्ट होने पर ईश्वर के निकट जाया जा सकता है, किसी प्राणी की बलि देकर नहीं। उपर्युक्त पंक्ति के माध्यम से गोरखनाथ न केवल बलि प्रथा की विकृति पर प्रहार करते हैं अपितु उसके विकल्प के रूप में मन के विकारों को नष्ट करने की प्रेरणा भी देते हैं।

गोरखनाथ द्वारा उल्लेखित भारतीय संस्कृति की उदात्त परंपरा को भगवान सिंह *भारतीय परंपरा की खोज* पुस्तक में वर्णित करते हुए कहते हैं- "बुद्ध की ज्ञात जीवनी के अनुसार उनको खेती में हल चलाने से होने वाले कीटों के बाहर आकर विनाश की अधिक चिंता है, मनुष्य मात्र के जीवन यापन के लिए कृषि कर्म की नहीं।" (19)

भारतीय महापुरुषों की विचारधारा छोटे-छोटे कीट कृमि तक के जीवन रक्षण के प्रति आग्रह दर्शाती है फिर जानबूझकर केवल जिह्वा के स्वाद के लिए पशु वध करना मानवोचित कार्य नहीं है और वह भी धर्म की आड़ में। ऐसा कार्य सांस्कृतिक मूल्यों के सर्वथा विरुद्ध है।

कबीर भक्ति काल के सबसे प्रखर व्यंग्यकार के रूप में जाने जाते हैं कबीर धर्मगुरु थे, समाज सुधारक थे, समाज सुधार के रूप में उन्होंने मिथ्याचारों और पाखंडों का विरोध किया। समाज की विसंगतियों के परिष्कार के लिए उनका व्यंग्य सतत् प्रयत्नशील ही नहीं अपितु कटिबद्ध दृष्टिगत होता है। कबीर जिस युग में जन्मे थे उसके अंतर्गत बाह्यचारों का प्राधान्य था। लोग कर्मकांड, तीर्थ-व्रत जैसे बाह्याडंबरों के चक्कर में फंसे हुए थे। इस विषय में हजारी प्रसाद द्विवेदी *कबीर* पुस्तक में लिखते हैं - "कबीर सहज ही गल जाने वाले जीव नहीं थे, उनकी भेदक दृष्टि से वेश और भूषा की व्यर्थता छिप नहीं सकती थी, थोथा तर्क और कुटिल तत्वज्ञान उन्हें भरमा नहीं सकता था।" (113)

हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन कबीर की उच्च विचार शक्ति को प्रतिबिंबित करता है। यथार्थता और कृत्रिमता कबीर की सूक्ष्म दृष्टि से छिप नहीं सकती थी। उनकी भेदक दृष्टि में मनुष्य की वास्तविक मनोवृत्ति को समझने की अद्भुत शक्ति थी। कोई भी मनुष्य वाग्जाल द्वारा, अथवा आकर्षक वेशभूषा के द्वारा कबीर को प्रभावित नहीं कर सकता था। कबीर, मनुष्य की बाहरी वेशभूषा से आकर्षित होने वाले जीव नहीं थे, वे मनुष्य के आंतरिक सौंदर्य के आग्रही थे। उनकी पारखी नजर मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति और कृत्रिम व्यवहार में अंतर करना जानती थी।

कबीर की निर्भीकता को वर्णित करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी आगे लिखते हैं-

"हम घर जारा आपना लिया मुराड़ा हाथ,

अब घर जारो तासु का जो चले हमारे साथ।" (126)

कबीर स्वभाव से फक्कड़ थे, वे अपना घर जला कर हाथ में मुराड़ा लेकर निकल पड़े थे और उसी को साथी बनाना स्वीकृत करते थे जो उन्हीं के विचारों के अनुरूप व्यवहार कर सके। कबीर के कहने का भाव यह है कि उन्होंने सांसारिक सुख-साधनों के प्रति पूर्ण रूप से विरक्ति धारण कर ली है, जो व्यक्ति उनके बताए मार्ग का अनुसरण करना चाहता है, उसे भी सांसारिक वस्तुओं का आकर्षण त्यागना होगा। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि कबीर सच्चे संत होने के साथ स्पष्टवादी भी थे। उन्होंने सच्चा साथी उसी को माना जो उनके समान फक्कड़ हो, धन-दौलत, समाज के वैभव तथा भोग-विलास से निर्लिप्त। कबीर धार्मिक पाखंड, आडंबर और अंधविश्वासों के कट्टर विरोधी थे।

मंगला रानी द्वारा लिखित *हिंदी साहित्य मूल्यानिवेषण* पुस्तक में कबीर के विषय में आचार्य रजनीश द्वारा कहा गया कथन दृष्टव्य है- "कबीर आग है। एक घूंट भी पी ली तो भीतर अग्नि भभक उठे-सोई अग्नि जन्मों-जन्मों की।" (22) आचार्य रजनीश द्वारा कहा गया उपर्युक्त कथन कबीर के ज्ञान-आलोक, उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा तेजस्विता तथा उर्जस्विता का द्योतक है। उनकी वाणी से निस्तृत अग्निबाण समाज की विकृतियों, विसंगतियों बाह्य आडंबरों को भस्मीभूत करने में समर्थ हैं।

एक मान्यता के अनुसार मनुष्य को काशी में मरने पर स्वर्ग तथा मगहर में मरने पर नरक मिलता है, इस विचार का खंडन करने के लिए कबीर ने ईश्वर के प्रति अपने दृढ़ विश्वास

का परिचय देते हुए मगहर में प्राण त्यागे। कबीर के उपर्युक्त दृढ़ विश्वास को वर्णित करते हुए हरिशंकर परसाई *ऐसा भी सोचा जाता है* पुस्तक में लिखते हैं-

"ज्यों काशी ल्यों ऊसर मगहर, राम बसे जीय मोरा,

जो कबीर काशी मरे रामहि कौन निहोरा" (115)

उपर्युक्त पंक्ति से पता चलता है कि कबीर सर्वथा निडर, स्पष्टवादी और प्रखर क्रांतिकारी थे। उनकी कथनी और करनी में अंतर नहीं था। उनके राम अपने भक्तों के प्रति परम दयालु थे। कबीर का विचार था कि यदि स्वर्ग जाने के लिए काशी में मरना जरूरी है तो फिर राम का शरणागत बनने की क्या आवश्यकता है?

हजारी प्रसाद द्विवेदी *कबीर* पुस्तक के अंतर्गत कबीर की सशक्त और निर्भीक वाणी का उल्लेख करते हुए लिखते हैं- "क्या यह वही आदमी है..... जो क्षण भर के लिए भी अपने ज्ञान को नहीं भूलना चाहता और जिसकी उक्तियां प्रतिपक्ष के ऊपर सीधा आघात करती हैं! परंतु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। सरल आदमी ही प्रचंड होता है।" (131)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के निडर, सरल और आत्मविश्वास से परिपूर्ण व्यक्तित्व को चित्रित किया है। उनकी सरलता उनके विनीत रूप को प्रतिबिंबित करती है और निष्पक्ष वैचारिकता उन्हें प्रचंड और उग्र स्वरूप प्रदान करती है।

कबीर घर गृहस्थी में रहे हुए पंडित और शेख को नितांत निरीह प्राणी समझते हैं और उनके प्रति लापरवाही दर्शाते लक्षित होते हैं। कबीर की इसी लापरवाही को वर्णित करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी आगे लिखते हैं- "यही लापरवाही कबीर के व्यंग्यों की जान है। सच पूछा जाए तो आज तक हिंदी में ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। परंतु इस लापरवाही के कारण ही इन आक्रमणों में एक सहज-भाव और एक जीवंत काव्य मूर्तिमान हो उठा है।" (131)

हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर के अनन्य उपासक थे परंतु उनकी कथनी को अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं समझा जा सकता। उन्होंने कबीर के बारे में जो कहा, वह पूर्ण रूप से कबीर के स्वभाव से और व्यवहार से वैसा ही लक्षित होता था। कबीर के व्यवहार में लापरवाही इस कारण से दिखाई देती है क्योंकि उनकी कथनी और करनी में यत्किंचित भी अंतर नहीं था।

उन्होंने जो कहा, पूर्ण रूप से निष्पक्ष होकर कहा, बिना किसी लाग-लपेट के कहा। जब उन्होंने मानव समाज के अंतर्गत पाखंडों की भर्त्सना की, तो बिना किसी भेदभाव के की, उन्होंने मुसलमानों को भी फटकार लगाई और हिंदुओं को भी। उन्होंने सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य प्रहार किए, किसी एक व्यक्ति, जाति अथवा संप्रदाय पर नहीं।

टीकाकार खेमराज श्रीकृष्णदास कृत *मूलबीजक* में कबीर ने धर्म के नाम पर पाखंडियों के पाखंडवाद की पोल खोलते हुए बलि-प्रथा के समर्थकों को फटकारते हुए लिखा है-

" काजी कार्य करहु तुम कैसा, घर-घर जिबह करावहु भैंसा।

बकरी मुर्गी किन्ह फुरमाया, किसके कहे तुम छुरी चलाया।

दर्द ना जानहु पीर कहावहु " (37)

अर्थात् जीव हत्या करवाकर तुम निरीह पशुओं को असहनीय पीड़ा देते हो और स्वयं पीर कहाते हो, यह तो घोर विरोधाभास है। उपर्युक्त कथन के माध्यम से कबीर दया हीन धर्मावलंबियों से प्रश्न करते हैं कि वे किसके कहने पर इन वाणी विहीन पशुओं पर निर्दयता पूर्वक हथियारों का प्रयोग करते हैं। पीर तो वे होते हैं जो दूसरों की पीड़ा को समझते हैं और उस पीड़ा को दूर करने का उपाय तलाश करते हैं।

उपर्युक्त पंक्तियों के संदर्भ में *भारतीय परंपरा की खोज* पुस्तक में भगवान सिंह कहते हैं- "भ्रमर पुष्प को क्षति पहुंचाए बिना उस का रस ग्रहण करता है।" (18) भगवान सिंह के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि अपनी उदर पूर्ति के लिए पुष्प का रस ग्रहण करते हुए अगर एक छोटा सा कीट सजगता धारण कर सकता है कि पुष्प को कोई हानि ना हो तो फिर मानव तो प्रकृति द्वारा रचित सर्वाधिक विवेकशील और सजग प्राणी है, उससे तो प्राणी जगत को अधिक उदारता की अपेक्षा है।

उपर्युक्त पंक्तियां धार्मिक विसंगतियों पर प्रहार करती दृष्टिगत होती हैं। धर्म के नाम पर जीव हत्या करके धर्म के ठेकेदार किस प्रकार मानव मूल्यों का हनन कर रहे हैं। इस विकृति पर कबीर ने धर्म के नाम पर अमानवीय कार्य करने वालों की कुवृत्ति को प्रतिबिंबित किया है, जिससे जीवन मूल्यों के प्रति विरक्त मानसिकता को झकझोरा तो गया ही है, साथ ही जनसाधारण के अंतर्मन में भी सजगता का भाव जागृत करने का सार्थक प्रयास किया गया है।

कबीर ग्रंथावली में रामकिशोर शर्मा कबीर के निष्पक्ष और सत्यान्वेषी व्यंग्यकार के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- "उनकी वाणी में जो तीखा और तल्लख व्यंग्य है उससे भी भावोन्मेष होता है लेकिन यह भावोन्मेष माधुर्य वर्ग का नहीं है बल्कि ओज वर्ग का है। इससे व्यवस्था के प्रति आक्रोश और तिलमिलाहट होती है।" (77)

रामकिशोर शर्मा के कहने का भाव यह है कि कबीर की वाणी द्वारा पाठक के अंतर्मन में भावुकता का समावेश होता है, परंतु इस भावुकता का आधार, माधुर्य- भाव नहीं है। मनुष्य, प्रेम, स्नेह अथवा राग के आधार पर ही भावुक नहीं होता, व्यवस्था के प्रति विरोध का स्वर भी वह भावुक होकर ही बुलंद करता है। राष्ट्र की रक्षा के लिए वीर सैनिक जब अपने प्राण हथेली पर रखकर, युद्ध क्षेत्र में उतरते हैं, तब उनके अंतर्मन में भी भावोन्मेष होता है, परंतु वह ओजप्रधान होता है। कबीर, प्रकृति के विपुल सौंदर्य से अनभिज्ञ नहीं थे, परंतु उसके प्रति उनकी भावना तटस्थ थी, परंतु किसी को दुखी देखकर वे तटस्थ नहीं रह सकते थे, इस संबंध में रामकिशोर शर्मा आगे लिखते हैं- "छल- छल करती हुई नदी का जल, प्रकृति में खिलने वाले फूलों की गंध, उनके बैरागी मन को आकर्षित नहीं कर पाती किंतु दीन-दुखियों तथा सताए हुए लोगों की पीड़ा का आर्तनाद उन्हें अवश्य अभिभूत कर देता है। उसके एहसास से उचित अनुचित की मर्यादा तोड़ कर वे बिफर पड़ते हैं। अपने शरीर और प्राण हानि की चिंता किए बिना।" (77)

उपर्युक्त कथन के द्वारा कहा जा सकता है कि कबीर के भक्त और समाज सुधारक दोनों रूपों में अद्भुत समन्वय था। जहां एक ओर वे अपनी निर्गुण भक्ति के मार्ग को प्रशस्त करते थे तो दूसरी ओर वे अपने विवेक द्वारा समाज के प्रति अपने कर्तव्य-बिंदुओं को भी सुनिश्चित करते थे। वे धर्म और कर्म में संतुलन स्थापित करते हुए जीवन बिताते थे। कबीर की वाणी में व्यंग्य की तीक्ष्णता और अधिक प्रखरता के साथ उभर कर सामने आती है। रामकिशोर शर्मा के कथन द्वारा कबीर की हृदय की परदुख-कातरता की भावना का पता चलता है। कबीर जब दूसरों का दुख दूर करने के लिए अपने प्राण हथेली पर लेकर उतर जाते हैं तो जीवन मूल्यों के प्रति उनका आग्रह स्वतः सिद्ध हो जाता है।

टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार द्वारा तुलसी कृत श्रीरामचरितमानस में कई स्थानों पर व्यंग्य का प्रभाव दृष्टिगत होता है। नारद को एक बार यह अभिमान हो जाता है कि उन्होंने कामदेव को जीत लिया तो उन्हें अभिमान रहित करने के लिए भगवान विष्णु एक कल्पित नगर

गठित कर लेते हैं, जिसकी राजकुमारी विश्वमोहिनी स्वयंवर द्वारा अपने लिए सुदर्शन वर का चुनाव करना चाहती है। नारद उस नगर में पहुंचते हैं तो राजा अपनी पुत्री को मुनि नारद का आशीर्वाद दिलवाते हैं। नारद उस राज कन्या के रूप पर मोहित हो जाते हैं और राजकुमारी को आकृष्ट करने के लिए भगवान विष्णु से उनका रूप मांगते हैं, तब भगवान प्रत्युत्तर में कहते हैं-

"कुपथ मांग रुज व्याकुल रोगी, बैद ना देई सुनहु मुनि जोगी।

एहि बिचि हित तुम्हार मै ठयऊ, कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ॥" (127)

भगवान विष्णु द्वारा नारद को कहा गया उपर्युक्त कथन व्यंग्य में कहा गया है। अर्थात् नारद ब्रह्मर्षि होते हुए काम के अधीन होना चाहते हैं और इस प्रकार अपनी पूर्व तपस्या और तेजस्विता को खंडित करने में भी संकोच नहीं कर रहे परंतु भगवान भला ऐसा कैसे होने देंगे? जिस प्रकार रोग ग्रस्त व्यक्ति यदि कुपथ्य मांगता है तो वैद्य उसे नहीं देता, इसी प्रकार भगवान विष्णु नारद को पथभ्रष्ट होने के लिए कैसे प्रेरित कर सकते हैं? परोक्ष रूप से भगवान विष्णु नारद के सामने यह सुनिश्चित कर देते हैं कि वे उनका भला चाहते हैं इसलिए उन्हें काम के वश नहीं होने देंगे परंतु नारद मोह की अवस्था में लिप्त होने के कारण विष्णु का अप्रत्यक्ष संकेत समझ नहीं पाते।

उपर्युक्त प्रसंग को धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित मानव मूल्य व्याख्या कोश के अंतर्गत (विस्तारक मूल्य: भाग 2) में नीरू लिखती हैं- "अनंत इच्छाओं-वासनाओं का केंद्र यह मानव मन। अनंत प्रलोभनो-आकर्षणों-मृग मरीचिकाओं का तिलिस्म यह जगत। भटकने के आलंबन अनंत है, भ्रमित होने के रास्ते अनेक हैं। तब बेचारा मनुष्य क्या करें ?..... उत्तर है-आत्म नियंत्रण द्वारा।" (80)

आत्म नियंत्रण से हीन व्यक्ति शरीर और मन के आवेगों द्वारा भ्रमित होता रहता है। संसार के आकर्षण असीम हैं, जो मनुष्य को अपनी तरफ आकर्षित करते रहते हैं। मनुष्य एक आकर्षण से बचता है, तो दूसरा आकर्षण उसे अपने घेरे में ले लेता है। मनुष्य के भटकाव के असंख्य मार्ग हैं, असंख्य आलंबन हैं। आत्म नियंत्रण द्वारा ही जगत के आकर्षणों और प्रलोभनों से बचा जा सकता है। मन के भटकाव से क्या-क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं, इस विषय में वे

आगे लिखती हैं- "अहंकार अनुचित दिशाओं की ओर ले जाता रहेगा और हम ठौर-कुठौर भटकते रहेंगे। मन रूपी बेलगाम घोड़े के पीछे- पीछे भागते रहेंगे।" (80)

नीरू के कथन को नारद -विष्णु प्रसंग से समन्वित करके कहा जा सकता है कि विष्णु यह समझ चुके थे कि काम के वशीभूत होकर नारद की आत्म नियंत्रण शक्ति दुर्बल हो चुकी है और उन्हें मानसिक शक्ति से संपन्न करना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि उनके असंख्य वर्षों की तपस्या-साधना को क्षणिक मनोविकारों पर बलिदान नहीं किया जा सकता। आत्म नियंत्रण से हीन होकर ही नारद भगवान विष्णु से उनका दिव्य स्वरूप मांग बैठते हैं। उनकी मांग, वैज्ञानिकता के आधार पर भी तथ्यहीन सिद्ध होती है, क्योंकि प्रत्येक प्राणी का अपना मौलिक स्वरूप होता है, प्रकृति का कोई भी तत्व, अपना स्वरूप त्याग कर, किसी दूसरे स्वरूप को कैसे ग्रहण कर सकता है?

सीता स्वयंवर में श्रीराम द्वारा शिवजी का धनुष भंग किए जाने पर परशुराम अति क्रोध में राजा जनक की सभा में आते हैं और उस दौरान लक्ष्मण द्वारा उनके प्रति बहुत सी बातें व्यंग्य में कहीं जाती हैं। टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार द्वारा तुलसी कृत *श्रीरामचरितमानस* में परशुराम जब ऋषि विश्वामित्र से कहते हैं कि लक्ष्मण को वे परशुराम के बल, प्रताप और क्रोध के विषय में बताएं, ताकि वह उनके प्रति शालीनता का व्यवहार करें तब लक्ष्मण कहते हैं-

" लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा, तुम्हहि अछत को बरनै पारा।

अपने मुंह तुम आपनि करनी, बार अनेक भातिं बहु बरनी ॥" (247)

उपर्युक्त चौपाई में लक्ष्मण व्यंग्यपूर्वक परशुराम से कहते हैं कि उनके सुयश को उनसे अधिक अच्छा भला कौन वर्णित कर सकता है? उन्होंने अपने बल, प्रताप और क्रोध के विषय में अपने ही मुख से अनेक बार कहा है। परशुराम द्वारा अपने मुख से अपनी ही प्रशंसा किए जाने पर तुलसीदास लक्ष्मण द्वारा उन पर व्यंग्य प्रहार इसलिए करवाते हैं ताकि रामचरितमानस का अध्ययन करते समय पाठक इस तथ्य का स्मरण रखें कि अभिमान मनुष्य में अंतर्निहित वह दुर्गुण है जो उसकी शक्ति को कुंठित कर डालता है परिणाम स्वरूप अभिमानी व्यक्ति प्रतिपक्षी की शक्ति का आंकलन नहीं कर पाता।

अभिमान को बुरी आदत मानते हुए मृत्युंजय उपाध्याय धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश उदात्त मूल्य* के अंतर्गत लिखते हैं- "अभिमान..... एक दुर्व्यसन है

जिस के वशीभूत होकर व्यक्ति हर घड़ी अपनी बड़ाई का आनंद चाहता है। अभिमान मद का सूचक है।” (245)

उपर्युक्त प्रसंग में परशुराम अपनी वीरता का बखान करते हुए आनंदित होना चाहते हैं उनकी इस भावना में उनका अभिमान प्रदर्शित होता है। अभिमान उदात्त मूल्यों के व्यवहारिक रूप में बाधक बनता है अतः व्यंग्यात्मकता के द्वारा तुलसीदास जनमानस को अहंकार की वृत्ति से दूर रहने के लिए प्रेरित करते हैं।

श्रीनिवास शर्मा द्वारा संपादित *सूरदास और उनका भ्रमरगीत* पुस्तक में भी हमें व्यंग्य की छटा दृष्टिगत होती है। उद्धव श्री कृष्ण के मित्र थे, उन्हें अपने ज्ञान और पांडित्य पर बहुत अभिमान था। श्री कृष्ण उनके अभिमान की निवृत्ति के लिए उन्हें ब्रज भेजते हैं यह कहते हुए कि वे वहां जाकर ब्रज की गोपियों को ज्ञान का उपदेश दें ताकि गोपियां श्री कृष्ण से प्रेम करना छोड़ कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना करनी प्रारंभ कर दें। भ्रमरगीत में समग्रतः गोपी-उद्धव संवाद है। अनपढ़ गोपियों के प्रेम के सम्मुख उद्धव का ज्ञान और पांडित्य परास्त हो जाता है। एक गोपी उद्धव के योग मार्ग को व्यर्थ बताती हुई व्यंग्य में कहती है-

उधो! जोग बिसरि जनि जाहु।

बान्धहु गाठि कहूं जनि छूटै, फिर पाछे पछिताहु।

.....सूरदास नारियल ज्यो विष को करै वन्दना कीन्ही। (169)

गोपियों के कहने का भाव यह है कि हे उधो! तुम ब्रज से जाते समय अपने योग के पांडित्य को बिसर मत देना, यहीं ना भूल जाना। योग साधना को ऐसी गांठ में बांधना कि फिर यह खुल न पाए और आपको पछताना न पड़े। बहुमूल्य वस्तु को बड़ी सावधानी के साथ संभाल कर ले जाना पड़ता है।

उपर्युक्त कथन का व्यंग्य-अर्थ यह है कि गोपियां उद्धव के ज्ञान को नितांत तुच्छ समझती हैं और दृढ़ता पूर्वक कहती हैं कि ब्रज वासियों के लिए योग का उपदेश किसी काम का नहीं है अतः उद्धव को चाहिए कि वह योग के उपदेश की गठरी बांध कर ब्रज से पलायन कर जाए। श्री कृष्ण ने ब्रज वासियों के हित के लिए जो ज्ञान उद्धव के द्वारा भेजा था, गोपियां

उसे वापस लौटा रही हैं। ये योग साधना की बातें उन्हें विष से भरे नारियल के समान प्रतीत होती हैं अतः यह उनके लिए सर्वथा त्याज्य हैं।

गोपियों द्वारा कहा गया उपर्युक्त कथन शाश्वत जीवन मूल्यों से संबंधित है क्योंकि इसके अंतर्गत गोपियों का एकनिष्ठ प्रेम वर्णित है। प्रेम का भाव प्रत्येक युग में समान रूप से प्रासंगिक रहा है। प्रेम के कारण ही मनुष्य का परस्पर पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर जुड़ाव रहता है, आत्मीयता का भाव रहता है। पारिवारिक मूल्य, सामाजिक मूल्य और राष्ट्रीय मूल्यों का आधार प्रेम ही है।

सच्चे प्रेम में इतनी शक्ति होती है कि जिस आलंबन के प्रति प्रेम का सत्य भाव रखा जाता है, वह संबंधित व्यक्ति को अवश्य प्राप्त होता है। किसी भी कार्य को क्रियान्वित करने का विचार सर्वप्रथम मनुष्य के अंतर्मन में जागृत होता है। यथार्थ में उस कार्य का क्रियान्वयन तब होता है जब व्यक्ति के मन में उस कार्य के प्रति प्रेम का भाव उत्पन्न होता है, इस विचार को अजय तिवारी *आलोचना और संस्कृति* पुस्तक में उल्लेखित करते हुए कहते हैं- "प्रेम के बिना कोई विचार आचरण में नहीं बदलता।" (67)

अजय तिवारी द्वारा कहे गए कथन द्वारा जाना जा सकता है कि हृदयगत विचार तभी प्रायोगिक रूप ग्रहण करता है यदि उस विचार के प्रति प्रेम का भाव हो, जिस कार्य के प्रति मनुष्य प्रेम का भाव रखेगा, वही कार्य मनुष्य के आचरण द्वारा प्रतिबिंबित होगा।

ओमप्रकाश शर्मा द्वारा संपादित *बिहारी सार्धशती* में व्यंग्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलता है। बिहारी राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। राजा नव परिणीता पत्नी के आकर्षण में बंध कर राजकीय कार्यों के प्रति लापरवाह हो जाते हैं तब बिहारी उन्हें अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक करने के उद्देश्य से निम्नलिखित दोहा कहते हैं-

नहि परागु नहि मधुर मधु ,नहि विकासु इहि काल।

अलि कलि सों बंध्यो, आगे कौन हवाल।। (14)

बिहारी के कथन का भाव यह है कि पुष्प अभी कलिका के रूप में ही है, वह पूर्ण रूप से विकसित ही नहीं हुआ, भ्रमर यदि पुष्प के अविकसित रूप के प्रति अनन्य भाव से आसक्त है, तो पुष्प के पूर्णतः विकसित हो जाने पर भ्रमर की क्या स्थिति होगी? रीति काल के दौरान

राष्ट्र में लोकतंत्र नहीं था, जिसके अंतर्गत प्रजा शासक के सम्मुख निशंक भाव से अपना मत प्रस्तुत नहीं कर सकती थी, इसलिए बिहारी राजा जयसिंह के सम्मुख अप्रत्यक्ष रूप से उपर्युक्त दोहा कहते हैं। कविवर बिहारी राजा जयसिंह को उपर्युक्त दोहे के द्वारा उनके शासन से संबंधित कर्तव्य स्मरण दिलाना चाहते हैं। उनके कथन को रमाकांत शुक्ल द्वारा लिखित *भाति में भारतम्* पुस्तक के परिप्रेक्ष्य में उल्लेखित किया जा सकता है-

"शासकानाम् मदम् हेलयैव प्रजा,

यत्र हन्ति प्रजातन्त्ररक्षापरा।" (84)

अर्थात् प्रजातंत्र की रक्षा करने में तत्पर जनता शासकों के नशे को खेल खेल में उतार देती है। बिहारी भी उपर्युक्त दोहे के द्वारा राजा जयसिंह को यही समझाना चाहते हैं कि संगठनात्मक रूप से जनता अत्यंत शक्तिशाली सिद्ध होती है। राजा यदि पत्नी के आकर्षण में राजकार्य से विमुख हो जाता है तो प्रजा के मध्य असुरक्षा की भावना का प्रसार हो जाता है, उस स्थिति में वह तत्कालीन शासक को सिंहासन से उतारकर नए प्रतिनिधि का चुनाव कर सकती है।

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में उपर्युक्त कथन की सत्यता जानी जा सकती है। मुगल शासन के अंतिम चरण में शासकों की विलासप्रियता के कारण अनेक प्रदेशों ने अपना पृथक स्वतंत्र शासक चयनित कर लिया था। आचार्य नगेंद्र *हिंदी साहित्य का इतिहास* पुस्तक के अंतर्गत तत्कालीन बिलासी मुगल शासकों की अयोग्यता के दुष्परिणाम बताते हुए लिखते हैं- "1712 ईस्वी में इस साम्राज्य का पतन आरंभ होता है। लगभग 50 वर्ष तक शासन एक प्रकार से स्थिर न हो सका। राजगद्दी पर अल्पकाल के लिए लोग आते रहे। जो लोग अधिक समय के लिए आए, वे विलास में निमग्न रहने के कारण राज्य की देखभाल न कर सके।" (296)

उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि शासक के विलासी होने से राजकीय कार्य अव्यवस्थित होने लगते हैं। राष्ट्र की विभिन्न इकाईयों के प्रबन्धक अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने के प्रयास करने लगते हैं। जिससे राष्ट्र की सुरक्षा और अखंडता बाधित होती है।

2.2 भारतेंदु युग :

भारतेंदु युग से व्यंग्य की विस्तृत और मुखर धारा का प्रवाह प्रारंभ होता है। भारतेंदु न केवल उत्कृष्ट कवि, उत्तम नाटककार, प्रबुद्ध पत्रकार और बेहतरीन आलोचक थे अपितु प्रखर व्यंग्यकार भी थे। उनके द्वारा रचित एकांकी 'अंधेर नगरी चौपट राजा' व्यंग्य का सशक्त हस्ताक्षर है। इस एकांकी के माध्यम से उन्होंने ब्रिटिश शासन की अन्याय पूर्ण शासन व्यवस्था पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रहार किया है। क्योंकि विदेशी शासन के अंतर्गत प्रकट में तो उनकी शासन प्रणाली के विरुद्ध कुछ कहा नहीं जा सकता था। सुरेश आचार्य *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक में लिखते हैं- "भारतेंदु हरिश्चंद्र ने काव्य, नाटक और मुकरियों के माध्यम से समकालीन सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों तथा विद्रूपों पर व्यंग्य किए।" (26)

21वीं सदी की व्यंग्य रचनाएं पुस्तक के अंतर्गत बालेन्दु शेखर तिवारी भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा कहे गए कथन को उद्धृत करते हुए कहते हैं- "खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है,... खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विराट रूप अंग्रेज-हम तुम को प्रणाम करते हैं।" (6)

उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि भारतेंदु अपने व्यंग्य कथन के द्वारा ब्रिटिश शासकों की भारतीय संपदा की तरफ संकेतिक गिद्ध दृष्टि को दर्शाना चाहते हैं। ब्रिटिश शासकों की यह कूटनीति थी कि वे भारत के धनी वर्ग को अलग-अलग प्रकार के सम्माननीय खिताब देकर प्रसन्न किया करते थे, ताकि भारत की शासन व्यवस्था में वे लोग अंग्रेजी हुकूमत के साथ रहें। इस प्रकार धीरे-धीरे वे अपनी लालची वृत्ति द्वारा भारत का खजाना इंग्लैंड में पहुंचाते जा रहे थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र उपर्युक्त कथन के द्वारा भारतीयों को राष्ट्रीय मूल्यों का निर्वहन करने हेतु जागृत करना चाहते हैं ताकि भारतीय जनता कमर कस कर ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के लिए अपने सुप्त वीरत्व-भाव को जागृत करें और इस प्रकार भारत रूपी सोने की चिड़िया पंख विहीन होने से बच सके।

प्रताप नारायण मिश्र की भारतेंदु युग के उन्नयन में विशिष्ट भूमिका मानी जाती है। वे भारतेंदु हरिश्चंद्र के बहुत बड़े प्रशंसक थे। वे कवि, पत्रकार तथा निबंधकार होने के साथ-साथ उत्कृष्ट व्यंग्यकार भी थे। *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक में सुरेश आचार्य प्रताप नारायण मिश्र द्वारा मुफ्तखोर पाठकों के संबंध में कही गई पंक्तियों का उल्लेख करते हुए कहते हैं- "आठ मास बीते यजमान ! अब तो करो दक्षिणा दान।" (27)

उपर्युक्त कथन के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की टिप्पणी द्रष्टव्य है- "मुफ्त खोर पाठकों पर ऐसा तीव्र व्यंग्य भारतीय परिवेश में दुर्लभ है जो समकालीन पत्रकारिता लेखन आदि की स्थिति भी स्पष्ट करता है।" (27)

उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि प्रताप नारायण मिश्र पाठकों को पाठकीय कर्तव्यों के प्रति जागरूक करते हुए प्रेरित करना चाहते हैं कि समाचार पत्र अथवा पत्रिका मंगवाते वक्त वे उससे संबंधित भुगतान राशि प्रेषित करना विस्मृत न करें क्योंकि समाचार पत्रों के लेखन की निरंतरता के लिए आर्थिक साधनों की भी आवश्यकता रहती ही है।

प्रताप नारायण मिश्र द्वारा कथित व्यंग्य शाश्वत जीवन मूल्यों से संबंध रखता है क्योंकि जीवन की निरंतरता के लिए कुछ आधार सामग्री अपेक्षित रहती है और आधार सामग्री की उपलब्धि के लिए आर्थिक साधन अपेक्षित रहते हैं। किसी साधन की उपलब्धता होने पर देने वाले व्यक्ति को उसका देय प्रदान करना दूसरे मनुष्य का कर्तव्य बन जाता है और अपने कर्तव्य पालन में मनुष्य को क्षणभर का भी विलंब नहीं करना चाहिए, इसी संबंध में आबिद रिजवी द्वारा संकलित *चाणक्य सूत्र* में चाणक्य कहते हैं- "क्षणम प्रति काल विक्षेपम् नाकुर्यात् सर्व कृत्येषु।" (94)

उपर्युक्त कथन का अर्थ है कि मनुष्य को किसी भी निश्चित कर्तव्य के पालन में क्षण मात्र का भी विलंब नहीं करना चाहिए। प्रकृति निर्मित समग्र जगत में 'क्षण' का बहुत महत्व है। प्रकृति क्षण-प्रतिक्षण अपना स्वरूप परिवर्तित करती रहती है। भीषण गर्मी में, जब सूर्य आग उगलता है तो कुछ क्षणों बाद घनघोर घटाएं छा जाती हैं और मूसलाधार वर्षा होने लगती है। क्षण का महत्व इस तथ्य से भली-भांति सिद्ध हो जाता है कि जो क्षण बीत जाता है, वह पुनः लौटकर नहीं आता।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला छायावाद के चार स्तंभों में से एक हैं। 'कुकुरमुत्ता' कविता के अंतर्गत उन्होंने गुलाब और कुकुरमुत्ता के माध्यम से पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग का तुलनात्मक विवेचन किया है और गुलाब की तुलना में कुकुरमुत्ता की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया है। शिवकुमार शर्मा *हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां* पुस्तक के अंतर्गत निराला द्वारा लिखी गई कविता 'कुकुरमुत्ता' की वह पंक्ति उद्धृत करते हैं जिसके अंतर्गत कुकुरमुत्ता गुलाब से निशंक भाव से कहता है-

"अबे सुन बे गुलाब,

मत भूल गर पाई खुशबू, रंगो आब।" (469)

कुकुरमुत्ता गुलाब से ललकार कर कहता है कि उसे अपनी रंगत और सुगंध पर अभिमान नहीं करना चाहिए। पूंजीपति वर्ग पर व्यंग्य करते हुए निराला भी यही कहना चाहते हैं कि धनिक वर्ग को अपने आर्थिक साधनों की उपलब्धि का दर्प नहीं करना चाहिए। शेरजंग गर्ग *व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न* पुस्तक में धनंजय वर्मा के कथन को उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "कुकुरमुत्ता असफलता नहीं, व्यंग्य की सफलता है। मेरी दृष्टि में कुकुरमुत्ता का व्यंग्य विविध क्षेत्रीय एवं तीव्र है।" (127)

'कुकुरमुत्ता' कविता के भाव पक्ष को गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य *श्रीरामचरितमानस* के उस प्रसंग से संश्लिष्ट किया जा सकता है जहां श्रीराम राक्षसों द्वारा त्रस्त ऋषि-मुनियों को अभय दान देते हुए कहते हैं-

"निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाई पन कीन्ह।" (614)

निशाचर अन्यायी, अत्याचारी तथा शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और कुकुरमुत्ता कविता में भी गुलाब, शोषक और अन्यायी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, श्री राम ऋषि-मुनियों को उनसे परित्राण दिलाने के लिए उनके विरुद्ध युद्ध के लिए उद्यत हो जाते हैं उसी प्रकार निराला गुलाब को कुकुरमुत्ता के माध्यम से भुजा उठाकर ललकारते हैं और उसे श्रीहीन सिद्ध करते हैं। निराला समाज के शोषक वर्ग को स्मरण दिलाना चाहते हैं कि उनकी आर्थिक स्थिति की उत्तरोत्तर उन्नति उन मजदूरों और कर्मचारियों द्वारा सुनिश्चित होती है, जो रात दिन उनके कारखानों में अपना पसीना बहाते हैं और उनकी समृद्धि में वृद्धि करते हैं। यदि समाज में श्रमिक न हों तो गगनचुंबी इमारतें, बड़े-बड़े पांच सितारा होटल, नदियों पर बड़े-बड़े बांध तथा रेलवे लाइनों पर ऊंचे ऊंचे पुल निर्मित नहीं हो सकते। सच्चाई तो यह है कि समाज का प्रत्येक वर्ग किसी न किसी रूप में, दूसरे वर्ग पर निर्भर है, इसलिए सभी वर्गों को परस्पर सामंजस्य-भाव स्थापित करते हुए जीवन-यापन करना चाहिए।

सुरेश आचार्य *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक के अंतर्गत निराला के साहित्य में व्यंग्य की उपस्थिति बताते हुए लिखते हैं- "निराला के साहित्य में व्यंग्य के स्वर..... उनके काव्य, उनके उपन्यास और उनके समीक्षा चिंतन सभी में स्पष्ट दिखाई देते हैं।" (32)

निराला के व्यंग्य में अन्याय, शोषण और अत्याचार के प्रति विद्रोह के भाव का उल्लेख करते हुए *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* पुस्तक में सुभाष चंदर लिखते हैं- "निराला के व्यंग्य लेखन पर उनके विद्रोही स्वभाव की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। उनका व्यंग्यकार सामाजिक विसंगतियों के विरोध में खड़ा नजर आता है और उन पर तीक्ष्ण प्रहार करने में विश्वास रखता है।" (144)

सुभाष चंदर के कथन से यह स्पष्ट होता है कि निराला एक प्रखर विद्रोही व्यंग्यकार थे और सामाजिक और राष्ट्रीय विसंगतियों के प्रति पर्याप्त सजग थे। निराला, ओजस्विता से समन्वित साहित्यकार थे। ओजस्वी व्यक्तित्व को धारण करने वाले व्यक्ति के अंतर्मन में, समाज और राष्ट्र की विसंगतियों के प्रति आक्रोश का भाव प्रखर रूप से विद्यमान रहता है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' भारतेंदु युग के उत्कृष्ट विचारक थे जिनके व्यंग्य साहित्य में व्यंग्य की तीक्ष्णता का उग्र रूप दिखाई देता है। उनके रचना शिल्प पर सुरेश आचार्य *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक में राजकमल चौधरी के कथन को उद्धृत करते हुए कहते हैं- "'उग्र' शब्द के सच्चे अर्थों में क्रांतिकारी लेखक थे। जब वे ब्रिटिश सरकार के दमन चक्र से नहीं डरे तो वह समाज के पंडे-पुरोहितों से क्या डरते ? समाज के हर कुसंस्कार पर उन्होंने कुठाराघात किया।" (32)

उपर्युक्त कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि 'उग्र' एक स्पष्ट निर्भीक और निडर साहित्यकार थे। उनकी निर्भीक वैचारिकता उन्हें निष्पक्ष व्यंग्यकार की श्रेणी में सम्मान पूर्वक प्रतिष्ठित करने में पूर्णतया सक्षम है। यह तथ्य स्वयं प्रमाणित है कि शासक वर्ग से सामान्य नागरिक भयभीत रहता है। जब राष्ट्र पर विदेशी शासकों का आधिपत्य हो तो भय की मात्रा बढ़ जाती है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ब्रिटिश शासन के आतंक से कभी आतंकित नहीं हुई, निर्भीकता के भाव में वे अपना प्रतिद्वंदी नहीं रखते थे। व्यंग्य सत्यान्वेषी होता है, उग्र सच्चाई कहने में कभी पीछे नहीं हटे। ब्रिटिश शासन का दमनकारी चक्र जब उन्हें सत्य भाषण कहने से रती भर भी डिगा नहीं सका, तो समाज के पंडे, पुजारी और पुरोहित उन्हें क्या खाकर डराते ।

'उग्र' की उच्च व्यंग्य प्रहार क्षमता को सुरेश आचार्य *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक के अंतर्गत आचार्य नलिन विलोचन के कथन द्वारा सिद्ध करते हैं जब बंगला के एक लेखक उनसे

कहते हैं-"अंग्रेजों के पास बर्नार्ड शा है, अमेरिकनों के पास मार्क टवेन है, हम बंगालियों के पास परशुराम हैं, तुम्हारे पास क्या है? (33)

आचार्य नलिन विलोचन द्वारा दिए गए उत्तर का उल्लेख करते हुए वे आगे लिखते हैं-"तुम्हें इस बात का क्या पता कि हमारे पास पांडे बेचन शर्मा 'उग्र' है। हिंदी साहित्य का हास्य-व्यंग्य उग्र के साथ ही शुरू और खत्म होता हो ऐसी बात नहीं है फिर भी हिंदी के हास्य व्यंग्य साहित्य को विश्व साहित्य के समकक्ष रखने में उग्र ने सबसे समृद्ध योगदान किया है।" (33)

सुभाष चंद्र द्वारा लिखित *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* पुस्तक में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' अपनी व्यंग्य रचना 'रूपया' के माध्यम से भारत में बढ़ती हुई अर्थ संस्कृति को रूपए का मानवीकरण करते हुए दर्शाते हैं- "संसार में जब तक मेरा अस्तित्व है तब तक धर्म-कर्म, देश-विदेश, मंदिर-मस्जिद-गिरिजा, ईश्वर, विश्व प्रेम नगण्य है, सब नाचीज हैं! मेरी कृपा से देवता की मूर्ति में ज्योति आती है, मेरी कृपा से मित्र-मित्र रहता है, भाई-भाई रहता है।" (98)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से 'उग्र' ने समग्र संसृति को धन के समक्ष घुटने टेकते दर्शाया है। अर्थ-लाभ के आधार पर ही प्रत्येक कार्य की प्रतिबद्धता निर्भर है। धन प्राप्ति के सम्मुख सभी रिश्ते, भाईचारा, मित्र-प्रेम और देश-प्रेम इत्यादि जीवन मूल्य, मूल्यहीनता की स्थिति में डाल दिए जाते हैं। 'उग्र' के इस कथन को आबिद रिजवी द्वारा संकलित *चाणक्य सूत्र* के निम्न कथन के आलोक में देखा जा सकता है-

"नास्ति धनवंताम्मसुकर्म सुश्रमः।" (13)

उपर्युक्त कथन का आशय है कि धन के उपासक सुकर्म करने में श्रम नहीं करते। उनके जीवन का उद्देश्य केवल धन अर्जित करना होता है। उग्र का कथन भी धन के उपासक लोगों की तरफ ही संकेत करता है क्योंकि जहां कर्ता-धर्ता-हर्ता केवल धन ही होता है, वहां धर्म-कर्म, विश्व बंधुत्व इत्यादि बातों को महत्त्व नहीं दिया जाता।

वास्तविकता तो यह है कि धन की देवी लक्ष्मी की आराधना के लिए सदाचारी, संयमी और धर्मज्ञ होना आवश्यक होता है और प्राप्त धन को समाज हित, राष्ट्र हित के लिए प्रयुक्त करना होता है, इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए *सांस्कृतिक उत्थान का मार्ग* पुस्तक में रामसहाय लिखते हैं,"लक्ष्मी पूजा का यही विधान है कि हम श्रेष्ठ जीवन को अपनाकर स्वयं के विकास एवं राष्ट्र के संवर्धन में भागीदार बने।" (78)

रामसहाय के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि सदाचारी, संयम शील और धर्म परायण जीवन ही श्रेष्ठ जीवन कहलाने योग्य है और लक्ष्मी पूजन अर्थात् धन अर्जित करने की भी उत्तम रीति यही है कि उपार्जित धन को व्यक्तिगत उत्कर्ष तथा राष्ट्र उत्कर्ष के निमित्त प्रयोग में लाया जाए। जब राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक उन्नति के सोपान तय करेगा तो राष्ट्रहित स्वतः सुनिश्चित हो जाएगा, क्योंकि प्रत्येक नागरिक राष्ट्र का महत्वपूर्ण घटक होता है।

बाबू बालमुकुंद गुप्त भारतेंदु युग के एक अन्य प्रखर व्यंग्यकार हुए हैं उन्होंने अपने व्यंग्य स्तंभ 'शिव शंभू के चिट्ठे' के माध्यम से ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों पर प्रबल प्रहार किए। उन्होंने भाषा की कलिष्टता को समाप्त कर उसका साधारणीकरण किया ताकि सामान्य जनता पर भी उनकी लेखन प्रतिभा का अभीष्ट प्रभाव पड़ सके। शब्द की व्यंजना शक्ति का प्रयोग तथा शब्दों के बाहुल्य के कारण उनका व्यंग्य सर्वसाधारण के लिए तीखा और पठनीय बन पाया।

श्रीलाल शुक्ल तथा प्रेम जनमेजय द्वारा संपादित पुस्तक *हिंदी हास्य व्यंग्य संकलन* के अंतर्गत बालमुकुंद गुप्त अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़ने के अवसर पर उन्हें शासन और कुशासन के मध्य अंतर बताते हुए कहते हैं- "कृपा करके बतलाइए क्या कर्तव्य आप इस देश की प्रजा के साथ पालन कर चले, क्या आंखें बंद करके मनमानी करना, हुकुम चलाना और किसी की कुछ न सुनने का नाम शासन है?" (13) भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति के अवसर पर, बाबू बालमुकुंद गुप्त ब्रिटिश शासन की भर्त्सना करते हैं। वे ब्रिटिश शासकों की मनमानी हरकतों के लिए उन्हें उपालंभ देते हैं कि राष्ट्र के नागरिकों के हितों की रक्षा न करते हुए, उन्हें सुखी रखने के कोई प्रयत्न न करते हुए, केवल अपना हुक्म सुनाते जाना, सुशासन का प्रतीक नहीं है। शासक को प्रजा की पुकार पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिए, प्रजा की समस्याओं के निराकरण के उपाय करने चाहिए और उन्हें अधिक से अधिक सुख पहुंचाने के यत्न करने चाहिए।

इतिहास साक्षी है कि भारत में ऐसे ऐसे प्रजा पालक शासक भी हुए हैं जिन्हें प्रजा के हितों का सदैव ध्यान रहता था, इस संदर्भ में गुप्त काल की उत्कृष्ट शासन व्यवस्था को वर्णित करते हुए भगवतशरण उपाध्याय *गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास* पुस्तक में लिखते हैं- "राजा उस सूर्य की भांति कर्मचेता था जो एक बार रथ में घोड़े जोत चुकने पर फिर कभी विरमता नहीं, उस पवन की भांति था जो रात दिन चलता है, उस शेषनाग की तरह था जो पृथ्वी का भार अपने फणों पर सदा से उठाए हुए है।" (298)

गुप्त काल के अंतर्गत प्रांतीय शासकों के चयन में अनेक अहर्ताएं सम्मिलित थीं, उन अहर्ताओं के आधार पर ही प्रांतीय शासक, जिसे 'गोप्ता' कहा जाता था, चयनित होता था-इस विषय में भगवतशरण उपाध्याय आगे लिखते हैं- "गुप्त शासन में प्रांतीय शासक भी गोप्त कहलाता था। स्कंद गुप्त ने अपने जूनागढ़ वाले लेख में सौराष्ट्र के कठिन गोप्ता पद के लिए उचित व्यक्ति चुनने के अर्थ विचार करते दिन रात एक कर दी है। उस अभिलेख में शासक के लिए अपेक्षित गुणों की एक लंबी सूची दी हुई है।" (298)

उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य में देखने से पता चलता है कि गुप्तकालीन शासक प्रजा के हितार्थ सदैव सजग रहते थे और उनके शासनकाल में प्रशासनिक नियुक्तियां योग्यता के आधार पर की जाती थीं, प्रतिभागियों को चयन-प्रक्रिया के अनेक चरणों से गुजरना पड़ता था।

बाबू बालमुकुंद गुप्त यदि भारत की स्वतंत्रता के बाद अधिक समय तक जीवित रहते तो राष्ट्र के राजतंत्र की विसंगति युक्त चयन प्रणाली देखकर आश्चर्यचकित रह जाते। वे लाख कोशिश करने पर भी यह समझ न पाते कि छोटे-छोटे प्रशासनिक पदों की रिक्तियां भरने के लिए अहर्ताओं की एक लंबी सूची दी जाती है, एक निश्चित आयु सीमा निर्धारित की जाती है, उस आयु सीमा के अनंतर कोई प्रतियोगी चाहे कितना भी सुयोग्य हो, उसे मन मार कर रह जाना पड़ता है परंतु राष्ट्र के नीति नियामक चयनित होने के लिए न कोई निश्चित शिक्षा अनिवार्य है न उन पर निश्चित आयु सीमा का कोई प्रतिबंध है। राष्ट्र के वर्तमान शासकों और गुप्तकालीन शासकों की चयन प्रणाली में आकाश पाताल का अंतर दृष्टिगत होता है।

पंडित बालकृष्ण भट्ट का भारतेंदु युग के व्यंग्यकारों में उल्लेखनीय स्थान है। उनके व्यंग्य लेखन में समाज सुधार के प्रति अधिक आग्रह दृष्टिगत होता है। उन्होंने व्यंग्य कथा, व्यंग्य नाटक तथा व्यंग्य निबंध सभी पर भरपूर लेखनी चलाई है परंतु सर्वाधिक सफलता उन्हें व्यंग्य-निबंध लेखन में ही मिली। उनके अंतस का व्यंग्यकार सामाजिक और धार्मिक आडंबरों पर सर्वाधिक प्रहार करता दिखाई देता है। पराधीन भारत की सामान्य जनता की कर्महीनता, रूढ़िवादिता और धार्मिक क्षेत्र में पनपी विसंगतियों पर उन्होंने व्यंग्यपूर्ण आक्षेप किया है।

सुभाष चंद्र *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* पुस्तक के अंतर्गत ऊंचे कुल का मिथ्या अभिमान पालने वालों के विषय में बालकृष्ण भट्ट का मत उद्धृत करते हुए कहते हैं- "विद्या बिद्या तो हम कुछ जानते नहीं न ही सद्वृत्त जाने क्या है? हां पुरखों के समय से जो बित्ती भर

दक्षिणा बँध गया आज तक बराबर पूजाते हैं। और अंग्रेजी फैशन भी इख्तियार करते जाते हैं और फिर अब इस संसार में कौन ऐसा होगा जो मिलावटी पैदाइश का न हो।" (64)

बालकृष्ण भट्ट ने उपर्युक्त कथन के माध्यम से ब्राह्मणों के आडंबर को अनावृत किया है। प्राचीन काल से जिस-जिस ब्राह्मण के जो-जो यजमान रहे हैं, उनकी आगामी पीढ़ियां यजमानों की आने वाली पीढ़ियों से तय की गई दक्षिणा बराबर पाती जा रही हैं, ब्राह्मण चाहे पांडित्य के नाम पर कोरे ढपोरशंख ही क्यों न हो। ब्राह्मण वर्ग एक तरफ तो पुरातनपंथी बन कर अपनी मूलभूत आवश्यकताओं का प्रबंध करवा लेते थे और दूसरी तरफ अंग्रेजी फैशन का अंधानुकरण करके आधुनिक होने का भी ढोंग करते रहते थे। यजमानों द्वारा आजीविका का प्रबंध करवा कर वे श्रम से भी बच जाते थे। कर्मकांडीय पद्धति के अध्येता होने से वे सामान्य जनता को भ्रमित करने में सफल हो जाते थे।

भारतीय परंपरा की खोज पुस्तक में भगवान सिंह कर्मकांडी ब्राह्मणों द्वारा समाज में भ्रम जाल फैलाने के संबंध में कहते हैं- "देव शक्तियों को अपने कर्मकांड से वश में करके उनसे इच्छित काम कराने और फल प्राप्त करने का दावा करने वाले, अवस्था की भिन्नता के बाद भी श्रम से वैसे ही मुक्ति और वैसे ही सम्मान प्राप्त करने में सफल हुए जो श्रम कार्य से मुक्त वृद्ध जनों को प्राप्त था।" (176)

मनुष्य द्वारा कर्म और श्रम के प्रति उदासीनता के भाव के कारण देव तथा मनुष्य की मूल्य प्रणाली में अंतर आ गया, इस संबंध में भगवान सिंह आगे कहते हैं- "मनुजात देवों की मूल्यप्रणाली देव काल के देवों के ठीक उल्टी हो गई। देव युग में श्रम, व्रत कर्म और इन के माध्यम से अर्थार्जन या अधिकाधिक उत्पादन समाज का आदर्श था और इसके आधार पर ही देव असुरों से अपने को श्रेष्ठ मानते थे।" (176)

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से भगवान सिंह कहना चाहते हैं कि जो लोग श्रम के द्वारा अधिक अर्थ-लाभ प्राप्त करते थे, जीवन के सुख साधनों को अपने अथक मेहनत द्वारा अर्जित करते थे, वे लोग देवता कहलाए। कर्मशीलता के आधार पर उन्होंने अपने-आप को असुरों से श्रेष्ठ माना। कालांतर में उपर्युक्त वैचारिकता में खोट उत्पन्न हो गया। कम से कम श्रम करना श्रेष्ठता का मापदंड माना जाने लगा। इस विषय में भगवान सिंह आगे लिखते हैं- "दूसरी सभ्यताओं में श्रेष्ठता का निर्धारण शक्ति अथवा संपदा से होता था, भारतीय समाज में इस खास मोड़ के बाद श्रेष्ठता का मानदंड निकम्मापन बन गया।" (176)

उपर्युक्त विचारात्मकता यह तथ्य उद्घाटित करती है कि ब्राह्मणों ने चतुराई से कर्मकांड की पद्धति के द्वारा जनमानस को इच्छित फल प्राप्ति का लोभी बना दिया और कर्मकांड के सर्वनियंता वे स्वयं बन गए। इस आधार पर वे अपने को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने में सफल हुए और श्रमजीवी बनने से बच गए।

2.3 उत्तर भारतेंदु युग :

भारतेंदु युग के व्यंग्यकारों के संक्षिप्त परिचय के बाद उत्तर भारतेंदु युग के कुछ व्यंग्यकारों के बारे में जानना अति आवश्यक है, क्योंकि भारतेंदु युग के दौरान भारत पर विदेशी शासकों का आधिपत्य था। उस समय भारतीय जनता ब्रिटिश साम्राज्य के अत्याचारों और विसंगति पूर्ण व्यवहारों से आक्रांत थी और उनका हृदय उनसे परित्राण पाने हेतु छटपटा रहा था। भारतेंदु युगीन व्यंग्यकारों ने ब्रिटिश शासन के असंगत व्यवहार पर आक्षेप किए।

स्वतंत्रता के पश्चात् बेशक भारत माता अपने बलिदानी, त्यागी और समर्पित सुपुत्रों के असमय कालग्रासी होने पर अशांत थी परंतु अपने शेष नागरिकों तथा भावी पीढ़ियों के स्वतंत्र और सुरक्षित भविष्य के प्रति आश्वस्त भी थी। जब भारत का शासन स्वदेशी नेताओं के हाथ में आया तो उन्होंने 'बिल्ली के भागों छींका टूटा' की कहावत को चरितार्थ किया। वे दोनों हाथों से भारत की समृद्धि पर अपना एकाधिकार समझते हुए तिजोरियां भरने लगे। स्वहित को प्राथमिकता दी जाने लगी और राष्ट्र हित की बातें ठंडे बस्ते में डाली जाने लगीं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनमानस में अपने उत्कृष्ट भविष्य के प्रति कितनी सुनहरी कल्पनाएं थीं, दीर्घ विश्वास था। पूर्ण स्वराज्य का अर्थ वे समझते थे-पूर्ण अधिकार, अर्थात् उन्हें यह विश्वास था कि स्वतंत्र भारत में अब भारतीय मूल के लोग ही राष्ट्र का कार्यभार संभालेंगे अतः समस्त नागरिकों के जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होगी और उन्हें हर प्रकार से सुरक्षित वातावरण मिलेगा। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सभी स्वप्न कपोल कल्पित सिद्ध हुए। ऊंचे ऊंचे राष्ट्रीय पदों पर नेताओं के संबंधी आसीन हुए और भ्रष्टाचार की सुरसा का जो मुख खुला, तो वह आज तक खुला हुआ ही है। उस समय तत्कालीन व्यंग्यकार अपने व्यंग्य कर्म में तत्पर हुए। उनके मन में भारतीय नेताओं द्वारा भारत की समृद्धि को दीमक की भांति चाटे जाने पर आक्रोश उत्पन्न हुआ।

हरिशंकर परसाई उत्तर भारतेंदु युग के प्रथम और प्रखर व्यंग्यकार हैं। उन्हें आधुनिक व्यंग्य साहित्य का प्रणेता भी माना जाता है। व्यंग्य के सत्य स्वरूप की पहचान बताते हुए सुरेश आचार्य *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक के अंतर्गत लिखते हैं- “सच्चे व्यंग्य की यह खासियत होती है कि वह मूल्यों की आपाधापी और सक्रांति का चित्र ही नहीं देता बल्कि नए मूल्यों की छटपटाहट भी उसमें होती है। वह महज नकारात्मक या चिढ़ाने वाली योजना नहीं, वरन् क्रांतिकारी निर्माण चेतना से संपन्न लेखन है।” (39)

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य लेखन व्यंग्य की उपर्युक्त कसौटी पर अक्षरशः खरा उतरता है। वे प्रशासन, राजनीति, धार्मिक तथा शैक्षणिक सभी क्षेत्रों की मूल्यहीनता पर प्रहार करते हैं। व्यंग्य लेखन की ओर प्रवृत्त होने का कारण बताते हुए कमलाप्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित पुस्तक *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* के अंतर्गत हरिशंकर परसाई का कथन है- “चेतना संपन्न मनुष्य उचित और अनुचित में भेद करना जानता है। जब वह अपने आसपास विसंगति युक्त परिवेश अनुभव करता है तो या वह अपने अंतर्मन की व्यथा में घुलता रहता है या उन विसंगतियों के विरुद्ध लड़ने को तत्पर हो जाता है।” (118) उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि जो व्यक्ति राष्ट्र और समाज के प्रति जागरूक है, जो राष्ट्र और समाज की कमियों और खूबियों से बखूबी वाकिफ है, वह व्यक्ति राष्ट्रीय अथवा सामाजिक विसंगतियों के प्रति अवश्य चिंतित होगा। चिंता को अपने अंतर्मन में रखते हुए या तो वह अवसादग्रस्त हो जाएगा अथवा विसंगतियों के निराकरण के उपाय तलाशने के प्रति कटिबद्ध हो जाएगा। हरिशंकर परसाई ने चिंतित होने की बजाय, विसंगतियों के विरुद्ध लड़ना बेहतर समझा।

हरिशंकर परसाई ने इस विषय में आगे लिखा है- “रोना नहीं है, लड़ना है। जो हथियार हाथ में है, उसी से लड़ना है। मैंने तब ढंग से इतिहास, समाज, राजनीति और संस्कृति का अध्ययन शुरू किया। साथ ही एक औघड़ व्यक्तित्व बनाया और बहुत गंभीरता से व्यंग्य लिखना शुरू कर दिया।” (118)

उपर्युक्त कथन के द्वारा हरिशंकर परसाई व्यंग्य क्षेत्र में अपने पदार्पण का कारण बताते हैं। व्यंग्य लेखन एक पीड़ा जन्य कार्य है क्योंकि जो रचनाकार समाज व राष्ट्र की विसंगतियों की निवृत्ति के लिए लेखन कार्य में प्रवृत्त है, उसके अंतर्मन में सर्वप्रथम शोषण, अन्याय और अनोचित्य के प्रति पीड़ा का भाव घनीभूत होगा जिससे विवश होकर वह व्यंग्य लेखन की ओर प्रवृत्त होगा।

उपर्युक्त पंक्तियों से व्यंग्यकार के हृदय की पीड़ा, वेदना और छटपटाहट प्रखर रूप से ध्वनित होती है। जो न्याय प्रिय होगा, जो मनुष्य मनुष्य में समानता का पक्षधर होगा, उसके हृदय में वर्तमान परिवेश में व्याप्त विसंगतियों के निराकरण के लिए उद्वेग होगा, भागमभाग होगी, तिलमिलाहट होगी कि क्यों नहीं एक समर्थ मनुष्य दूसरे असमर्थ मनुष्य के प्रति करुणा युक्त व्यवहार करता? क्यों कुछ लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए गांधारी बन जाते हैं और उचित-अनुचित में अंतर समझते हुए भी चुप्पी साध जाते हैं।

हरिशंकर परसाई की पुस्तक *तिरछी रेखाएं* के आवरण पृष्ठ पर लिखित रविंद्रनाथ त्यागी का यह कथन उन्हें कबीर के समकक्ष ला खड़ा करता है- “परसाई की रचनाएं राजनीति, साहित्य, भ्रष्टाचार, आजादी के बाद का ढोंग, आज के जीवन का अंतर्विरोध, पाखंड और विसंगतियों को हमारे सामने इस तरह खोलती हैं जैसे कोई सर्जन चाकू से शरीर काट काट कर गले अंग आपके सामने प्रस्तुत कर देता है। उनका व्यंग्य मात्र हंसाता नहीं है, वरन् तिलमिलाता है।” (आवरण पृष्ठ)

रविंद्रनाथ त्यागी द्वारा कहा गया उपर्युक्त कथन अक्षरशः सत्य है। हरिशंकर परसाई का व्यंग्य-लेखन एक चिकित्सक की भांति कार्य करता है। जिस प्रकार शरीर के किसी अंग के व्याधि- युक्त हो जाने पर चिकित्सक उसे शरीर से पृथक कर देता है, ताकि रोगी की प्राण- रक्षा हो सके। उसी प्रकार हरिशंकर परसाई समाज रूपी शरीर से विसंगति रूपी व्याधि को अपने व्यंग्य-उपकरण के द्वारा पृथक कर देना चाहते हैं ताकि एक स्वस्थ एवं परिष्कृत समाज का निर्माण हो सके। हरिशंकर परसाई को आधुनिक काल का कबीर कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी। कबीर के समान ही उनके लिए न कोई अपना था, न पराया। उनकी जीवनशैली कबीर की भांति 'न काहू से दोस्ती न काहू से बैर' उक्ति पर आधारित थी। इस विचार को प्रकाश डालते हुए रविंद्रनाथ त्यागी आगे लिखते हैं- "कबीर जैसी उनकी अवधूत और निःसंग शैली उनकी विशिष्ट उपलब्धि है और उसी के द्वारा उनका जीवन चिंतन मुखर हुआ है। उनके जैसा मानवीय संवेदना में डूबा हुआ कलाकार रोज पैदा नहीं होता।" (आवरण पृष्ठ)

रविंद्रनाथ त्यागी के उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि हरिशंकर परसाई का व्यंग्य लेखन स्वातंत्र्योत्तर भारत का वास्तविक प्रतिबिंब है। राजनीति के धुरंधर नेताओं, धर्म के ठेकेदारों तथा ढोंगी और पाखंडी समाज सेवकों के विद्रूपता पूर्ण व्यवहार की जो कलाई हरिशंकर परसाई ने खोली है, वह बेमिसाल है।

नर्मदा प्रसाद खरे हरिशंकर परसाई के विषय में *दो नाक वाले लोग* पुस्तक के अंतर्गत कहते हैं- "परसाई की प्रतिभा भारतीय भाषाओं में अद्वितीय है। इतना सजग, तीव्र, तीखा और चेतन व्यंग्य लेखक देश का गौरव है।" (5) नर्मदा प्रसाद खरे द्वारा कहा गया उपर्युक्त कथन राष्ट्र और समाज के प्रति हरिशंकर परसाई की चैतन्यता की पुष्टि करता है। राष्ट्र की सीमा की रक्षा करने वाला सैनिक प्रत्यक्ष रूप से अपने कर्तव्य के प्रति प्रतिबद्ध रहता है और एक निष्पक्ष व्यंग्यकार, अप्रत्यक्ष रूप से एक सजग प्रहरी की भूमिका अदा करता है। हरिशंकर परसाई अपने उत्कृष्ट व्यंग्य लेखन के द्वारा, असंदिग्ध रूप से भारत के भाल को गौरवमंडित करते हैं। हरिशंकर परसाई की तुलना कबीर और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला से करते हुए वे आगे लिखते हैं- "उनके व्यक्तित्व में कबीर सा- फक्कड़ पन तथा उनके लेखन में निराला की जीवंतता संमन्वित है।" (5)

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि हरिशंकर परसाई सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना से सम्प्राणित व्यंग्यकार हैं। कबीर-सा फक्कड़पन उनकी निर्भीकता निडरता और निष्पक्ष विचारात्मकता का संकेतक है और निराला-सी जीवंतता उनकी व्यंग्यात्मकता को प्रभावशाली, सार्वयुगीन तथा प्रासंगिक बनाती है। व्यंग्य विधा के क्षेत्र में हरिशंकर परसाई का व्यंग्य लेखन वास्तविक अर्थों में जीवन मूल्यों और सामाजिक सरोकारों से समन्वित है।

यद्यपि हरिशंकर परसाई ने राजनीतिक मूल्यों के अवमूल्यन के प्रति व्यंग्य प्रहार करते हुए अपनी कलम का अधिक प्रयोग किया है परंतु धार्मिक क्षेत्रों और सामाजिक क्षेत्रों की मूल्यहीन स्थिति के प्रति भी पर्याप्त जागृति लाने का प्रयास किया है। धर्म की आड़ में स्त्रियों के प्रति होते आ रहे अमानवीय व्यवहार का उल्लेख करते हुए वे *कहत कबीर* पुस्तक में कहते हैं- "हमारे यहां विधवा को धतूरा या भांग पिला कर नशे में करके जबरदस्ती चिता पर डाल देते रहें हैं।... हम जनरल जिया को थूकते हैं जो इस्लामी कानून के नाम से खुलेआम कोड़े लगवाता है और लोग देखते हैं। मगर हम हिंदू धर्म के नाम पर अपनी बहन, बेटी और बहु को शताब्दियों से जिंदा जलाकर उत्सव मनाते रहे हैं।" (74)

उपर्युक्त कथन द्वारा हरिशंकर परसाई ने धार्मिक और सामाजिक मूल्यों के हनन की ओर संकेत किया है। धर्म की शरण लेकर किसी भी प्राणी को जीवित अग्नि में झोंक देना कौन से धर्म में लिखा है? महात्मा बुद्ध ने अहिंसा का उपदेश देकर अंगुलिमाल जैसे राक्षस वृत्ति धारी को हिंसा के मार्ग पर जाने से रोक दिया था। महात्मा गांधी ने अहिंसा के पथ का अनुगमन

करके भारतवर्ष को ब्रिटिश शासन की दासता से मुक्त करवाया और हम अपने ही घर की बेटी बहू या बहन को ही धर्म का आडंबर रचते हुए मृत्यु के घाट उतार देते हैं।

कुछ लोग कह सकते हैं कि वर्तमान समय में ऐसा नहीं होता, सती प्रथा तो गुजरे जमाने की बातें हैं, आजकल तो लड़कियां लड़कों के कंधे से कंधा मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति कर रही है। उपर्युक्त विचार पूर्ण रूप से असत्य नहीं परंतु यह भी एक कटु सत्य है कि अब तो स्थिति और भी भयावनी हो गई है। लड़की को जन्म लेने के अधिकार से मात्र इसलिए वंचित कर दिया जाता है कि माता पिता को परिवार में दूसरी संतान के रूप में पुत्र ही वांछनीय है, पुत्री नहीं।

उपर्युक्त सत्य यह सोचने पर विवश करता है कि क्या मनुष्य आदिम युग से भी पिछड़ा हुआ प्रमाणित नहीं हो रहा? नारी के प्रति समाज का कैसा व्यवहार हो-इस विषय में *कल्याण नारी अंक* के आलेख 'नारी भगवान की विभूति' में गंगा सिंह ठाकुर कहते हैं-"भगवान की इन विभूति रूपा नारियों की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। हम केवल इनकी रक्षा कर लें तो वे अन्य सभी बातों से हमारी रक्षा कर लेंगी। नारी की रक्षा हो गई तो समझो धर्म की रक्षा हो गई।" (338)

नारी का तिरस्कार ईश्वर को भी अप्रसन्न कर देता है, इस तथ्य का विवेचन करते हुए वे आगे लिखते हैं- "इस नारी रूपा विभूति का कोई तिरस्कार, अपमान, भगवान की विभूति न समझकर दुरूपयोग करता है तो भगवान उसे कठोर दंड देते हैं। अतः सावधान होकर इस विभूति की रक्षा करते हुए, इसकी रक्षा से रक्षित होकर भगवान की ओर अग्रसर होना ही उचित एवं अनिवार्य कर्तव्य जान पड़ता है।" (339)

गंगा सिंह ठाकुर द्वारा कथित विचार के आलोक में कहा जा सकता है कि नारी के अस्तित्व के रक्षित होने से समग्र मानव जगत का अस्तित्व अक्षुण्ण रह सकता है क्योंकि नारी सृजन कर्ता है, नारी ही पालन कर्ता है। परिवार में नारी की सक्रिय भूमिका पुरुष को खानपान तथा रहन सहन के प्रबंध के दायित्वों से मुक्त किए रहती है। पौष्टिक आहार का प्रबंध करके नारी परिवार को आरोग्यमय स्थिति में रखती है। नीरोग व्यक्ति ही परिवार-हित और समाज-हित का कार्य संपन्न कर सकता है।

जिस प्रकार प्राणी जगत के संरक्षण के लिए औषधीय पेड़ पौधों की संभाल की जाती है ताकि मनुष्य के अस्वस्थ होने पर पौधों की औषधीय गुणवत्ता का लाभ उठाया जा सके, इसी प्रकार व्यक्तिगत क्षेत्र, पारिवारिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र और अंततः राष्ट्रीय क्षेत्र के संरक्षण और संतुलित संचालन के लिए नारी जाति का संरक्षण अनिवार्य है, उनका रक्षित होना ही समग्र प्राणी जगत के संरक्षण को सुनिश्चित करता है।

श्रीलाल शुक्ल और प्रेम जन्मेजय द्वारा संपादित *हिंदी हास्य व्यंग्य संकलन* पुस्तक के अन्तर्गत हरिशंकर परसाई के विपुल व्यंग्य साहित्य की श्लाघा करते हुए श्रीलाल शुक्ल ने लिखा है- "हरिशंकर परसाई का साहित्य बड़ा विशाल है और जो स्थितियां दूसरों को सामान्य जान पड़ती हैं उनमें विडंबना और विकृति को पकड़ने की असामान्य क्षमता है।" (15)

समाज के सर्वहारा वर्ग के प्रति हरिशंकर परसाई की सहानुभूति को वर्णित करते हुए श्रीलाल शुक्ल आगे लिखते हैं- "उनके असंतोष का मुख्य आधार आज की राजनीतिक और सामाजिक मूल्यहीनता है जिसके प्रति उनकी दृष्टि एक ऐसे कलाकार की है जो विपन्न, वंचितों और संघर्षशील वर्गों के प्रति स्पष्ट रूप से प्रतिबद्ध है।" (15)

श्रीलाल शुक्ल का उपर्युक्त कथन हरिशंकर परसाई को न केवल प्रतिनिधि व्यंग्यकार के पद पर प्रतिष्ठित करता है अपितु समाज के दलित और दमित वर्ग के प्रति उनकी हार्दिक करुणा के भाव को भी व्यंजित करता है। हरिशंकर परसाई के उत्कृष्ट व्यंग्य लेखन ने ही व्यंग्य साहित्य को एक सशक्त विधा का स्वरूप प्रदान किया। उनके रचना शिल्प का मुख्य आधार उनका मौलिक चिंतन, उनकी प्रखर सांस्कृतिक चेतना, जीवन मूल्यों के संरक्षण के प्रति तीव्र सजगता तथा मानवीय संवेदनाओं से अनुप्राणित परम परिष्कृत समाज की परिकल्पना है और इसी के कारण वह स्वतंत्रोत्तर युग के व्यंग्य प्रणेता के रूप में जाने जाते हैं।

शरद जोशी स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात व्यंग्य साहित्य में हरिशंकर परसाई के समानांतर समादृत किये जाते हैं। हरिशंकर परसाई का व्यंग्य लेखन जहां पाठक के हृदय को आक्रोश के लावे से भरता हुआ विसंगतियों के प्रति सजग बनाता है वहीं शरद जोशी का व्यंग्य साहित्य पाठकों को करुणा और पीड़ा के सागर में डूबने-उतरने के लिए विवश कर देता है। राजनीति के भ्रष्ट तंत्र के विषय में शरद जोशी *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक में निष्पक्षता और सत्यता के साथ कहते हैं- "व्यक्तित्व जहां बेपेंदी के लोटे होने लगते हैं, वहां से राजनीति की शुरुआत होती है। राजनीति एक केंद्रहीन गोल चक्कर या चक्करों का सिलसिला है, जिसका व्यास, परिधि

और केंद्र बिंदु अनिश्चित होते हैं। दसों दिशाओं में उसकी गति है, जो अपने आप में दुर्गति है।”
(18)

शरद जोशी द्वारा कहा गया उपर्युक्त कथन वर्तमान राजनीति की कुरूपता को वर्णित करता है। शरद जोशी के कथन राजनीतिज्ञों की बेपेदे के लोटे जैसी प्रवृत्ति को उजागर करते नजर आते हैं। राजनीति में हर नेता की अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग होता है। शरद जोशी के कथन को बल्देव भाई शर्मा द्वारा रचित *भारत सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान* पुस्तक के कथन से सूत्रबद्ध किया जा सकता है- “राजनीति के विचलन ने ही आतंकवाद, बलात्कार जैसी कुत्सित और किसी भी सभ्य समाज के लिए कलंक माने जाने वाली बुराइयों की जड़ मजबूत की हैं। एक के बाद एक हुए महा घोटाले जिनके आंकड़े आज हर आदमी की जुबान पर हैं, नैतिकता को तार-तार कर चुके हैं।” (34)

राजनीति के गलियारे में 'चोर -चोर मौसेरे भाई' का मुहावरा सत्य सिद्ध होता है। किसी भी नेता द्वारा किया गया कोई घोटाला अथवा अनैतिक व्यवहार जब जनता के सामने आता है, तो उस समय उस घोटालेबाज को बचाने का उपक्रम प्रारंभ हो जाता है। दूसरे नेताओं को अपनी चिंता सताने लगती है। उनके अंतर्मन में भय जागृत होने लगता है कि आटे के साथ कहीं घुन भी न पीसा जाए। महा घोटाले के साथ-साथ कहीं उनके द्वारा किए गए छोटे-छोटे घोटालों की पोल न खुल जाए, क्योंकि राजनीति के हमाम में सब नंगे हैं, इस विडम्बना पूर्ण स्थिति पर प्रकाश डालते हुए बल्देव भाई शर्मा आगे लिखते हैं- "उससे भी ज्यादा शर्मनाक है उन पर पर्दा डालने की सरकार की कोशिशों और उन में लिप्त होने के आरोपों से घिरे लोगों को बचाने का उपक्रम।" (34)

देश के नेता जब स्वयं ही अपराधीकरण को बढ़ावा देंगे तो राजनीतिक मूल्यों का हनन किस प्रकार रोका जा सकेगा ? मध्यम स्तर की सरकारी नौकरी पर लगे लिपिक से तो गिन गिन कर आय का हिसाब लिया जाता है परंतु नेताओं के द्वारा किए गए करोड़ों रुपयों के घोटालों का हिसाब कौन देगा? जब बाड़ ही खेत को खाने लगेगी तो बाग तो वीरान होगा ही।

जिन नेताओं के लिए सत्य और असत्य की पृथक-पृथक परिभाषाएं हों, जो अपने हित में कही गई बात को सत्य तथा परहित में कही गई बात को असत्य घोषित करें, ऐसे अयोग्य नेता से तो नेता का न होना ही श्रेयस्कर है। इसी विचार को आबिद रिजवी द्वारा संकलित *चाणक्यसूत्र* के नीति कथन के परिपेक्ष्य में देखा जा सकता है-

"अविनीतस्वामिलाभादस्वामिलाभः श्रेयान्। (20)

अर्थात् अयोग्य राजा को राजा बनाने से किसी को राजा न बनाना ही श्रेयस्कर है। वर्तमान समय में राजा के स्थान पर नेता लोग शासन तंत्र का हिस्सा होते हैं इसलिए शरद जोशी ने नेताओं की स्वार्थी वृत्ति को उल्लेखित करते हुए व्यंग्य प्रहार किया है।

शरद जोशी केवल राजनेताओं पर ही व्यंग्य करते हों, ऐसा नहीं है। वे व्यंग्य लेखन की निष्पक्षता की कसौटी पर खरे उतरते हुए साहित्य क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों पर भी प्रहार करते हैं। *झरता नीम शाश्वत थीम* पुस्तक के अन्तर्गत वे हिंदी साहित्य में विद्यमान पाखंडियों का असली चेहरा दिखाते हुए कहते हैं- " हिंदी में ऐसे ही पाखंडियों का साम्राज्य है। संस्थाएं बनाकर फोर्ड फाउंडेशन से लेकर राज्य सरकार तक से पैसा झटक कर भ्रष्ट कर्मों में लिप्त लोगों की विराट दुनिया है।" (12)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि शरद जोशी प्रखर सत्यान्वेषी थे। साहित्य के क्षेत्र में स्वयं विद्यमान होते हुए भी वे उस परिवेश की असंगतियों पर इंगित करने से पीछे नहीं हटे क्योंकि वे चाहते थे कि कम से कम विद्या से संबंधित साहित्यिक क्षेत्र तो भ्रष्टाचार से मुक्त रह सके क्योंकि विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय व्यक्ति निर्माण के केंद्र हैं। यहीं से बालक उत्तरोत्तर शिक्षित होता हुआ अंततः राष्ट्र के आदर्श नागरिक के स्वरूप को प्राप्त करता है।

शरद जोशी विषय के अनुरूप शब्द चयन करते थे। यदि विषय अत्याधिक विसंगतिपूर्ण हैं तो वे कठोर से कठोर और कटु से कटु शब्दों का भी निर्दयतापूर्वक प्रयोग करने में संकोच नहीं करते। उदाहरण स्वरूप *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक के माध्यम से शरद जोशी चुनाव से पूर्व नेताओं के व्यवहार पर प्रहार करते हुए कहते हैं- "दूध पीने निकले हैं राष्ट्र के चंदन से लिपटे सांप। पगडंडियां तलाश रहे हैं कस्बों में घुसने की। वादों और इरादों के गलियारे खोजते झूठ के पुराने मसीहा। लोकसभा से मुँह चुराने वाले, न्यायालय से मुँह चुराने वाले।" (15)

शरद जोशी कितने भर्त्सनापूर्ण कठोर शब्दों के द्वारा नेताओं के वास्तविक स्वरूप को दर्शा रहे हैं। उपर्युक्त पंक्तियों का एक एक शब्द नेताओं की क्रियाओं की सत्य गाथा वर्णित करता है। उन्होंने नेताओं के काले कारनामों का भीषण कालिमायुक्त अर्थ में वर्णन किया है जो

दर्शाता है कि जहां निर्मम शब्दों का प्रयोग अपेक्षित है वहां वे कोमल शब्दावली के स्थान पर कठोर शब्दावली को ही प्रयुक्त करते हैं।

शरद जोशी प्रस्तुत कथन के द्वारा राजनेताओं के छल-कपट से परिपूर्ण व्यवहार की ओर संकेत करते हैं। जो नेता केवल चुनाव के दिनों में जनता के समक्ष प्रकट होते हैं और बाकी समय ईद के चांद बने रहते हैं, वे भला जनता के हित का संरक्षण कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं? जनहित का कार्य न करने वाला राष्ट्रीय हित की बात सोच भी कैसे सकेगा?

प्रत्येक नागरिक राष्ट्र की इकाई होता है। यदि नेता छोटे स्तर पर ही अपनी प्रजा हितकारी छवि सिद्ध नहीं कर पाता तो राष्ट्रहित के स्तर तक पहुंचकर वह कैसे कार्य कर पाएगा। नेता रूपी सर्पों का अधिकतम समय राष्ट्र के समृद्धि रूपी चंदन -वृक्ष से लिपटे हुए बीतता है और चुनाव के दिनों में वह चंदनवन को छोड़कर जनता के विश्वास रूपी दुग्ध का पान करने पुनः शहरों, कस्बों और ग्रामीण इलाकों की ओर चल पड़ते हैं। अपनी वाकपटुता के बल पर वे जनता को भ्रमित करने में सफल हो जाते हैं क्योंकि जनता किसी ना किसी प्रत्याशी को तो अपना मत प्रदान करती ही है। यदि पिछले चुनाव में एक प्रत्याशी जनता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता तो जनता दूसरे प्रत्याशी के प्रति आशा का भाव रखती हुई उसे अपना मत प्रदान करती है लेकिन वास्तव में अधिकांश नेता महा स्वार्थी ही सिद्ध होते हैं। नेता लोग भी चुनाव जीतने तक ही जनता से संबद्ध रहते हैं। चुनाव जीत लेने के बाद उनका स्वार्थ सिद्ध हो जाता है और वे ऐसे गायब होते हैं जैसे गधे के सिर से सींग।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (विस्तारक मूल्य : भाग 2) में नीरू लिखती हैं- "शत्रु केवल वे विदेशी आक्रांता ही नहीं है जो सेना सजाकर हमारे देश पर आक्रमण कर देते हैं, वे भी हमारे शत्रु ही हैं जो परोक्ष रूप से हमारे अस्तित्व को नष्ट करने का षड्यंत्र रचते हैं।" (191)

लेखिका नीरू देश के बाहर रहने वाले आक्रमणकारियों को ही देश का शत्रु नहीं मानती अपितु देश के भीतर रहने वाले कुमंत्रणाकारियों, स्वार्थी लोगों और अराजक तत्वों को भी देश का शत्रु मानती हैं जो घुन की तरह राष्ट्र रूपी वृक्ष की समृद्धि रूपी जड़ों को खोखला करने का षड्यंत्र करते रहते हैं। राजतंत्र में संलिप्त जिन नेताओं की ओर शरद जोशी ने संकेत किया है नीरू के विचारों के संदर्भ में उन्हें शत्रु भाव रखने वाला तथा राजनीतिक मूल्यों का अवमूल्यन करने वाला ही कहा जा सकता है।

चुनाव में विजय प्राप्त करने के लिए नेता लोग कई प्रकार के भ्रष्ट तरीके अपनाते हैं। सत्तासीन होने के लिए वे कभी जाति के नाम पर, कभी धर्म के नाम पर और कभी किसी सामाजिक कुरीति के उन्मूलन का झूठा वादा करके जनता का मत प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जिन्हें कुमंत्रणा के अंतर्गत ही रखा जा सकता है।

रविंद्रनाथ त्यागी हरिशंकर परसाई, और शरद जोशी को व्यंग्य साहित्य में व्यंग्य-त्रयी के नाम से जाना जाता है। *गरीब होने के फायदे* व्यंग्य कृति में संपादक कमल किशोर गोयनका व्यंग्य-त्रयी की सृष्टि का कारण बताते हुए कहते हैं- "आजादी के बाद जीवन मूल्यों के विघटन तथा जनता के स्वप्न-भंग ने हास्य व्यंग्य के लिए अपूर्व सामग्री एवं विस्तृत फलक प्रदान कर दिया। देश के राजनीतिक, सामाजिक.....सभी क्षेत्रों में जो विघटन और मूल्यहीनता की स्थिति उत्पन्न हुई, उसने पूरे समाज को विसंगतियों, विद्रूपताओं, विरोधाभासों, तनावों एवं संघर्ष से भर दिया।" (11-12)

कमल किशोर गोयनका के कथन के परिपेक्ष्य में कहा जा सकता है कि भारत की स्वतंत्रता, तत्कालीन नेताओं के लिए 'बिल्ली के भागों छींका टूटा' सिद्ध हुई, राष्ट्रीय मूल्यों का चरम सीमा तक हनन हुआ। नेता लोग व्यक्तिगत हित के लिए राष्ट्रीय-हित को ताक पर रखने लगे। अधिकांश भारतीय जनता, जिसने नींव की ईंट बन कर स्वतंत्रता संग्राम में प्रतिभागिता की थी, नेताओं के बदले तेवर देख हतप्रभ रह गई। कहां तो उन्होंने सोचा था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में रामराज्य स्थापित होगा, सामान्य जनता को जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं पूर्ण करने के लिए मन मसोसकर नहीं रहना पड़ेगा, सर्वत्र सुख और खुशहाली होगी, शोषक और शोषित वर्ग का अंतर समाप्त होगा। परंतु जनता के सभी सपने कपोल-कल्पित सिद्ध हुए। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक इत्यादि सभी क्षेत्रों में मूल्यहीनता की स्थिति देखने को मिली। राष्ट्र की बागडोर अयोग्य हाथों में होने से समग्र राष्ट्र अव्यवस्थित हो गया। इस विडम्बना पूर्ण परिदृश्य को देखते हुए, जिन व्यंग्यकारों ने विसंगतियों के युद्ध क्षेत्र में पदार्पण किया, उनमें उपर्युक्त व्यंग्य-त्रयी का व्यंग्य-लेखन उल्लेखनीय है।

रविंद्रनाथ त्यागी के व्यंग्य लेखन की विशेषता बताते हुए सुरेश आचार्य *व्यंग्य का समाज* दर्शन पुस्तक में लिखते हैं- "निरंतर पतित होती हमारी मूल्यवत्ता की वर्तमान स्थिति पर रविंद्रनाथ त्यागी ने ध्यान आकर्षित किया है।" (221) सुरेश आचार्य का कथन दर्शाता है कि

रविंद्रनाथ त्यागी, समाज को पतनोन्मुख होते देख न केवल चिंतित थे, अपितु प्रखर रूप से जागरूक भी थे। वे भारतीय जनता के अंतर्भूत में, राष्ट्र समाज के लिए समर्पण के भाव-बीज अंकुरित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने समाज की तत्कालीन मूल्यहीनता की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया। रविंद्रनाथ त्यागी राष्ट्र के उच्च प्रशासनिक पद पर आसीन थे। अपनी नौकरी के दौरान उन्होंने प्रशासनिक क्षेत्र की अनेक विसंगतियां को अनुभव किया। सुरेश आचार्य शासकीय सेवा से निवृत्त होने पर लिखे गए रविंद्रनाथ त्यागी के संस्मरण को उद्धृत करते हुए वे आगे लिखते हैं- "जहां पदोन्नतियां और पुरस्कार कर्मठता एवं योग्यता के बजाए पहुंच और चापलूसी से जुड़ गए हों, वह समाज व्यवस्था एक जर्जर और मूल्यहीन सामाजिक व्यवस्था है और उसे परिवर्तित होना ही चाहिए।" (222)

उपर्युक्त कथन के द्वारा रविंद्रनाथ त्यागी का उच्च और परिष्कृत चरित्र उभर कर सामने आता है जो उन्हें जल में स्थित कमल के सदृश्य सिद्ध करता है। वे जिस उच्च शासकीय पद पर आसीन थे, उस पद पर रहते हुए प्रशासनिक शिखर तक पहुंच सकते थे परंतु वे ऐसा नहीं कर पाए। जिसके मूल में यह स्वप्रमाणित कारण था कि उनकी मानसिकता सुधारामक थी। उपर्युक्त पंक्तियां प्रशासनिक कार्यों में चाटुकारो के वर्चस्व और ईमानदारों के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों की ओर संकेत करती हैं।

चाटुकारिता के आधार पर शासक को प्रसन्न करना वर्तमान प्रशासन प्रणाली में ही सम्मिलित नहीं है अपितु ऐसा व्यवहार तो प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार तुलसीकृत *रामचरितमानस* के अंतर्गत रावण के मंत्रियों द्वारा उसकी अतिशयोक्तिपूर्ण चाटुकारिता के विषय में बताते हैं कि जब श्रीराम द्वारा सागर पर सेतु बंध जाने का समाचार रावण को प्राप्त होता है तो वह अपने मंत्रियों से इस संदर्भ में रणनीति तैयार करने को कहता है। प्रत्युत्तर में मंत्री कहते हैं कि जब रावण द्वारा देवताओं को भी बिना किसी श्रम के जीत लिया गया है तो भला मनुष्य और वानर किस गिनती में हैं ? तुलसीदास उपर्युक्त प्रकार के लोगों के विषय में परिकल्पना कहते हुए कहते हैं-

"सचिव बैद गुर तीनि जौ, प्रिय बोलहि भय आस।

राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिही नास।" (732)

अर्थात् यदि मंत्री मन में भय अथवा स्वार्थ के वशीभूत होकर राजा की मुंह देखी कहता है और वस्तुस्थिति की गंभीरता को जानते हुए भी अनजान बनता है तो राज्य का नाश हो जाता है। यदि गुरु ऐसा करता है तो धर्म की हानि होती है और यदि चिकित्सक ऐसा करता है तो रोगी का शरीर स्वस्थ होने के स्थान पर अस्वस्थ होने का भय रहता है। राष्ट्र के संतुलित प्रबंधन के क्रियान्वयन के लिए चाटुकारिता, सिफारिश या रिश्वत के बल पर पदोन्नतियां प्रतिबंधित होनी चाहिए ताकि राष्ट्रीय मूल्यों के हनन को रोका जा सके।

रविंद्रनाथ त्यागी व्यंग्य विधा से समन्वित साहित्यकार थे और व्यंग्य क्षेत्र में विचरण करने वाला कभी कुपथगामी नहीं हो सकता क्योंकि वह स्वयं तो सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक विसंगतियों के विरोध में कमर कसे रहता है, फिर वह खुद कैसे असंगत और अनीति पूर्ण व्यवहार कर सकता है?

इसी श्रृंखला में श्रीलाल शुक्ल और प्रेम जनमेजय द्वारा संपादित *हिंदी हास्य व्यंग्य संकलन* पुस्तक में श्रीलाल शुक्ल कहते हैं- "व्यंग्य लेखकों में रविंद्रनाथ त्यागी का लेखन अपने ढंग का है। उस पर पूर्ववर्ती और समकालीन लेखकों का कोई स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। उन्होंने लगभग स्वतंत्र रूप से अपना लेखन तंत्र विकसित किया है।" (16)

श्रीलाल शुक्ल का उपर्युक्त कथन रविंद्रनाथ त्यागी के व्यंग्य कर्म को एक पृथक और गुणवत्ता युक्त आधार प्रदान करता है। सत्य तो यह है कि प्रत्येक कलाकार की रचनाधर्मिता की रीति और प्रवृत्ति भिन्न होती है, विषय को वर्णित करने का मौलिक ढंग होता है और यही पृथक चिंतन उनकी समग्र कृति को मौलिकता और विशिष्टता प्रदान करता है।

रविंद्रनाथ त्यागी अपने कथ्य को बोझिल और आक्रोशयुक्त नहीं बनने देते अपितु अपना व्यंग्य प्रहार धीरे से करते हुए आलंबन को उसके कृत्य के प्रति लज्जित कर जाते हैं और सर्वसाधारण को जागरूक और चैतन्य भी। उनका व्यंग्य प्रहार तीक्ष्ण नहीं होता परंतु वास्तव में वह अपने भीतर इतनी शक्ति समेटे रखता है कि लक्ष्य पर पूर्ण तल्लीनता और सफलता से प्रहारक सिद्ध होता है।

रविंद्रनाथ त्यागी की रचनाओं में व्यंग्य की तीक्ष्णता दृष्टिगत नहीं होती, इस संबंध में *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* पुस्तक में सुभाष चंद्र लिखते हैं- " उन्होंने अव्यवस्था के जिस्म में

नशतर चुभोने के स्थान पर मीठी चिकोटी काटने को अधिक महत्व दिया है। व्यंग्य को लोकप्रिय बनाने में त्यागी जी का बहुत बड़ा योगदान है।" (224-225)

उपर्युक्त कथन के द्वारा कहा जा सकता है कि रविंद्रनाथ त्यागी का व्यंग्य लेखन पाठक के मस्तिष्क को झिंझोड़ता नहीं बल्कि उसे धीरे से हिलाता है, हल्के से स्पर्श करता है, वह पाठकों के पांव तले की जमीन खिसकाता तो है परंतु यत्किंचित नजाकत के साथ, ताकि पाठक विसंगतियों के प्रति जागरूक तो हो लेकिन तनावग्रस्त न हो।

श्रीलाल शुक्ल का स्वातंत्रोत्तर हिंदी व्यंग्य साहित्य में व्यंग्य त्रयी के बाद अगला महत्वपूर्ण नाम है, जिनके व्यंग्य उपन्यास 'राग दरबारी' ने व्यंग्य साहित्य को चरमोत्कर्ष तक पहुंचाने में उल्लेखनीय योगदान दिया। *राग दरबारी का महत्व* पुस्तक में मधुरेश श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य शिल्प के विषय में कहते हैं- "हिंदी व्यंग्य को एक कलात्मक उत्कर्ष देने का गंभीर उद्यम उन्होंने किया है। जब कोई लेखक अपने लिए विधा के रूप में व्यंग्य का चुनाव करता है, इसके मूल में कहीं ना कहीं समाज की वर्तमान स्थिति के प्रति उसके मन में गहरा असंतोष होता है।" (9)

मधुरेश ने व्यंग्यकार में जिन विशेषताओं को आवश्यक माना है, श्रीलाल शुक्ल में वे प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। श्रीलाल शुक्ल स्वयं काफी समय सरकारी तंत्र से जुड़े रहे थे, इसलिए प्रशासनिक तंत्र में व्याप्त अनीतियों और भ्रष्टाचारी व्यवहार के वे प्रत्यक्ष साक्षी थे। शासन तंत्र की घोर विसंगतियों ने उनके हृदय में असंतोष और आक्रोश के भावों को जागृत किया, परिणाम स्वरूप व्यवस्था को परिष्कृत करने के उद्देश्य से वे व्यंग्य कर्म की ओर उन्मुख हुए। समग्र राष्ट्रीय और सामाजिक अव्यवस्था से, प्रत्यक्ष विरोध न करते हुए, उन्होंने व्यंग्य लेखन के द्वारा असंतोष और विरोध को प्रकट किया।

श्रीलाल शुक्ल उच्च प्रशासनिक अधिकारी होते हुए भी सामान्य जनजीवन की समस्याओं के प्रति जागरूक थे इस विषय में मधुरेश आगे लिखते हैं- "स्वाधीनता के बाद बनी विकास योजनाओं की वास्तविकता को उन्होंने निकट से देखा था। जिस जनता के विकास के नाम पर उन योजनाओं का निर्माण हुआ, उस जनता की वास्तविकता को समझे बिना 'राग दरबारी' जैसा उपन्यास नहीं लिखा जा सकता था।" (9)

मधुरेश के उपर्युक्त कथन के द्वारा कहा जा सकता है कि श्रीलाल शुक्ल ने सरकारी नौकरी करते समय प्रशासनिक तंत्र में जो-जो विभागीय विसंगतियां देखी, जिन-जिन प्रशासनिक मूल्यों को बिखरते देखा उस अनुभव के आधार पर उन्होंने 'राग दरबारी' का सृजन किया क्योंकि व्यंग्य लेखन कोरी कल्पनाओं के आधार पर रचित नहीं होता इसके लिए तात्विक सत्यान्वेषण अपेक्षित होता है। श्रीलाल शुक्ल अनुभव करते थे कि राष्ट्र के विकास की योजनाएं बनती अवश्य हैं, परंतु उसका अधिकांश लाभ सत्तासीन नेताओं, उनके रिश्तेदारों और परिचितों को मिलता है। बची-खुची लाभांश की हड्डी वे अपने चाटुकारों की ओर फेंक देते हैं, क्योंकि ये चाटुकार, चुनाव के दिनों में उनके लिए बड़े लाभकारी सिद्ध होते हैं।

श्री लाल शुक्ल की उत्कृष्ट प्रतिभा के विषय में *कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्य कारों की* पुस्तक में हरीश नवल कहते हैं- "राग दरबारी की चर्चा का माहौल भट्टी बनने लगा। लोकप्रियता का आलम यह था कि.... पढ़ें या न पढ़ें, आम पाठक विशेष पाठक निर्मित होने हेतु 'राग दरबारी' की प्रशंसा में लीन होने लगे थे।" (89)

उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य में राग दरबारी के गुणवत्ता संपन्न व्यंग्य कृति होने की तथा श्रीलाल शुक्ल के उत्कृष्ट व्यंग्यकार होने की पुष्टि हो जाती है। सर्वसाधारण की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि प्रसिद्ध व्यक्ति अथवा प्रसिद्ध कृति के साथ जुड़कर वे स्वयं को विशिष्टतर सिद्ध करना चाहते हैं, इसी प्रवृत्ति के अंतर्गत आम पाठक भी राग दरबारी का अध्ययन करके, उसके संबंध में अपने विचारों की प्रस्तुति कर स्वयं को गौरव मंडित करना चाहते थे। श्रीलाल शुक्ल कृत राग दरबारी के चतुर्दिक प्रशंसित होने के विषय में हरीश नवल आगे लिखते हैं- "इंसानियत का अर्थ, गांधीगिरी का सच, गांव -चुनाव की राजनीति, पद की मर्यादा के असली मायने और भी न जाने क्या-क्या समाजशास्त्रीय सूत्र व्याख्याएं श्री लाल जी ने की है, जिनका हिंदी साहित्य में कोई सानी नहीं है।" (91)

हरीश नवल का उपर्युक्त कथन यह दर्शाता है कि श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य लेखन-फलक अत्यंत विस्तृत था। लेखन के अनगिनत विषय उल्लेखित करने के उपरांत भी हरीश नवल यह कहकर अंततः हथियार डाल देते हैं कि 'और भी न जाने क्या क्या..... व्याख्याएं श्रीलाल शुक्ल जी ने की हैं।' हरीश नवल का उपर्युक्त कथन श्रीलाल शुक्ल की विशद और बहुआयामी लेखन प्रतिभा को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। श्रीलाल शुक्ल ने राष्ट्र में

व्याप्त लगभग सभी असंगत व्यवहारों को अपनी तीक्ष्ण, भेदक दृष्टि से अनुभव किया और राग दरबारी उपन्यास में उन पर व्यंग्य प्रहार किया।

सुरेश आचार्य जीवन मूल्यों के प्रति श्रीलाल शुक्ल की प्रतिबद्धता वर्णित करते हुए *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक में कहते हैं- “श्रीलाल शुक्ल राग दरबारी में पतित होते मूल्यों की एक तस्वीर पेश करते हैं।..... रंगनाथ को छत पर बरामदे में एक ढेले से बंधी हुई जो गंदी-सी पुड़िया प्राप्त हुई थी वह दरअसल एक प्रेम-पत्र था। श्रीलाल शुक्ल प्रेम पत्र का अद्भुत नमूना पेश करते हैं। कहीं भी कोई भी बात बिना फिल्मी गाने के नहीं कहीं गई।” (293)

सुरेश आचार्य का उपर्युक्त कथन श्रीलाल शुक्ल के सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण के प्रति जागृति को प्रतिबिंबित करता है। प्रेम का भाव सर्वथा परिष्कृत, पवित्र, शाश्वत, सार्वयुगीन और सार्वकालिक तथा प्रासंगिक है। यह ईश्वरीय तत्व नितांत निस्वार्थ, निष्कपट और निष्कलंक है। प्रेम के प्रकटन के लिए फिल्मी गीतों का आश्रय लेना प्रेम की गरिमा को खंडित करता है, लोक संस्कृति के महत्व को कम करता है। सिनेमा का प्रभाव आधुनिक युग की देन है जबकि प्रेम का प्रभाव अतीत में भी था, वर्तमान में भी है और भविष्य में भी रहेगा।

श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य शैली के विषय में विचार प्रकट करते हुए सुभाष चंद्र *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* पुस्तक में कहते हैं- “श्रीलाल शुक्ल की भाषा व्यंग्यानुकूल है। वे रचना की प्रकृति के अनुसार व्यंग्य भाषा का चयन करते हैं..... मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग के द्वारा वे भाषा में माधुर्य लाते हैं।” (252)

सुभाष चंद्र के उपर्युक्त कथन के द्वारा श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य लेखन की वैविध्य पूर्ण रचनात्मकता पर प्रकाश पड़ता है, जो उनके रचना शिल्प को अन्य व्यंग्यकारों से पृथक और सर्वथा मौलिक सिद्ध करता है तथा जीवन मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को सुनिश्चित करता है। शब्दों को परिवेश और प्रसंग के अनुसार चयनित करना उनकी व्यंग्य कृतियों को विशिष्टता प्रदान करता है। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य लेखन की निष्पक्षता के विषय में सुरेश आचार्य *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक में लिखते हैं- “सारा देश लोकतंत्र को जिस नैतिक एवं सामाजिक संकट में अनुभव करता है श्रीलाल शुक्ल की दृष्टि में उसके पीछे अदम्य धन, पद और यशलिप्सा का भाव उत्तरदायी है।” (465)

उपर्युक्त कथन के द्वारा सुरेश आचार्य यह दर्शाते हैं कि आर्थिक लाभ की अधिकाधिक होड़ और प्रसिद्धि पाने की उत्कट कामना हर उस व्यक्ति की प्राथमिकता है जो किसी ना किसी तरीके से किसी उच्च प्रशासनिक पद पर आसीन है, उसे केवल उसी पद पर रहकर संतुष्टि नहीं, उसे उत्तरोत्तर और भी प्रतिष्ठित पद चाहिए और भी अधिक धन ऐश्वर्य और प्रसिद्धि चाहिए। इसके लिए वह नैतिक मूल्यों का हनन करने से भी नहीं चूकता और किसी भी तरीके से अपनी लक्ष्य सिद्धि का प्रयत्न करता है और उसका यही प्रयत्न घोर विसंगतियों को जन्म देता है, घोर राष्ट्रीय और सामाजिक संकट उत्पन्न करता है।

गोपाल प्रसाद व्यास स्वातन्त्रोत्तर युग के एक अन्य अप्रतिम जिजीविषा से युक्त व्यंग्यकार हैं, जिन के विषय में *कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्यकारों की* पुस्तक में प्रसिद्ध छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत का कथन उद्धृत करते हुए हरीश नवल कहते हैं- "व्यास जी का हास्य विनोद निसंदेह परिमार्जित और सुरुचिपूर्ण है। जीवन-संघर्ष तथा युग-समस्याओं की झांकियां होने पर भी उसमें कटुता नहीं।" (96)

यह बहुत बड़ी बात है कि जीवन के संघर्ष और सामाजिक समस्याएं भी उनके अंतर्मन की सरसता को कम नहीं कर पाईं। उनका यह व्यवहार उनके अदम्य साहस, सकारात्मक दृष्टिकोण तथा गहन वैचारिक चिंतन को प्रतिबिंबित करता है। गोपाल प्रसाद व्यास के रचना शिल्प के बेजोड़ सौंदर्य को वर्णित करते हुए हरीश नवल आगे कहते हैं- "उनकी भाषा की रवानगी बेजोड़ है। उनका वाक्य-विन्यास, शब्द-नियोजन और उन्मुक्त शैली बहुत मधुर है। उनके व्यंग्यों में सूक्तियां छिपी हैं।" (98)

हरीश नवल द्वारा कहा गया संक्षिप्त सा कथन भी गोपाल प्रसाद व्यास के उच्चतम पांडित्य तथा उच्च गुणवत्तायुक्त व्यंग्य लेखन को उल्लेखित करता है। जिनके व्यंग्य-वचनों को भावी व्यंग्यकार सूक्तियों की भांति प्रयुक्त करें, उनकी लेखन शक्ति कितनी उत्कृष्ट और महिमामंडित होगी इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। गोपाल प्रसाद व्यास की विलक्षण व्यंग्य प्रतिभा को सुभाष चंद्र *हिंदी व्यंग्य का इतिहास* पुस्तक में इस प्रकार वर्णित करते हैं- "व्यास जी का व्यंग्यकार यूं तो राजनीति केंद्रित व्यंग्यों में अधिक रुचि रखता है किंतु समय समय पर उसने समाज, प्रशासन और संस्कृति आदि की विसंगतियों को भी उकेरा है।" (234)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि गोपाल प्रसाद व्यास, समय की नब्ज पहचानने वाले सजग व्यंग्यकार थे। उन्होंने बेशक राजनीति पर केंद्रित व्यंग्य रचनाएं लिखी, क्योंकि राजनीतिक विसंगतियों का प्रभाव राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है। जब-जब उन्हें सामाजिक, प्रशासनिक और सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण दृष्टिगत हुआ, उन्होंने उन क्षेत्रों के विसंगतियों पर भी व्यंग्य-बाण चलाए।

श्रीलाल शुक्ल और प्रेम जनमेजय द्वारा संपादित *हिंदी हास्य व्यंग्य संकलन* के अन्तर्गत स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शासन के प्रबंधन में असफल सिद्ध होते नेताओं पर आक्षेप करते हुए गोपाल प्रसाद व्यास कहते हैं- "अनुभवहीन, कामचोर, अस्वस्थ लोग जैसे किसी कल-कारखाने को नहीं चला सकते वैसे ही हाल देश के नेताओं का है। यूँ समझ लो कि जैसे आजकल के नौसिखिए डॉक्टर रोगियों के स्वास्थ्य और जीवन से खेल-खेल कर उपचार करना सीखते हैं, वही ट्रेनिंग आज हमारे सरकार चलाने वाले प्राप्त कर रहे हैं।" (94-95)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से गोपाल प्रसाद व्यास कहना चाहते हैं कि राजतंत्र में संलिप्त नेताओं को न तो राजनीति शास्त्र का ज्ञान है और न ही उनके पास उस मंत्रालय से संबंधित कोई पूर्व अनुभव अथवा योग्यता का कोई प्रमाण पत्र है, जिस मंत्रालय का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्र की गरिमा खंडित होगी, मंडित होने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। अधिकांश नेताओं ने सत्तासीन होने पर अपने पद के गौरव का कोई ध्यान नहीं रखा, उच्च पद पर होते हुए भी ऐसा कोई प्रशंसित कार्य नहीं किया जिससे राष्ट्र की छवि महिमामंडित हो-इस संदर्भ में गोपाल प्रसाद व्यास आगे लिखते हैं-"हम निसंदेह आजादी पाकर धन्य हुए, लेकिन आज तक ऐसी स्थिति नहीं आ पाई कि इसके लिए जनता नेताओं का धन्यवाद करती" (95)

गोपाल प्रसाद व्यास के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि हमारे नेताओं ने अपने कार्यकाल के दौरान कोई ऐसा श्लाघनीय कार्य नहीं किया जिससे प्रसन्न होकर जनता उनका जयनाद करती और अपने चुनाव पर गर्व करती कि उनके द्वारा एक ऐसा उत्कृष्ट नेता चुनकर सत्तासीन हुआ है, जिसके द्वारा राष्ट्र का मस्तक गर्व से ऊंचा हुआ है।

देश का नेतृत्व करने वालों को पद संभालने से पहले राष्ट्र के प्रबंधन की शिक्षा लेनी अपेक्षित थी, नहीं तो विश्वविद्यालयों में प्रबंधन विषय की पढ़ाई करवाने का क्या औचित्य है? कहने को कहा जा सकता है कि हर क्षेत्र में प्रबंधन से संबंधित पद होते हैं जिन पर योग्य

उम्मीदवार नियुक्त किए जाते हैं, परंतु जिनके हाथों में समग्र राष्ट्र का प्रबंधन है उनकी योग्यता क्या है, यह सुनिश्चित होना अत्यंत आवश्यक है। प्रबंध कर्ता अयोग्य हो, तो वह चाहे राजपुत्र हो, अथवा मित्र अथवा सगे संबंधी, राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए उन्हें राज्य प्रबंधन का दायित्व नहीं सौंपा जा सकता, इसी संबंध में हनुमानप्रसाद पोद्दार द्वारा संकलित *विदुर नीति* पुस्तक के अन्तर्गत धृतराष्ट्र को समझाते हुए विदुर कहते हैं-

दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा ।

कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥ (76)

अर्थात् हे राजन ! आप दुर्योधन, शकुनि, मूर्ख दुशासन तथा कर्ण पर राज्य का दायित्व सौंप कर उन्नति कैसे चाहते हैं? विदुर द्वारा कहे गए कथन से सिद्ध होता है कि राष्ट्रहित सब संबंधों से ऊपर होता है। हमारे नेताओं ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए राष्ट्र के हित को ध्यान में नहीं रखा और अयोग्य व्यक्ति राष्ट्र के उच्च पदों पर आसीन कर दिए गए जिसका परिणाम वही हुआ 'अंधेर नगरी चौपट राजा'।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि गोपाल प्रसाद व्यास का व्यंग्य लेखन जीवन के प्रत्येक पक्ष को स्पर्श करता है। राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण के प्रति वे पर्याप्त जागरूक रहे हैं। उनके नियमित व्यंग्य स्तंभ उनकी समसामयिक जागरूकता को प्रतिबिंबित करते हैं और उनकी अन्य व्यंग्य रचनाएं सामाजिक सरोकारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाती हैं।

हिंदी व्यंग्य साहित्य के कतिपय व्यंग्यकारों के व्यंग्य साहित्य के संक्षिप्त अनुशीलन से यह भासित होता है कि गोरखनाथ और कबीर ने सामाजिक विसंगतियों पर अधिक व्यंग्याघात किए। आदिकालीन, भक्ति कालीन और रीतिकालीन साहित्य में व्यंग्य धारा का प्रवाह उतना तीव्र न था जितना आधुनिक काल में हुआ। भारतेंदु युग के व्यंग्यकारों ने सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय विसंगतियों पर व्यंग्य प्रहार किए।

गोरखनाथ, कबीर तथा तुलसीदास के साहित्य में सामाजिकता के स्वरूप के परिष्कार से संबंधित व्यंग्यात्मकता प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत होती है। गोरखनाथ समाज में प्रचलित बलि प्रथा को जब धिक्कारते हैं तथा समाज में फैले अंधविश्वासों और रूढ़ियों पर व्यंग्य प्रहार करते हैं तो सामाजिक मूल्यों के निर्वहण के प्रति उनका आग्रह स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। कबीर ने

जाती पाती के भेदभाव को, ईश्वर से संबंधित विभिन्न उपासना पद्धतियों को और समाज में प्रचलित बाह्य आडंबरों के प्रति व्यंग्याक्षेप किया है।

स्वातंत्र्योत्तर युग से पहले भारतेंदु हरिश्चंद्र, बाबू बालमुकुंद गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' इत्यादि व्यंग्यकारों ने समाज के परिष्कृत स्वरूप के गठन के लिए सर्वाधिक व्यंग्य-शरों का संधान किया। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' अपनी व्यंग्य रचना 'रूपया' के माध्यम से धन के प्रति लोगों के असीम लोभ को दर्शाते हैं; धन लिप्सा के आधिक्य के कारण पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों का विघटन दर्शाते हैं तो इससे स्पष्ट पता चलता है कि वे सामाजिक सरोकारों से संपृक्त व्यंग्यकार हैं।

स्वतंत्रता के बाद व्यंग्य परंपरा के व्यंग्यकारों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल तथा रविंद्रनाथ त्यागी इत्यादि व्यंग्यकारों की कलम यद्यपि राजनीतिक विसंगतियों पर अधिक प्रहार करती दृष्टिगत होती है, तथापि उन्होंने सामाजिक विसंगतियों पर भी पर्याप्त व्यंग्य संघात किया है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने तो 'कुकुरमुत्ता' कविता के माध्यम से पूंजीपति वर्ग को प्रखर रूप से व्यंग्यात्मकता का निशाना बनाया है, जिससे भासित होता है कि वे सामाजिक वर्ग-भेद के प्रखर विरोधी थे और सामाजिक समरसता के प्रबल समर्थक।

हरीश नवल के पूर्ववर्ती सभी व्यंग्यकार सामाजिक सरोकारों के प्रति पर्याप्त भाव से सजग रहे हैं। यह कथन अनेक व्यंग्यकारों द्वारा कहा गया है कि व्यंग्य के सामाजिक सरोकार होते हैं, अतः व्यंग्य लेखन के अंतर्गत समाज के स्वच्छ और सुसंस्कृत स्वरूप के प्रति आकांक्षा प्रखर रूप से निहित रहती है। शोध कार्य के अति विस्तार से बचने के लिए व्यंग्य परंपरा के व्यंग्यकारों की रचनात्मकता का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

व्यंग्य का मुखर रूप स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के व्यंग्यकारों के लेखन में दिखाई दिया। राजनीति के ऊंचे पदों पर स्वार्थी नेता आसीन हो गए तो राष्ट्र के वरिष्ठ पदों पर आसीन नेताओं ने बंदरबांट कर के ऊंचे-ऊंचे पद अपने रिश्तेदारों, परिचितों तथा चाटुकारों को आबंटित कर दिए।

ब्रिटिश शासन और स्वदेशी शासन में आखिर क्या अंतर है, पहले भारत का धन सीधे तौर पर विदेश जाता था अब स्वदेशी लोगों के बैंक खातों के द्वारा जा रहा है। पहले पराए लोग

देश की समृद्धि भ्रष्टाचार के द्वारा अपनी तिजोरी में भर रहे थे, अब अपने ही नेता लोग, पूंजीपति लोग देश की समृद्धि को दोनों हाथों से लूट रहे हैं।

सुरेश आचार्य *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक में व्यंग्य की सौद्येश्यता बताते हुए कहते हैं-"व्यंग्य उत्तर नहीं देता, उत्तेजित करता है-समझो और लड़ो-सामाजिक न्याय के लिए।" (42) सुरेश आचार्य का कथन दर्शाता है कि व्यंग्य न्याय प्रिय, निष्पक्ष और राष्ट्रीय मूल्यों के संवर्धक लोगों का आह्वान करता है कि समाज के परिष्कार के लिए, विसंगतियों के निराकरण के लिए कटिबद्ध रहो। राष्ट्र के समग्र परिवेश में व्याप्त विसंगतियों की रूपरेखा, अथवा गणना का विवरण व्यंग्य द्वारा नहीं दिया जाता। व्यंग्य तो प्रश्न करता है कि समाज में ये विसंगतियां क्यों हैं? इनके परिप्रेक्ष्य में कौन-कौन से कारण निहित हैं? अगर राष्ट्र अथवा समाज का वर्तमान स्वरूप ग्रहणीय नहीं है, तो ग्रहण करने योग्य और अपनाने योग्य स्वरूप क्या होना चाहिए? समाज को परिष्कृत और अनुशासनबद्ध रखने के लिए, समाज में किन नियमों के पालन की आवश्यकता है?

व्यंग्य प्रेरित करता है कि वह मार्ग तलाश करो, जिस पर चलते हुए विसंगतियों का निराकरण हो सके और समाज और राष्ट्र का जो स्वरूप अपेक्षित है, उसकी स्थापना हो सके। राष्ट्र की, अपने नागरिकों से पृथक कोई सत्ता नहीं है, आदर्श नागरिकों का समुच्चय ही आदर्श राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। जब राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक व्यक्तिगत-हित के स्थान पर, राष्ट्रहित को प्रश्रय देगा, राष्ट्र की संस्कृति की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध होगा, तब वह समाज अथवा राष्ट्र समग्र रूप से जीवन-मूल्यों से सम्प्राणित होगा। उपर्युक्त स्थिति में पहुंचकर प्रत्येक नागरिक गर्व से कह सकेगा कि औचित्य की कसौटी पर एक मानव-समाज का जो स्वरूप होना चाहिए, हमारा समाज उस कसौटी पर खरा उतरता है, परंतु यह तब संभव होगा, जब सभी नागरिक अपने-अपने क्षेत्र का कार्यभार पूर्ण ऊर्जस्विता और निष्ठा से क्रियान्वित करेंगे।

तृतीय अध्याय-

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में सामाजिक मूल्य

सामाजिक मूल्य वे मानक हैं, वे कसौटियां हैं, जो सामाजिक जीवन की संतुलित और अनुशासनात्मक व्यवस्था के लिए आवश्यक हैं। जिस समाज में सामाजिक मूल्यों की सुनिश्चितता निर्धारित नहीं होती, वहां अनुशासनहीनता, मर्यादाहीनता और उच्छृंखलता का माहौल पनपने लगता है। सामाजिक मूल्य ही यह सुनिश्चित करते हैं कि कौन सा कार्य वैधता के मापदंड पर खरा है और कौन सा खोटा। प्रथम अध्याय के अंतर्गत जीवन मूल्यों की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में विभिन्न विद्वानों के मत को ध्यातव्य रखते हुए, दया, मैत्री,

संवेदनशीलता, विनम्रता और प्रेम इत्यादि सामाजिक मूल्यों का वर्णन किया जा चुका है। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में जिन-जिन सामाजिक मूल्यों के निर्वहण के प्रति आग्रह किया गया है, प्रस्तुत अध्याय में, उन मूल्यों के विषय में जानकारी प्राप्त करते हुए, सामाजिक मूल्यों के प्रति हरीश नवल की प्रतिबद्धता का आकलन किया जाएगा।

प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत शौर्य, मैत्री, संवेदनशीलता, स्वास्थ्य, कर्तव्यपरायणता, शरीर-रक्षा, अनासक्ति, सुख, निस्पृहता, तृप्ति, प्रमोद, कार्यकुशलता, स्वावलंबन, अध्यवसाय, प्रेम, गार्हस्थ्य, उपकारशीलता, करुणा, कोमलता, निर्मलता, सदाचार, प्रसन्नता, विश्वास, उर्ध्व चिंतन, सद्यवहार, व्रत पालन, संबद्धता, स्थिरचित्तता, सूझबूझ, पारिवारिकता, आत्मीयता, नम्रता, सम्मान, शिष्टाचार, मातृप्रेम, कृतज्ञता, आशीष, संतोष, अपनापन, सहृदयता, औचित्य, सबलता, स्फूर्ति, आत्मनिरीक्षण, विवेक, सर्वहितकारिता, अनुशासन, आत्म संयम, गवेषणा तथा चिंतनशीलता, सामाजिक मूल्यों के संवर्धन का प्रयास, हरीश नवल ने अपनी व्यंग्य कृतियों के द्वारा किया है, उनका रेखांकन प्रत्येक पुस्तक के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

3.1 शौर्य, साम्य, मैत्री, संवेदनशीलता, सन्मति, स्वास्थ्य तथा पवित्रता सामाजिक मूल्यों को हरीश नवल कृत पुस्तक *बागपत के खरबूजे* के अंतर्गत चिन्हित किया गया है। यह पुस्तक सन 1987 में ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हुई थी और हरीश नवल को अनेक व्यंग्यकारों में से, सर्वश्रेष्ठ युवा व्यंग्यकार चयनित किया गया था।

‘अपने मुंह मियां मिट्टू’ व्यंग्य रचना वैसे तो एक मुहावरा है और मुहावरों में अपनी बात कहना व्यंग्यकार हरीश नवल की नवल शैली है। इस व्यंग्य रचना के माध्यम से व्यंग्यकार

ने मानव की हृदयगत दुर्बलताओं में से एक दुर्बलता, अभिमान की ओर संकेत किया है। अभिमानी व्यक्ति अपने गुणों की डींगे हांकने में सिद्धहस्त होते हैं।

हरीश नवल 'अपने मुंह मियां मिट्टू बनने वाले त्रेता युग के दो अभिमानियों-रावण और बाली का वर्णन करते हैं। दोनों ही महापराक्रमी, अतुल बलशाली तथा अति वैभव-संपन्न थे। बाली ने बल के अभिमान में अपने अनुज सुग्रीव की पत्नी को छीन लिया और रावण ने छलपूर्वक सीता का हरण किया। उन दोनों को अभिमान के कारण जो दुष्परिणाम भुगतने पड़े, उनके विषय में बताते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "दोनों को ही भगवान राम के हाथों शरीर गंवाना पड़ा, पल में ही सारा मिट्टूपन ठेके से बनी दीवार की भांति गिर पड़ा।" (86)

उपर्युक्त कथन के द्वारा हरीश नवल रावण और बाली के चारित्रिक अपकर्ष को वर्णित करते हैं। अपनी शक्ति का अभिमान करते हुए रावण और बाली को परस्त्री पर कुदृष्टि डालते हुए तनिक भी लाज नहीं आई। अभिमान एक ऐसा दुर्गुण है, जो मनुष्य की शक्ति को क्षीण कर देता है। अभिमानी व्यक्ति की आंखों पर केवल अपनी शक्ति अथवा अपनी उपलब्धि का पर्दा पड़ा रहता है। वह यह सोचना ही नहीं चाहता कि संसार में उससे सवा-सेर भी कोई हो सकता है। रावण और बाली को भी यह भ्रम था कि संसार में उन जैसा शक्तिशाली और कोई नहीं। त्रेता युग की विसंगति वर्णित करते हुए भी हरीश नवल वर्तमान से संपर्क साधे रहते हैं। बाली और रावण के अभिमान को उन्होंने वर्तमान समय में ठेके पर बनने वाली दीवार के साथ संश्लिष्ट किया है। ठेके पर बनने वाले दीवार कब बनती है, कब टूट जाती है, पता ही नहीं चलता। सीमेंट तो सारा का सारा ठेकेदार और सरकारी अधिकारी उदरस्थ कर लेते हैं, रेत से बनने वाली दीवार का भरभरा कर गिरना तो लगभग निश्चित ही होता है।

रावण अपने बलशाली होने की बात तुलसीकृत *रामचरितमानस* में कहता है। विभीषण द्वारा समझाए जाने पर कि वह सीता को राम के सुपुर्द कर दे, वह विभीषण को भला बुरा कहता है-

"कहसि न खल अस को जग माहीं, भुजबल जाहि जिता मैं नाहिं।" (735)

अर्थात् अरे दुष्ट बता, संसार में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से परास्त नहीं किया। विश्व भर में ऐसा कोई भी शूरवीर नहीं है, जो रावण की भुजाओं के बल के सामने टिक सके। रावण, विभीषण को अपने अजय होने के विषय में बताना चाहता है। वह विभीषण

को इसलिए फटकार लगाता है क्योंकि उसके मन में इस बात के प्रति आक्रोश उभरता है कि विभीषण उसका भ्राता होते हुए भी उसके पराक्रम को भूल कैसे गया? रावण के कथन के मूल में उसका अपने मुंह मियां मिट्टू बनना ही परिलक्षित होता है।

द्वारपर युग के अंतर्गत अपने मुंह मियां मिट्टू बनने वाले व्यक्ति के विषय में हरीश नवल आगे बताते हैं-“मियां कंस तो अपने युग के सबसे बड़े मिट्टू थे, इंसानियत उनके घर में दासी की भांति पानी भरती थी। ” (86)

कंस अभिमानी होने के साथ-साथ हृदयहीन भी था। जो व्यक्ति अपनी मृत्यु के भय से नवजात शिशु को भी मृत्यु के घाट उतार दे, उसके जैसा पाषाण हृदय कौन होगा ? सद्य-जन्मा बालक, जो अपने विरुद्ध अन्याय होते देख प्रतिरोध भी नहीं कर सकता, उसे काल का ग्रास बना कर वह किस प्रकार अपने को बलवान समझने का मिथ्या दम्भ भरता था। इतिहास में आत्म प्रशंसा करने वाले लोगो के विषय में बताते हुए हरीश नवल इस तथ्य की ओर संकेत करना चाहते हैं कि अपनी प्रशंसा आप करना अथवा अपनी प्रशंसा के लिए लालायित रहना वस्तुतः मनुष्य के अभिमान की ओर संकेत करता है। रावण और कंस अभिमानी व्यक्ति थे और अभिमान के मद में चूर होकर उन्होंने उचित-अनुचित का विचार नहीं किया। उनके अभिमान का परिणाम क्या निकला-समूल विनाश।

कलयुग में भी अभिमानी लोगों की कमी नहीं रही। कलयुग के अंतर्गत हिटलर, सिकंदर, जार और मुसोलिनी जैसे अभिमानियों का वर्णन करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं-“ विश्व विजेता बनने के ख्वाब को पूरा करने के लिए आम जनता और मानवता का शोषण करते रहे परंतु अपने सपने को कहां पूरा कर पाए, सदा ही विजेता कहां रहे, अंत में पराजित हुए।” (87)

हरीश नवल ने अपने कथन के द्वारा अपने मुंह मियां मिट्टू बनने वालों की भविष्य में होने वाले दुर्गति के विषय में बताया है। अपनी मुख से अपनी ही प्रशंसा करने के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति का आत्म अभिमान ही झलकता है। अभिमान मनुष्य के पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवन में अशांति उत्पन्न करता है। अभिमानी व्यक्ति अभिमान के मद में चूर होकर सामने वाले व्यक्ति को तुच्छ समझता है और अपने अभिमान जनित शब्दों से उसकी भावनाओं को आहत करता है। विश्व विजेता बनने का स्वप्न देखने वाले तानाशाहों ने आम जनता का

शोषण किया, मानवता को तिरस्कृत किया तथा सामान्य जन-जीवन में अपनी शक्ति का आतंक फैलाकर लोगों को त्रस्त किया। फिर भी वे अपने स्वप्न को सत्य नहीं कर पाए।

अपने मुंह मियां मिट्टू बनने से, मनुष्य के अभिमानी होने की पुष्टि होती है। इस दुर्गुण के अंतर्मन में प्रविष्ट होते ही अनुशासन, आत्मनिरीक्षण तथा आत्म नियंत्रण जैसे सामाजिक मूल्य विनिष्ट हो जाते हैं। अभिमानी व्यक्ति, अपने द्वारा किए गए कार्य को सर्वथा औचित्ययुक्त समझता है। उसका ध्यान अपनी त्रुटियों की तरफ नहीं जाता, इसलिए वह आत्म-निरीक्षण नहीं कर पाता। आत्म-निरीक्षण के अभाव में उसे अपनी कमियां पता नहीं चलती और उसका अपने आप पर, अपनी भावनाओं पर नियंत्रण भी नहीं रहता। रामकिशोर शर्मा द्वारा संपादित *कबीर ग्रंथावली* में कबीर स्वयं प्रशंसित होने की लालसा को त्यागने की बात कहते हैं-

"आपनपो न सराहिए, और न कहिए रकं, न जाणो किस विरख तलिं, कूड़ा होई करंक।" (298)

कबीर के कहने का भाव यह है कि अपनी सराहना कभी नहीं करनी चाहिए और अन्य किसी को तुच्छ भी नहीं समझना चाहिए। क्या पता किस वृक्ष के नीचे मनुष्य की हड्डियां कूड़े के ढेर में परिवर्तित हो जाएं। कबीर व्यंग्य पूर्वक कहते हैं कि समय के बहते प्रवाह में मनुष्य की देह कब अनंत में विलीन हो जाए और आज का राजा कब रंक बन जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। शरीर और ऐश्वर्य-वैभव नश्वर हैं, इनके प्रति अभिमान नहीं करना चाहिए।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (उदात्त मूल्य : भाग 4) में मृत्युंजय उपाध्याय, अभिमानी व्यक्ति की मनोवृत्ति के विषय में बताते हुए कहते हैं- "मनोविज्ञान में अहंकार व्यक्ति का निजी गुण है, जिसमें वह अपनी आवश्यकताएं तथा हितों को प्रधानता देता है और अन्य व्यक्तियों या समाज के समुदायों के हितों की उपेक्षा करता है।" (45)

मृत्युंजय उपाध्याय का कथन दर्शाता है कि अभिमानी व्यक्ति चरम सीमा तक स्वार्थी होता है। अभिमानवश वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति सर्वप्रथम चाहता है। वह प्राथमिकता के आधार पर अपना स्वार्थ साधना चाहता है। समाज के अन्य लोगों की आवश्यकताएं उसके लिए नगण्य होती हैं। सत्य तो यह है कि मनुष्य को अभिमान रहित होकर निष्पक्ष एवं निस्वार्थ भाव से समाज हित में प्रवृत्त होना चाहिए तभी वह समाज का एक जिम्मेदार घटक बन पाएगा।

अभिमान के त्याग में मनुष्य का समग्र रूप से कल्याण निहित है, इस विषय पर प्रकाश डालते हुए वे आगे लिखते हैं- "जीवन की वक्र गति अहंकार की देन है। जब तक अहंकार विद्यमान है तब तक उसका कल्याण संभव नहीं।" (46)

मृत्युंजय उपाध्याय का कथन दर्शाता है कि अभिमान मनुष्य को सामाजिक जीवन में विचरण करने के अयोग्य बना देता है, समाज अभिमानी व्यक्ति से कतराने लगता है। अभिमानी जिस सभा में प्रवेश करता है वहां उपस्थित सभी व्यक्ति उसके अपने मुंह मियां मिट्टू बनने की प्रवृत्ति से परिचित होने के कारण उस से कत्री काटने लगते हैं। उसके जीवन में जटिलता का समावेश हो जाता है। रावण, बाली और हिटलर के अभिमान के विषय में बताते हुए हरीश नवल ने सामाजिक मूल्य, शौर्य का हनन दर्शाया है। अपने शौर्य द्वारा समाज का रक्षण करना, वीरता की निशानी है और यह शौर्य का विधिपरक रूप है। अपने शौर्य पर अभिमान करते हुए दुर्बल जनों पर अत्याचार करना शौर्य का निषेधपरक रूप है। अभिमानी व्यक्तियों के जीवन की अंतिम परिणति क्या होती है, यह हरीश नवल ने भी बताया है और यह इतिहास प्रसिद्ध भी है।

'जिसकी लाठी उसके कुत्ते' व्यंग्य रचना समाज के उन तत्वों की ओर इंगित करती है जो स्वार्थ पूर्ति होने तक साथ निभाते हैं, दुमछल्ले बने घूमते हैं, परंतु जब उनकी स्वार्थ सिद्धि किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पूर्ण होने लगती है तो ये उस तथाकथित दूसरे व्यक्ति के प्रति कृतज्ञता का भाव दर्शाने लगते हैं और प्रथम व्यक्ति के प्रति कृतघ्न बन जाते हैं। हरीश नवल दलबदलू किस्म के व्यक्तियों का उल्लेख करते हुए उनकी घोर स्वार्थ वृत्ति से समाज को अवगत कराना चाहते हैं। प्रस्तुत व्यंग्य रचना में हरीश नवल ने श्वानों को प्रतीक बनाया है।

छोटेला नाम का एक व्यक्ति शहर के बाहर जंगल में सैर करने के इरादे से जाता है, राह में चलते श्वानों से डरने के कारण वह घर से प्रतिदिन कुछ रोटियां ले जाता है। पहले वह उन्हें लाठी दिखाता है, फिर उनके आगे रोटियां डाल देता है इस प्रकार वह उनसे मैत्री भाव स्थापित कर लेता है। छोटेला द्वारा श्वानों के साथ मैत्री भाव स्थापित करने के प्रयास को वर्णित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं-"छोटेला ने रोटी के टुकड़े डालने शुरू कर दिए, कुत्तों ने दुम हिलानी प्रारंभ कर दी।" (27)

छोटेला के बीमार होने की स्थिति में उसका मित्र रतनचन्द श्वानों को रोटी खिलाता है, स्वस्थ होने पर छोटे लाल को देखकर श्वान किस प्रकार अपना व्यवहार बदल लेते हैं, उसका

उल्लेख करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "छोटेलाल स्वस्थ होकर एक सुबह घूमने निकला और शहर के बाहर पहुंचा तो उसने देखा कि कुत्ते रतनचन्द के सामने दुम हिला रहे हैं। छोटेलाल के पहुंचते ही वे भौंकते हुए छोटेलाल को काटने के लिए दौड़े।" (28) इस कथन के द्वारा हरीश नवल मैत्री भाव की स्थापना के लिए सजगता धारण करने का संदेश देते हैं।

देखने में उपर्युक्त व्यंग्य रचना गंभीर नहीं लगती, परंतु इसके अंतर्गत एक अत्यंत गंभीर संदेश छिपा है। इस व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल ने समाज के स्वार्थी तत्वों की ओर संकेत किया है जो उसी व्यक्ति के तलवे चाटते हैं, जिसके द्वारा उनका स्वार्थ सिद्ध होता है। स्वार्थ सिद्धि के बाद वे लोग व्यक्ति बदल लेते हैं, दल बदल लेते हैं, यहां तक कि कभी-कभी अपना चेहरा तक बदल लेते हैं। कहने का भाव यह है कि वह उस व्यक्ति को पहचानते तक नहीं जिसके द्वारा वह पहले अपना स्वार्थ साध चुके होते हैं। ऐसे स्वार्थी लोगों की ओर संकेत करके हरीश नवल स्वार्थी लोगों से सावधान करते हुए समाज में निस्वार्थ भाव से मैत्री भाव की स्थापना करना चाहते हैं।

श्वानों के माध्यम से स्वार्थ साधने में सिद्धहस्त चाटुकार मनुष्यों के विषय में *नशतर की मुस्कान* पुस्तक में सुरेश सेठ लिखते हैं- "कुछ भद्र कुत्तों का काम बड़े आदमियों के सामने दुम हिलाना होता है..... इसलिए आजकल यह अंतर करना कठिन हो गया है कि कुत्ता कौन सा है, और आदमी कौन सा?" (106)

सुरेश सेठ द्वारा कहा गया कथन मानव की घोर स्वार्थी वृत्ति की तरफ संकेत करता है। मनुष्य अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए चाटुकारिता की चरम सीमा तक पहुंच जाता है। दुम हिलाने की प्रक्रिया में उसके और श्वानों के मध्य अंतर करना कठिन हो जाता है। एक अंतर अवश्य होता है कि श्वान का स्वार्थ बहुत छोटा होता है-केवल पेट भरने की हद तक, और मनुष्य के स्वार्थ की कोई सीमा नहीं होती, वह सीमाहीन होता है। श्वान और स्वार्थी मनुष्य में अभेदता का रूपक साधते हुए सुरेश सेठ मनुष्य के स्वार्थ जनित अपकर्ष को दर्शाते हैं।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (विस्तारक मूल्य : भाग 2) में मित्रता के विधिपरक रूप के विषय में बताते हुए नीरू लिखती हैं- "मैत्री व्यक्ति की उदारता के दायरे का विस्तार करती है तथा उसकी निस्वार्थवृत्ति का विकास करती है।" (178)

ऊपर लिखे कथन के परिप्रेक्ष्य में कह सकते हैं कि मित्रता का विधिपरक रूप मानव के अन्तर्मन में उदारता के भाव को विस्तार देता है। उदारता, मनुष्य को निस्वार्थ बनाती है। उदारता का भाव आत्मसात करता हुआ मानव, मित्र के हित के लिए व्यक्तिगत हित त्याग देता है। सच्चा मित्र एक औषधि के समान होता है। जिस प्रकार औषधि मनुष्य को रोगमुक्त कर देती है, उसी प्रकार सुमित्र द्वारा व्यक्ति चिंतामुक्त हो जाता है। मित्र द्वारा उसे जो सहयोग मिलता है, उसके अवलंबन से वह अपनी समस्याओं का समाधान भी कर लेता है और उसके संचित आत्मविश्वास में वृद्धि भी हो जाती है। मित्रता का भाव सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ बनाता है। अतः मैत्री के अंतर्गत स्वार्थ सिद्धि का लक्ष्य रखना अनुचित है।

इस व्यंग्य रचना के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि स्वार्थी वृत्ति को सम्मुख रखते हुए कार्य करना सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध है। हरीश नवल ने उपर्युक्त व्यंग्य रचना के माध्यम से श्वानों को प्रतीक बनाकर स्वार्थी मनुष्य की मानसिकता पर व्यंग्य प्रहार किया है।

'बाढ़ में..... एक संवाद कथा' व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल ने वर्तमान मानव की संवेदनहीनता की ओर इशारा किया है। बाढ़ की रिपोर्ट के लिए गांव में आए पत्रकारों की मानसिकता दर्शाते हुए वे कहते हैं कि उन पत्रकारों के मन में बाढ़ पीड़ित लोगों के लिए यत्किंचित भी हमदर्दी की भावना नहीं थी, उन्हें तो अपने अखबार के लिए सनसनीखेज तस्वीरें चाहिए, ऐसी तस्वीरें जिन्हें देखकर सामान्य लोगों के हृदय आहत हो जाएं, बाढ़ की विभीषिका देख जिनके हृदय दहल जाएं। उनके स्वयं के हृदय तो मानो पाषाण बन गए हैं, हरीश नवल उनकी हृदयहीनता को प्रकट करते हुए कहते हैं- "बाढ़ समाप्त होने को आ रही है..... अब कोई प्रभावशाली सीन बचा ही नहीं है जिसके ज्यादा पैसे मिल पाएं।" (23)

पत्रकारों द्वारा कहे गए कथन के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक सरोकारों के प्रति उनकी उदासीनता प्रकट होती है। बाढ़ग्रस्त इलाके में जाकर, प्राकृतिक आपदा से लोगों को जूझते देखकर भी उनके हृदय में करुणा का संचार नहीं होता। वे बाढ़ की विभीषिका के अंतर्गत मानवीय स्तर पर, वहां के लोगों की कोई सहायता करने के लिए उद्यत नहीं होते। अपने जैसे लोगों को विपत्ति से घिरे देखते हुए भी उन्हें अर्थ-लाभ की चिंता सताए रहती है। उनके कैमरे ऐसे कारूणिक दृश्य की तलाश में हैं, जिसे देखकर लोगों के दिल में भय का संचार हो जाए, उनके समाचार-पत्र की प्रतियां पहले से अधिक बिकें और समाचार-पत्र के संपादक-मंडल द्वारा उन्हें शाबाशी और पारितोषिक प्रदान हो।

बाढ़ ग्रस्त लोगों के लिए हेलीकॉप्टर द्वारा बढ़िया किस्म की डबल रोटी उपलब्ध करवाए जाने पर पत्रकार द्वारा जीवन मूल्यों के विरुद्ध कही गई बात वर्णित करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- “बड़ी ब्रेड बाजार में मिलती नहीं है, छोटी में अपने को टेस्ट नहीं आता, इन्हें छोटी क्यों नहीं फेंकते, इन लोगों को क्या अंतर पड़ेगा?” (23)

पत्रकारों द्वारा कहे गए कथन से पता चलता है कि वे लोग केवल धन प्राप्ति लक्ष्य का लेकर बाढ़ ग्रस्त इलाके में जाते हैं। यद्यपि तस्वीरें लेना उनकी कार्यप्रणाली के अंतर्गत आता है तथापि मानवोचित सहानुभूति के भाव तो उनके मन में होने ही चाहिए। उनका यह कहना भी सर्वथा अनुचित है कि बाढ़ ग्रस्त लोगों को निम्न स्तर की ब्रेड खाने को दे दी जाए, उन लोगों को क्या अंतर पड़ने वाला है। कष्ट में आए हुए इंसान क्या अच्छी रोटी पाने के भी अधिकारी नहीं हैं? स्वयं कुछ दें, ऐसी उनकी मनोवृत्ति नहीं है और सरकार के द्वारा दिए गए खाद्य पदार्थों की आपूर्ति पर भी वे गिद्ध दृष्टि लगाएं हैं, यह स्वार्थान्धता की पराकाष्ठा है।

पत्रकारों द्वारा कहे गए सामाजिक मूल्यों से विहीन कथन का उल्लेख करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- “यह वही जगह होगी जहां कल राहत कार्य में लगी नाव उलट गई थी, यह लोग लाशें ढूंढ रहे होंगे, वहीं चलते हैं, उस मोड़ से व्यू बैटर होगा कुछ देर रुकना तो पड़ेगा पर मेहनत वसूल हो जाएगी।” (25)

पत्रकारों द्वारा कहा गया कथन सामाजिक मूल्यों के विखंडन के संकेतक हैं। क्या आज का मानव इस कदर यांत्रिक बन गया है कि जहां लोग बाढ़ के विध्वंसकारी स्वरूप के कारण अपनी जिंदगी से हाथ धो बैठे हैं, वहां पत्रकार महोदय को तस्वीरों के बेहतर कोणों से लिए जाने की उत्सुकता है। बाढ़ की स्थिति की जानकारी देने के लिए तस्वीरें लेना आवश्यक था, परंतु उसके लिए अपनी हार्दिक संवेदनशीलता को समाप्त कर देना जरूरी नहीं था क्योंकि इससे पता चलता है कि पत्रकार किसी के जीने मरने से कोई सरोकार नहीं रखते, वे केवल यंत्र तुल्य कार्य करते हैं जिसके अंतर्गत मानवीय संवेदनाएं ध्वस्त हो चुकी होती हैं। इस व्यंग्य रचना में, सामाजिक मूल्य संवेदनशीलता तथा सन्मति का खंडन दर्शाया गया है। संवेदनहीन व्यक्ति की मति को दुर्मति ही माना जाएगा, सन्मति के अंतर्गत तो कतई नहीं। सन्मति का धारक व्यक्ति संवेदना से विहीन कैसे हो सकता है?

प्रकट में बाढ़ के इलाकों के लोगों की सहायता करने के उद्देश्य से कुछ लोग यथार्थ में दूसरों को उल्लू बना कर अपनी जेब भरते हैं। उनकी कार्यशैली को वर्णित करते हुए प्रेम

जन्मेजय कोई मैं झूठ बोलया पुस्तक में लिखते हैं- "जागरूक युवक कार, स्कूटर, टैक्सी, साइकिल और पैदल सब को रोकते हैं, डिब्बों में पैसे डलवाते हैं, जो नहीं डालते उसे राष्ट्रद्रोही कह कर लज्जित करते हैं। वह नाक बचाता है, शाम को सभी युवक दिन भर की अपनी कमाई गिनते हैं।" (198)

प्रेम जन्मेजय द्वारा लिखित पंक्तियां दर्शाती हैं कि सामाजिक दृष्टि से मूल्यहीनता चरम सीमा को स्पर्श कर रही है। लोग बाढ़ पीड़ितों की करुणा जनक स्थिति से लाभ उठाकर अपने घर भर रहे हैं। सामान्य-जन बाढ़ पीड़ितों की दशा से द्रवित होकर सहायता राशि प्रदान करते हैं और सहायता राशि उगाहने वाले लोग उससे अपने और अपने परिवार की सहायता करने लग जाते हैं। हरीश नवल और प्रेम जन्मेजय द्वारा लिखित संदर्भ वर्तमान समय में मनुष्य के व्यवहार द्वारा प्रतिबिंबित होती संवेदनहीनता को दर्शाते हैं। अर्थ सिद्धि के लिए लोग इस सीमा तक करुणाहीन हो जाते हैं कि प्राकृतिक आपदा से घिरे लोगों के लिए प्रदान की गई सहायता राशि भी हजम कर जाते हैं।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (विस्तारक मूल्य : भाग 2) में नीरू संवेदना को मनुष्य की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति मानते हुए लिखती हैं- "किसी को सुख या दुख की अनुभूति हुई-जब वैसा ही भाव हमारे मन में भी चलेगा, तो यह संवेदना है।" (218)

नीरू के कथन के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि एक मनुष्य के दुख में दूसरे मनुष्य का दुखी होना, उसके दुख को अनुभव करना ही मानवता है। एक मनुष्य जब दूसरे मनुष्य के सुख-दुख को हार्दिकता के साथ अनुभव करता है तब वह अपना मानव होना सुनिश्चित करता है और इसी वृत्ति के द्वारा सामाजिक मूल्यों के निर्वहण के प्रति उसका दायित्व भी सुनिश्चित होता है। इसी भावना के अधिग्रहण से जीवन के प्रति मानव का दृष्टिकोण उदार बनता है। दूसरे के सुख-दुख का साधारणीकरण करके ही मनुष्य संवेदनशील बन सकता है। एक व्यक्ति को दुखपूर्ण स्थिति में देखकर वह अपने आप को उस दुखी व्यक्ति के स्थान पर रख कर देखता है और उसके दुख को अनुभूत करता हुआ उसकी सहायता के लिए तत्पर हो जाता है।

'कृषि मंत्रालय की रिपोर्ट और नल दमयंती' व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल ने अत्यंत लघु कलेवर के अंतर्गत वर्तमान समय में शनैः शनैः खंडित होते सामाजिक मूल्यों के

प्रति व्यंग्य प्रहार किया है। दूध के उत्पादन की बढ़ोतरी के लिए नहरों, नदियों के योगदान की बात कह कर उन्होंने व्यापारियों की मिलावटखोरी पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की है- "रावी-व्यास गठबंधन, सतलुज-यमुना लिंक नहर आदि निर्मल स्वच्छ योजनाओं का भी इस दुग्ध वृद्धि में बहुत बड़ा हाथ है।" (37)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरीश नवल दुग्ध-उत्पादन में वृद्धि दर्शाने के लिए नदियों और नहरों के योगदान का अतिशयतापूर्ण वर्णन करते हैं। नदियों और नहरों में जल की मात्रा, पशुओं द्वारा दिए गए दूध के अनुपात में बहुत ज्यादा होती है। व्यंग्य की प्रभाव क्षमता बढ़ाने के लिए व्यंग्यकार कभी-कभी अतिशयता का भी आश्रय लेते हैं। हरीश नवल ने अप्रत्यक्ष रूप से, दूध में पानी मिलाने वाले मिलावटखोरों पर कटाक्ष किया है।

देश में मिलावट खोरों को अपनी दुष्कृत्यों पर कोई खेद नहीं है बल्कि वे तो परोक्ष रूप से सरकार के समक्ष मिलावट करने का हक भी मांगते हैं। मिलावट करने वाले व्यापारियों के दुस्साहस को वर्णित करते हुए कमला प्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* पुस्तक में हरिशंकर परसाई ने होशंगाबाद नगर में हलवाईयों द्वारा आयोजित सम्मेलन के विषय में बताया है। उस सम्मेलन में वहां के सभी हलवाई सरकार के सम्मुख सर्व सम्मति से प्रस्ताव रखते हैं कि मिलावट के संबंध में जो कानून बनाया गया है, उसका सरलीकरण किया जाए। व्यापारी वर्ग के निर्लज्जता पूर्ण साहस को वर्णित करते हुए हरिशंकर परसाई ने लिखा है- "ऐसा साहस संसार के इतिहास में किसी व्यापारी वर्ग ने नहीं बताया कि खुल्लम खुल्ला प्रस्ताव पास करके सरकार से मांग करें कि हमें मिलावट करने दो।" (143)

हरिशंकर परसाई व्यापारी वर्ग के दुस्साहस का अतिशयता पूर्ण वर्णन करते हैं। जब समाज का कोई वर्ग राजतंत्र के सामने, निर्भीक भाव दर्शाते हुए समाज-हित के विरोध में कोई मांग रखता है, तो इससे राजतंत्र के अशक्त होने का, तथा उसके अंतर्गत उनके स्वयं सम्मिलित होने का भाव प्रतिबिंबित होता है।

व्यापारी वर्ग के दुस्साहस के प्रकटन के परिप्रेक्ष्य में जो कारण हैं, उसे वर्णित करते हुए हरिशंकर परसाई ने आगे लिखा है- "विकास करते-करते हमारा देश उस स्थिति तक पहुंच चुका है जहां मिलावट, मुनाफाखोरी, चोरी और घूस को अपना कानूनी हक माना जाने लगा है।" (143)

व्यापारी-वर्ग का समग्र ध्यान अधिक से अधिक मुनाफा कमाने में होता है। वे कम लागत में अधिक लाभ प्राप्ति के तरीके खोजते रहते हैं, उनमें से एक तरीका सही वस्तु में गलत वस्तु की मिलावट करने का भी है। चोरों की भी अनेक श्रेणियां देखने को मिलती हैं। मोटे तौर पर टैक्स की चोरी, विद्युत की चोरी, जंगल विभाग के अंतर्गत लकड़ी की चोरी तथा नदियों के आसपास वाले क्षेत्र से रेत, बजरी और पत्थर की चोरी करने वाले लोग होते हैं। घूस लेने वालों का क्षेत्र तो अत्यंत व्यापक है। वे यत्र-तत्र-सर्वत्र पाए जाते हैं। उपर्युक्त विवरण देश के विकास को ही तो दर्शाता है।

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरिशंकर परसाई बताना चाहते हैं कि स्वतंत्रता के बाद भारत में भ्रष्टाचार प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त हो गया है। देश का राज तंत्र जब भ्रष्टाचार में संलिप्त हो जाएगा तो मिलावटखोरों को मिलावट करने से और चोरों को चोरी करने से रोकना सरल नहीं होगा।

राहुल देव द्वारा संपादित *चयन और चिंतन व्यंग्य के संग* पुस्तक में सुरेशकांत खाद्य पदार्थों में मिलावट करने वाले लोगों की कार्य करने की विधि बताते हुए लिखते हैं- "पहले भारत में घी-दूध की नदियां बहती थी, अब उन नदियों में प्रदूषण की बाढ़ आई रहती है, जब से दूध यूरिया और साबुन से बनने लगा है।" (63)

सुरेशकांत ने मिलावटखोरों की भ्रष्ट वृत्ति को पारदर्शिता के साथ उल्लेखित किया है। उन्होंने कम शब्दों में भारतीय परंपरा के अंतर्गत दूध और घी की शुद्धता वर्णित करने के साथ-साथ वर्तमान मिलावटखोरी की भर्त्सना की है। कुछ समय पहले तक लोग अन्य वस्तुओं में भले ही मिलावट करते हों परंतु दूध में मिलावट करने से संकोच करते थे, क्योंकि उन्हें यह आशीर्वचन स्मरण हो आता था- 'दूधो नहाओ, पूतो फलो'। वर्तमान समय में लोगों का दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है, वे वैज्ञानिक दृष्टि से सोचने लगे हैं। वे उपर्युक्त विचारात्मकता को अंधविश्वास समझते हैं और बेखटके हर वस्तु में मिलावट करते हैं।

भोजन आहार का एक छोटा सा अंग है। अस्तु, अंतःकरण को पवित्र एवं निर्मल करने के लिए आहारशुद्धि पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। शुद्ध आहार ग्रहण करना हमारी संस्कृति है। शुद्ध आहार से केवल शरीर का पोषण ही नहीं होता, अपितु मन, बुद्धि व आत्मा का भी पोषण होता है। *सुश्रुत संहिता* पुस्तक में आयुर्वेदाचार्य सुश्रुत मन की प्रसन्नता को ही स्वास्थ्य का लक्षण मानते हुए लिखते हैं-

“समदोषाः समाग्निश्च समधातुमलक्रियाः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्याभिधीयते ॥” (173)

अर्थात् जिस मनुष्य के दोष (वात, पित्त और कफ) अग्नि (जठराग्नि), रसादि सात धातु सम अवस्था में रहते हैं, मल मूत्रादि की उत्सर्जन क्रिया ठीक होती है। शरीर की सब क्रियायें सम अवस्था में हैं और जिसका मन, इन्द्रियां और आत्मा प्रसन्न हैं, वह मनुष्य स्वस्थ है। *छान्दोग्योपनिषद्* में मानव को शुद्ध, सात्विक व पौष्टिक अन्न स्वीकार करने का आदेश दिया गया है- “आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्व-शुद्धौध्रुवा स्मृतिः” (799)

अर्थात् आहार से सत्व (मन) की शुद्धि होती है तथा मन की शुद्धि से स्मृति निर्मल होती है। अर्थ संग्रह के लिए दूध में पानी मिलाकर उसकी शुद्धता को नष्ट करना स्वस्थ समाज-निर्माण के कार्य में बाधक है। प्रत्येक खाने-पीने वाली वस्तु में शुद्धता का होना अनिवार्य है क्योंकि शुद्ध खानपान ही मनुष्य के शरीर और मानसिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करता है।

भोजन की सात्विकता तो मनुष्य द्वारा सुनिश्चित होती है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य अपने खानपान की पद्धति के अनुसार यह तय करता है कि नित्य के आहार में उसे किन वस्तुओं का सेवन करना है, परंतु भोजन की शुद्धता को समाज का व्यापारी वर्ग सुनिश्चित करता है। यदि वह खानपान की वस्तुओं में मिलावट करता है तो भोजन की शुद्धता खंडित हो जाती है। मिलावटी वस्तुओं के सेवन से मानव समाज के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना में वैयक्तिक मूल्य स्वास्थ्य का खंडन दर्शाया गया है। भोजन की शुद्धता खंडित होने से उसकी पवित्रता का भी क्षरण हो जाता है, क्योंकि शुद्ध वस्तु में जब मिलावट की जाती है तो उसमें अशुद्धि का समावेश हो जाता है, अशुद्ध वस्तु सम्मिलित होने से, शुद्ध वस्तु की पवित्रता खंडित हो जाती है।

हरीश नवल व्यापारियों द्वारा दूध में जल मिलाए जाने की विसंगति पर इसीलिए प्रहार करते हैं ताकि समाज के वणिक लोग अपने कर्तव्यों को पहचानें और सभी को शुद्ध खाद्य पदार्थों की आपूर्ति द्वारा स्वस्थ रखने की दिशा में कदम बढ़ाएं इसी से समाज के प्रति उनकी प्रतिबद्धता भी सुनिश्चित होगी।

3.2 कर्तव्यपरायणता, शरीर-रक्षा, अनासक्ति, सुख, निस्पृहता, तृप्ति तथा प्रमोद सामाजिक मूल्यों को *दिल्ली चढ़ी पहाड़* पुस्तक के अंतर्गत चिन्हित किया गया है।

'मंड़ी नहीं है नर्सिंग होम मंडी' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हमें चिकित्सा क्षेत्र की घोर विसंगति देखने को मिलती है। चिकित्सक, जिसे ईश्वर के बाद दूसरे स्थान पर जीवनदाता माना जाता है, वह भी उपभोक्ता संस्कृति के दायरे में कैद होता हुआ अपने कर्तव्य और सामाजिक सरोकारों को विस्मृत कर देता है। चिकित्सक अपनी जेब भरने के लिए किस प्रकार की छल और प्रपंच की विधियां अपनाता है, उसकी विकृत भावना को हरीश नवल ने अत्यंत कारूणिक ढंग से उभारा है।

चिकित्सा क्षेत्र में चिकित्सक के रूप में कितने सर्प कुंडली मारकर बैठे हैं, इस तथ्य से अवगत होकर पैरों तले से जमीन सरक जाती है। चिकित्सालय खोलने से पहले चिकित्सक अपने मन में जो योजना बनाता है, हरीश नवल उसकी मनोवृत्ति को इन शब्दों में बयान करते हैं- "नाजुक, कमनीय कंचन काया युक्त माया मोहिनी रिसेप्शनिस्ट सिलेक्ट कर लें। फिर केरला से सिस्टर्स इंपोर्ट करा लीजीए....। एक केमिस्ट शॉप खुलेगी, पार्किंग स्थल का ठेका दिया जाएगा। ड्राई क्लीनिंग, वाशिंग की दुकानें खुलेगी।" (37)

हरीश नवल द्वारा कहा गया कथन हास्य का प्रेरक दृष्टिगत होता है। चिकित्सालय खोलने के लिए योग्य चिकित्सक, उत्तम औषधि तथा मरीज के लिए परिष्कृत परिवेश का होना आवश्यक है। मरीज को कमनीय कंचन काया युक्त स्वागतकर्त्री से क्या प्रयोजन होगा? चिकित्सालय को आकर्षण और प्रदर्शन का केंद्र बनाने वाली व्यवस्था हास्यात्मक परिवेश ही निर्मित करती है।

ऊपर लिखे कथन के द्वारा हरीश नवल वर्तमान समय में चिकित्सालय खोलने के परिपेक्ष्य में जो उद्देश्य होता है, उसे वर्णित करते हैं और वह उद्देश्य है, समाज के धनी वर्ग को अपने चिकित्सालय की ओर आकृष्ट करना। केरल से नर्स मंगवाने के परिप्रेक्ष्य में यही कारण है। होना तो यह चाहिए कि चिकित्सालय के सभी कर्मचारी स्थानीय हों। सभी मरीज अंग्रेजी भाषा के जानकार नहीं होते, वे अपनी तकलीफ सहजता से उसी कर्मचारी को बता पाएंगे जो स्थानीय भाषा का ज्ञाता हो। समाज का अमीर व्यक्ति जब बीमार पड़ता है, तो सर्वप्रथम यही सोचता है कि उसी चिकित्सालय की शरण में जाया जाए, जहां रोजमर्रा की सभी सुविधाएं भी उपलब्ध हो सकें। चिकित्सालय का स्वामी भी यही चाहता है कि समाज के धनिक वर्ग का वहां पदार्पण हो, जिसके द्वारा उसकी अधिक से अधिक अर्थ-सिद्धि हो। समाज का निर्धन वर्ग

बीमार पड़ने पर उपर्युक्त किस्म के चिकित्सालयों की तरफ झांकने की भी हिम्मत नहीं कर सकता।

चिकित्सा क्षेत्र के महान भ्रष्टाचारी दलालों के विषय में जानकारी देते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं-"दवाई कंपनियों के दलाल टाई पहन बड़े बैग लिए आएंगे। 'नॉट फॉर सेल' असली-नकली दवाइयां देकर जाएंगे, जिन्हें आप मजे से रोगियों को देंगे और उनके बिलों को भव्यता प्रदान कर सकेंगे।" (37)

उपर्युक्त पंक्तियों में हरीश नवल वाग्वैदग्ध्य द्वारा चिकित्सा क्षेत्र के दलालों की कार्यप्रणाली का पर्दाफाश करते हैं। हरीश नवल चिकित्सा क्षेत्र में व्याप्त विद्रूपतापूर्ण परिवेश का वर्णन करते हैं। चिकित्सीय अभिकर्ताओं के सदस्य दवाइयों के सैपल चिकित्सकों को प्रदान करते हैं और चिकित्सक उसी कंपनी की दवाई अपने मरीजों को लिख कर देते हैं। कंपनी का भी फायदा, चिकित्सक का भी फायदा और मरीज का घाटा ही घाटा। जो दवाइयां कंपनी के दलाल चिकित्सकों को बेदाम दे जाते हैं, चिकित्सक मरीजों से उनका दाम वसूलते हैं। स्वस्थ होकर घर जाने के बाद भी दवाइयां मरीज का पीछा नहीं छोड़ती, इस प्रकार उस कंपनी को भी अर्थ-लाभ होता रहता है।

अंतिम पंक्ति द्वारा व्यंग्यकार यह कहना चाहता है कि उपर्युक्त सभी व्यवस्थाएं अंततः अपनी जेब को गरिमा प्रदान के लिए ही योजनाबद्ध की जाती हैं। चिकित्सा क्षेत्र जैसे मानवीय सरोकारों से युक्त पेशे में भी अधिकाधिक धन प्राप्ति की होड़ लगी हुई है। यही नहीं, धन प्राप्ति के लिए कई चिकित्सक गुर्दे से पथरी निकालते वक्त गुर्दा ही गायब करवा देते हैं और उसे लाखों में फिर बेचते हैं।

चिकित्सक, जो पहले प्राण बचाने वाले कहे जाते थे, अब प्राण हरने वाले हो गए हैं और मानव समाज की एक इकाई होते हुए भी सामाजिक मूल्यों के विध्वंसक बन रहे हैं। हरीश नवल ऐसे लोगों की कलई खोलते हुए व्यंग्य प्रहार करते हैं- "मानव के अंगो का व्यापार करने वाली कंपनियों के नुमाइंदा मौजूद होते हैं, रातों-रात माल खरीदते हैं, हाथों -हाथ माल दे जाते हैं। वे भी मालामाल, ये भी मालामाल।" (38)

यदि किसी की जीवन रक्षा के लिए कोई मनुष्य स्वेच्छा से अंग दान करे तो इससे सामाजिक मूल्यों के निर्वहण के प्रति उसकी निष्ठा प्रकट होती है परंतु जब कोई चिकित्सक इसे

व्यापार का आधार बनाकर केवल लोभ वश इस्तेमाल करता है और वह भी मरीज के इलाज की आड़ में, तो यह कर्तव्य परायणता का हनन ही कहा जाएगा। मनुष्य के द्वारा किए गए कर्म ही उसके द्वारा प्राप्त होने वाले फल को निर्धारित करते हैं फिर मानवता के विरुद्ध, मानव समाज के हित के विरुद्ध किए गए कर्म से सकारात्मक फल की प्राप्ति कैसे संभव है?

चिकित्सकों द्वारा अपना दायित्व न निभाया जाना जब सीमा का अतिक्रमण कर जाता है, तो जनता के सब्र का बांध टूट जाता है। उत्तेजना में लोग उचित-अनुचित में भेद करना भूल जाते हैं, इस विषय में हरीश नवल की समकालीन व्यंग्यकर्त्री सूर्यबाला *धृतराष्ट्र टाइम्स* पुस्तक के अंतर्गत लिखती हैं- "मरीजों और घायलों की ठीक-ठाक चिकित्सा की व्यवस्था न हो पाने की वजह से ही तो अस्पताल में तोड़फोड़ और गड़बड़ी मचाई गई।" (90)

सूर्यबाला द्वारा कहा गया कथन दर्शाता है कि जिन लोगों के रिश्तेदार अस्पताल में दाखिल थे, उनके प्रति अस्पताल के कर्मचारियों द्वारा अवहेलना दर्शाई गई। मरीजों के रिश्तेदारों का धैर्य जवाब दे गया और असंतुष्ट होकर उन्होंने अस्पताल में अफरा-तफरी मचा दी। मरीजों के रिश्तेदारों का उपर्युक्त कदम सामाजिक-मूल्यों के विरुद्ध है, परंतु इसके परिप्रेक्ष्य में जो कारण नीहित है, वह है, चिकित्सकों और अस्पताल के अन्य कर्मचारियों की कर्तव्यहीनता। अस्पताल में जो भी मरीज दाखिल होता है, वह शरीर रक्षा के उद्देश्य से ही दाखिल होता है। एक मरीज के साथ अनेक संबंधी और परिचित भी जुड़े होते हैं, जो अलग-अलग समय पर आकर मरीज की देखभाल करते हैं। चिकित्सा-क्षेत्र का प्रबंधन यदि ठीक तरह से क्रियान्वित नहीं होगा, तो मरीजों के रिश्तेदारों की नाराजगी स्वाभाविक है किंतु इसके लिए तोड़फोड़ का मार्ग अपनाना उचित नहीं है।

मनुष्य जिस प्रकार का कर्म करता है, उसे उसी के अनुरूप फल की प्राप्ति होती है, इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए कृष्णानंद शास्त्री द्वारा संपादित *हितोपदेश* पुस्तक में नारायण पंडित कहते हैं-

"यथा मृत्पिण्डितः कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति। एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥" (16)

अर्थात् कुम्भकार जिस-जिस बर्तन को निर्मित करने की इच्छा रखता है, मिट्टी के पिंड से उस बर्तन का उसी प्रकार निर्माण कर लेता है। इसी प्रकार मनुष्य भी जैसा कर्म करता है,

वैसा ही फल प्राप्त करता है। मनुष्य अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए अगर किसी का अहित करता है, तो भविष्य में उसे भी किसी न किसी रूप में हानि का सामना करना पड़ सकता है।

नारायण पंडित के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान समय के चिकित्सक मानव समाज के अहित की सीमा तक जाते हुए जो धन संचित करते हैं, उस धन के उपयोग से उनके वंशजों में सदाचार के बीज कभी भी अंकुरित नहीं हो सकते। *नीतिशतक* में भर्तृहरि मानव को धन के लोभ से दूर और संतुष्टि का भाव अपनाने का परामर्श देते हुए कहते हैं-

तद्भात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोत्रं महद्वा धनं। तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम्॥ (85)

अर्थात् ईश्वर ने भाग्य में कम या अधिक जितना धन दिया है, उतना तो रेगिस्तान में भी उसे मिलता ही है। सुवर्णमय मेरु पर्वत पर जाने पर भी उससे अधिक उनको मिल नहीं सकता।

भर्तृहरि के कहने का भाव यह है कि मनुष्य को अपने पुरुषार्थ द्वारा किए गए कार्य का फल कठिन परिस्थितियों में भी मिल जाता है। धन की चकाचौंध होने पर भी मनुष्य को उसके प्रति लालच की भावना न रखते हुए संतोष की वृत्ति अपनानी चाहिए, क्योंकि लोभ सभी दुर्गुणों का मूल है। लोभ जब मनुष्य के हृदय में वास कर लेता है, तो अन्य दुर्गुण भी मनुष्य के अंतर्मन में स्वतः आश्रय पा लेते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे गंदगी के ढेर पर कई प्रकार के रोगाणुओं का जमाव अपने आप हो जाता है।

प्राचीन काल में चिकित्सा को समाज सेवा के अंतर्गत माना जाता था, इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए माधवाचार्य शास्त्री *क्यों* पुस्तक में कहते हैं- "वैद्यों के लिए आयुर्वेद-शास्त्र में सबसे प्रथम यही शिक्षा दी गई है कि उन्हें लोभ रहित होना चाहिए, मानव सेवा के रूप में प्रभु सेवा की भावना से उन्हें चिकित्सा कार्य करना चाहिए। रोगी को औषधि देना तो प्रत्यक्ष ही जीवनदान है।" (94)

माधवाचार्य ने चिकित्सक के दायित्व के विषय में बताया है कि समाज के स्वास्थ्य रक्षण में चिकित्सक का महत्वपूर्ण योगदान है। इसीलिए चिकित्सक को ईश्वर का दूसरा रूप कहा जाता है, परंतु वर्तमान समय में चिकित्सक अपने वास्तविक दायित्व से विमुख हो रहा है। हरीश

नवल भी उपर्युक्त व्यंग्य रचना के माध्यम से यही कहना चाहते हैं कि चिकित्सा क्षेत्र के अंतर्गत अर्थ-लाभ का लक्ष्य निहित नहीं होना चाहिए क्योंकि जीवन अनमोल है, इसे धन के तराजू पर नहीं तोला जा सकता। चिकित्सक के माध्यम से जब जीवनदान जैसा अमूल्य कार्य संपादित हो रहा हो तो उसे अपने महान कृत्य को धन की परिधि में नहीं लाना चाहिए।

धन के लोभ ने जीवन-दान देने वाले चिकित्सकों को इतना पतनशील बना दिया है कि वे अपने मरीजों के आंतरिक अंग तक निकाल कर बेच देते हैं, मनुष्य समाज की इससे अधिक विडंबना और क्या होगी? चिकित्सकों द्वारा दर्शाया गया विसंगति पूर्ण व्यवहार, उनकी कर्तव्य परायणता पर प्रश्न चिन्ह है। धन के प्रति उनकी आसक्ति यह सिद्ध करती है कि मनुष्यता के प्रति उनके हृदय में प्रेम तथा अर्थ के प्रति अनासक्ति जैसे नैसर्गिक तत्व नदारद है।

‘दिल्ली दिल वालों की’ व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल, महानगरीय मानसिकता पर प्रहार करते हैं। दिल्ली महानगर में प्रत्येक व्यक्ति अधिकाधिक धन कमाने की होड़ में लगा हुआ है। उच्च शासकीय स्तर की कुर्सी हथियाने की चाहत लोग इसीलिए रखते हैं ताकि दोनों हाथों से धन बटोरा जा सके। धन प्राप्ति के बाद यश लिप्सा की चाहत सर उठा लेती है, इच्छाओं की तो सीमा ही नहीं, वे तो अनन्त है। हरीश नवल दिल्ली को प्रतीक बनाकर महानगरों में बसने वाले लोगों की सीमाहीन इच्छाओं का वर्णन करते हुए कहते हैं- "किसी का दिल निगम पार्षद की कुर्सी पर है तो किसी का संसद के गोल गुंबद पर। कोई दिल ही दिल अकादमी के आमंत्रण की चाह कर रहा है, कोई कोटे और लाइसेंस की।" (15)

महानगरों में बसने वाले लोग अधिक से अधिक धन और प्रसिद्धि की आकांक्षा रखते हैं। हरीश नवल उनकी अनंत इच्छाओं को देखते हुए उपहास करते हैं, क्योंकि सभी इच्छाएं सुख प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर की जाती हैं, परंतु सुख फिर भी प्राप्त नहीं होता। मानव अपनी इच्छाओं को फलीभूत करने के लिए अतिरिक्त श्रम करता है और इस उपक्रम में थक जाता है, सुख प्राप्ति का लक्ष्य दिवास्वप्न बनकर रह जाता है। पार्षद की कुर्सी पाने की इच्छा के पीछे प्रसिद्धि की कामना रहती है। अकादमी के आमंत्रण की इच्छा भी प्रसिद्धि की आकांक्षा की ओर संकेत करती है। कोटे और लाइसेंस की इच्छा के परिप्रेक्ष्य में अर्थ-लाभ का लक्ष्य निहित रहता है।

महानगरों में बसने वाले लोग धन कमाने के लिए केवल एक नौकरी पर ही आश्रित नहीं होते अपितु नौकरी के अतिरिक्त दूसरे कार्य भी करते हैं, इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए हरीश

नवल आगे लिखते हैं- "मास्टर खेमचंद स्कूल में दिल लगाएं या न लगाएं पर अपने ट्यूशन सेंटर में दिल से पढ़ाते हैं।.... सरकारी कर्मचारी भाई राधेलाल दफ्तर में हाजिरी लगाकर गैर सरकारी दफ्तर में रात आठ बजे तक बैठते हैं।" (15)

अध्यापक वर्ग विद्यालय में पढ़ाने के बाद ट्यूशन करता है, सरकारी कार्यालयों में कार्यरत कर्मचारी दफ्तर के बाद गैर सरकारी कार्य करके अतिरिक्त धन कमाते हैं। समाज के मध्यम वर्ग के लोग प्रदर्शन की अंधी दौड़ में, जीवन में अधिक सुख सुविधा युक्त साधन प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त मेहनत करते हैं।

हरीश नवल ट्यूशन सेंटर में पढ़ाने वाले अध्यापकों, भ्रष्ट सरकारी कर्मचारियों की कर्तव्यहीनता और उनके द्वारा अवैध रूप से गैर सरकारी कार्यालयों में नौकरी करने का एकमात्र लक्ष्य अधिक से अधिक धन संग्रह करना मानते हैं। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद बाकी धन तो तिजोरियों अथवा बैंकों में रखने के लिए संग्रह किया जाता है जोकि नितांत अनावश्यक है। छः-सात घंटे विद्यालय में पढ़ाने के उपरांत कोई अध्यापक जब दो-तीन घंटे प्रतिदिन ट्यूशन पढ़ाएगा तो वह परिवार के लिए समय कहां से निकाल पाएगा? समाज हित के पथ पर अग्रसर कैसे हो पाएगा? धन संग्रह करने के व्यक्तिगत लक्ष्य साधने-साधते वह सामाजिक दायित्वों से विमुख होता जाएगा।

मनुष्य अपने पूर्वजों की यश गाथा वर्णित करते नहीं अघाता, समाज के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का बखान करते हुए उसका मस्तक गर्व से ऊंचा हो जाता है परंतु क्या कभी वह सोचता है कि उसे भी अपने वंशजों को जीवन मूल्यों से सम्प्राणित कोई विरासत सौंपनी है, जिसका वर्णन वे भी आगे चलकर अपने वंशजों के समक्ष कर सकें। वर्तमान सामाजिक परिवेश को देखते हुए तो यही आभास होता है कि लोग अपने बच्चों के लिए यंत्रों के ढेर एकत्रित कर रहे हैं जिनका स्थायित्व संदेहास्पद है। वे अपने बच्चों को जीवन मूल्यों की अनमोल निधि सौंपने के विषय में क्यों नहीं सोचते जिनका स्थायित्व असंदिग्ध है।

धन अथवा वस्तुओं का संग्रह परिग्रह कहलाता है। धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (आधुनिक मूल्य : भाग 5) में सत्येंद्र शर्मा अपरिग्रह की वृत्ति को सामाजिक मूल्यों की स्थापना के लिए आवश्यक मानते हुए कहते हैं- "अपरिग्रह को भारतीय मनीषियों ने 'प्रवृत्ति' एवं 'निवृत्ति' के मध्य प्रवाहमान जीवनधारा का सेतु माना है। इसलिए 'अपरिग्रह' भारतीय जीवन मूल्यों की साधना का एक अनिवार्य तत्व है।" (50)

सत्येन्द्र शर्मा के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि जीवन मूल्यों के निर्वहण के लिए परिग्रह की वृत्ति त्याग कर 'अपरिग्रह' की वृत्ति अपनानी पड़ेगी। जीवन की गतिशीलता के लिए कुछ साधनों की आवश्यकता तो रहती ही है, मनुष्य उन साधनों की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त होता है। जब ये साधन उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति से अधिक हो जाएं तो उसे निवृत्ति का मार्ग अपनाना चाहिए, अर्थात् अतिरिक्त साधनों का उपयोग समाज-हित के प्रति समर्पित कर देना चाहिए।

अपरिग्रह के संदर्भ में महात्मा गांधी के विचारों से अवगत कराते हुए वे आगे लिखते हैं- "प्रकृति के पास मनुष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त है, परंतु वह किसी एक व्यक्ति की लिप्सा को पूर्ण नहीं कर सकती।" (52) महात्मा गांधी के कहने का भाव है कि पृथ्वी सभी प्राणियों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए सक्षम है परंतु उसके द्वारा प्रदत्त साधनों की प्रतिभागिता निष्पक्ष और आपूर्ति समान भाव से होनी चाहिए।

पतंजलि ने *पातंजलयोगदर्शनम्* पुस्तक में 'यम' का वर्णन करते हुए अपरिग्रह का उल्लेख किया है- "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।" (266) 'अपरिग्रह' के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि भारतीय परंपरा में अपने स्वार्थ के लिए धन, सम्पत्ति तथा भोग-सामग्री का संचय करने का विधान नहीं है। धन संचित करने के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य की लोभजनित प्रवृत्ति ही कार्य करती है। यदि मनुष्य लोभरहित हो जाए तो वह धन अथवा अन्य कोई भी वस्तु संचित करने की वृत्ति से भी मुक्त हो जाएगा।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना में सुख, निस्पृहता, प्रमोद तथा तृप्ति, सामाजिक मूल्यों का क्षरण दर्शाया गया है। मन और व्यक्ति परस्पर अभिन्न हैं, मन के बगैर व्यक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। दिन-रात पैसा कमाने की धुन में व्यक्ति सुख का अनुभव कैसे करेगा? व्यक्ति के अंतर्मन से निस्पृहता का भाव टिकने नहीं पाता। उसके पास जितना धन है, समृद्धि के जितने साधन हैं, वह उनके प्रति तृप्त नहीं है इसीलिए अधिक धन प्राप्ति की इच्छा हृदय में रखकर वह दौड़ता भागता है। अति व्यस्तता के कारण उसके पास आमोद- प्रमोद के लिए समय शेष नहीं रहता।

हरीश नवल रचित उपर्युक्त व्यंग्य रचना और भारतीय-दर्शन के उज्ज्वल स्वरूप को देखते हुए कहा जा सकता है कि वर्तमान मानव धन एकत्रित करने की दौड़ में ऐसा लगा है कि उसे स्वयं चैन से जीने का अवकाश नहीं मिलता। धन संग्रह करने के लिए वे स्वयं तो कोल्हू का

बैल बना ही हुआ है और अपने स्वार्थ के कदमों तले जीवन मूल्यों को भी रोंदता चला जा रहा है, इस तथ्य को जान कर भी वह अंजान बना हुआ है।

3.3 कार्यकुशलता, स्वावलंबन, अध्यवसाय, प्रेम, गार्हस्थ्य, उपकारशीलता, करुणा, कोमलता, निर्मलता, सदाचार, प्रसन्नता, विश्वास, उर्ध्व चिंतन तथा सद्ब्यवहार सामाजिक मूल्य *पीली छत पर काला निशान* पुस्तक के अंतर्गत ध्वस्त होते दर्शाए गए हैं।

'अगर रहीम न होते' व्यंग्य रचना में हरीश नवल शिक्षा जगत में पनप रहे भ्रष्टाचार तथा वहां पर समाज के शक्तिशाली लोगों के प्रभुत्व को उल्लेखित करते हैं। शिक्षा जगत में भी बाजारवाद का आधिपत्य हो चुका है, लेन-देन के समीकरण स्थापित होने लगे हैं। एक बलवान व्यक्ति किसी शिक्षाविद के पुत्र को शारीरिक दांवपेच में माहिर बनाता है तो शिक्षा शास्त्री गुणवत्ता न होने पर भी उसे अनेक परीक्षाएं उत्तीर्ण करवा कर उच्च पद पर आसीन करवा देता है। वर्तमान समय में जो व्यक्ति स्वार्थ सिद्ध करने की कला में पारंगत हो, वही अपने भावी जीवन में उत्तरोत्तर उन्नति प्राप्त करने में सफल हो सकता है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना के पात्र समाज को इस दिशा में प्रेरित करते दृष्टिगत होते हैं परंतु ऐसी क्रियाशीलता न तो सामाजिक स्तर पर उचित है और न ही राष्ट्रीय स्तर पर, क्योंकि ऊंचे पदों पर बैठा अयोग्य व्यक्ति अपनी कार्यकुशलता को गुणवत्ता के अभाव में न्याय पूर्ण ढंग से कैसे सिद्ध कर पाएगा?

उपर्युक्त व्यंग्य रचना में हरीश नवल विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष आचार्य और किसी पाठशाला के खेलकूद प्रशिक्षक चौधरी बलबीर सिंह के आपसी सामंजस्य के विषय में बताते हैं कि आचार्य चौधरी से अपने पुत्र का ध्यान रखने को कहते हैं और चौधरी को प्राइवेट तौर पर एम.ए. करने के लिए प्रेरित करते हैं। आचार्य चौधरी को व्यक्तिगत तौर पर सक्षम बनाना चाहते हैं क्योंकि जब तक मनुष्य स्वयं साधन संपन्न नहीं होता तब तक वह किसी अन्य व्यक्ति की सहायता नहीं कर सकता।

आचार्य जी और चौधरी के आपसी आदान-प्रदान की प्रक्रिया को वर्णित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "इधर चौधरी होते निरीक्षक और वह परीक्षार्थी, पुस्तकें डेस्क पर रखकर ठाठ से टीपता, किसी अन्य विद्यार्थी की हिम्मत न होती थी कि उसकी सेहत के आगे चूं भी कर सके। उधर एम.ए की परीक्षा में चौधरी होते परीक्षार्थी और आचार्य जी परीक्षक।" (75)

आचार्य जी तथा चौधरी द्वारा, एक दूसरे को लाभान्वित करने की प्रक्रिया, जीव विज्ञान के अंतर्गत 'सिंबयोसिस' के सिद्धांत से संप्लिष्ट की जा सकती है। इस सिद्धांत के अंतर्गत दो जीव, परस्पर सामंजस्य करते हुए एक दूसरे के लिए लाभकारी सिद्ध होते हैं। पी.एस. धामी तथा जे.के. धामी द्वारा लिखित *टेक्स्ट बुक ऑफ जूलॉजी* में सिंबयोसिस को परिभाषित करते हुए लिखा गया है-" An interaction in which both the interacting species are benefited."(377) अर्थात् ऐसी संपर्कगत क्रिया, जिसके अंतर्गत प्राणी जगत के दो जीव परस्पर सहयोगी बनते हैं, और एक दूसरे को लाभ पहुंचाते हैं।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना में परीक्षक के रूप में आचार्य जी चौधरी की मदद करते हैं और प्रतिदान स्वरूप चौधरी परीक्षक के रूप में, आचार्य जी के पुत्र को सहायता पहुंचाता है। यद्यपि उन दोनों द्वारा किया गया उपर्युक्त कृत्य, शिक्षा जगत की गरिमा मंडित छवि को धूमिल करता है। मनुष्य से इतर प्राणी, बौद्धिक रूप से उन्नत न होते हुए भी, एक दूसरे के लिए सहायक बनते हुए प्रकृति चक्र को बाधित नहीं करते, परंतु मनुष्य अप्रतिम मेधा-संपन्न होते हुए भी, अपने स्वार्थ को सम्मुख रखते हुए अवैध रूप से एक दूसरे से का सहयोग करता है।

हरीश नवल ने शिक्षा जगत जैसे पावन क्षेत्र में उभरते हुए अपकर्ष को दर्शाया है। वर्तमान समय में योग्यता के आधार पर फल प्राप्ति का प्रयास नहीं किया जाता अपितु अपने द्वारा किसी को लाभ देकर बदले में उससे लाभ प्राप्त किया जाता है। किसी भी क्षेत्र में सफल होने के लिए मनुष्य को पुरुषार्थ करना चाहिए। स्वावलंबन से जो प्रतिफल मिलता है, उस का आनंद ही कुछ और होता है। आनंद प्राप्ति के साथ-साथ मनुष्य के अंतर्मन में आत्मविश्वास की भी बढ़ोतरी होती है जो जीवन में उसकी उत्तरोत्तर प्रगति को सुनिश्चित करती है। एकलव्य ने अपने पुरुषार्थ के द्वारा ही गुरु द्रोणाचार्य की प्रतिमा के सामने अभ्यास करके धनुर्विद्या में सफलता प्राप्त की।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (प्राकृतिक मूल्य : भाग 1) में परिश्रम, प्रयास अथवा अध्यवसाय की वृत्ति को अपनाने पर बल देते हुए कृष्णगोपाल मिश्र कहते हैं- "अध्यवसाय वह भाव भूमि है जहां सदवृत्तियों का बीजारोपण करते हुए कठोर श्रम और शक्ति की अपूर्व क्षमता से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।" (38)

कृष्णगोपाल मिश्र के आधार पर कहा जा सकता है कि हरीश नवल भी अपनी व्यंग्य रचना के द्वारा स्वावलंबन तथा अध्यवसाय सामाजिक मूल्यों का संवर्धन करते दृष्टिगत होते हैं

कि जिस प्रकार आचार्य जी अपने आलसी कुलदीपक की शिक्षा की निर्विघ्न निरंतरता के लिए चौधरी को उत्तरोत्तर उच्च शिक्षित करवाते जाते हैं और इसके लिए दोनों पक्षों को अधिक परिश्रम भी नहीं करना पड़ता, यह मार्ग उचित नहीं है क्योंकि दोनों स्थितियां चोर-चोर मौसेरे भाई मुहावरे को सार्थक करती प्रतीत होती हैं।

मनुष्य को स्वयं परिश्रम के पथ पर अग्रसर होते हुए कार्य- सिद्धि करने का प्रयास करना चाहिए। मनुष्य जन्म लेते ही स्वावलंबी नहीं बन जाता, उम्र बढ़ने के साथ, अपने परिवार और समाज के सहयोग से वह स्वावलंबी बनता है। विद्याध्ययन उसके स्वावलंबन का पथ प्रशस्त करता है। इस विषय में *नवीन मनोविज्ञान और शिक्षा* पुस्तक में लालजीराम शुक्ल मनुष्य और पशु की संतान में भिन्नता दर्शाते हुए कहते हैं- "मनुष्य की संतान पशु की संतान के सदृश अपने आप स्वावलंबी नहीं बन जाती। उचित शिक्षा के अभाव में बालक की उन शक्तियों का विकास नहीं होता जिनके द्वारा वह संसार के अन्य प्राणियों पर अपना अधिकार जमा देता है और जिनके कारण मानव जीवन श्रेष्ठ जीवन कहा गया है।" (1)

लालजीराम शुक्ल द्वारा कहा गया कथन जीवन में विद्या के महत्व को सिद्ध करता है क्योंकि मनुष्य और पशु में अंतर दर्शाने के लिए विद्या ही एकमात्र सक्षम कसौटी है, इसीलिए आचार्य जी चौधरी से अपने पुत्र का ध्यान रखने की बात कहते हैं और चौधरी आचार्य जी से अपना ध्यान रखने की बात कहते हैं। दोनों पक्ष एक दूसरे की सहायता करते हैं और अपने-अपने लक्ष्य की सिद्धि भी करते हैं।

इस विधि से प्राप्त की गई शिक्षा शिक्षार्थी को मानसिक रूप से निर्बल बना देती है क्योंकि परिश्रम से अर्जित की गई शिक्षा के अंतर्गत विद्यार्थी पुस्तकों का भली-भांति अध्ययन करता है। पुस्तक पढ़ते समय यदि वह उसमें लिखित सभी बातें आत्मसात न भी कर पाए तो भी सद्भावना-संवर्धक कुछ बातें बीज रूप में उसके अवचेतन मन में सुरक्षित रहती हैं जो कालांतर में उसका हित साधने के साथ-साथ समाज हित का मार्ग भी प्रशस्त करती हैं।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल स्वावलंबन, अध्यवसाय तथा कार्यकुशलता, इन सामाजिक मूल्यों के हास की ओर इंगित करते हैं। आचार्यजी का पुत्र यदि अध्यवसाय अर्थात् परिश्रम करने से जी न चुराता, तो आचार्यजी को अपने शैक्षणिक कर्तव्य का हनन न करना पड़ता । इसी प्रकार यदि चौधरी निस्वार्थ भाव से, आचार्यजी के पुत्र को

शारीरिक कसरत का अभ्यास कराते और परीक्षक के रूप में उसे नकल न करवाते तो आचार्यजी का पुत्र स्वावलम्बी बन पाता।

'नव यक्ष का यक्षिणी को पत्र' व्यंग्य रचना में हरीश नवल ने प्रेम के प्राचीन स्वरूप और आधुनिक स्वरूप की तुलना करते हुए शाश्वत प्रेम को धारण करने के लिए प्रेरित किया है। यद्यपि हरीश नवल स्वयं पुरुष जाति के सदस्य हैं परंतु सामाजिक जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए वे निष्पक्षता से पुरुष जाति के अंतर्मन में विकसित प्रेम के यान्त्रिकीकरण पर प्रहार करते हैं।

प्रस्तुत व्यंग्य रचना में महाकवि कालिदास जी रचित 'मेघदूत' के माध्यम से आधुनिक यक्ष द्वारा यक्षिणी को पत्र प्रेषित किया गया है। प्रेम के संबंध में यक्षिणी अर्थात् आधुनिक नारी वर्तमान समय में भी गरिमामंडित ढंग से अपने भावों की अभिव्यक्ति करती है, परंतु आज का यक्ष सुविधाभोगी, धनलोलुप तथा सत्तालिप्सा का दास बन गया है। प्रेम उसके लिए अर्थ, यश और प्रभाव प्राप्ति की सीढ़ी बन गया है।

वर्तमान पति रूपी यक्ष पत्नी को यह स्पष्ट बता देता है कि यक्षिणी का साथ उसके जीवन की प्रगति में एक बाधक तत्व था और अब अकेले रहकर वह अभूतपूर्व प्रगति कर रहा है। वर्तमान पति रूपी यक्ष के कथन को वर्णित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "मुझे शाप का यह दौर बेहद फला है मेरे व्यक्तित्व का बहुत विकास हुआ है। तुम्हारे साथ तो मैं तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य बात सोच भी नहीं सकता था।" (101)

यक्ष के कथन के माध्यम से हरीश नवल वर्तमान समय में अधिकांश पुरुषों की स्वच्छंद वृत्ति की ओर संकेत करते हैं। वर्तमान पुरुष सोचता है कि स्त्री उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधक तत्व है। स्त्री के साथ रहने से उसे यत्किंचित अनुशासित रहना पड़ता है। समय से घर लौटना, समय पर शयन करना, प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व उठना, ये सभी अनुशासनबद्ध कार्य उसे बोझ-सम लगते हैं। पुरुषों की प्रभुता और वर्चस्व पाने की प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए हरीश नवल यक्ष के माध्यम से आगे कहते हैं- "मेरा क्या है? मैं तो पुरुष हूँ, जिस पर राजनेता भी हो जाऊंगा।" (102)

ऊपर लिखे कथन में हरीश नवल वाग्वैद्ध्य के द्वारा व्यंग्यात्मकता का निर्वहण करते हैं। वर्तमान पति को राजनेता कहते हुए वे उसकी निरंकुश, स्वार्थी और अवसरवादी प्रवृत्ति की

ओर संकेत करते हैं। उपर्युक्त कथन के अंतर्गत यक्ष रुपी पति का अपने पौरुष के प्रति अभिमान प्रतिबिंबित होता है। यक्ष का कथन बड़ी निर्दयता के साथ यक्षिणी के प्रति अवहेलना का भाव दर्शाता है। हरीश नवल प्रस्तुत व्यंग्य रचना के माध्यम से दांपत्य जीवन के अवमूल्यन की ओर संकेत करते हैं। वे यक्ष के कथनों द्वारा वर्तमान पुरुष जाति की स्वार्थी मानसिकता को निरावृत करते हैं। पारिवारिक जीवन में हानि-लाभ का भाव पारिवारिकता के भाव के हनन की ओर इशारा करता है।

वर्तमान वैचारिकता तथा हमारी प्राचीन गौरवशाली परंपरागत वैचारिकता की तुलना नरेंद्र कोहली रचित *अवसर* उपन्यास के उन संवादों से संदर्भित की जा सकती है, जिसे वे वनवास के दौरान राम के मुख से कहलाते हैं- "अपनी पत्नी की उचित देखभाल करना मेरा कर्तव्य है। इसलिए उसकी सुविधा-असुविधा को तो जानना होगा। जो राम, सीता से विवाह कर उसे अपने घर लाया था, वह अयोध्या का संभावित युवराज था, वनवासी नहीं। मेरे मन में एक अपराध-भावना है।" (114)

श्रीराम वनवास के दौरान भी सीता की सुविधा-असुविधा के प्रति चिंतित हैं। उनके हृदय में इस बात को लेकर अपराध-बोध है, कि महाराज जनक की पुत्री सीता और महाराज दशरथ की कुलवधू, वन के अनेक कष्ट सहन करने को बाध्य है, इसका एकमात्र यही कारण है, कि वह अपने पति की सहचरी बने रहना चाहती है। सीता, जीवन का परम सुख यही मानती हैं कि राजमहल हो या वन, पति के साथ रहने में ही आनंद है। सीता द्वारा कहे गए गरिमा पूर्ण कथन को उद्धृत करते हुए नरेंद्र कोहली आगे लिखते हैं- "मैं उन्मुक्त प्रकृति के बीच अपने प्रिय के साथ, जीवन के नए आयाम देखूंगी: और आत्म-निर्भर इकाई के रूप में, समाज के लिए कुछ उपयोगी हो सकूंगी।" (114)

कैसा विरोधाभास है भारत के प्राचीन दंपतियों और आधुनिक दंपतियों के मन में। आज का यक्ष अपनी यक्षिणी से दूर रहकर स्वतंत्र और स्वच्छंद जीवन जीने में सार्थकता अनुभव करता है, पत्नी को अपनी प्रगति मार्ग में अवरोध समझता है, जिससे गार्हस्थ्य तथा प्रेम, सामाजिक मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। वनवासी राम सीता को सुख सुविधाएं न दे पाने के कारण अपराध बोध से भर जाते हैं। सीता के लिए राज महलों के सुख से बढ़कर है-पति का साथ। स्वयं को समाज की केवल इकाई मात्र समझकर सीता का चरित्र एक विराट और उज्ज्वल स्वरूप धारण कर लेता है। वनवास को वह सकारात्मक भाव से स्वीकार करती है,

क्योंकि वन में निवास करने से सामान्य जन समाज से उनका संपर्क बढ़ेगा और इस प्रकार वे अपनी प्रजा से सामाजिक रूप से जुड़ सकेंगी। समाज से निकटता होने पर वे उनके सुख-दुख से भी अवगत हो सकेंगी।

राम-सीता का व्यवहार न केवल प्रेम के उत्कृष्ट रूप की स्थापना करता है अपितु जीवन में आने वाली विषम परिस्थितियों को भी सकारात्मक भाव से स्वीकारने के लिए प्रेरित करता है। सीता के द्वारा कही गई अन्तिम पंक्ति सामाजिक मूल्यों के प्रति उसकी प्रतिबद्धता को निर्दिष्ट करती है।

'देर आए दुरुस्त आए' व्यंग्य रचना में हरीश नवल समाज के उन लोगों पर व्यंग्य प्रहार करते हैं जिनका व्यवहार 'हाथी के दांत खाने के और, दिखाने के और' उक्ति को सार्थक करता है। वे अपनी व्यंग्य रचना को सूत्रबद्ध करने के लिए अपनी दादी द्वारा दी गई शिक्षा का सहारा लेते हैं। उनकी दादी प्रसिद्धि पाने के लिए उन्हें दयालु बनने का उपदेश देती है।

हरीश नवल प्राणी मात्र पर दया दिखाते हुए एक खुजली वाले पिल्ले को घर ले आते हैं। दादी उनकी अव्यवहारिकता पर क्षुब्ध होती हैं और उन्हें पड़ोस के व्यक्ति दीनानाथ के पास भेज देती हैं ताकि व्यंग्यकार दीनानाथ से दयालुता प्रगट करने का तरीका सीख सके। दीनानाथ की दयालुता को वर्णित करते हुए हरीश नवल कहते हैं- "मैंने देखा कि श्री दीनानाथ ने अनेक युवा स्त्रियों पर दया की और उन्हें नारी निकेतन में रहने पर मजबूर किया ताकि वे एक स्थान पर सुखी भाव से रह सकें। समाज को इन यशस्वियों की अद्भुत देन है अनाथालय। (26-27)

दीनानाथ की दयालुता के परिप्रेक्ष्य में जो कारण है, हरीश नवल उसे वक्र भंगिमा द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। दीनानाथ जैसे लोग निर्धन और बेसहारा युवतियों को सहारा प्रदान करने का झूठा आश्वासन देते हुए, नारी निकेतन में भेज देते हैं। नारी निकेतन में उन युवा स्त्रियों का शोषण किया जाता है। इन महान लोगों की कृपा से समाज में अनाथालय बनते हैं और चलते हैं।

अनाथालय के निर्माण में दीनानाथ जैसे समाज-सुधारकों का योगदान मानते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- "ये अनाथालय चलेंगे कैसे? यदि इनमें अनाथ ही न हो। श्री दीनानाथ और उन जैसे अनेक दीनानाथ समाज में अनाथों की सृष्टि करते हैं।" (27)

उपर्युक्त कथन द्वारा व्यंग्यकार समाज के उन धूर्त लोगों की ओर संकेत करते हैं जो स्वयं ही विषम परिदृश्य निर्मित करते हैं और इस परिस्थितियों की आड़ में एक तीर से दो शिकार करते हैं। नारी निकेतन में समाज की निर्धन, असहाय स्त्रियों को प्रकट में वे आश्रय प्रदान करते हैं और समाज में अपने दयालु होने का ढिंढोरा पिटवाते हैं। परोक्ष में इन्हीं बेबस स्त्रियों का दैहिक शोषण करते हैं।

इस प्रकार के मुखौटाधारी दयालु वास्तव में समाज के घोर शत्रु होते हैं क्योंकि अनजाने में ही उनके वंशजों को ऐसे कुत्सित संस्कार विरासत में स्वतः ही मिलते जाते हैं और आगामी पीढ़ियां मूल्यहीनता की गर्त में धकेल दी जाती हैं। हरीश नवल वर्तमान समाज के इन दयालु लोगों की विसंगति पर व्यंग्यात्मक प्रहार करते हैं। वे लोग दया का वास्तविक अर्थ ही नहीं जानते, वे लोग दया दर्शाने के पीछे भी अपना कोई न कोई स्वार्थ साधने की इच्छा रखते हैं।

प्रस्तुत व्यंग्य रचना में उपकारशीलता, करुणा, कोमलता, निर्मलता, तथा सदाचार-इन सामाजिक मूल्यों का क्षरण दृष्टिगत होता है। नारी निकेतन निर्मित करने वाले दीनानाथ जैसे लोग, उपकार करने के परिप्रेक्ष्य में जो दुराचार करते हैं, उनके कारण उनके हृदय की करुणा, कोमलता, निर्मलता, निर्विकारिता का भाव तो स्वतः ही अदृश्य हो जाता है। उपकार करने की आड़ में अपनी स्वार्थ सिद्धि करना, उपकारशीलता की छवि को भी कलुषित करता है।

अनाथालय, नारी निकेतन तथा विधवा आश्रम के निर्माण में धनी लोगों का भी असीम योगदान होता है, इस तथ्य को उल्लेखित करते हुए *कृष्णावाहन की कथा और व्यंग्य* पुस्तक में रविंद्रनाथ त्यागी लिखते हैं- "यदि अमीर लोग न हों तो विधवा आश्रम, नारी निकेतन, कन्या पाठशाला, संगीत शाला तथा अनाथालय कैसे चलें और उनमें कौन दिलचस्पी ले?" (124)

रविंद्रनाथ त्यागी समाज के पूंजीपति वर्ग के शोषक स्वरूप को दर्शाते हैं। नारी निकेतन, विधवा आश्रम तथा संगीतशाला जैसी संस्थाओं के निर्माण के परिप्रेक्ष्य में ये लोग भोग-विलास के वातावरण में रमण भी करते हैं, और समाज में यश के भागी भी बनते हैं। रविंद्रनाथ त्यागी द्वारा कहे गए कथन हरीश नवल द्वारा कहे गए कथन से पर्याप्त साम्य भाव दर्शाते हैं। समाज का पूंजीपति वर्ग विधवाश्रम और नारी निकेतन इत्यादि संस्थाओं में प्रगट रूप में दान राशि देकर अप्रत्यक्ष रूप से उसे वसूल करना भी जानते हैं, आखिर वे लोग आर्थिक स्तर के आधार पर ही समाज का धनिक वर्ग गठित करते हैं, वे भला हानि का सौदा थोड़े ही करेंगे।

महेश शर्मा द्वारा संपादित *चाणक्य नीति* पुस्तक में चाणक्य ने दया को मनुष्य के सभी कर्मों में उच्च स्थान देते हुए लिखा है- “यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु। तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः ॥” (122)

अर्थात् जिसका चित्त सब प्राणियों पर दया करने से द्रवित हो जाता है, उसे ज्ञान एवं मोक्ष प्राप्ति हेतु लंबी लंबी जटाएं धारण करने की या भस्म लगाने की क्या आवश्यकता? चाणक्य ने दया का भाव धारण करने वाले व्यक्ति के लिए मनुष्य जीवन के सभी महान उद्देश्यों को सहज प्राप्य बताया है। जिसके हृदय में परदुख-कातरता का भाव है, जिसका हृदय दूसरों को कष्ट में देख कर द्रवीभूत हो जाता है, उस मनुष्य को साधु- सन्यासियों का वेश धारण करने की आवश्यकता नहीं है। उसकी दयालु-वृत्ति के द्वारा उसकी गणना स्वतः ही संतों की श्रेणी में हो जाती है।

'मिलना एक अदद ज्ञानपीठ' व्यंग्य रचना में हरीश नवल ने उस समय के अनुभवों पर कटाक्ष किया है जो उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलने पर अनुभूत हुए। हरीश नवल सबसे अधिक व्यंग्य प्रहार उन लोगों पर करते हैं जो 'अधजल गगरी छलकत जाए' मुहावरे का सार्थक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जिस व्यंग्य पुस्तक पर उन्हें पुरस्कार मिला उसका नाम था 'बागपत के खरबूजे'। कुछ लोगों ने उस पुस्तक को वनस्पति-जगत के साथ और कुछ लोगों ने किसानों की समस्या के साथ जोड़ दिया था, जिससे व्यंग्यकार को अपनी सारी मेहनत पर पानी फिरता दिखाई दे रहा था।

एक दिन पहले अखबारों में छपी फोटो के कारण व्यंग्यकार को लगने लगा था कि अब वे पहले से अधिक ख्याति प्राप्त व्यंग्यकार बन गए हैं, उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है, इसलिए सर्वसाधारण उन्हें सरलता से पहचान लेगा, परंतु अपनी आशा के प्रतिकूल लोगों का व्यवहार देखकर उनका माथा ठनका। इस संदर्भ में हरीश नवल अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं- “एक दिन पूर्व अखबारों में फोटो छपा था अतः उम्मीद थी कि आते-जाते लोग मुझे अवश्य पहचानेंगे और अभिवादन भी करेंगे। मैं खुद ही लोगों को देखकर जबरन मुस्कुरा रहा था पर किसी ने मेरा नोटिस तक नहीं लिया।” (92)

ऊपर लिखी पंक्ति के द्वारा व्यंग्यकार ने समाज में बढ़ती हुई संवेदनहीनता की ओर संकेत किया है। वर्तमान समय में हर मनुष्य इतना अधिक व्यस्त है कि समाज में सकारात्मक कार्य करने वालों का उत्साहवर्धन करने के प्रति भी वह उदासीनता का भाव अपनाता है इस

सन्दर्भ में हरीश नवल अपने सहयोगियों की ईर्ष्यालु वृत्ति को उजागर करते हुए लिखते हैं- "साहित्यिक मित्रों ने रचना पाठ गोष्ठी करवाई और जमकर बखिया उधेड़ने का कौशल दिखलाया। जितना कौशल वे गोष्ठी में दिखा पाए, उससे कहीं अधिक उन्होंने समाचार पत्रों में भेजी गई गोष्ठी-रपटों में दिखाया। उन्होंने चंद रचनाएं सुनकर पूरी किताब को बेकार सिद्ध करने में सिद्धहस्त कला का निर्देशन किया।" (94)

हरीश नवल के मित्र प्रकट में तो उनकी सफलता प्राप्ति के प्रति प्रसन्नता के भाव अभिव्यक्त करते हैं, जिसे वे उनके सम्मान में गोष्ठी का आयोजन करके सिद्ध करते हैं वास्तव में उनके अन्तर्मन में ईर्ष्या के भाव ही अवस्थित रहते हैं। हरीश नवल के मित्रों के व्यवहार से प्रसन्नता, विश्वास, उर्ध्व चिंतन, मैत्री तथा सद्ब्यहार जैसे सामाजिक मूल्य क्षरित होते हैं। हरीश नवल जब ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत होते हैं तो उनके सम्मान में रचना-पाठ गोष्ठी का आयोजन किया जाता है। हरीश नवल के मित्र, गोष्ठी के अंतर्गत उनके लेखन कौशल की नकारात्मक आलोचना करते हैं, जिससे यह पता चलता है कि उनके हृदय में हरीश नवल के प्रति सच्ची मित्रता का भाव नहीं है और न ही उनके व्यवहार द्वारा यह परिलक्षित होता है कि हरीश नवल के पुरस्कृत होने से, उनके हृदय में प्रसन्नता है। उनका व्यवहार उनके मन के उर्ध्वचिंतन को संदिग्ध करता है और एक मित्र के दूसरे मित्र के प्रति विश्वास के भाव को भी खंडित करता है। दुष्ट, दुर्जन तथा ईर्ष्यालु व्यक्ति की मानसिकता कैसी होती है, इसे महेश शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक *चाणक्य नीति* में चाणक्य वर्णित करते हैं- "दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः पर यशोऽग्निना। अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते॥" (111)

मनुष्य के मन में कुछ दुर्बल वृत्तियां निवास करती हैं। वही मानव जीवन श्रेष्ठ कहा जा सकता है जो अपने प्रयत्नों द्वारा अपने मन की दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर लेता है। अर्थात् दूसरों की यशरूपी अग्नि को देखकर नीच मनुष्य तीव्रता से जलते हैं। वे उस पद अर्थात् उस यश को प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं जिस कारण वे उस यशस्वी मनुष्य की निन्दा करते हैं। चाणक्य ने ईर्ष्यालु व्यक्तियों की जो पहचान बताई है, हरीश नवल के मित्रों में वे चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं। हरीश नवल की व्यंग्य पुस्तक के पुरस्कृत होने पर वे हर संभव प्रयास करते हैं कि उनकी रचनाओं को उच्च स्तरीय न मानकर निम्न कोटि की सिद्ध किया जा सके।

जब मानव का मन, राग-द्वेष और ईर्ष्या इत्यादि दुर्बलताओं से रहित हो जाता है तो वह निष्कलुष हो जाता है। निष्कलुषता का अर्थ बताते हुए *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत

(सत्यम शिवम सुंदरम परक मूल्य: भाग 3) में आदित्य प्रचंडिया लिखते हैं- "निष्कलुषता का अर्थ है-मलिनता रहित। मलिनता शारीरिक भी हो सकती है और मानसिक भी।" (90)

आदित्य प्रचंडिया के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि शरीर की स्वच्छता की तरफ ध्यान न देना शारीरिक मलिनता को बढ़ाता है, और मन में राग-द्वेष, ईर्ष्या और कपट का भाव रखना मानसिक मलिनता को दर्शाता है। ईर्ष्या के भाव को मानसिक मलिनता के अंतर्गत सूत्र बद्ध करते हुए आदित्य प्रचंडिया आगे लिखते हैं- "राग-द्वेष, क्रोध-कपट, ईर्ष्या, घमंड, बैर, जड़ता, झूठ-फरेब और लोभादि, मानसिक मलिनता के परिचायक हैं।" (90)

आदित्य प्रचंडिया ने ईर्ष्या के भाव को निष्कलुषता का विरोधी तत्व दर्शाया है। ईर्ष्यालु व्यक्ति निष्कलुष नहीं हो सकता। उपर्युक्त विकृत भावों में से कोई एक भाव मनुष्य के अंतर्मन में, जब प्रचुरता से विद्यमान हो जाता है, तो अन्य विकृत भाव भी पीछे- पीछे चले आते हैं। निष्कलुषता को सृष्टि की परिष्कारिकता के लिए अनिवार्य तत्व बताते हुए आदित्य प्रचंडिया आगे लिखते हैं- "निष्कलुषता प्रकृति है। उससे विरत होकर कलुषित होना विकृति है। इस विकृति से बचकर, निष्कलुषता की साधना से ही संस्कृति रचाव की यात्रा की जा सकती है।" (91-92)

आदित्य प्रचंडिया प्रकृति और निष्कलुषता के मध्य रूपक साध कर, निष्कलुष भाव की महत्ता सिद्ध करते हैं। वे निष्कलुषता को प्रकृति का एक तत्व न मानते हुए, उसे प्रकृति पर आरोपित कर देते हैं; उन दोनों के मध्य अभिन्नता का भाव स्थापित कर देते हैं। कलुष भाव को अंतर्मन में रखकर संस्कृति के रचाव की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि संस्कृति का अर्थ, सम्यक कृति है। अन्तर्मन के भावों में विकृति की अवस्थिति से, संस्कृति रचना कैसे सुनिश्चित हो सकती है? हरीश नवल के मित्रों के हृदय में ईर्ष्या का भाव, उनके हृदय की मलिनता को प्रतिबिंबित करता है। जिससे सामाजिक मूल्य निर्मलता और शुचिता का क्षरण दृष्टिगत होता है। अपने मित्रों के उदाहरण द्वारा, हरीश नवल, समाज को निष्कलुषता के पथ पर अग्रसर करना चाहते हैं। उनका यह प्रयास व्यंग्य के सामाजिक सरोकारों की पुष्टि करता है।

3.4 व्रत पालन, संबद्धता, स्थिरचित्तता, सूझबूझ, पारिवारिकता, तथा आत्मीयता, सामाजिक मूल्य वाया पेरिस आया गांधीवाद पुस्तक के अंतर्गत विखंडित होते दर्शाए गए हैं।

'खंडिता' व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल ने समाज के ऐसे लोगों पर आक्षेप किया है जिनका व्यवहार 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' मुहावरे को जीवंत करता है। व्यंग्यकार के परिचित, आचार्यजी उसे समझाते हैं कि अधिकारियों को सरकारी तंत्र का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। हरीश नवल आचार्यजी के सम्मुख प्रण करते हैं कि वे सरकारी गाड़ी को अपने व्यक्तिगत कार्य के लिए प्रयुक्त नहीं करेंगे। छह माह बाद व्यंग्यकार आचार्यजी के घर जाता है तो आचार्यजी की पत्नी बताती है कि दो सप्ताह बाद उनकी बेटी का विवाह है। वह उन्हें अपना आत्मीय समझ कर सच्चाई बताती है कि विजय जी के पास सरकारी फोन है, इसलिए आचार्य जी रोज सायं काल को उनके निवास पर जाते हैं ताकि उनके फोन द्वारा वे अपने परिचितों को पुत्री के विवाह पर आमंत्रित कर सकें। हरीश नवल आचार्यजी की पत्नी का कथन उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "रोज शाम दो घंटे आचार्यजी लिस्ट लेकर वहीं फोन करने जाते हैं क्या करें बेटा, ऐसे ही समझदारी से काम करना पड़ता है।" (31)

लेखक को आचार्यजी की पत्नी का कथन सुनकर धक्का लगता है, क्योंकि आचार्य जी के वचन और व्यवहार में लेखक को विरोध दृष्टिगत होता है। आचार्यजी के प्रति अपने दृढ़ विश्वास के खंडित होने पर अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते हुए हरीश नवल निष्पक्ष भाव से आगे लिखते हैं- "तभी कुछ टूटने की आवाज हुई मैं समझ गया हृदय में स्थापित कोई मूर्ति गिर चुकी है।" (31)

व्यंग्यकार के हृदय में आचार्यजी के सदाचार की जो भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित थी, वह खंडित हो गई। आचार्यजी की ईमानदारी के प्रति उनका विश्वास तार-तार हो गया क्योंकि उनकी कथनी और करनी में अंतर सिद्ध हो गया था। जो व्यक्ति व्यंग्यकार को यह शिक्षा देता है कि ईमानदारी की मार्ग पर चलना चाहिए, सरकारी गाड़ी का प्रयोग व्यक्तिगत कार्य के लिए नहीं करना चाहिए, वही व्यक्ति अपनी पुत्री के विवाह का निमंत्रण देने के लिए, किसी अन्य व्यक्ति का सरकारी फोन प्रयोग में लाता है; तो व्यंग्यकार के हृदय को ठेस पहुंचा स्वाभाविक है। व्यंग्य में निष्पक्षता होती है, अतः व्यंग्यकार के व्यवहार से वह निश्चित तौर पर परिलक्षित होगी।

कमला प्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित पुस्तक *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* के अंतर्गत, सामाजिक दायित्व के प्रति सचेष्ट लोगों की, और सचेष्ट होने का दिखावा करने वाले लोगों की पहचान बताते हुए हरिशंकर परसाई ने लिखा है- "जो अपने और समाज

के प्रति ईमानदार हैं उनके लिए रास्ता सीधा है। रास्ता कठिन उन लोगों के लिए है, जो प्राप्ति करके त्याग का रूपक साधना चाहते हैं, जो भीतर बेईमानी करके बाहर से ईमानदार दिखना चाहते हैं।" (337)

हरिशंकर परसाई के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि जो मनुष्य दूसरों को ईमान के रास्ते पर चलने की शिक्षा देते हैं, उन्हें पहले स्वयं ईमान का रास्ता अपनाना चाहिए। जो व्यक्ति स्वयं स्वार्थ साधने के लिए प्रयासरत रहे, और दूसरों को निस्वार्थ-भाव अपनाने की शिक्षा दे तो उसकी शिक्षा का दूसरों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। आचार्यजी के व्यवहार द्वारा, सामाजिक मूल्य, व्रत-पालन का खंडन हुआ है। उन्होंने व्यंग्यकार को ईमानदारी का व्रत अपनाने को कहा, परंतु स्वयं उस व्रत का पालन नहीं कर सके।

अपने गौरवशाली इतिहास के पन्ने पलटने पर हम देख सकेंगे कि उस समय के लोगों की कथनी और करनी में समग्र रूप से साम्य भाव देखने को मिलता है। श्रीराम के राज्याभिषेक की घोषणा के बाद कैकेई के द्वारा एक रात में ही निर्णय बदलवा दिया जाता है। *मर्यादा पुरुषोत्तम राम* पुस्तक में जयराम मिश्र श्रीराम की कथनी और करनी में साम्य भाव दर्शाते हुए, राम के कथन को उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "पिताजी ने मेरे लिए जो कुछ आज्ञा दी है, उसे मैं अवश्य पूर्ण करूंगा। यह सर्वथा सत्य है। राम दो बात कभी नहीं करता।" (71)

श्रीराम ने जो कहा उस पर दृढ़ता पूर्वक अमल भी किया। श्रीराम ने दोहरा मापदंड नहीं अपनाया, उन्होंने अपने आचरण द्वारा अपने वचन को पूर्ण रूप से सत्य सिद्ध किया, उन्होंने अपने पिता की कीर्ति के लिए चौदह बरस के लिए वनवास स्वीकार किया। श्रीराम की वचनबद्धता और वर्तमान वचनबद्धता में अंतर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

'वाया पेरिस आया गांधीवाद' व्यंग्य रचना में हरीश नवल भारतीयों द्वारा पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण पर व्यंग्य प्रहार करते हैं। प्रगति को केवल आर्थिक मानदंड के आधार पर सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। सामाजिक मूल्यों का स्थायित्व, उनका समुचित निर्वहण भी समाज के उत्कर्ष का एक सशक्त साधन है।

भारतीय समाज में मनुष्य के पहनावे को भी अनुशासनबद्ध किया गया है, प्रत्येक भारतीय को मर्यादा के अनुकूल जीवन बिताने का परामर्श दिया गया है। वस्त्र धारण भी मर्यादित हो ताकि सामाजिक मूल्यों का विखंडन न हो सके, इस तथ्य पर भी बल दिया गया है।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना में हरीश नवल विदेशी वेशभूषा के प्रति भारतीयों के आकर्षण को अपने मित्र के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। व्यंग्यकार के मित्र हीरो जी टीवी पर आने वाले 'फैशन चैनल' के विरोधियों को सहन नहीं कर पाते। वे फैशन चैनल को गांधीवाद से प्रेरित समझते हैं, हरीश नवल उनके कथन को उद्धृत करते हुए उपहास जनित शब्दों में लिखते हैं- "महात्मा जी गए इंग्लैंड में गोलमेज कांफ्रेंस और पहन कर गए पूरे शरीर पर एक धोती। वैसे तो अपने भारत में वे केवल लंगोटी पहनते थे पर बाहर सरोजनी नायडू के कहने पर पूरा शरीर औढ़ा जरूर लेकिन मात्र एक झीनी सूती धोती से।" (33)

हरीश नवल व्यंग्यात्मकता का निर्वहण करते हुए यह समझाना चाहते हैं कि गांधीजी तो मितव्ययता का संदेश देने के लिए मात्र एक लंगोटी अथवा लंगोटी के साथ एक चादर का उपयोग करते थे। वर्तमान समय में जन सामान्य फैशन परस्त और आधुनिक होने का प्रदर्शन करने के लिए कम वस्त्रों का उपयोग करते हैं।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना में हरीश नवल समाज को पाश्चात्य सभ्यता के वस्त्र-विन्यास का अंधानुकरण करने से बचाना चाहते हैं। वे वर्तमान युवा पीढ़ी को देश के महापुरुषों के नाम का सहारा लेकर मनमानी करने से रोकना चाहते हैं, वे चाहते हैं कि भारतीय, पाश्चात्य मानसिकता को त्यागें। अपनाने योग्य विचार अथवा व्यवहार कहीं से भी मिलें, अवश्य अपनाने चाहिए, इससे मनुष्य के चारित्रिक गुणों का विकास होता है। आधुनिकता के आकर्षण में, फैशन की अंधी दौड़ में विदेशी पहनावे का अनुकरण करना शोभित नहीं कहा जा सकता क्योंकि वस्त्र-विन्यास का तरीका किसी राष्ट्र की जलवायु, के आधार पर निर्धारित होता है। पर्वतीय क्षेत्रों में लोग गर्म कपड़ों का प्रयोग करते हैं और तटीय इलाके में बसने वाले लोग नरम और सूती वस्त्रों को प्रयोग में लाते हैं।

भारतीय परंपरा में परिधान व्यवस्था को गुप्तकालीन सामाजिक जीवन के अंतर्गत अवलोकित किया जा सकता है। *गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास* पुस्तक में गुप्त काल के अंतर्गत पुरुषों की वस्त्र विन्यास की रूपरेखा का वर्णन करते हुए भगवतशरण उपाध्याय लिखते हैं- "पुरुष के परिधान में तीन अंग थे; वेष्टन(पगड़ी) और जोड़ा (दुकूलयुग्म)-उत्तरीय (चादर) और अधोवस्त्र (धोती)।" (228)

गुप्त काल के दौरान स्त्रियों का वस्त्र विन्यास कैसा होता था, इसका वर्णन करते हुए भगवतशरण उपाध्याय आगे लिखते हैं- "तत्कालीन नारी के उपयोग में भी तीन वस्त्र आते थे।

नारी के तीन वस्त्रों में एक चोली अथवा 'कूर्पासक' होता था, दूसरा नीचे का घाघरा और तीसरा सर्वोपरि का शाल अथवा उत्तरीय।" (228)

भगवतशरण उपाध्याय के कथन के आलोक से यह दृष्टिगत होता है कि भारतीय परंपरा में नारी तो नारी, पुरुष भी सिर से लेकर टांगो तक शरीर को ढक कर रखते थे। स्त्री अपने उत्तरीय अथवा शाल को सिर पर धारण करती थी, पुरुष सिर पर पगड़ी बांधते थे। उस काल का सामाजिक उत्कर्ष तो इसी तथ्य से सिद्ध हो जाता है कि पुरुष और स्त्री दोनों वर्गों के लिए परिधान के रूप में संख्यात्मक रूप से एक जैसा ही वस्त्र विधान था।

प्रस्तुत व्यंग्य रचना में हरीश नवल पाश्चात्य सभ्यता का अनुगमन करने वाले लोगों को आंख मूंदकर नकल करने की प्रवृत्ति से रोकना चाहते हैं। जब हमारी परंपरा की परिधान व्यवस्था उच्च स्तरीय, अनुशासित और समन्वयात्मक है तो पाश्चात्य देशों के परिधान का अनुकरण शोभनीय नहीं कहा जा सकता। पश्चिमी सभ्यता से भ्रमित होकर हम न घर के रहेंगे न ही घाट के। इस व्यंग्य रचना में स्थिरचित्तता, संबद्धता तथा सूझ-बूझ, सामाजिक मूल्य ध्वस्त होते दर्शाए गए हैं। अपने परिवेशगत वस्त्र विन्यास को त्याग कर, विदेशी वस्त्र विन्यास का अंधानुकरण दर्शाता है कि व्यक्ति में सूझ-बूझ का अभाव है, क्योंकि वस्त्र धारण करने का प्रमुख उद्देश्य शरीर को ढकना है, उघाड़ना नहीं। वह मनुष्य स्थिरचित्त नहीं है, इसीलिए अपने आसपास पाश्चात्य विचारधारा के समर्थक, लोगों का उसने बिना सोचे समझे अनुकरण किया। पाश्चात्य वेशभूषा धारण करने से अपनी मातृभूमि पर स्थित समाज से, उसकी संबद्धता भी अवश्य शिथिल होगी।

'डॉलर भाग्य विधाता' व्यंग्य रचना के द्वारा हरीश नवल ने प्रवासी भारतीयों की स्वार्थी वृत्ति को अपनी व्यंग्यात्मकता का निशाना बनाया है। डॉलर प्राप्ति के लालच में अधिक से अधिक लोग विदेशों का रुख कर रहे हैं। अधिक पढ़े लिखे लोगों से लेकर कम पढ़े लिखे लोग, सभी कोई न कोई कतर-ब्योत करके विदेश जाने का भगीरथ प्रयत्न करते हैं। कई बार तो एजेंटों के द्वारा ठगे भी जाते हैं। विदेश जाकर धन कमाना और सुख सुविधाओं से लैस होना, यह स्वप्न तो पूरा हो जाता है लेकिन किस कीमत पर ? यह कभी नहीं सोचा जाता। डालर कमाने की धुन में हमारे पारिवारिक मूल्यों की शक्तिशाली श्रृंखला धीरे-धीरे कमजोर पड़ती जा रही है।

बढ़ता बाजारवाद तथा पाश्चात्य अंधानुकरण, परिवार के प्रति मनुष्य को दायित्वविहीन कर रहा है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं केंद्रित होता हुआ केवल अपने स्वार्थ के विषय में ही सोचता है। पारिवारिक माहौल से दूर रहकर उसे धन प्राप्ति तो हो जाती है परंतु वह तनाव, कुंठा, भय और असुरक्षा की भावना से घिरता जा रहा है। भारत में महंगाई बढ़ने का कारण बताते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "जब-जब भारत में रुपए की हानि और कीमतों में बढ़ोतरी होती है, तब-तब डॉलर का विकास होता है।" (35)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरीश नवल विश्व- बाजार में भारतीय मुद्रा की गिरावट होने से डॉलर की कीमत बढ़ जाने की बात कहते हैं। रुपए की कीमत घटने से भारत के बाजारी वस्तुओं की कीमत बढ़ जाती है। सरकार अपना घाटा कम करने के लिए चीजों के दाम बढ़ा देती है। रुपए की कीमत जिस अनुपात में घटती है, डॉलर की कीमत उसी अनुपात में बढ़ जाती है। भारतीय लोग इसी लक्ष्य को सामने रखकर विदेश जाते हैं, ताकि विदेश जाकर डॉलर कमा सकें और भारत आकर वैभव- संपन्न जीवन बिता सकें।

वर्तमान समाज अर्थ केंद्रित होता जा रहा है। धन का अधिक से अधिक संग्रह करना लोगों के जीवन का लक्ष्य बनता जा रहा है। बेरोजगार लोग तो विवशतावश विदेश का रुख करते हैं परंतु यह विडंबना ही है कि सरकारी नौकरियों पर लगे नागरिक भी नौकरी छोड़ कर विदेश जाने को लालायित रहते हैं। सरकार की ओर से दिया गया वेतन उन्हें अपर्याप्त लगता है। इस के परिप्रेक्ष्य में धन के प्रति अत्यधिक आकर्षण का भाव दृष्टिगत होता है। धन प्राप्ति की अदम्य लालसा पारिवारिक मूल्यों के सशक्त सूत्र को कमजोर बना रही है।

इस व्यंग्य रचना के अंतर्गत, पारिवारिकता, आत्मीयता तथा निस्पृहता, सामाजिक मूल्य खंडित होते दृष्टिगत होते हैं। अधिकाधिक धन प्राप्ति के लिए विदेश गमन, निस्पृहता के भाव का समग्र रूप से हनन करता है। वह व्यक्ति निस्पृह कैसे होगा, जो धन के आकर्षण के पीछे अपने बंधु-बंधव, माता-पिता तथा समग्र परिवार को छोड़कर विदेश जाने को उद्यत है। परिवार को त्याग कर विदेश जाने से, उसके अंतर्मन में पारिवारिकता के प्रति, आत्मीयता का भाव कैसे सुनिश्चित होगा?

उपर्युक्त पंक्ति में धन प्राप्ति की अंधी दौड़ में संलग्न मनुष्यों की ओर संकेत किया गया है। महेश शर्मा द्वारा संपादित *चाणक्य नीति* पुस्तक में चाणक्य कहते हैं- "अधमा धनमिच्छन्ति"। (71)

अर्थात् दुष्ट व्यक्तियों को धन की महत्वाकांक्षा होती है। धन प्राप्ति ही उनका एकमात्र ध्येय होता है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए वे निशि-वासर निमग्न रहते हैं, किसी अन्य सामाजिक कार्य के प्रति वे तनिक भी संलग्नता नहीं दर्शाते। उनका जीवन अर्थ-आधारित होता है। जिस-जिस रीति से धन प्राप्ति की संभावनाएं दृष्टिगत होती हैं, उनका मन उसी ओर एकाग्र हो जाता है। मनुष्य कोई वनचर नहीं है, एक सामाजिक जीव है और सामाजिक जीवन की गतिशीलता के लिए समाज से जुड़ाव अपेक्षित है। मनुष्य समाज से जुड़ेगा कैसे? उसका अधिकांश समय तो धनार्जन में व्यतीत हो जाता है। समाज के समुचित प्रबंधन के लिए यह आवश्यक है कि धन प्राप्ति को जीवन का एक साधन समझा जाए, साध्य नहीं।

एक अध्यापक अपने वेतन द्वारा पौष्टिक और संतुलित आहार ग्रहण कर सकता है, अच्छे वस्त्रों से आवृत हो सकता है तथा बढ़िया तरीके से जीवन यापन कर सकता है। इस स्थिति में धन उसके लिए जीवन जीने का एक साधन सिद्ध होता है। यदि वह सुबह जल्दी उठकर ट्यूशन करता है, विद्यालय से आने के उपरांत ट्यूशन की कक्षाएं लेता है, परीक्षा केंद्रों में निरीक्षक बनने के लिए आतुर रहता है, अधिक से अधिक उत्तर-पुस्तिकाएं जांचने का कार्य करता है। परिणाम स्वरूप वह भली प्रकार से भोजन ग्रहण नहीं कर पाता ; भरपूर निद्रा नहीं ले पाता और स्वास्थ्य रक्षण नहीं कर पाता। इस स्थिति में धन की प्राप्ति उसके जीवन का साध्य बन जाती है।

अधिक धन कमाने की लगन मनुष्य के अवचेतन मन में इस प्रकार आधिपत्य कर लेती है कि वह अपना देश, अपना परिवार तथा अपने मित्रों, परिजनों का साथ छोड़कर अकेला विदेश गमन को बाध्य हो जाता है। उसकी समग्र एकाग्रता धन प्राप्ति के लक्ष्य पर केंद्रित हो जाती है। इस प्रकार के व्यवहार को लक्षित करते हुए लालजी राम शुक्ल *नवीन मनोविज्ञान और शिक्षा* पुस्तक में कहते हैं- "किसी किसी व्यक्ति की लगन पैसा कमाने में इतनी अधिक होती है कि वह पैसे के पीछे घर की, यहां तक कि अपने स्वास्थ्य की भी कोई परवाह नहीं करता।" (3)

लालजीराम शुक्ल का कथन विदेश जाकर डॉलर कमाने वाले लोगों के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत सटीक बैठता है। पहले तो लोग विदेश जाने के लिए धन एकत्रित करने में रात दिन एक कर देते हैं, फिर किसी न किसी तरह जब वहां पहुंच ही जाते हैं तो उन्हें अधिक से अधिक धन कमाने की चिंता सताए रहती है। उन्हें लगता है कि विदेश आने में परिवार वालों का बड़ा धन खर्च हुआ है, उनके परिवार वालों ने धन जुटाने के लिए बहुत अभाव झेले हैं, बहुत दुख उठाए

हैं इसलिए उन्हें जीवन की सभी सुख सुविधाएं मिल सकें, इसके लिए वह बहुत अधिक परिश्रम करता है यहां तक कि अपनी सेहत की भी चिंता नहीं करता।

3.5 नम्रता, सम्मान, शिष्टाचार, मातृप्रेम, कृतज्ञता, आशीष, संतोष, अपनापन, सहृदयता, औचित्य, सबलता तथा स्फूर्ति सामाजिक मूल्य, *इक्यावन व्यंग्य रचनाएं* पुस्तक के अंतर्गत क्षरित हुए दर्शाए गए हैं।

'अथ इनविजीलेटर प्रकरण' व्यंग्य रचना में हरीश नवल ने शिक्षा विभाग में व्याप्त विसंगतियों पर करारा प्रहार किया है। यद्यपि वे स्वयं शिक्षा विभाग से संबंधित हैं परंतु व्यंग्य विधा की यही विशेषता है कि व्यंग्यकार सर्वथा निष्पक्ष भाव से अपनी रचना का सृजन करता है। समाज के प्रांगण से विसंगतियों के निराकरण की कोशिश करता है, समाज को परिष्कृत स्वरूप देने का प्रयास करता है। परीक्षा के दौरान निगरानी के लिए नियुक्त अध्यापकों का और परीक्षार्थियों का उचित वर्गीकरण करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "इनविजीलेटर पतले तौर पर दो प्रकार के पाए जाते हैं एक तो तुलसीदास की परंपरा के स्वांत सुखाय कार्य करते है दूसरी प्रकार के बहुजन हिताय की दृष्टि लेकर चलते हैं।" (196)

हरीश नवल इस सत्य से अवगत कराना चाहते हैं कि कुछ अध्यापक अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के उद्देश्य से इनविजीलेटर का कार्य करते हैं और कुछ अध्यापक अपने आत्मीय जनों को परीक्षा के दौरान मदद करने के उद्देश्य से इनविजीलेटर बनते हैं। परीक्षार्थियों के भेदों का निरूपण करते हुए शक्तिजीवी परीक्षार्थियों के विषय में हरीश नवल आगे लिखते हैं- "शक्तिजीवी परीक्षार्थी मेज पर रुमाल रखते हैं और बिना किसी सूक्ष्म अध्ययन के खुलेआम कागज या किताब रखकर नकल करते हैं। इनविजीलेटर इनके समक्ष धृतराष्ट्र बन जाता है। यदि कोई अधम इनविजीलेटर ऐसे परीक्षार्थियों को रोकने का रिस्क लेता है तो ये रुमाल हटा देते हैं, जिसके नीचे खास रामपुरिया रखा होता है।" (197) विद्यार्थी जगत, परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए अध्यवसाय न अपनाते हुए, यदि शक्ति और बल का प्रयोग करेंगे तो समाज के लिए इससे अधिक विडंबना पूर्ण स्थिति और क्या होगी?

छात्रों द्वारा धक्केशाही से परीक्षा देने के विकृत व्यवहार को वर्णित करते हुए हरिशंकर परसाई ने *कहत कबीर* पुस्तक में लिखा है- "भीतर छात्र परीक्षा दे रहे हैं और बाहर पास के मकान में छुरे वाले 'दादा' लोग प्रोफेसरों से उत्तर लिखवा कर साइक्लोस्टाइल करा के अपने चेलों को भीतर भेज रहे हैं।" (103)

हरिशंकर परसाई के कथन के आधार पर कह सकते हैं कि समाज के शक्तिशाली परंतु अकर्मण्य लोग शक्ति के बल पर शिक्षा प्राप्ति के पावन उद्देश्य का अवमूल्यन कर देते हैं। कुछ लोग भय के कारण और कुछ लोग निहित स्वार्थों की पूर्ति के कारण ऐसे भ्रष्ट लोगों का साथ देते हैं। परिणाम स्वरूप शिक्षा विभाग जैसा निष्कलंक क्षेत्र भी धूमिल हो जाता है। एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है यह मुहावरा अब पुराना हो गया है क्योंकि अब तो तालाब में ऐसी ढेरों मछलियां हैं जो उसे गंदा करने के लिए प्रतियोगिता में भाग लेने को तत्पर हैं।

उपर्युक्त प्रसंग द्वारा हरिशंकर परसाई ने शिक्षा प्रणाली में हो रही धांधली के विषय को उभारा है। कारण चाहे कोई भी रहा हो, अर्थ सिद्धि अथवा परीक्षा सिद्धि, भ्रष्ट आचरण भ्रष्ट ही कहा जाएगा। शिक्षा जैसे पावन क्षेत्र को कलंकित करते हुए शिक्षण संस्थाएं किस प्रकार आने वाली पीढ़ी को सामाजिकता के पथ से विमुख कर रही हैं ? जो विद्यार्थी परिश्रम के बल पर नहीं, अपितु विभिन्न भ्रष्टाचारी हथकंडे अपनाकर परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं वे कर्मठता का पाठ कैसे पढ़ पाएंगे ? सतत क्रियाशील कैसे रह पाएंगे? सबसे बड़ी बात यह है कि निस्वार्थ भाव से समाज हित के पथ पर कैसे अग्रसर हो पाएंगे?

एक विद्यार्थी समग्र वर्ष पढ़ाई करके परीक्षा उत्तीर्ण करता है, दूसरा विद्यार्थी धमकी के बल पर। इस प्रकार परिश्रमी विद्यार्थियों का मन कुंठा ग्रस्त हो जाने का भय है। उसके मन में भ्रष्टाचार से उत्तीर्ण होने वाले शिक्षार्थियों के प्रति ही नहीं समग्र शिक्षा क्षेत्र के लिए भी घृणा का भाव उत्पन्न होने का खतरा है। जो परीक्षार्थी पुस्तकों का अध्ययन न करके परीक्षकों को डरा धमका कर परीक्षा देते हैं, उन्हें यह शाश्वत सत्य समझना चाहिए कि सच्चे अर्थों में विद्या की प्राप्ति तो विनम्रता को धारण करके ही संभव होगी। कृष्णानंद शास्त्री द्वारा संपादित हितोपदेशः में नारायण पण्डित ने लिखा है- "विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।" (3) अर्थात् विद्या विनम्रता प्रदान करती है और विनम्रता योग्यता प्रदान करती है।

जो परीक्षार्थी अध्ययन द्वारा नहीं, शस्त्र का भय दिखाकर, परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहते हैं उन्हें वास्तविकता में शिक्षा प्राप्ति कैसे होगी ? पुस्तकों का अध्ययन उन्होंने किया नहीं, उनके ज्ञान को आत्मसात किया नहीं, फिर उन्हें पुस्तकों में दिए गए अध्याय को समझ पाना तो संभव होगा नहीं, तब वे उस ज्ञान को अपने आचरण में कैसे ढाल पाएंगे? अर्थात् जिस विद्या का उन्होंने न चिंतन मनन किया, न स्मरण किया, न अभ्यास किया, वह विषय उनके व्यक्तिगत

जीवन, परिवारिक जीवन तथा सामाजिक जीवन के लिए कैसे लाभप्रद सिद्ध हो सकेगा? परीक्षक अर्थात् गुरु को हथियार दिखाकर डराना गुरु शिष्य परंपरा के विरुद्ध है।

गुरु को कष्ट पहुंचाने वाले शिष्य का कभी हित नहीं होता, इस धारणा को *आधी साखी कबीर की* पुस्तक में कमलापति पांडेय कबीर के कथन को उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "जो गुरु द्रोही है, गुरु की अवहेलना करता है, गुरु से द्वेष करता है, अनादर करता है, विरोध करता है, कष्ट पहुंचाता है और जो स्वच्छंद है, अपने मन की करता है, ऐसा व्यक्ति जब तक सूर्य और चंद्रमा हैं, अर्थात् अनंत काल तक चौरासी लाख योनियों में आता- जाता रहेगा, उसका कल्याण नहीं होगा।" (182)

कबीर के कथन को हरीश नवल की व्यंग्य रचना के संदर्भ में देखते हुए कह सकते हैं कि जो छात्र चाकू दिखाकर प्रत्यक्षतः भ्रष्टाचार के द्वारा परीक्षा उत्तीर्ण करने का स्वप्न देखता है, वह जीवन की वास्तविक परीक्षा में असफल हो जाता है क्योंकि वह भविष्य में सुख प्राप्ति के लिए ही परीक्षा उत्तीर्ण करना चाहता है परंतु भ्रष्ट उपायों से प्राप्त साधनों द्वारा कभी किसी को वास्तविक सुख हासिल नहीं हो सकता।

मनुष्य जीवन में गुरु ही ऐसा व्यक्ति है जो बालक का सर्वाङ्गीण विकास सुनिश्चित करने का माध्यम बनता है। विद्यालय में प्रवेश लेने के उपरांत गुरु ही बालक को कलम पकड़ना सिखलाता है। कक्षा में कविता तथा गीत के माध्यम से उनके हृदय को रचनात्मकता प्रदान करता है जिसकी वजह से बालक की विद्यालय आने के प्रति रुचि बढ़ती है। छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से गुरु शिष्यों को मानव मूल्यों के निर्वहण की अनिवार्यता समझाता है। हर कहानी के अंतर्गत कोई न कोई संदेश निहित रहता है जिसे शिष्य अनायास ही ग्रहण कर लेता है। खेल के मैदान में सहपाठियों के साथ खेलता हुआ बालक न केवल परस्पर सहयोग, प्रेम तथा अपनत्व के भाव सीखता है अपितु व्यायाम के महत्व को आत्मसात करता हुआ अपने स्वास्थ्य रक्षण के प्रति भी सजग होता है। हरिशंकर परसाई *माटी कहे कुम्हार से* पुस्तक में शिक्षा का उत्कृष्ट उद्देश्य बताते हुए कहते हैं, - "शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को चरित्रवान बनाना है।" (135)

चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षा क्षेत्र का सर्वाधिक महत्व है क्योंकि बालक के समग्र दिन का अधिकांश समय विद्यालय में ही व्यतीत होता है। विद्यालय के भीतर शिक्षक के पास जादू की कोई छड़ी नहीं होती, जिसे घुमाते ही विद्यार्थी के अंतर्मन में उच्च स्तर तक

चारित्रिक गुण स्वतः अंतर्निहित हो जाएं। चरित्र निर्माण की प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए सर्वप्रथम विद्यार्थी के हृदय में गुरु के प्रति आदर का भाव होना अपेक्षित है। विद्यार्थी अपनी शैक्षणिक योग्यता के द्वारा समाज में जैसा भी उत्कृष्ट स्थान पाता है, उसका आधार उसका चारित्रिक विकास होता है; चारित्रिक विकास का आधार होती है शिक्षा और शिक्षा का आधार गुरु होता है। गुरु की अवहेलना किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं। अगर परीक्षा की पूर्व तैयारी के बिना निरीक्षक को हथियार दिखाकर प्रश्न पत्र हल किए जाएंगे तो चरित्र निर्माण का उत्कृष्ट उद्देश्य फलीभूत नहीं हो पाएगा।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत सम्मान, सद्व्यवहार तथा शिष्टाचार, सामाजिक मूल्यों का विखंडन दर्शाया गया है। कुछ विद्यार्थियों द्वारा, गुरु-वर्ग को डरा धमका कर परीक्षा देना, विद्यार्थियों के गुरु के प्रति दुर्व्यवहार को तो दर्शाता ही है, उनके अंतर्मन में गुरु के लिए सम्मान की भावना का भी क्षरण दर्शाता है। विद्यार्थियों के द्वारा उद्दंड व्यवहार के प्रदर्शन से शिष्टाचार के भाव का भी हनन होता है।

'विक्रमार्क, बुढ़िया और सराय रोहिल्ला' व्यंग्य रचना में हरीश नवल ने भग्न होते सामाजिक मूल्यों की ओर संकेत किया है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना में एक बुढ़िया के बच्चों द्वारा मातृ ऋण से उऋण होने के हीनतम उपायों को दर्शाया गया है। अपने तीन बेटों के होते हुए भी वह बुढ़िया मेरठ में अपने छोटे भाई के साथ रहकर दिन काट रही थी। भाई की मृत्यु के बाद उसके पुत्र ने सराय रोहिल्ला में बुढ़िया के पुत्र को तार दे दिया कि वह आए और अपनी माता को ले जाए।

बशेशरनाथ, माता का सबसे छोटा बेटा मां को ले आया। उस समय उसकी पत्नी अपने मायके गई हुई थी। बशेशरनाथ की पत्नी जब मायके से लौटती है तब सास को अपने बिछौने पर लेटे देख उसका पारा सातवें आसमान तक चढ़ जाता है। पहले तो उसे अपनी सास का आना ही नहीं सुहाता, दूसरे, अपने बिस्तर पर उसे विराजमान देख उसके सीने पर सांप लोट जाता है। बड़ी कठिनाई से वह अपने क्रोध के आवेग को नियंत्रित करती है। घर पहुंचते ही पहला काम जो वह करती है, उसे वर्णित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "फॉर्मल नमस्कार चमत्कार के बाद पहला काम तो यह किया कि सास को बिछौने से हटाकर पीछे कोठरी में उसकी उम्र से मेल खाती एक चारपाई सी वस्तु पर स्थानांतरित कर दिया।" (6)

हरीश नवल अपनी व्यंग्यधर्मिता के मारक प्रहार से पाठकों के मानस पटल को झकझोर कर रख देते हैं। वृद्धा को लेटने के लिए एक आरामदायक चारपाई तक भी उपलब्ध न करवाई जा सकी, जहां उसे लिटाया गया वह चारपाई का मात्र भ्रम दर्शाती दृष्टिगत होती थी। बुढ़िया के बीमार होने पर उसकी बहू की मानसिकता को दर्शाते हुए व्यंग्यकार कहते हैं- " श्री और श्रीमती नाथ को बोध हुआ कि दवाएं चलती रहीं और असली मिलती रहीं तो बुढ़िया भी न जाने कब तक चलती रहे, अतः दवाई बंद करके दुआएं चालू कर दीं कि छुटकारा जल्दी मिले।" (7)

उपर्युक्त कथन से कितनी करुणाजनक स्थिति का पता चलता है। एक मां जो अपने रक्त से बालक का पोषण करती है, वही बालक माता को दवाई तक देना बंद कर देता है। मूल्यहीनता की इससे अधिक विकृत स्थिति और क्या होगी ! कैसी विडंबना है कि वृद्धा हो जाने पर पुत्र के लिए माता बिल्कुल बेगानी हो जाती है । संसार में मां जैसा निस्वार्थ प्रेम करने वाला अन्य कोई नहीं। प्रत्येक बालक की प्रथम गुरु मां ही होती है। माता के सानिध्य में ही बालक स्वयं को सर्वाधिक सुरक्षित अनुभव करता है। युवा होने पर वह माता के उपकारों को विस्मृत कर दे तो यह कृतघ्नता है।

व्यंग्य रचना के अंतर्गत बशेशरनाथ अपनी पत्नी द्वारा अपनी माता के प्रति किए गए दुर्व्यवहार को देख कर भी अनदेखा किए रहता है। मां की बीमारी की हालत में भी उसकी पत्नी माता को दवा देना बंद कर देती है, यह देखते हुए भी बशेशरनाथ का हृदय नहीं पसीजता। पारिवारिक मूल्यहीनता की इससे अधिक लज्जाजनक स्थिति और क्या होगी! यौवन के उन्माद में मनुष्य भ्रमित हो जाता है और समझता है कि वह सदैव चिर-युवा ही रहेगा। समय बड़ा बलवान है, वह हर मनुष्य के जीवन में क्रमानुसार बचपन, यौवन और वृद्धावस्था के रूप में प्रवेश करता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पारिवारिक कर्तव्यों का निर्वहण अपेक्षित है क्योंकि मनुष्य जैसा बीज बोता है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है।

यह भारतीय संस्कृति ही है जो जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ मानती है। भारत की सुजला, सुफला, मलयजशीतला तथा शस्यश्यामला धरती माँ एक नजर वर्तमान लोगों को देखती है, जो चरम सीमा तक स्वार्थी हो चुके हैं तथा दूसरी नजर अपनी गौरवशाली परंपरा 'मातृ देवो भव' को देखती है।

स्वामी उरुक्रमानन्द स्वामी विवेकानंद जीवनी और उपदेश पुस्तक में स्वामी विवेकानंद के कथन का अनुवाद करते हुए लिखते हैं- "तुम्हारे मोहल्ले में बहुत से गरीब लोग... दुख में डूबे हुए हैं। तुम्हें उनके पास जाकर पूरे जी-जान से उनकी सेवा करनी होगी। रोगियों को दवाई बांटने की व्यवस्था करो और लगन के साथ उनकी सेवा करो।" (81)

स्वामी उरुक्रमानन्द के कथन द्वारा भारत की समृद्ध गौरवशाली परंपरा का पता चलता है जिसके अंतर्गत अपने आसपास के लोगों के लिए भी सेवा-भावना का आग्रह किया गया है। हमारी धार्मिक संस्थाओं में, सामाजिक संस्थाओं में जो लंगर इत्यादि लगवाए जाते हैं, उसके अंतर्गत जनसाधारण में सेवा भाव की जागरूकता लाने का ही उद्देश्य निहित रहता है। विद्यालयों में प्रातः कालीन ईश प्रार्थना के दौरान यही कहा जाता है-हमारा कर्म हो सेवा, हमारा धर्म हो सेवा। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, परिवार में बुजुर्गों की सेवा के प्रति ही अवहेलना प्रगट की जाती है तो जन-साधारण की सेवा का उद्देश्य कपोल कल्पित सिद्ध हो जाता है। संतान अपने अभिभावकों तक को उन्हीं के बनाए गए तथा उन्हीं द्वारा संवारे गए घर से बाहर खदेड़ देती है। देश में स्थान-स्थान पर खोले गए वृद्ध आश्रम बशेशरनाथ जैसे नौनिहालों के चमत्कारों के जीवंत प्रमाण हैं।

संदर्भित व्यंग्य रचना में, मातृ-प्रेम, नमस्कार तथा संवेदनशीलता सामाजिक मूल्यों का हास परिलक्षित होता है। बशेशरनाथ का, बीमार माता को दवा तक उपलब्ध न करवाना, उसके हृदय के मातृप्रेम के भाव को खंडित करता है। एक पुत्र का माता के प्रति घोर अवहेलना का भाव, इस तथ्य की पुष्टि करता है कि उसके हृदय में माता के प्रति न तो कोमल भावनाएं हैं, न ही आदर का भाव है, न ही वह अपनी माता के उपकारों के प्रति नमनशील है। बशेशरनाथ का समग्र व्यवहार उसे संवेदनाशून्य सिद्ध करता है। बशेशरनाथ के कृतघ्नतापूर्ण व्यवहार के द्वारा सामाजिक मूल्य, कृतज्ञता का भाव भी क्षरित हुआ है, क्योंकि माता के द्वारा किए गए त्याग, बलिदान, उत्सर्ग तथा ममता के भावों का संप्रेषण, पुत्र से यह अपेक्षा रखता है कि पुत्र अपनी माता के प्रति कृतज्ञता का भाव अपने अंतर्मन में स्थायी रूप से अवस्थित रखे। उसके किसी भी व्यवहार से यह प्रतिबिंबित न हो, कि वह अपनी माता के प्रति कृतघ्न बन रहा है।

भारतीय इतिहास में एक ओर श्रवण कुमार जैसा पितृ भक्त बालक मिलता है जो कांवड़ में अपने अंधे माता पिता को बैठाकर तीर्थ यात्रा करवाता है। दूसरी ओर वर्तमान समय का पुत्र बशेशरनाथ है जो मां को स्वस्थ होती देख उसको दवा देना भी बंद कर देता है।

बशेशरनाथ का व्यवहार मां के प्रति क्षीण होते उसके जुड़ाव को तो प्रतिबिंबित करता ही है, उसके घोर अमानवीय होने की भी पुष्टि करता है। उसके द्वारा बीमार मां को दवा न देना इसी भाव को दर्शाता है कि वह बड़ी उत्कंठा से मां के परलोक गमन की प्रतीक्षा कर रहा है। कितना विरोधाभास है, हमारी वर्तमान विचारात्मकता तथा पारंपरिक विचारात्मकता में।

'मिसेज पाल की कुट्टू पार्टी' व्यंग्य रचना गिरते हुए पारिवारिक मूल्यों की ओर संकेत करती है। इतिहास साक्षी है कि स्त्री परिवार की धुरी होती है, जीवन मूल्यों की संरक्षिका होती है, परंतु वर्तमान समय में नारी का हृदय भी अर्थ केंद्रित होता जा रहा है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना में एक स्त्री अपनी सास की जायदाद प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने आप को धर्म-कर्म में संलिप्त होने का नाटक कर रही है। वह अपनी सखी को अपने द्वारा नवरात्रों के व्रत रखे जाने की बात बताती है जिसे सुनकर सखी हैरान हो जाती है क्योंकि मिसेज पाल जैसी आधुनिक विचारधारा वाली स्त्री व्रत इत्यादि धार्मिक अनुष्ठानों में न केवल विश्वास करे, अपितु उसे अपने आचरण द्वारा प्रमाणित भी करे, यह बात जानने वालों के गले नहीं उतरेगी।

दोनों सखियों के मध्य दूरभाष पर हुई बातचीत से पता चलता है कि मिसेज पाल ने अपनी जेठानी के घर से, नवरात्रों के दौरान अपनी सास को इस लिए बुलवाया है ताकि वह अपनी सास के सम्मुख अपने आप को अति धार्मिक सिद्ध कर सके। इस लक्ष्य को सामने रखते हुए उसने नवरात्रों के व्रत रखने का निर्णय लिया। उसने अपनी सखी के समक्ष यह संभावना प्रकट की, कि हो सकता है कि उसकी सास उसके भक्ति भाव से प्रसन्न होकर अपनी जायदाद का अधिकांश भाग उसके नाम कर दे। व्रत रखने के परिप्रेक्ष्य में मिसेज पाल की मानसिकता को वर्णित करते हुए हरीश नवल ने दोनों सखियों के वार्तालाप को परिकल्पित करते हुए लिखा है-" उन्हें मैंने खुद बुलाया है, उन्हीं के लिए तो व्रत रखे हुए हैं। उनके लिए व्रत? हां, तुम नहीं समझोगी। वही वसीयत वाली बात, लास्ट किटी पार्टी में बताई नहीं थी?" (141)

मिसेज पाल के मन में अपने जेठ-जेठानी के विषय में यह संदेह होता है कि उन्होंने अपनी चिकनी- चुपड़ी बातों से सास जी को प्रभावित कर लिया है। इसलिए वह भी सजगता धारण करते हुए नवरात्रों के दौरान सास को अपने पास बुलवा भेजती है ताकि वह भी अपनी सास पर अपने प्रभाव का सिक्का जमा सके। जेठानी के विषय में मिसेज पाल की धारणा को

व्यक्त करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- "भाई साहब, भाभी जी ने उन्हें वश में कर रखा था।" (141)

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से यह पता चलता है कि दो बहुओं के मध्य अपनी सास की जायदाद को लेकर खींचतान चल रही है, दोनों पक्षों की ओर से यह भरपूर कोशिश है कि किसी तरह सास को प्रसन्न करके वसीयत अपने नाम करवाई जाए। बड़ों का आदर करना, उनकी प्रसन्नता के लिए उद्योग करना, यह तो छोटों का कर्तव्य ही है परंतु अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उनकी पसंद का कार्य दिखावे के लिए करना उचित नहीं है। प्रेम और आदर का भाव प्रकृति का उत्कृष्ट नैसर्गिक भाव है प्रेम और आदर का भाव प्राणी के प्रत्येक हाव-भाव द्वारा स्वतः ही प्रतिबिंबित हो जाता है, उसके लिए दिखावा करना आवश्यक नहीं। नश्वर वस्तुओं की प्राप्ति के लिए प्रेम और आदर जैसे मूल्यों का हनन अनुचित है।

इस व्यंग्य रचना में, आशीष, संतोष, अपनापन, तथा कर्तव्य परायणता, सामाजिक मूल्यों की गरिमा खंडित होती दर्शाई गई है। पारिवारिकता, निस्पृहता, आत्मीयता तथा सामाजिक मूल्य भी ध्वस्त हुए हैं। मिसेज पाल अपनी सास का आशीष पाने के लिए, उनका आदर करना अपना कर्तव्य समझते हुए, नवरात्रों के व्रत नहीं रख रही, अपितु सास की जायदाद हड़पने का स्वार्थ अंतर्मन में रखते हुए, उनके साथ झूठा अपनापन दर्शाने का पाखंड करती है। वसीयत अपने नाम करवाने के परिप्रेक्ष्य में उसके अंतर्मन में असंतोष की भावना भी निहित है, क्योंकि यदि उसका मन, अपने पास उपलब्ध साधनों द्वारा संतुष्ट होता तो वह लंबा हाथ मारने के लिए शकुनि चालें न चलती। इससे पता चलता है कि उसका अंतर्मन निस्पृहता के भाव से शून्य है। सास के प्रति उसके हृदय में आत्मीयता का भाव लेशमात्र भी नहीं है, इसका पता तो उसके दूरभाषी-वार्तालाप से चल जाता है, जब वह अपनी सखी से बातचीत करती है। इस बातचीत के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अपनी सास की सेवा कर्तव्य परायणता की दृष्टि से नहीं कर रही, अपितु उसकी जायदाद पर गिद्ध दृष्टि रखते हुए कर रही है।

हमारी परंपरा में तो परिवार में सामंजस्य स्थापित करने के लिए स्त्रियां राज्य का वैभव तक त्यागने का गरिमामंडित उदाहरण प्रस्तुत करती आई है। *कल्याण* के नारी अंक में संकलित कथा 'सती भोगवती' में शूरसेन नरेश के पुत्र नागराज भ्रमण के पश्चात नगर लौटते हैं। उनके छोटे भाई संपत्ति का बंटवारा आपस में ही करने का निश्चय कर चुके होते हैं। बड़े भाई

के आने पर वे नगर के द्वार बंद करवा देते हैं। नागराज क्रोधित होकर युद्ध द्वारा अपना अधिकार पाने को उद्यत होते हैं। उनकी भार्या भोगवती त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हुए पति से कहती है- "मेरी अल्प बुद्धि में भाइयों से युद्ध करना उचित नहीं है। चाहे जो भी हो, वे आपके सहोदर बंधु है। यदि भाइयों में फूट हुई, शत्रु आक्रमण कर देंगे और राज्य न आपका रहेगा न उनका।" (737)

भोगवती का कथन न केवल पारिवारिक मूल्यों के रक्षण की ओर संकेत करता है अपितु समाज में भी नारी के त्यागमय आचरण को सुनिश्चित करता है। भोगवती का कथन राष्ट्रीय मूल्यों के निर्वहण की भी पुष्टि करता है क्योंकि वह भाइयों के मध्य वैमनस्य के द्वारा शत्रु के आक्रमण होने की भी संभावना की ओर संकेत करती है।

व्यंग्य रचना में वर्णित नारी और इतिहास में वर्णित नारी के चरित्र में आकाश पाताल का अंतर है। वर्तमान नारी यत्किंचित चल-अचल संपत्ति की प्राप्ति के लिए बाह्याडम्बरों का सहारा लेती है और इतिहास में वर्णित नारी अपने पति और उसके भाइयों के बीच तकरार रोकने के लिए राज्य-प्राप्ति का अधिकार छोड़ने के लिए भी प्रतिबद्ध हो जाती है।

'हर चौराहा गौशाला' व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल उन भारतीयों के चरम सीमा तक पहुंचे हुए भ्रष्ट व्यवहार की ओर संकेत करते हैं जो अपने घर में पालतू गाय को तब तक शरण देते हैं, जब तक वह उन्हें दूध प्रदान करती रहती है। जब वही गाय दूध देना बंद कर देती है, तब गोपालक उन्हें बोझ समझने लगते हैं और घर से बाहर निकाल देते हैं, ताकि वह गलियों में जाकर, सड़कों पर जाकर अपनी उदर-पूर्ति करें और गोपालकों की जेब ढीली होने से बच जाए। जब सरकार द्वारा सड़कों पर घूमने वाली गायों के लिए गौशाला बनाने की बात होती है तब ये गोपालक एकाएक सक्रिय हो जाते हैं और इन मूक पशुओं का आश्रय स्थल छीनकर गोस्वामी बनने का आडंबर करने लगते हैं। उपर्युक्त प्रकार के गौ-सेवकों की स्वार्थ साधने की प्रवृत्ति को उद्घाटित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "एक बार सरकार ने जब घोषणा की, कि वे दिल्ली में तीन सौ गौशालाएं खोलेंगे, अनेक गाय सेवकों, पीत वस्त्र धारियों ने जगह-जगह अपने बाप की नहीं, मां की जमीन समझ भूमि हथिया ली और उस पर गौशाला का एक हिंदी में लिखा बोर्ड लगाकर मां के नाम पर अपनी शरण-स्थली बना ली।" (162)

कैसी विडंबना है! स्वयं को गोपालक समझने वाले लोग अपने घरों में तो गाय के लिए स्थान आरक्षित नहीं करते, अब यदि सरकार उनके लिए शरण-स्थली बनाना चाहती है तो ये

तथाकथित गोपालक उनकी शरण-स्थली भी छीन लेना चाहते हैं। गौ माता को उन्हें क्षमा कर देना चाहिए, मानव जब अपने माता-पिता के लिए संवेदनहीनता धारण कर सकता है तो ऐसी स्थिति में बेचारी गौ माता के लिए उनके हृदय में संवेदनशीलता कहां से पनप पाएगी? हरीश नवल उपर्युक्त व्यंग्य रचना द्वारा मनुष्य की स्वार्थान्धता की पराकाष्ठा की ओर संकेत करते हैं। प्रस्तुत व्यंग्य रचना में सहृदयता और औचित्य, सामाजिक मूल्यों का ध्वंस हुआ है। गौशाला के लिए आबंटित भूमि को हथियाना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मूक पशु तो जानते ही नहीं कि सरकार ने उनके आश्रय-स्थलों के लिए भूमि के आबंटन का प्रावधान किया है। गौशाला की भूमि पर हाथ साफ करने की बदनियत रखने वाले लोग सहृदय भी नहीं कहे जा सकते। ऐसे लोगों के हृदय में संवेदनशीलता का वास कैसे हो सकता है?।

सुशील सिद्धार्थ द्वारा संपादित पुस्तक *व्यंग्य समय शरद जोशी* के अंतर्गत, गौशाला की प्रबंधकीय बैठक में हरीश नवल के पूर्ववर्ती व्यंग्यकार शरद जोशी ने बैठक के संयोजक का कथन इस प्रकार लिखा है- “आखिर गायें कब तक उपेक्षित रहेंगी?... एक बड़ा काम है जो किया जाना है। एक सपना है कि भवन बनें जो हमारे हों, गायों को ठौर मिले, हम कमीशन वगैरह खाएं। सवाल है, क्यों नहीं खाया जाए, जब सब खा रहे हैं।” (75)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि गौशाला के प्रबंधकीय समिति के संयोजक अपने सहायकों सहित गौशाला के नाम पर मिलने वाले चंदे द्वारा अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं। वे गायों को ठौर उपलब्ध करवाने की बात कहकर अपने लिए ही भवनों का निर्माण सुनिश्चित करना चाहते हैं। अपनी स्वार्थ सिद्धि के परिप्रेक्ष्य में वे यह कारण बताने में तनिक भी लज्जित नहीं होते कि जब अन्य संस्थाओं के कार्यकर्ता कमीशन वगैरह खाते हैं तो वे क्यों न खाएं।

इन व्यंग्यात्मक पंक्तियों के माध्यम से शरद जोशी यह कहना चाहते हैं कि विसंगति पूर्ण परिवेश निर्मित होते देख दूसरे लोग विसंगतियों के निराकरण का उपाय नहीं करते अपितु स्वयं भी उस विसंगति युक्त परिवेश का हिस्सा बन जाना अधिक फायदेमंद समझते हैं। गौशाला के प्रबंधक गायों को उपेक्षापूर्ण स्थिति से उबारने के लिए कब स्वयं को महत्वपूर्ण स्थान देना सुनिश्चित कर लेते हैं, इसकी भनक भी किसी को नहीं लगने देते। अर्थात् वे सामान्य जनता के समक्ष इस भावना को प्रदर्शित करते हुए आर्थिक सहायता देने का आग्रह करते हैं

कि गाय, जो घरों से निकलकर बेसहारा सड़कों पर घूमती है, उसे आश्रय देने के उद्देश्य से ही गौशालाएं निर्मित की जाती हैं। गौशाला की आड़ में वे अपने लिए शानदार भवनों का निर्माण कर लेते हैं और जिन गायों के माध्यम से वे अपने लिए महल खड़े कर लेते हैं, सामाजिक तौर पर लोकप्रियता और यश प्राप्त कर लेते हैं, वे गायें फिर उपेक्षित की उपेक्षित ही रह जाती हैं।

शरद जोशी भी हरीश नवल की तरह अवसरवादी भ्रष्ट लोगों की ओर इंगित कर रहे हैं, जो गौशाला के नाम पर चंदा एकत्रित करके अथवा पशुओं के लिए सरकार द्वारा दी गई सुविधाओं का स्वयं लाभ उठाने की ताक में रहते हैं।

गाय का वैज्ञानिक महत्व बताते हुए *सांस्कृतिक उत्थान का मार्ग* पुस्तक में रामसहाय लिखते हैं-"गौ माता के शरीर से निकलने वाली ऊर्जा से नकारात्मक तत्व समाप्त होते हैं। देशी गाय के दूध और गोमूत्र डेंगू जैसी गंभीर बीमारी में लाभ देते हैं।" (110)

राम सहाय द्वारा कहा गया उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि गाय को आदरणीय मानने के परिप्रेक्ष्य में केवल धार्मिक आधार नहीं है, अपितु वैज्ञानिक आधार भी है। गाय को भारत के पड़ोसी देश भी अत्यधिक आदर की दृष्टि से देखते हैं, इस विषय में गाय का महत्व सुनिश्चित करते हुए रामसहाय आगे लिखते हैं- "हिंदू धर्म में पवित्र मानी जाने वाली गाय को नेपाल ने अपने नए धर्मनिरपेक्ष संविधान में राष्ट्रीय पशु का दर्जा दिया है।" (111)

राम सहाय के कथन के आधार पर यह स्पष्ट है कि कि भारत के पड़ोसी देश भी गाय को महत्वपूर्ण मानते हुए उसके संरक्षण के लिए उसे राष्ट्रीय पशु घोषित करते हैं, फिर भारत में उसके प्रति स्वार्थ जनित व्यवहार क्यों हो रहा है? जिस भारत में गाय को मात्र एक पशु न समझ कर माता के समान आदर दिया जाता रहा है, वहां गाय गलियों और चौराहों पर कचरे के ढेरों पर अपना पेट भरने के लिए क्यों छोड़ दी जाती है?

यह बात अत्यंत लज्जाजनक है कि जब तक गाय दुधारू होती है, तब तक लोग उसे अपने घर में आश्रय देते हैं, उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करते हैं, उसे चारा-पानी प्रदान करते हैं परंतु जब वह दूध देना बंद कर देती है तो वे लोग उसे भार स्वरूप समझने लगते हैं। गाय जब उनके लिए लाभदायक सिद्ध नहीं होती तो वे उसे दूध में गिरी मक्खी की भांति निकाल देते हैं। गोपालकों द्वारा किया गया यह व्यवहार उनके मानवीय अस्तित्व को जड़ बना देता है। किसी भी प्राणी को मानव कहने के परिप्रेक्ष्य में उसके व्यवहार द्वारा मानव मूल्यों का निर्वहण

अपेक्षित है, इसके अभाव में उसका मानवीय भाव जड़ता को प्राप्त होना सहज संभाव्य है। हनुमान प्रसाद पोद्दार द्वारा टीका कृत *श्रीरामचरितमानस* में गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम के अवतार लेने का कारण बताते हुए कहा है- 'विप्र धेनु सुर सन्त हित लीन मनुज अवतार।' (177)

अर्थात् विप्र, गाय, देवता और संतो के हित के लिए ईश्वर ने मनुष्य के रूप में पृथ्वी पर आना स्वीकार किया। गोस्वामी तुलसीदास उपर्युक्त कथन के माध्यम से गाय की, भारतीय जन-जीवन में महत्ता को प्रमाणित करते हैं। वास्तव में हरीश नवल गाय को प्रतीक बनाकर अनेक पशुओं के आश्रय विहीन होने की सच्चाई से अवगत कराना चाहते हैं। देशभर की गलियों में, बाजारों में श्वान, गाय, बैल तथा सूअर इत्यादि लावारिस घूमते हुए देखे जा सकते हैं। समग्र पृथ्वी तो मानव द्वारा ही अधिकृत कर ली गई है तो फिर अन्य प्राणियों के रहने के लिए स्थान बचेगा कैसे? मनुष्य ने वन्य पशुओं के आश्रय स्थलों पर अधिकार कर लिया, पक्षियों के आश्रय स्थलों अर्थात् वृक्षों को काट डाला, किस लिए? अपने जीवन को अधिकाधिक सुविधा संपन्न बनाने के लिए, अपने भवनों को भव्यता प्रदान करने के लिए।

'दिल्ली की बारात कोई सानी नहीं' व्यंग्य रचना में हरीश नवल वर्तमान यांत्रिक दिनचर्या के वाहक मनुष्य, जो विवाह के रात्रि भोज पर भोजन ग्रहण कर वापिस घर जाने की शीघ्रता में होते हैं, उनके विषय में व्यंग्य प्रहार करते हैं। विवाह में शामिल लोग अपनी-अपनी थाली में जिस तरह प्रत्येक खाद्य पदार्थ भर लेते हैं, उसे देख उन्हें अपने घर की गाय का भोजन स्मरण हो आता है, जिसमें कई प्रकार की वस्तुएं सम्मिलित रहती थीं और उसे सानी कहा जाता था। हरीश नवल एक ओर दिल्ली की बारात की भव्यता वर्णित करते हैं और दूसरी ओर वे बारातियों की विभिन्न खाद्य पदार्थों से भरपूर थाली देखकर यह निर्णय नहीं कर पाते कि उनकी थाली में आखिर कौन-कौन से व्यंजन है ? बारातियों के द्वारा प्लेट में सभी व्यंजन मिश्रित किए जाने पर, हरीश नवल उसे गाय की सानी जैसा उपमित करते हैं। विभिन्न व्यंजनों से मिश्रित प्लेट देखकर उन्हें अपने घर की गाय याद आ जाती है। उस बाराती को गाय की उपमा देते हुए हरीश नवल ने उपहास जनित शब्दों में लिखा है- "गाय-सा निरीह प्लेटधारी, चम्मच या कांटे या गीली हो चुकी तंदूरी रोटी के टुकड़े से सब्जियां उठाने की, ढूंढने की चेष्टा करने लगता है।इतने उपक्रम में सब गड्डु-मड्डु हो चुका होता है-वह सानी लगने लगता है।" (98)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से व्यंग्यकार जनसामान्य को बताना चाहता है कि भोजन ही हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करता है। हमारी कर्मशीलता, हमारी चिंतनशक्ति, हमारा दृष्टिकोण तथा हमारे सभी क्रियाकलाप हमारी भोजन शैली पर निर्भर करते हैं। मनुष्य अपने जीवन में सर्वप्रथम भोजन की चिंता करता है क्योंकि भोजन पेट में जाएगा तभी शरीर उर्जावान बन जाएगा और तभी शरीर के द्वारा सभी आवश्यक कार्य संपन्न हो पाएंगे।

भोजन के द्वारा ही शरीर को शक्ति मिलती है, शारीरिक श्रम और मानसिक कार्य करने के लिए ऊर्जा मिलती है, अतः भोजन ग्रहण करते समय आहार प्रणाली का समुचित ध्यान रखना चाहिए, हमारी आहार विधि कैसी हो, द्वारिकानाथ तिवारी *प्रेम योग* पुस्तक में स्वामी विवेकानंद के कथन का अनुवाद करते हुए लिखते हैं- “हमारे शरीर और मन की शक्तियों का निर्माण करने वाली समग्र संजीवनी शक्तियां हमारे भोजन के भीतर ही रहती हैं। अभी जो कुछ मैं हूँ, वह सब इसके पूर्व मैंने जो खाया उस भोजन सामग्री में ही था।” (2)

स्वामी विवेकानंद द्वारा कहे गए विचारों के परिप्रेक्ष्य में यह सिद्ध होता है कि हमारी सभी क्रियाओं का साधन हमारा शरीर है और शरीर को पोषण भोजन द्वारा ही मिलता है। मनुष्य का शारीरिक गठन, उसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य आहार विधि पर ही अवलंबित होता है। मनुष्य का आहार उसके शरीर-रक्षण को सुनिश्चित करता है तथा उसे सफलता और स्फूर्ति प्रदान करता है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना में, सबलता, स्फूर्ति तथा स्वास्थ्य, वैयक्तिक मूल्य क्षरित होते दर्शाए गए हैं। हमारे पाचन तंत्र में विद्यमान अम्ल हमारे द्वारा ग्रहण किए गए भोजन पर रासायनिक क्रिया करके उसे विभिन्न पौष्टिक तत्वों में विखंडित कर देते हैं। शरीर के जिस-जिस विभाग में प्रकृति द्वारा जिस तत्व का स्थान निर्धारित होता है, वह तत्व रक्त कोशिकाओं द्वारा वहां पहुंच जाता है। हम कहीं भी भोजन करें, अपने घर अथवा शादी-ब्याह पर अथवा किसी और स्थान पर, भोजन खाते समय भोजन की प्रकृति, अपनी शारीरिक प्रकृति, ऋतु की अनुकूलता तथा मितभुक्तता का अवश्य ध्यान रखें।

3.6 आत्मनिरीक्षण, विवेक, सर्वहितकारिता, अनुशासन, आत्म संयम, गवेषणा तथा चिंतनशीलता, सामाजिक मूल्यों का *माफिया जिंदाबाद* पुस्तक में क्षरण दर्शाया गया है।

‘द्रवित होने का सुख’ व्यंग्य रचना में हरीश नवल ईर्ष्यालु मनुष्यों की वृत्ति को अपनी प्रहारात्मकता का निशाना बनाते हैं। व्यक्ति अपने जीवन में जिन सुख साधनों को अर्जित करता

है, उसके परिप्रेक्ष्य में अपने परिश्रम को प्रश्रेय देता है। दूसरों की उपलब्धियां वह हजम नहीं कर पाता इसलिए वह उनके कार्यों में दोष ढूंढने लगता है। ऐसे मनुष्य के अंतर्मन में स्थित विचारों का विश्लेषण करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "दूसरे की सफलता प्रायः अनैतिक होती है और अपना साफल्य शुद्ध, श्रम संचित और नैतिक।" (31)

ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरों की उपलब्धियां देखकर मन ही मन में जल-भुन कर खाक होता रहता है, परंतु प्रकट में उनकी उपलब्धियों के स्थायित्व के प्रति चिंतित होने का दिखावा करता है, वास्तव में उसके अंतर्मन की यह प्रबल अभिलाषा होती है कि उसे शीघ्र अति शीघ्र यह सूचना मिले कि सामने वाले सफल व्यक्ति की उपलब्धियों में कोई अड़चन आ गई है। ईर्ष्यालु मनुष्य अपनी ओर से भी अप्रत्यक्षतः प्रयासरत रहता है कि किसी प्रकार उस सफल व्यक्ति की सफलता को असफलता में परिवर्तित किया जाए। यदि वह यशस्वी है, लोकप्रिय है, तो उस पर किसी न किसी तरीके से कीचड़ उछाला जाए और समाज में उसके यश को अपयश में बदला जाए। यदि कोई व्यक्ति धन के आधार पर सफल है तो उस ईर्ष्यालु व्यक्ति की पुरजोर कोशिश होती है कि उसे धन की हानि हो। उसकी इस प्रवृत्ति को दर्शाते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- "दूसरों के पास अतिशय धन होगा, बल होगा, हम कांप उठते हैं कि वह इसे संभालेगा कैसे? कोई प्रगति की सीढ़ियां लांघता-चढ़ता है, हम द्रवित हो उठते हैं, कहीं बेचारा गिर न जाए, हम सीढ़ी हटाने लग जाते हैं।" (31)

हरीश नवल ने ईर्ष्यालु लोगों की मानसिकता के बारे में सर्वथा उचित कहा है। वास्तव में द्रवित होने पर मनुष्य के हृदय में करुणा और सहृदयता के भाव जागृत होते हैं। परहित का कार्य तभी क्रियान्वित हो पाता है जब मनुष्य अपने अंतर्मन में दूसरों के हित के प्रति दृढ़निश्चयी हो जाता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरों के सुखी होने पर, प्रगतिशील होने पर तथा यशस्वी होने पर द्रवित होते हैं। अर्थात् दूसरों की सुख समृद्धि के साधनों में वृद्धि होते देख वे ईर्ष्या की आग में जलने लगते हैं। वे स्वयं तो उस स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाते, अपनी असफलता को छिपाने के लिए दूसरे व्यक्ति पर दोषारोपण करने लग जाते हैं और उसकी उपलब्धियों को भ्रष्ट तरीके से संयोजित सिद्ध करने का प्रयास करने लगते हैं।

व्यंग्यकार ने मनुष्य की स्वार्थी और स्वयं केंद्रित प्रवृत्ति पर प्रहार किया है जिसके अंतर्गत हर मनुष्य अपनी क्रियाओं को सर्वथा औचित्यपूर्ण और मानव मूल्यों की कसौटी पर खरी समझता है और दूसरे के कृत्यों में त्रुटियां देखता है। अगर सभी लोग समदर्शी होकर

अपने अवगुणों पर ध्यान दें और दूसरे के गुणों को देखें तो प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार स्वतः ही परिष्कृत होता जाएगा।

दूसरों के अवगुणों के अन्वेषक लोगों के संबंध में *बेईमानी की परत* पुस्तक में हरिशंकर परसाई लिखते हैं- "कई लोगों की रिस्पेक्टेबिलिटी' (प्रतिष्ठा) ही दूसरों की कलंक कथाओं के पारायण पर आधारित होती है। बड़े रस विभोर होकर वे जिस-तिस की सत्य-कल्पित कलंक कथा सुनाते हैं और स्वयं को पूर्ण संत समझने-समझाने की तुष्टि का अनुभव करते हैं।" (37) स्वयंकृत कार्यों को नीतियुक्त कहने वाले तथा अन्य लोगों के कार्यों को अनीतियुक्त कहने वाले लोग वास्तव में हीनता की ग्रंथि से ग्रस्त होते हैं। वे खुद को मानव समाज में प्रतिष्ठित करने के लिए दूसरों में दोष ढूंढते हैं, कभी वे अपनी गिरेबान में झांककर नहीं देखते। ईर्ष्या की प्रवृत्ति से बचने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने अंतर्मन में आत्म निरीक्षण के गुण को विकसित करने का प्रयास करे।

आत्मनिरीक्षण का अर्थ बताते हुए धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (विस्तारक मूल्य: भाग 2) में नीरू लिखती हैं- "आत्मनिरीक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपनी प्रज्ञा के बल पर अपने भावों, वृत्तियों, दोषों आदि को जानने-समझने का प्रयत्न करता है। आत्म परिष्कार की ओर व्यक्ति तब तक नहीं बढ़ सकता, जब तक उसे अपने गुणों-अवगुणों का बोध न हो।" (82) अर्थात् आत्मनिरीक्षण में समर्थ व्यक्ति यह भली प्रकार जांच लेता है कि उसका व्यक्तित्व किन-किन गुणों से समन्वित है और उसके व्यवहार द्वारा कौन-कौन से अवगुण परिलक्षित होते हैं। आत्मनिरीक्षण के द्वारा ही व्यक्ति अपने सुधार की चेष्टा कर सकता है।

नीरू के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि आत्मनिरीक्षण के गुण को विकसित करने पर मानव अपने दोषों को जानने में सक्षम हो सकेगा। अपनी कमियां जान लेने के उपरांत वह उन पर ध्यान केंद्रित करते हुए उनकी निवृत्ति की रीति भी तलाश करेगा। अक्सर लोग दूसरों की आंख का तिनका तो शीघ्र देखते हैं परंतु अपनी आंखों के शहतीर को नजरअंदाज कर देते हैं। इस प्रकार के मनुष्य के आत्म परिष्कार की संभावना क्षीण हो जाती है; सुधार के सभी द्वार बंद हो जाते हैं। भूले हुए को तो राह दिखाई जा सकती है लेकिन जो स्वयं को भूला हुआ समझने के लिए तैयार ही न हो, उसे राह पर लाना असंभव है।

आत्म निरीक्षण में निपुण व्यक्ति निष्पक्षता से अपने दोषों की परख करने में सक्षम हो जाता है, इस विषय में अपने विचारों से अवगत कराते हुए नीरू आगे लिखती हैं- "यह मानवीय दुर्बलता है कि मनुष्य अपनी भूल, अपनी कमियां, अपने दोष को सरलता से स्वीकार नहीं करता तथा दूसरे के दोषों को खूब बढ़ा चढ़ा कर देखता-सुनता और कहता है। इस स्थिति से मुक्त होकर ही वह आत्मनिरीक्षण कर सकता है।" (82)

नीरू के कथन के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि दूसरों में कमी निकालने की बजाए अपनी त्रुटियां तलाश करनी चाहिए। इस प्रकार एक पंथ दो काज सिद्ध हो जाएंगे। एक तो मनुष्य अपनी कमियों में सुधार ला पाएगा, दूसरे परनिंदा के दोष से भी बच जाएगा। आत्मनिरीक्षण का गुण अपनाते से उसके समय का भी सदुपयोग होगा क्योंकि वह पहले अपना समय दूसरों की कमियां ढूंढने में लगाता था, वही समय अब उसके सुधार में व्यय होगा।

'देखना और नहीं देखना' व्यंग्य रचना में हरीश नवल ने आज के युवा वर्ग की जोश में होश खो देने की वृत्ति की ओर इशारा किया है। सृष्टि में सभी प्राणियों का जीवन अनमोल है परन्तु बिना यह जाने कि प्रतिपक्ष की कितनी हानि हुई है, विपक्ष के व्यक्ति को प्राणघातक स्तर तक पहुंचा देना कहां तक उचित है? प्रस्तुत रचना का कलेवर संक्षिप्त है परंतु इसके अंतर्गत छिपा हुआ संदेश अत्यंत विस्तृत है। कई बार जो दृश्य दिखाई देता है, वह इतना महत्वपूर्ण नहीं होता जितना अनदेखा दृश्य महत्वपूर्ण होता है, अर्थात् जो अगोचर है उसे अनुभव करना और उसी के आधार पर आगामी कार्य विधि निर्धारित करना आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना के अंतर्गत चार मोटरसाइकिल सवार नवयुवक एक कार चालक नवयुवक की बुरी तरह पिटाई कर देते हैं क्योंकि उनकी आंखों के सामने उस कार के नीचे एक श्वान का पिल्ला आ जाता है। मोटरसाइकिल सवार युवकों को ऐसा लगता है कि उस युवक ने श्वान के बच्चे को अनदेखा किया है और उसके जीवन का कोई मूल्य नहीं समझा। वे चारों मिलकर कार चालक की अंधाधुंध पिटाई कर देते हैं। वे चारों धैर्यपूर्वक समग्र घटना का निरीक्षण नहीं करते। वास्तव में वह पिल्ला टायरों के मध्य खाली स्थान में बैठा रह जाता है और कार उसके ऊपर से गुजर जाती है। उस पिल्ले का बाल भी बांका नहीं हो पाता। कार चालक मार खाकर अधमरा सा हो जाता है। उसकी दशा वर्णित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "कार चालक की मां बेटे के लिए खून दे रही थी जो... अचेत पड़ा जिंदगी और मौत के बीच जूझ रहा था।" (33)

उपर्युक्त कथन में हरीश नवल कार चालक की विडम्बनापूर्ण स्थिति को दर्शाते हैं। प्रस्तुत प्रसंग द्वारा युवा वर्ग का जोश में होश खो देना प्रतिबिंबित होता है। पूरी स्थिति की जांच पड़ताल किए बिना मोटरसाइकिल सवार युवक उसे इस सीमा तक पीटते हैं कि अधिक रक्त स्राव के कारण उसकी माता को उसे खून देना पड़ता है और उन युवकों द्वारा जोश में लिया हुआ निर्णय कार चालक के समक्ष जीवन मृत्यु का प्रश्न बन जाता है। प्राणी मात्र के जीवन की सुरक्षा के प्रति चिंतित होते हुए क्रियाशील होना अच्छी बात है परंतु एक प्राणी की सुरक्षा करते करते दूसरे प्राणी के जीवन को असुरक्षित कर देना न्याय संगत नहीं है। उपर्युक्त प्रसंग को विष्णु शर्मा द्वारा संकलित *हितोपदेश* के निम्नांकित श्लोक के संदर्भ में उल्लेखित किया जा सकता है- “सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।” (320)

अर्थात् किसी कार्य को बिना सोचे-विचारे अनायास नहीं करना चाहिए । विवेकहीनता परम आपदाओं का आश्रय स्थान होती है। बिना विचार किए जो कार्य संपादित किया जाता है, उसके कारण कभी-कभी पछताना भी पड़ता है। कार्य में विघ्न तो पड़ता ही है, हृदय भी अपराध बोध से घर जाता है। ग्लानियुक्त मनुष्य को अपना सा मुंह लेकर रह जाना पड़ता है। द्रौपदी ने दुर्योधन को बिना विचार किए कह दिया था- अंधे का पुत्र अंधा, जिसका दुष्परिणाम महाभारत के युद्ध के रूप में कौरवों और पांडवों दोनों पक्षों को भुगतना पड़ा।

प्रस्तुत व्यंग्य रचना में मोटर साइकिल पर सवार नवयुवकों ने अपने अविवेकी होने का ही परिचय दिया है। नव युवकों ने विवेकहीनता के कारण एक व्यक्ति के जीवन को खतरे में डाला है। युवकों के आचरण से सामाजिक प्रतिबद्धता की गरिमा खंडित हुई है। जीवन में विवेक का महत्व बताते हुए धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (प्राकृतिक मूल्य: भाग 1) में कृष्ण गोपाल मिश्र लिखते हैं- “किसी प्रकार का कुतर्क न करके केवल पारस्परिक यथार्थ तर्क द्वारा प्रकृत निर्णय करने का नाम ही विवेक है।” (220)

मानव को अपने जीवन में कभी कभी ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जब उसके समक्ष दो मार्ग होते हैं और उसे दोनों में से एक मार्ग का चयन करना पड़ता है। मानव अपने विवेक के आधार पर यह सुनिश्चित करता है कि किस मार्ग पर अग्रसर होना उसके लिए हितकारी सिद्ध होगा। इस विषय में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कृष्ण गोपाल मिश्र आगे लिखते हैं- “जीवन के हर पक्ष में भले-बुरे तत्व समाहित हैं, जिनमें से एक को चुनना

पड़ता है। यह चयन जब विवेक पर आधारित होता है तब मनुष्य का उत्कर्ष और उत्थान हो पाता है।" (221)

कृष्ण गोपाल मिश्र के कथन से यह समझा जा सकता है कि मनुष्य यदि धैर्य का परिचय देते हुए विवेकशीलता से काम ले तो अनेक असंगत निर्णयों से बचा जा सकता है। विवेक का आश्रय लेकर मनुष्य दुविधा से भी बच सकता है और अपने मन में पछतावे के बोझ से भी बच सकता है। मनुष्य के विकास के सभी पक्ष विवेक द्वारा ही निर्धारित एवं संचालित होते हैं। विवेकशील मनुष्य के समक्ष जैसी परिस्थितियां होती हैं उसके अंतर्गत वह सार सार गह लेता है और थोथा उड़ा देता है। अर्थात् अपने सम्मुख आई हुई प्रत्येक परिस्थिति के सकारात्मक भाव को अपना लेता है और नकारात्मक भाव को नजरअंदाज कर देता है।

'डगर पनघट की 'व्यंग्य रचना में लेखक ने बढ़ती आबादी, फैलता औद्योगिकरण तथा असंतुलित पर्यावरण के कारण जल-संकट की ज्वलंत समस्या को उठाया है और इस गरल सत्य को भी रेखांकित किया है कि सरकारी तंत्र और धनी वर्ग के लिए जल की कमी नहीं होती, कमी होती है केवल सामान्य जनता को। पानी की समस्या के समाधान के लिए राष्ट्र का धन पानी की तरह बहाया जाता है। यह अलग बात है कि धन रूपी जल का बहाव भी राजतंत्र से संबंधित तत्वों के घर की ओर ही जाता है।

प्राणीजगत की निरंतरता के लिए जल की उपलब्धि मूलभूत आवश्यकताओं में गिनी जाती है। जल संकट की समस्या दर्शा कर हरीश नवल शाश्वत जीवन मूल्यों के क्षरण की ओर संकेत करते हैं। जल प्राणी जगत की शाश्वत आवश्यकता है इसके बिना प्राणी जगत का अस्तित्व संभव नहीं। जल संकट प्रशासन वर्ग, नेता वर्ग और धनकुबेरों के जीवन पर कोई प्रभाव नहीं डालता, उपर्युक्त वर्ग को श्रेष्ठ जन मानते हुए हरीश नवल कहते हैं- "नागरिक, श्रेष्ठ जन के प्रवचन सुनता है,..... प्रवचन सदा पूरा किया जाता है वचन कभी पूरा नहीं किया जाता। बेचारा नागरिक बिन पानी बस मांगता ही रह जाता है।" (35)

हरीश नवल के कथन का भाव है कि नेता लोग अपने भाषण को कभी अपूर्ण नहीं छोड़ते। परंतु अपने आश्वासनों की पूर्ति भी कभी नहीं करते और सामान्य नागरिक की समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है। लोगों को पानी मिले या न मिले, परंतु विपक्ष के नेता जल-आपूर्ति के प्रश्न पर राजनीति करना नहीं भूलते। उनका व्यवहार निर्लज्जता की चरम सीमा स्पर्श करने लगता है, जिसे व्यक्त करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- "पानी सप्लाई के भव्य प्रस्ताव

पास होते हैं, परंतु सप्लाई के वक्त पानी कहां छिप जाता है, इसका अता-पता विपक्षी लगाने में जुटे होते हैं।" (36)

हरीश नवल सत्यतापूर्वक राष्ट्र के प्रशासनिक तंत्र के असंगत व्यवहार की कलई खोलते हैं। उनका कथन व्यंग्य के सत्यान्वेषी होने की पुष्टि करता है। जल संकट की स्थिति में भी नेतागण अपनी नेतागिरी झाड़ने से बाज नहीं आते। विपक्ष सत्तासीन पक्ष पर उंगलियां उठाता है और सत्ता-पक्ष के लोग विपक्ष के आक्षेप को अनुचित ठहराते हैं। दोनों पक्षों का आपसी वाद-विवाद तथा आरोप-प्रत्यारोप का सिलसिला संसद की कार्यवाही के दौरान दूरदर्शन पर अनेक बार भव्यता के साथ प्रसारित होता देखा गया है। दोनों पक्षों की आपसी कलह के कारण जल संकट की समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है, उसका समाधान नहीं हो पाता। प्रस्तुत संदर्भ में, सर्वहितकारिता, सामाजिक मूल्य का क्षरण हुआ है क्योंकि जल के आवंटन को समाज हितार्थ सुनिश्चित न करते हुए, वर्ग विशेष के लिए सीमित रखना उचित नहीं है।

हरीश नवल के कथन के समानांतर अशोक गुजराती भी *व्यंग्य के रंग* पुस्तक में बढ़ते हुए जल संकट की चिंता समाज के मध्यम और निम्न वर्ग से जोड़ते हुए कहते हैं- "आजकल जिनके पास पानी है वे पानीदार हो रहे हैं। यह तो आम जनता है जो पानी पानी हो रही है बिना पानी के।" (11)

अशोक गुजराती के कथन का अभिप्राय है कि जिन के पास सामर्थ्य है उन्हें तो पानी के अभाव की कोई चिंता नहीं, उनके पास तो जल प्राप्ति की अनेक सुविधाएं है अभावग्रस्त तो सामान्य जन होते हैं, जो जल संकट से लेकर जीवन की अन्य मूलभूत आवश्यकताओं के संकट से भी जूझते हैं।

जो लोग जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए साधन संपन्न हैं, उनके पास तो पीने और नहाने से लेकर तैरने तक के लिए जल उपलब्ध होता है। सामान्य जनता जल प्राप्ति के लिए पंक्ति बद्ध होकर पसीने से पानी-पानी होती रहती है। भारत में अनेक ऐसे क्षेत्र हैं, जहां ग्रीष्म ऋतु के दौरान जल की भारी कमी देखने को मिलती है। सार्वजनिक नल से जल प्राप्ति के लिए लोग घंटों कतार में खड़े रहते हैं, पसीने से नहा जाते हैं, तब कहीं जाकर जल की एक बाल्टी या एक घड़ा उपलब्ध हो पाता है।

प्रकृति के वरदान तो समग्र प्राणी जगत को समान रूप से प्रदान किए जाते हैं परंतु साधन संपन्न लोग, समाज के शक्तिशाली लोग अपनी विलासिता के लिए प्राकृतिक वरदानों को अपने उपभोग हेतु संग्रहित कर लेते हैं, परिणाम स्वरूप अन्य प्राणियों के लिए उनकी उपलब्धता कम हो जाती है। प्रकृति के समदर्शी व्यवहार को रेखांकित करते हुए देवेंद्र स्वरूप *अखंड भारत* पुस्तक में कहते हैं- "भूमि हम सभी को समान रूप से पोषण, रस एवं जीवन का आधार प्रदान करती है।" (47)

भूमि सभी प्राणियों को अन्न और जल प्रदान करती है, पृथ्वी पर उगे पेड़ पौधे प्राणी जगत को ऑक्सीजन देते हैं और उनसे कार्बन डाइऑक्साइड प्रतिदान स्वरूप ग्रहण करते हैं। दोनों पक्षों के सामंजस्य से वनस्पति जगत और प्राणी जगत के मध्य संतुलन बना रहता है। मानव प्राणी जगत के अंतर्गत सर्वाधिक विवेकशील है अतः उसे प्रकृति प्रदत्त सभी साधनों का वितरण इस प्रकार करना चाहिए कि प्रत्येक प्राणी के जीवन की शाश्वत मूलभूत आवश्यकताएं पूर्ण हों।

‘अल्ट्रा मॉडर्न होली डॉट कॉम’ व्यंग्य रचना में हरीश नवल भारतीय पर्वों के परंपरागत स्वरूप के विखंडन की ओर संकेत करते हैं। पहले भारतीय समाज में प्रत्येक त्योहार अत्यंत हर्षोल्लास तथा गरिमामंडित ढंग से मनाया जाता था। त्योहार सामाजिक जीवन को सन्निकट लाने के माध्यम बनते थे। प्रत्येक त्योहार में बच्चे से लेकर बुजुर्गों तक का मेल मिलाप होता था।

हरीश नवल, व्यंग्य रचना में होली मनाने के वर्तमान तौर-तरीकों पर तंज कस रहे हैं। आज का युवा वर्ग परंपरा को त्याग सर्वथा नवीनता को धारण करना चाहता है। समय के साथ जीवन जीने के ढंग में बदलाव असंदिग्ध रूप से आता है, परंतु वह बदलाव सकारात्मक और परंपरा से जुड़ा हुआ अवश्य होना चाहिए। हरीश नवल वर्तमान समय में होली उत्सव मनाने का ढंग वर्णित करते हुए उपहास में लिखते हैं- "पहले रेड कलर यूज़ होता था। जिसे अपन ने रिफ्यूज़ कर दिया पहले गुलाल लगता था हम पक्का टैटू गुदवाएगा, पिचकारी इज नॉट इन फैशन। हम गिटार पकड़ेगा।" (78)

उपर्युक्त कथन के द्वारा हरीश नवल वर्तमान युवा वर्ग की परिवर्तित मानसिकता दर्शाना चाहते हैं कि आज के युवा वर्ग ने पुरातन परंपराओं को छिन्न-भिन्न कर डाला है। गुलाल और अबीर लगाने या लगाने से ही तो होली का पता चलता है। टैटू तो आज का युवा वर्ग

आधुनिक दिखने की धुन में सामान्य दिनों में भी गुदवाता रहता है। हरे-पीले-लाल-गुलाबी रंगों से सराबोर लोगों के चेहरों के द्वारा ही होली के त्यौहार का बोध होता है।

होली का पर्व सामाजिक संबद्धता के भाव को दृढ़ करने की ओर प्रेरित करता है। परिचित लोग तो एक दूसरे को गुलाल लगाते ही हैं, अपरिचितों द्वारा गुलाल लगाए जाने पर भी अधिकांशतः बुरा नहीं माना जाता। त्योहारों की गरिमा तथा उनकी गुणवत्ता को एक पारंपरिक रूप में रखने पर उन्हें एक धरोहर की भांति संभाल कर रखा जा सकता है। आधुनिकता और नवीनता की धुन में त्योहारों को मनमाने ढंग से मनाना उनकी स्वाभाविकता को खंडित करता है। यह सही है कि समय बदलने के साथ साथ त्योहार मनाने की पद्धति में थोड़ा बहुत अंतर आता है, परंतु अंतर इतना अधिक न हो कि उसका मौलिक स्वरूप ही परिवर्तित हो जाए।

मनुष्य की यह स्वाभाविक वृत्ति है कि वह असंभव कार्यों को संपन्न करने में प्रयासरत रहता है, इसके अंतर्गत उसे रोमांच और आनंद की अनुभूति होती है। इस तथ्य को होली के त्यौहार से जोड़ते हुए प्रेम जन्मेजय *कौन कुटिल खल कामी* पुस्तक में कहते हैं- "जिस मुखड़े पर कोई रंग लगाने की हिम्मत न करें, उस पर गुलाल लगाने में जो आनंद है, वह किसी घोटाले में कहां?" (158)

प्रेम जन्मेजय के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि होली का त्योहार एकमात्र ऐसा त्यौहार है जिसके अंतर्गत मनुष्य संवेदनहीन व्यक्ति को, किसी अहंकारी व्यक्ति को, किसी रुष्ट व्यक्ति को रंग से सराबोर करने का साहस कर सकता है। इस प्रयास के विफल होने की संभावना भी बहुत कम है क्योंकि होली का पर्व ही ऐसा है कि संवेदना से शून्य मनुष्य भी होली के त्योहार को गरिमामंडित रखने के लिए हल्की सी मुस्कुराहट के साथ रंग लगवा लेता है। नाराज हुआ व्यक्ति अंतर्मन में लाल पीला होता हुए भी रंग लगवाने के लिए खुशी-खुशी चेहरा आगे कर देता है। ऐसा आनंद किसी घोटाले के सफल होने में भी नहीं मिलता अर्थात् किसी प्रकार के छल फरेब में, किसी प्रकार की कपट-क्रीड़ा में, किसी प्रकार की चालाकी भरे दांवपेच में वह आनंद नहीं, जो दूसरे के चेहरे पर एक स्वाभाविक मुस्कान लाने में है। घोटालों के द्वारा मनुष्य केवल धन-संग्रह कर सकता है परंतु प्रतिबंधित कार्य, जिस के परिप्रेक्ष्य में कोई दूषित भावना नहीं, केवल पर्व का उल्लास छिपा है, संपन्न करने का आनंद कुछ और ही है। उपर्युक्त व्यंग्य कथन के द्वारा प्रेम जन्मेजय मानव मात्र को जीवन के वास्तविक और शाश्वत आनंद से परिचित करवाना चाहते हैं।

होली का उत्सव मनाने के पारंपरिक रूप को विद्यानिवास मिश्र *जीवन अलभ्य है जीवन सौभाग्य है* पुस्तक में वर्णित करते हुए लिखते हैं- "सहज अकृत्रिम संदेश देने वाले चैतन्य महाप्रभु इस दिन अबतीर्ण हुए, उन्होंने यह भाव भरा- अपने को पर से भी पराए के अधीन बनाओ, अपने को राधामय बनाओ तभी तुम माधवमय हो सकते हो।" (36)

विद्यानिवास मिश्र, चैतन्य महाप्रभु का कथन इसलिए उद्धृत करते हैं ताकि जन-जन के मस्तिष्क में उनका संदेश संप्रेषित हो, जिस से प्रेरित होकर मनुष्य नितांत अपरिचित मनुष्य को भी अपना समझे। जिस प्रकार राधा और कृष्णा परस्पर अभिन्न थे, उसी प्रकार मनुष्य-मनुष्य के मध्य अभिन्नता का भाव परिपुष्ट हो। समाज में इसी भाव को सुदृढ़ बनाने के लिए हमारे पूर्वजों ने होली के त्यौहार को प्रतीक बनाया। जब मानव जगत में एक दूसरे के लिए अभिन्नता का भाव दृढ़ होगा तब जीवन में किसी प्रकार का भेदभाव शेष नहीं रहेगा। यही एकता का भाव जब सर्वत्र प्रसारित हो जाएगा तब समाज में जीवन मूल्यों का संवर्धन सुनिश्चित होगा।

होली के उत्सव के दौरान सभी के मन में यह विचार होना चाहिए कि इस समय न कोई अग्रगण्य हैं और न ही कोई सर्वोत्कृष्ट है, सभी अपने-अपने ढंग से अग्रणी है और सर्वोत्कृष्ट भी, अर्थात् किसी के मन में भी स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ मानने का भाव नहीं होना चाहिए। सभी एक दूसरे को समान दृष्टि से देखें, तभी होली के पर्व मनाने का वास्तविक ध्येय फलीभूत होगा। होली के त्यौहार को विराट भाव के साथ जोड़ा गया है। समरसता के भाव-वृत्त में कोई प्रथम अथवा चरम नहीं रह पाता, सभी एकात्मता के भाव से होली के भाव को अनुभूत करेंगे, तभी होली का त्यौहार सार्थक होगा।

'सांस्कृतिक हिसाब' व्यंग्य रचना में हरीश नवल ने सामाजिक संस्थाओं में ऊंचे पद पर आसीन व्यक्तियों की धन के प्रति आसक्ति को दर्शाया है। पहले मानव के केंद्र में समाज हित की भावना को प्रश्रय प्राप्त था, वर्तमान में मानव की वृत्ति अर्थ केंद्रित है। सब रिश्ते, आदर्श, मान्यताएं और सामाजिक मूल्य अर्थ के अन्धकूप में विलीन हो जाते हैं। सामाजिक मूल्यहीनता की स्थिति को दर्शाते हुए हरीश नवल कहते हैं कि एक सामाजिक संस्था के अध्यक्ष और महासचिव अंधे बच्चों के नाम पर एकत्रित धन राशि का बड़ा भाग स्वयं हड़प जाते हैं।

हरीश नवल, संस्था के अध्यक्ष की ओर से सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करने वाले मध्यस्थ अभिकर्ताओं के विषय में लिखते हैं- "जो वस्तु, धन आदि जहां जिस स्थान पर पहुंचना चाहिए, पहुंचता नहीं है, बीच की एजेंसियां खा जाती हैं।" (45)

महासचिव, अध्यक्ष को बताता है कि कार्यक्रम की रूपरेखा ऐसी बनाई गई थी जिससे दर्शकों को प्रतीत हो कि कार्यक्रम अत्यंत व्यय साध्य था। महासचिव, अध्यक्ष के हृदय में लोभ-लालच के भाव जागृत करते हुए, उन्हें उकसाते हुए कहता है कि कार्यक्रम करवाने के बाद जो धन बचा है उसको प्रायोगिक रूप देना उन्हीं पर निर्भर करता है। अध्यक्ष के मन में लालच के बीज अंकुरित हो जाते हैं। हरीश नवल, अध्यक्ष की मानसिकता वर्णित करते हुए लिखते हैं- "अध्यक्ष ने लोभ को प्रीति से पकड़ लिया, वे एक बड़ी एजेंसी में तब्दील होते हुए बोले, बीस हजार लाभ दिखाकर विद्यालय में दान दे दो, पचास हजार के खर्च को बदल दो ताकि पचास-पचास हजार हम दोनों के मेहनताने और..." (46)

परस्तु शब्दावली के द्वारा हरीश नवल संस्था के अध्यक्ष और महासचिव की लोभी वृत्ति का उपहास करते हैं। संस्था के अध्यक्ष का कथन उसके अंतर्मन में अवस्थित लोभ की वृत्ति को दर्शाता है। उसने और संस्था के महासचिव ने आपस में मिलीभगत के द्वारा अंधे बच्चों के लिए दी गई अनुदान-राशि को भी अपने लोभ के पाश में जकड़ लिया। अमानत में खयानत करना तो वैसे भी सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध किया जाने वाला दुष्कृत्य है। जब यह दुष्ट कृत्य नेत्रहीन बालकों के संदर्भ में किया जाए तो मूल्यहीनता अपनी चरम सीमा को स्पर्श कर जाती है। नेत्र प्रकृति प्रदत्त अन्यतम वरदान हैं जिनकी सहायता से मानव ईश्वर द्वारा बनाया गया सुंदर संसार देखता है। नेत्रों के द्वारा ही अपना शैक्षणिक कार्य संपूर्ण करता है। जो मनुष्य प्रकृति के इस अतुल्य वरदान से वंचित हैं, समाज द्वारा उनके सहायतार्थ मिली धनराशि पर घात लगाना जीवन मूल्यों के विरुद्ध किया गया अधम कृत्य है, इससे सामाजिक मूल्य, विश्वास का खण्डन हुआ है।

हरीश नवल के समकालीन व्यंग्यकार गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा संपादित *सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य* पुस्तक में विजयकृष्ण ठाकुर सामाजिक संस्थाओं के अध्यक्षों तथा महासचिवों द्वारा अपनी जेब भरने के कार्यों को बेईमानी समझते हुए लिखते हैं- "अपने हाथ से लेकर अगर वे अपने जेब जैसे मुंह को भर रहे हों तो भला हमें क्या एतराज हो सकता है..... उनका हाजमा भी उनकी तरह तंदुरुस्त है। वे कितना भी खा लें, उन्हें अपच नहीं होता।" (103)

विजयकृष्ण ठाकुर, मानव की धन लिप्सा की प्रवृत्ति पर कटाक्ष करते हैं कि धन की लालसा से मनुष्य का पेट कभी नहीं भरता, यह ऐसी भूख है कि जितना भी तृप्त होने का प्रयास करो, अतृप्ति उसी अनुपात में बढ़ती रहती है।

हरीश नवल, अध्यक्ष और महासचिव के अंतर्मन में सामाजिकता के भावों का क्षरण दर्शाते हैं कि किस प्रकार संस्था के उच्च अधिकारी अंधे बच्चों के कल्याण के लिए दिए गए धन से अपनी ही जेब भरने में लगे हुए थे। प्रस्तुत व्यंग्य रचना समाज में व्याप्त अर्थ संग्रह की विकृति की ओर संकेत करती है और जनमानस को अर्थ संचय की वृत्ति से दूर रहने के लिए प्रेरित करती है क्योंकि धन प्राप्ति की लालसा का कहीं अंत नहीं है। मनुष्य के पास धन का जितना आधिक्य होता जाता है, धन प्राप्ति की लालसा भी प्रबलतर होती जाती है। सामान्य जन विश्वास करके सामाजिक संस्थाओं को अपने अपने सामर्थ्य के अनुसार दान देते हैं ताकि जरूरतमंदों तक सहायता पहुंचाई जा सके। लोगों का धन इन संस्थाओं के पास धरोहर स्वरूप होता है जिसे उन्हें सुपात्र के लिए ही प्रयुक्त करना चाहिए यदि उस धन का उपयोग वे अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु करेंगे तो यह विश्वासघात होगा।

विश्वसनीयता अथवा विश्वास के विषय में धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (प्राकृतिक मूल्य : भाग 1) में कृष्णगोपाल मिश्र लिखते हैं- "हर व्यक्ति, कुछ व्यक्तियों, वस्तुओं या विचारों को प्रथम दृष्टया वैसा ही मान बैठता है, जैसा कि उनके प्रति उसके मन में भाव उठते हैं। उसकी ऐसी भावधारा विश्वास कहलाती है। अनुमान, संकल्प, विवेक एवं त्याग-यह चार साधन हैं, जिनके द्वारा यह विश्वास सुदृढ़ होता है।" (228)

कृष्णगोपाल मिश्र के कथन के आलोक में यह कहा जा सकता है कि प्रथम दृष्टि में देखी गई कोई वस्तु अथवा कोई मनुष्य वैसा ही सिद्ध हो जैसा उसे आभासित किया गया था, हर स्थिति में यह आवश्यक नहीं होता। कुछ समय उसे देखने-परखने के बाद मनुष्य उसके विषय में अनुमान लगाता है कि व्यक्ति का स्वभाव ऐसा है या अमुक जीवत वस्तु की प्रकृति ऐसी है, तत्पश्चात् मनुष्य अपने विवेक द्वारा यह निर्णय लेता है कि अमुक व्यक्ति अथवा अमुक संस्था को सहयोग दिया जाना चाहिए या नहीं, यदि उसका विवेक इस संदर्भ में सकारात्मक संकेत देता है तो वह मन ही मन उस व्यक्ति अथवा संस्था का सहयोग करने का संकल्प करता है। तत्पश्चात् वह अपने पास उपलब्ध साधनों में से कुछ साधनों के प्रति त्याग भाव अपनाता हुआ उस व्यक्ति अथवा संस्था को समर्पित कर देता है। प्रतिबद्धता विश्वसनीयता का आधार है।

किसी भी कार्य के प्रति प्रतिबद्ध होकर ही मनुष्य विश्वसनीयता की कसौटी पर खरा प्रमाणित हो पाता है।

‘साड़ी विच नायिका कि नायिका बिच साड़ी’ व्यंग्य रचना में नारी जगत में आधुनिक पहनावे को लेकर बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा की ओर इशारा किया गया है। फिल्म जगत से संबद्ध नारी तो अर्थ कामना के लिए वस्त्र धारण करने में कृपणता दर्शाती है, परंतु वही प्रभाव समाज की अन्य स्त्रियों और कन्याओं पर पड़ते देख व्यंग्यकार चिंतित हो जाता है क्योंकि वह समाज का सजग नागरिक हैं। एक उन्नत समाज की अवस्थिति के लिए अनुशासन का एक मजबूत आधार आवश्यक है तभी समाज रूपी भवन का ढांचा सुरक्षित रहेगा।

हरीश नवल प्रस्तुत व्यंग्य रचना के माध्यम से स्त्रियों को मूल्यहीन स्थिति से बचने के लिए न केवल चेतावनी देते हैं अपितु समस्या के समाधान के लिए सुझाव भी देते हैं। उनके अनुसार स्त्री को साड़ी में स्वयं को आवृत रखना चाहिए क्योंकि यही साड़ी उसे समग्र रूप से सुरक्षित रखेगी। लज्जा स्त्री का आभूषण है। अपने शरीर को ढक कर रखने में ही उसके नारीत्व की शोभा है, गरिमा है। स्त्री दूसरों को आकर्षित करने के उद्देश्य से अंग प्रदर्शन करना चाहती है। हरीश नवल वर्तमान नारी को आश्वासन देते हैं कि कम वस्त्रों को धारण करके वह जो पाना चाहती है, उपयुक्त मात्रा में वस्त्र धारण करने पर उसे उसकी आशा से दुगुना मिलेगा, अर्थात् इस स्थिति में लोग उसकी ओर अधिक आकर्षित होंगे और उनकी आंखों में स्त्री के प्रति अधिक सम्मानजनक तथा प्रशंसात्मक भाव होंगे।

मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अलभ्य वस्तुओं की ओर अधिक आकृष्ट होता है। जो अप्राप्य हो, उसे पाने के लिए उसके अंतर्मन में इच्छा, अधिक प्रबल वेग से जागृत होती है। इस विषय में हरीश नवल वर्तमान नारी को अंग प्रदर्शन की ओर उन्मुख होते देख लिखते हैं- “तुम साड़ी में ही रहो नायिका ! यही तुम्हें तुम्हारा सार्थक देगी। इसके बिना जो तुम्हें मिले, इसके द्वारा तुम्हारी उम्मीद से भी दोगुना देगी। यह तुम्हें शोभित करेगी, यह तुम्हें भारत पुत्री के रूप में परिवर्तित करेगी।” (89-90)

हरीश नवल द्वारा लिखित पंक्तियां गागर में सागर भरने का मुहावरा सार्थक करती हैं। हरीश नवल, उपर्युक्त कथन के द्वारा , वर्तमान तथा भविष्य तक का साक्षात्कार करवा देते हैं। वर्तमान नारी को मर्यादित वेशभूषा धारण करने का परामर्श देते हुए, हरीश नवल एक परिष्कृत समाज का गठन करने के लिए प्रतिबद्ध दृष्टिगत होते हैं। वे वर्तमान नारी को विश्वास दिलाते हैं

कि साड़ी से सुसज्जित होकर वह पाश्चात्य सभ्यता के परिवेश से निकलकर भारतीय सभ्यता के परिवेश में पदार्पण करेगी और भारतीय छवि को धारण करेगी। यही वस्त्र-विन्यास उसकी भारतीयता को सुनिश्चित करेगा। हरीश नवल, वर्तमान स्त्री-जगत को सावधान करते हैं कि आज की नारी अपने सौंदर्य रूपी ऐश्वर्य को सुरक्षित रखे, संरक्षित रखे, उसे सर्व साधारण के अवलोकन के लिए सहज दर्शनीय न बनने दे।

व्यंग्य पर एक बहस पुस्तक में ओम प्रकाश गुप्त वर्तमान समय की नारी के कम होते वस्त्रों पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं- "लंगोटी और चादर की जगह ले ली है, मिनी चोली और मिनी स्कर्ट ने। सिर्फ स्कर्ट ही नहीं, अब तो साड़ी भी मिनी होने लगी है। लोग सीधे आदिम जातियों की ओर मुड़ गए हैं।" (35)

हरीश नवल अपनी व्यंग्य रचना में वर्तमान नारी को मर्यादित पहनावा पहनने के लिए प्रेरित करते हैं और इसके अंतर्गत उसकी श्रेष्ठता द्विगुणित होने का विश्वास दिलाते हैं परंतु ओम प्रकाश गुप्त तो स्पष्ट और निष्पक्ष तौर पर आधुनिक वस्त्र-विन्यास को आदिम-युग की वेशभूषा के समकक्ष ला खड़ा करते हैं।

भारतीय परंपरा में कन्या का पहनावा कैसा होता था, इस विषय में *कल्याण* के नारी अंक के अन्तर्गत 'भारतीय नारी' आलेख में कृष्णदत्त भारद्वाज कहते हैं- "जब तक उसके शरीर में कैशोर के लक्षणों का उदय नहीं होता, उसकी माता उसके परिधान पर विशेष ध्यान नहीं देती। वह घुटुन्ना पहनकर भी घूम फिर लेती है।" (112)

कन्या के शरीर में यौवन के संकेत चिन्हों के परिलक्षित होने पर कन्या का वस्त्र विन्यास परिवर्तित हो जाता था, इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कृष्णदत्त भारद्वाज आगे लिखते हैं- कैशोर के उदय के साथ माता उसके लिए ऐसे परिधान का आयोजन करती है जिससे उसके अंग प्रत्यग उघड़े न रहें।" (112)

उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भारतीय परंपरा में प्रत्येक उम्र में कैसे वस्त्र पहनने चाहिए, इसका भी मर्यादित विधान था, जिसका वर्तमान समय में लोप होता जा रहा है। बाल्यकाल के प्रांगण से निकलकर यौवन के प्रांगण में प्रविष्ट होती स्त्री का शारीरिक स्वरूप परिवर्तित होता है। विकृत मनोवृत्ति के धारक मनुष्यों की कुदृष्टि से स्त्री को रक्षित करने के

उद्देश्य से उसकी माता द्वारा ऐसे वस्तुओं का निर्धारण किया जाता था जिससे उसके अंग प्रत्यंग ढके रहें और किसी मनुष्य के मन में उसके प्रति कुत्सित भावना अंकुरित न हो।

प्रस्तुत व्यंग्य रचना में अनुशासन और आत्म-संयम सामाजिक मूल्यों का क्षरण दर्शाया गया है। स्वतंत्रता के नाम पर अनुशासनहीन बनना, मनुष्य के अंतर्मन में आत्म-संयम की कमी को दर्शाता है।

'जुड़ेगा कैसे फ्यूज' व्यंग्य रचना में हरीश नवल और उनकी पत्नी की मौसी के मध्य भारत के नामकरण को लेकर वार्तालाप दर्शाया गया है। मौसी उनसे प्रश्न करती है कि भारत और इंडिया क्या एक नहीं है? हरीश नवल अति नीति-निपुणता के साथ भारतीयों की परतंत्र मानसिकता पर व्यंग्य प्रहार करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी ब्रिटिश परिवेश को प्राथमिकता देने की पाश्चात्य मानसिकता की परतें खोलते हुए वे कहते हैं- "हमारे देश में जो लोग अंग्रेजी बोलते हैं, अंग्रेजी कपड़े पहनते हैं, जिनके बच्चे अंग्रेजी में पढ़ते हैं और जिनके तौर तरीके अंग्रेजों जैसे होते हैं- 'इंडिया' उनके लिए होता है।" (121)

इस व्यंग्य रचना के द्वारा लेखक इस सत्य की ओर संकेत करते हैं कि ब्रिटिश प्रभाव के अंतर्गत कुछ लोग उपनिवेशिक परिवेश में सांस ले रहे हैं। अगर देश के बच्चे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करेंगे, अंग्रेजी पहरावा पहनेंगे तो वे भारत के समाज को, भारतीय आचार-विचार को कैसे समझ पाएंगे? मनुष्य पर परिवेशगत संस्कारों का भी असर पड़ना सुनिश्चित है। भारतीय भाषा, भारतीय आचरण पद्धति तथा तथा भारतीय समाज के स्थान पर ब्रिटिश जीवन पद्धति और आचार-विचार भावी पीढ़ी को उपनिवेशवादिता की ओर ही धकेलेंगे। अंग्रेजी तौर तरीकों से जीने वाले बच्चे अपनी भारत भूमि से प्रेम कैसे कर पाएंगे ? उनके हृदय में मातृभूमि के प्रति प्रेम किस प्रकार हिलोरे ले जाएगा? हम भारतीय हैं, भारतीयता हमारी पहचान है। हम पहनावे से, बातचीत से, रहन-सहन के तौर- तरीकों से भारतीय लगाने चाहिए, इसी में हमारा गौरव निहित है। दूसरों का अंधानुकरण करते हुए मनुष्य न घर का रहता है न घाट का।

अंग्रेजी पढ़ना अच्छी बात है क्योंकि सभी भाषाएं समान रूप से आदरणीय हैं। भाषा मनुष्य के अंतर्मन में स्थित भावों को संप्रेषित करने का साधन है। अधिक से अधिक भाषाएं सीखी जानी चाहिए। सर्वाधिक प्रयोग में लाए जाने वाली भाषा राष्ट्रभाषा अथवा स्थानीय भाषा होनी चाहिए। अपने राष्ट्र के अंतर्गत प्रयुक्त की जाने वाली भाषाओं द्वारा ही हमारा अपने राष्ट्र से

जुड़ाव सुनिश्चित होगा। यह तथ्य भी स्वयं प्रमाणित है कि भारत में प्रत्येक प्रांत का अपना आंचलिक पहनावा है, उसके अंतर्गत भी विविधता देखने को मिलती है। जब स्वदेश में ही विभिन्न प्रकार के पहनावे की विस्तृत श्रृंखला पाई जाती हो तो अन्य देशों के परिधानों के प्रति आकृष्ट होने की आवश्यकता नहीं रह जाती। भारत अनेक वर्षों तक अंग्रेजी शासन के अधीन रहा; इसलिए अंग्रेजों के रहन-सहन का यत्किंचित प्रभाव पड़ना तो स्वाभाविक था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात यह प्रभाव न्यूनतम होना चाहिए था, परंतु प्रकट में यह सर्वथा विपरीत हो रहा है। इस तथ्य को *कल्याण* के हिंदू संस्कृति अंक में स्वामी कृष्णानंद लिखित आलेख- "विश्व में भारत की भूमिका" के आलोक में देखा जा सकता है- "राजनीतिक क्षेत्र में हम लोग निसंदेह स्वतंत्र हो गए, पर मानसिक दासत्व जो सबसे अधम दासत्व है, अभी तक यहां पूरे दल-बल के साथ मौजूद है।" (215)

मानसिक दासता के बंधन में बंधा मनुष्य कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य का मन ही उसके बंधन और मोक्ष का आधार है। यदि मनुष्य का मन किसी अन्य मनुष्य का, किसी विचारधारा का अथवा किसी शासन तंत्र का दासत्व स्वीकार कर लेता है तो फिर उसका उसके प्रभाव क्षेत्र से बाहर आना कठिन हो जाता है। पराधीन भारत में अंग्रेज क्योंकि शासन वर्ग से संबंधित थे अतः सामान्य भारतीय उन भारतीयों को अपने से श्रेष्ठतर समझते थे, जिन की भाषा, रहन सहन और पहनावा अंग्रेजों जैसा होता था। अंग्रेजों का अनुकरण भारतीय समाज के धनी और प्रशासनिक वर्ग द्वारा किया जाता था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा सामाजिक उत्सव पर आमंत्रित किए जाने पर, भारतीय लोग जैसा देश वैसा भेष के आधार पर उत्सव में जाने के लिए पाश्चात्य वेशभूषा का निर्धारण करने लगे। समय के साथ अंग्रेजी तौर तरीके उनकी दिनचर्या में भी शामिल होते गए।

विडंबना तो यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के अनेक वर्ष बीत जाने के बाद भी अंग्रेजों के प्रति भारतीय समाज का मोह-भंग नहीं हुआ। वर्तमान समय में भी अपने आपको आधुनिक कहने वाले भारतीय अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में अपने बालकों को पढ़ने भेजते हैं, उनके साथ धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलने का प्रयास करते हैं और अंग्रेजी तौर तरीके तथा अंग्रेजी पहरावा धारण करके समाज में सिर ऊंचा करके चलने का दंभ भरते हैं। पश्चिम का अंधानुकरण सामाजिक समरसता का अवरोधक बनता है। उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत, ब्रिटिश परिवेश के प्रति आकर्षित अभिभावकों के हृदय में, भारतीय परिधानों तथा भारतीय भाषाओं के प्रति आदर का भाव दृष्टिगत नहीं होता।

कमला प्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* पुस्तक में हरिशंकर परसाई ने अंग्रेजों की अंधभक्ति करने वाले भारतीयों के विषय में लिखा है- "स्वतंत्र होने के बाद भी हमारे कितने अफसरों और सैक्रेटरियों को पछतावा होता रहता था कि हाय रे, हम भारतीय क्यों हुए! अंग्रेज क्यों नहीं हो गए! ये सब तबीयत से, वेशभूषा से, विचारों से और आस्थाओं से अंग्रेज हैं।" (140)

हरिशंकर परसाई अपने कथन द्वारा भारतीयों की औपनिवेशिक प्रवृत्ति की ओर इशारा करते हैं कि स्वतंत्र होने के बाद भी अधिकांश भारतीयों के मन से अंग्रेजों की दासता का भाव नहीं मिटा, वे अभी भी अंग्रेजी तौर तरीकों को अपनाकर अपने आप को अन्य भारतीयों से विशिष्टतर दर्शाने का दिखावा करते हैं।

अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करना, पाश्चात्य वेशभूषा धारण करना और रहन-सहन की पाश्चात्य पद्धति को अपनाना एक भारतीय को उसके सामाजिक परिवेश से दूर कर सकता है। अन्य देशों की आचरण संबंधी सकारात्मक बातें अवश्य ग्रहण करनी चाहिए परंतु उन्हें अपनाते समय भारतीय समाज में निर्विहित बातों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

बिना सोचे समझे पश्चिमी देशों की विचारधारा को अपनाकर भारतीय मूल के लोग अपनी पहचान को संरक्षित नहीं रख पाएंगे। भारतीयता के भाव को अक्षुण्ण रखते हुए यदि पाश्चात्य विचारधारा के सकारात्मक पक्ष को अपनाया जाए तो कोई त्रुटि नहीं। भारतीय की पहचान तो उसकी भाषा, वेशभूषा और रहन-सहन की पद्धति द्वारा ही परिलक्षित होती है।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना में भी यही संदेश निहित है कि अंग्रेजी पाठशाला में पढ़ाए जाने पर, अंग्रेजी तौर तरीकों से अपने बच्चों का पालन किए जाने पर उन्हें भारतीय समाज से जोड़ा नहीं जा सकेगा। वर्तमान समय में युवा वर्ग का सामाजिक स्तर पर संपर्क सूत्र इसीलिए शिथिल हो रहा है क्यों कि वे रहते तो भारतीय परिवेश में हैं परंतु उनकी मानसिकता पाश्चात्य-विचारों से प्रेरित है। उनकी स्थिति वही है जो दो नावों पर सवार व्यक्ति की होती है।

राष्ट्र के नागरिकों का राष्ट्रीयता के भाव से संबद्ध होना आवश्यक है। यह तभी संभव होगा, जब प्रत्येक नागरिक राष्ट्र से, राष्ट्रभाषा से और वहां के सामाजिक परिवेश से जुड़ा रहेगा। समाज के साथ उसकी सूत्रबद्धता तभी सुनिश्चित होगी, जब सामाजिक संपर्क के अंतर्गत भावों की संप्रेषणीयता सुगम होगी। अंग्रेजी तौर-तरीके अपनाने वाले, अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में

शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थी, राष्ट्र की अन्य भाषाओं में शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों के साथ सहज भाव से जुड़ नहीं पाएंगे। संबद्धता सामाजिक मूल्य का क्षरण हुआ है। समाज के अंतर्गत संबद्धता को आवश्यक समझते हुए धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (प्राकृतिक मूल्य : भाग 1) में कृष्णगोपाल मिश्र लिखते हैं- "विचारों, भावों और कार्यों की गुणवत्ता पारस्परिक निकटता को सक्षम बनाती है और एक दूसरे से संबद्ध होने की क्षमता बढ़ती है।" (262)

कृष्णगोपाल मिश्र के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य समाज का महत्वपूर्ण घटक है। सभी मनुष्यों की पारस्परिक संबद्धता सामाजिक ढांचे को सुदृढ़ बनाती है। भावों का संप्रेषण संबद्धता का अनिवार्य तत्व है और यह तभी संभव होगा, जब सभी सामाजिक एक सुनिश्चित भाषा का प्रयोग करेंगे। ऐसी भाषा, जो सरलता से संप्रेषित हो सके। वह भाषा राष्ट्रभाषा भी हो सकती है और कोई प्रांतीय भाषा भी।

'पीपली और मैं' व्यंग्य रचना 'पीपली लाईव' फिल्म की कथावस्तु पर आधारित है। सामान्य लोग फिल्म देखते हैं मनोरंजनार्थ, और देख कर उससे निसृत रसों को अनुभव कर कुछ देर प्रभावित होते हैं, बाद में अपने-अपने कार्यों में व्यस्त होते जाते हैं, परंतु व्यंग्यकार अपने साहित्यिक कर्तव्य से विमुख नहीं होता। फिल्म में अन्नदाता किसान अपना कर्ज उतारने के लिए, अपने परिवार को ऋण मुक्त करने के लिए आत्मघात कर लेता है क्योंकि सरकार की तरफ से किसान के उत्तराधिकारी को एक लाख रुपये मिलने का प्रावधान है।

'पीपली लाईव' फिल्म देखने के बाद व्यंग्यकार के हृदय में जो करूणापूर्ण विचार उभरते हैं, जो झंझावात उठते हैं, उसकी अभिव्यक्ति करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "आज का किसान अपने जीवन यापन के लिए अर्थ नहीं कमा पा रहा। वह आत्महत्या करने पर मजबूर है।" (154) इस कथन के द्वारा हरीश नवल भारतीय किसान की विडंबनापूर्ण स्थिति वर्णित करते हैं। प्रकृति निर्मित हर जीव को जीवित रहने का अधिकार है। प्रकृति के प्रत्येक जीवत घटक को सरलता से जीवन जीने के साधन उपलब्ध होने चाहिए, ताकि ऐसी स्थिति न आने पाए कि विषम परिस्थितियों के आधिक्य से वह प्राणी जिंदगी से हार मान बैठे। हरीश नवल द्वारा कहा गया कथन जीवन के प्रति उनके उदार दृष्टिकोण को दर्शाता है। वे चाहते हैं कि मानव-समाज के अंतर्गत हर मानव की जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं पूर्ण हों, किसी

मानव को ऐसी स्थिति का सामना न करना पड़े, जिससे मजबूर होकर वह जीवन से पलायन कर जाए।

वर्तमान मनुष्य अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति कितना चेतनाहीन हो चुका है, इस विसंगति को उद्घाटित करते हुए हरीश नवल कहते हैं- "हमारे पास इतना कुछ होने पर हम और पाना, और खोंसना चाहते हैं। हम कितने निंदनीय हैं, हम जो धन्य हैं, दरअसल धिक्कार के लायक ही हैं।" (155) प्रस्तुत व्यंग्य के माध्यम से हरीश नवल मनुष्यता के अपकर्ष को दर्शाते हैं।

किसानों की दशा प्राचीन समय में भी बहुत बुरी थी। कबीर ने गरीब किसानों की दशा को बहुत निकट से देखा था, उनकी आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि वे निर्धारित कर तक नहीं दे पाते थे। गांव का ठाकुर खेत को मापते समय छल कपट का आश्रय लेता था। छोटे-छोटे किसान इनके भय से त्रस्त होकर पलायन कर जाते थे। रामकिशोर शर्मा *कबीर ग्रंथावली* पुस्तक में कबीर का कथन उद्धृत करते हुए किसानों की दीन-हीन दशा के विषय में लिखते हैं-

नगर एक तंहा जीवधर महता, बसै जु पंच किसानां।

नैनों, नकटू श्रवनूं, रसनूं यंद्री कह्या न मानै हो राम।

गाईं कु ठाकुर खेत कुनेपै.....

पांच किसानां भाजि गये हैं, जीवधर बाध्यो पारी हो राम। (17)

कबीर ने अप्रत्यक्ष रूप से आत्मसम्मान को मुख्य किसान और मनुष्य की पांचों ज्ञानेन्द्रियों को सहायक किसान माना है। मनुष्य अपनी आंखों द्वारा देखता है कि गांव के सभी किसान ठाकुर की जी-हजूरी करते हैं और नेत्रों द्वारा देखे गए अन्याय को भी अनदेखा कर देते हैं, कान अन्याय की बातों को सुनकर भी अनसुना कर देते हैं, जिह्वा अन्याय के विरुद्ध कुछ बोल नहीं पाती, और न ही नाक को अपने कटने का भय सताता है, अर्थात् गांव के ठाकुर द्वारा अपमानजनक बातें सुनकर भी नाक स्वयं को नीचा हुआ नहीं समझती और न ही त्वचा मारे-पीटे जाने पर कोई प्रतिरोध दर्शाती है। परिणाम स्वरूप किसान का आत्मसम्मान हताहत हो जाता है।

कबीर अप्रत्यक्ष रूप से यह कहना चाहते हैं कि व्यवस्था के विरुद्ध जाने का साहस किसी में नहीं होता क्योंकि मनुष्य का प्रतिरोध तो उसकी ज्ञानेंद्रियों द्वारा ही प्रदर्शित होता है, परंतु व्यवस्था के भय से मनुष्य की ज्ञानेंद्रियां कुंठित हो जाती हैं और अन्याय का चक्र अनवरत चलता रहता है।

शशि पांडे *चौपट नगरी अंधेर राजा* पुस्तक में किसानों की आर्थिक विवशता को किसान के माध्यम से वर्णित करते हुए लिखती हैं- "जब मैं बर्बाद होऊंगा तो भूखमरी तो जरूर फैल जाएगी लेकिन दावे के साथ कह सकता हूं कि राजनीति चमक जाएगी।" (23) किसान की आत्महत्या के विषय को लेकर नेता लोग राजनीति करते हैं। विपक्ष को सत्तासीन पक्ष पर आक्षेप लगाने का सुनहरी मौका मिल जाता है। जनसभाओं में, आकाशवाणी पर तथा दूरदर्शन के समाचार चैनलों पर विपक्ष के नेता सत्ता के विरुद्ध धुआंधार भाषण देते नजर आते हैं। सत्तासीन नेताओं की भर्त्सना करने में एड़ी-चोटी का जोर लगा देते हैं। जिस किसान का नाम साथ के गांव वाले भी नहीं जानते, मरणोपरांत उसका नाम समाचार पत्र की सुर्खियां बन जाता है। उसके विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए दूरदर्शन के अभिकर्ताओं का दल सक्रिय हो जाता है।

अखबार वाले और दूरदर्शन वाले भी हरकत में आ जाते हैं। उन लोगों को किसान या उसके परिवार से कोई सहानुभूति नहीं होती, वे केवल अपने चैनल की अथवा समाचार पत्र की प्रसिद्धि के लिए लालायित रहते हैं और मरने वाले किसान के परिवार वालों के सामने घड़ियाली आंसू बहाते हैं। इस विषय में किसान के कथन को वर्णित करती हुई शशि पांडे आगे लिखती हैं- "मुझ गरीब किसान की हत्या और आत्महत्या के बाद सफेदपोशों और मीडिया के मुंह में पानी आना शुरू हो जाता है।" (24)

मीडिया वाले किसान के परिवार से भांति-भांति के प्रश्न पूछकर अपने चैनल की टी-आर-पी बढ़ाते हैं, सिनेमा वाले किसान की कारूणिक स्थिति पर चलचित्र बनाकर जनसाधारण से करुणा खरीदते हैं और करोड़ों रुपया बटोरते हैं। यह सामाजिक मूल्यों के हनन की चरम सीमा है। किसान का जीवन संकट में देखकर समाज के ठेकेदार उस संकट के निराकरण का उपाय नहीं करते अपितु उसकी कारूणिक स्थिति को लोकरंजन का माध्यम बना, उसकी विवशता को सार्वजनिक बना देते हैं और अपना दो तरफा फायदा सुनिश्चित कर लेते हैं- प्रसिद्धि और समृद्धि।

परिवार की उगमगाती अर्थव्यवस्था के कारण आत्महत्या करने वाले किसानों के विषय में बताते हुए *भारत एक बाजार है* पुस्तक में विष्णु नागर भारत की चरम स्तर तक गिरती हुई न्याय व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं, "हमारे यहां सत्य और न्याय की विजय हो रही है तभी तो देश के डेढ़ करोड़ किसान आत्महत्या कर चुके हैं और आगे भी सैकड़ों इस कतार में लगे हैं।" (78)

ऊपर लिखे कथन के द्वारा विष्णु नागर किसानों की दयनीय स्थिति का अति संवेदना पूर्ण वर्णन करते हैं। कोई भी व्यक्ति मृत्यु को वरण करने के लिए शीघ्रता नहीं करता अपितु संसार में अधिक से अधिक समय तक जीवित रहना चाहता है। विष्णु नागर देश की न्याय व्यवस्था का अपकर्ष दर्शाते हुए कहते हैं कि असत्य और अन्याय की अतिरंजना किसानों के सम्मुख आत्महत्या के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं छोड़ती। समाज के जमाखोर लोग उससे बहुत कम कीमत पर अनाज खरीद लेते हैं। किसान को विवश होकर जमाखोरों की बात माननी पड़ती है यदि न माने तो अनाज खेतों में पड़ा-पड़ा सड़ जाएगा। जितनी कीमत जमाखोर देते हैं, उससे उसके पूरे परिवार का भरण पोषण भी नहीं होता और किसान कर्ज लेने पर विवश हो जाता है। कर्ज अदा न कर पाने की स्थिति में आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाता है।

कर्ज का बोझ न सह सकने के कारण किसानों की विडंबना पूर्ण स्थिति का वर्णन करते हुए सुरेश सेठ *नशतर की मुस्कान* पुस्तक में लिखते हैं- "भरपूर फसल उगाने के बाद किसान खुशी से चिल्लाया नहीं, और भी उदास हो गया। उसके गिर्द अफसरशाही, भ्रष्टाचार के अलंबरदारों और सत्ता संपदा के दलालों ने एक ऐसा चक्रव्यूह रच रखा है कि जिसे बेधने में वह हर बरस नाकाम रहता है।" (110)

उपर्युक्त कथन के द्वारा सुरेश सेठ इस सत्य की ओर संकेत कर रहे हैं कि अच्छी फसल होने के बाद भी किसान प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर पाता। उसकी लहलहाती फसल की ओर साहूकारों की, जमाखोरों की तथा कृषि विभाग की भ्रष्ट अफसरशाही की गिद्ध-दृष्टि जमी होती है। किसान की फसल पकने पर साहूकार निरंतर इस ताक में रहता है कि कब फसल कटे और कब वह किसान से अपना कर्ज ब्याज सहित वसूल करे। जमाखोर पूंजीपति इस लक्ष्य को लेकर किसान के इर्द-गिर्द मंडराता है कि वह अपनी फसल ओने-पौने दाम में उसे बेच दे ताकि जमाखोर उस फसल को अपने गोदामों में भरकर रख ले। इतना कुछ करने

के बाद भी किसान को कर्ज से मुक्ति नहीं मिलती। सारी फसल तो सूदखोर-साहूकार और पूंजीपति-जमाखोर के हवाले हो जाती है और किसान के पास पेट भरने के लिए कोई साधन नहीं बचता। इस स्थिति में वह या तो फिर कर्ज की चपेट में आ जाता है अथवा इस स्थिति से त्रस्त होकर आत्महत्या का रास्ता अपनाता है।

राष्ट्र के उच्च पदों पर आसीन नेताओं से प्रश्न करते हुए सुरेश सेठ आगे लिखते हैं-"भ्रष्ट कब जेल जाएगा? चोर बाजारी करने वाला, मिलावटखोर और जमाखोर कब इन मंडियों पर शासन करना बंद कर देंगे।" (110) वर्तमान में भी किसान अपनी समस्याओं के निदान के लिए प्रशासन के समक्ष आंदोलन कर रहे हैं। केंद्र सरकार और किसानों के मध्य नीतियों के निर्धारण के विषय में मतभेद का वातावरण बना हुआ है। किसान, सर्दी-गर्मी-वर्षा और कोरोना संकट का सामना करते हुए, अपने निश्चय पर अडिग खड़े हैं, दोनों पक्षों के मध्य निर्णय अभी विचाराधीन है।

सुरेश सेठ के स्वर में जमाखोरों, चोर बाजारियों, तथा भ्रष्ट लोगों के प्रति तीखा आक्रोश है और आक्रामक प्रतिक्रिया भी। वे अपनी बात बिना किसी लाग लपेट के निर्भीकता और निष्पक्षता के साथ कहते हैं। वे भली-भांति जानते हैं कि उनका स्पष्ट कथन पूंजीपति-वर्ग की आंखों की किरकिरी बन सकता है परंतु वे अपनी व्यंग्यधर्मिता से विचलित नहीं होते और अटल-अडिग भाव से अपने सामाजिक सरोकार को उल्लेखित करते हैं। सुरेश सेठ को उस समय की प्रतीक्षा है जब राष्ट्र में सुशासन स्थापित होगा, भ्रष्ट लोग सलाखों के पीछे होंगे और मेहनतकशों को न्याय मिलेगा। उन्हें सम्मानसहित जीने का अधिकार मिलेगा और वे भी सुखी और निश्चिंत जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

प्रस्तुत, व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल निष्पक्षता से स्वयं को धिक्कार योग्य बताते हुए मनुष्य के आत्म-केंद्रित व्यक्तित्व के प्रति घृणा का भाव दर्शाते हैं। वह मनुष्य, जिसके पास जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तो साधन हैं ही, जीवन को सुख-सुविधा से संपन्न करने के उपकरण भी हैं; फिर भी उसे संतुष्टि नहीं; वह अधिक से अधिक साधनों की प्राप्ति के लिए क्रियाशील रहता है। जब मनुष्य स्वहित के विषय में संलिप्तता का भाव त्याग कर परहित में संलग्न हो जाएगा, तो व्यंग्यकार का समाज-परिष्कार का ध्येय फलीभूत हो जाएगा। सुधरे हुए मानव के प्रति उसकी घृणा प्रेम में परिणित हो जाएगी।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत गवेषणा, चिंतनशीलता , संतुलन तथा निर्विकारता सामाजिक मूल्य क्षरित होते दिखाई देते हैं। समाज का प्रतिष्ठित व्यापारी- वर्ग, यह गवेषणा नहीं करता, कि किसानों की दयनीय स्थिति के परिप्रेक्ष्य में मूल कारण क्या है? कारण पता लगने पर ही समाधान खोजा जा सकता है, इसलिए उनके अंतर्मन में चिंतनशीलता का अभाव सिद्ध होता है। उनकी स्वार्थी वृत्ति उनके, मानसिक संतुलन को संदेहास्पद बनाती है। मानसिक असंतुलन निर्विकारिता के भाव का क्षरण करता है।

हरीश नवल के हृदय में भी व्यवस्था के प्रति, सामाजिक दायित्वों से पल्ला झाड़ने वाले लोगों के प्रति और इतना ही नहीं, स्वयं के प्रति भी आक्रोश के भाव हैं, क्योंकि हम सभी मनुष्य एक ही समाज के घटक हैं। एक मनुष्य को अर्थाभाव के कारण आत्महत्या करने पर विवश होते देख कर भी हमारा हृदय नहीं पसीजता! हमारी आत्मा क्रंदन नहीं करती! क्यों नहीं उसकी सहायता के लिए हमारे हाथ उठते? एक मनुष्य के जीवन से बढ़कर तो नहीं है किसी भी धन कुबेर का धन। जो लोग धन का संग्रह करके तिजोरियां भरने पर कमर कसे हुए हैं, उन्हें समझाते हुए वाग्देव द्वारा संपादित पुस्तक *रहीम दोहावली* में रहीम ने कहा है-

"तरुवर फल नहीं खात है, सरवर पियहि ना पानि,

कहि रहीम परकाज हित, संपति संचहि सुजानि।" (58)

रहीम के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि यदि पेड़ और सरोवर में इतना विवेक है कि वे ईश्वर प्रदत्त साधनों को प्राणी जगत के उपयोग के लिए समर्पित कर देते हैं फिर मनुष्य तो सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ कहलाता है, परंतु उसके कृत्य निष्कृष्टतम है। एक तरफ एक किसान अर्थ के अभाव में मृत्यु का आलिंगन करने को विवश है तो दूसरी तरफ अन्य लोगों के पास धन के जो अंबार लगे हैं उनका क्या प्रयोजन ?

'माफिया जिंदाबाद उर्फ साक्षात पुट्टु पेरूमल ' व्यंग्य रचना माफिया जिंदाबाद व्यंग्य कृति की प्रतिनिधि रचना है। इस व्यंग्य रचना में व्यंग्यकार व्यंग्य विधा पर अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त गुप्तचर और समीक्षक पुट्टु पेरूमल से साक्षात्कार करते हैं, माफिया शब्द का पारिभाषिक अर्थ है, आपराधिक संगठन या गिरोह। ऐसे संगठनों के कारण ही राष्ट्र के प्रशासन को गुप्तचर एजेंसियां नियुक्त करनी पड़ती है। वर्तमान समय में सर्वत्र माफिया फैला हुआ है।

पुट्टू पेरूमल से साक्षात्कार के दौरान हरीश नवल माफिया के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करते हैं। पुट्टू पेरूमल उन्हें बताते हैं कि माफिया अपराधी होते हुए भी अपराध क्षेत्र में नहीं माना जाता क्योंकि बड़े बड़े माफिया राजनीतिक तंत्र द्वारा संरक्षित होते हैं। कानून के नियमों के विरुद्ध जो कार्य है, उसे अपराध कहा जाता है। माफिया साम्राज्य का कानून क्या बिगाड़ सकता है, जब कानून के नियंता उसके साथ हैं। पुट्टू पेरूमल भारतीय मानसिकता के आधार पर पाप को अपराध से भी बड़ा मानते हैं। पापी को कानून सजा दे या न दे, वह अपराध के घेरे से बेशक बच जाए परंतु पापी की अंतरात्मा उसे उसके दुष्कृत्यों के लिए अवश्य धिक्कारती है। यही अपराध-बोध पापी मनुष्य के लिए सबसे भयंकर सजा सिद्ध होता है।

पापी की सजा अंतरात्मा से होती है। वर्तमान समय में लोगों ने अंतरात्मा की पुकार सुनना बंद कर दिया है इसलिए वे पाप करने से भी विचलित नहीं होते। हरीश नवल पुट्टू पेरूमल का कथन उद्धृत करते हुए लिखते हैं-"इधर देखने में आया है कि अंतरात्मा बहुत जल्द मर जाती है, जब कम श्रम करके गलत रास्ते अपनाकर, जीवन में भौतिक सुविधाएं ज्यादा मिलने लगे तब प्रायः अंतरात्मा जीवित नहीं रह पाती।" (61)

उपर्युक्त पंक्तियों में हरीश नवल द्वारा समृद्ध और कलात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। वर्तमान मनुष्य कम विनिमय में अधिक सुविधाएं अर्जित करने की लालसा मन में रखता है, परंतु परिश्रम करने से जी चुराता है। जीवन की मूलभूत सुविधाओं से भी श्रेष्ठतर सुविधाएं मिले, इसकी चाहत भी मन में रखता है, इसलिए उसे परिश्रम करना पड़ेगा, श्रम साधक बनना मनुष्य को कष्टदायक लगता है क्योंकि परिश्रमी पथिक का मार्ग दुर्गम होने के साथ-साथ लंबा भी होता है अतः मनुष्य छोटा मार्ग अपनाता है जो अधिकतर गलत होता है।

मनुष्य की अंतरात्मा उसे गलत मार्ग पर जाने से अवश्य रोकती है, सावधान करती है परंतु उसकी आवाज को अनसुनी कर कुतर्कों का अवलम्ब लेकर वह गलत राह पर अविरोध बढ़ता चला जाता है। पथभ्रष्ट व्यक्ति भ्रष्ट तरीकों से भौतिक साधन जुटाने का उपक्रम करता है तब वह अध्यवसाय से जी चुराने वाला, अनुशासनहीन, अनैतिक और सामाजिक मूल्यों का विध्वंसक बन जाता है। ऐसे अनेक व्यक्ति मिलकर 'माफिया' का निर्माण करते हैं।

माफिया के निर्माण में उपर्युक्त प्रकार के लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, इस विषय में हरीश नवल पुट्टू पेरूमल का कथन उद्धृत करते हुए आगे लिखते हैं-"अनीति, अनुशासनहीनता, परंपरा-भंगन, आस्था नष्टीकरण आदि तत्व जहां जिस संस्था में अधिक हों,

वह संस्था संगठित तौर पर इन्हीं के अनुसार कार्य करें-ऐसी संस्था 'माफिया' कहलाने लगती है।" (61)

माफिया के घटक सामाजिक मूल्यों के विखंडन का आधार इसीलिए बनते हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति समाज की इकाई है और माफिया अनेक व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो समाज और राष्ट्र के अहित का कारण बनता है केवल अपना स्वार्थ साधने के लिए। यदि मनुष्य अपनी अंतरात्मा की आवाज सुन सके तो वह पथ भ्रष्ट नहीं हो सकता।

पुरातन मानव और वर्तमान मानव की प्रवृत्ति में बहुत अंतर है। पुरातन मानव ने अपनी अद्भुत मेधा शक्ति के द्वारा प्रकृति के अनेक अदृश्य रहस्य अनावृत किए, अनेक ऐसे अन्वेषण किए जो सभी के लिए कल्याणकारी थे, जो सभी को प्रगति मार्ग पर अग्रसर करने में सक्षम थे। वर्तमान मानव सुविधाओं के अन्वेषण में लगा है, उसके प्रयास स्वमंगल के आग्रही हैं, लोकमंगल के नहीं, क्योंकि यदि यह सत्य न होता तो माफिया जैसी संस्थाओं का निर्माण भी न होता। वर्तमान द्वारा अतीत की संभावनाओं को निष्कर्ष में परिणित करने के प्रयासों का उल्लेख करते हुए भगवतशरण उपाध्याय *गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास* पुस्तक में लिखते हैं- "मानव ने पंचांग से काल को जीता, आकाश के प्रकाश पिण्डों की गति जानी, ऋतुओं के संक्रमण से प्राणों के आधार अन्नों को बोया-काटा, चक्र से, गति की संभावनाओं से, धरा पर वह चक्रवर्ती हुआ।" (2)

ऊपर दर्शाए गए परिदृश्य में मानव की जो उपलब्धियां दृष्टिगत हुईं, उन सब का प्रयोग समग्र मानव समाज के लिए था, किसी व्यक्ति विशेष अथवा किसी संगठन विशेष के लिए नहीं। माफिया जिंदाबाद व्यंग्य रचना में पुट्टू पेरूमल माफिया के निर्मित होने में ऐसे लोगों की भूमिका मानते हैं जो कम श्रम करके अधिक से अधिक भौतिक सुविधाएं जुटाना चाहते हैं, जिससे सामाजिक मूल्य श्रमशीलता का विखंडन हुआ है। हमारे देश में गाए जाने वाले गीत भी पुनीत और परिश्रम के मार्ग का अवलंबन करते हुए परहित में संलग्न रहने को प्रेरित करते रहे हैं। संघमित्रा सेवा संस्थान की प्रकाशिका *गीत गुंजन* पुस्तक में ईश्वर से यही वर मांगते हुए लिखती हैं-

मैं पुनीत पथ का राही बन, सुख संसृति खो, ले विद्युत कण,

जीवन ज्योति जलाऊं जल-जल, जलने का वर दे दो, चाहे जलन दाहमय हो। (62)

अर्थात् कवयित्री सांसारिक सुख खोकर भी कर्मठता रूपी विद्युत् कणों से अपने जीवन की ज्योति जलाना चाहती है, कर्मशील रहते हुए प्राणवान बने रहना चाहती है। वह स्वयं जलकर दूसरों को रोशनी देना चाहती है, स्वयं कष्ट सहकर दूसरों को सुख पहुंचाना चाहती है। वह कहती है कि हे ईश्वर! कर्मव्रती रहने का वरदान दो, चाहे उस स्थिति में कितनी भी कष्टकर अनुभूति हो, कितनी भी बाधाएं आएँ। यदि सभी मनुष्यों में ऐसी सद्भावना का संचार हो जाए तो माफिया बनने या बनाने की कोई आवश्यकता ही न रह जाए, इस प्रकार समग्र मानव समाज जीवन मूल्यों के निर्वहण के पथ पर अग्रसर हो जाए।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में सामाजिक पक्ष के अंतर्गत, विसंगतियों पर प्रहारात्मकता यह दर्शाती है कि हरीश नवल सामाजिक मूल्यों के विखंडन के प्रति समाज को जागरूक करने के लिए कटिबद्ध हैं। वे अपनी व्यंग्य रचनाओं में सायास मनोरंजन के तत्व समाविष्ट करने की चेष्टा नहीं करते, उनकी व्यंग्यात्मकता में करुणा का प्रभाव अधिक दृष्टिगत होता है, वे अपनी व्यंग्य रचनाओं के द्वारा पाठक के हृदय में करुणा की सृष्टि करने में सफल दृष्टिगत होते हैं।

भारत का इतिहास साक्षी है कि भारत के लोगों के अंतर्मन में छोटे-छोटे कीट पतंगों के प्रति भी सहिष्णुता का भाव विद्यमान रहता था, कालांतर में जो लुप्त होता गया। जैसे-जैसे मानव ने वैज्ञानिक विकास की ओर कदम बढ़ाए, वैसे वैसे ही वह प्राणी मात्र के प्रति कोमलता का व्यवहार करने वाली पारंपरिक वृत्ति को भूलता गया और अपने व्यवहार में यांत्रिकता का समावेश करता गया।

अजातशत्रु नाटक की भूमिका में जयशंकर प्रसाद भारत के ऐतिहासिक काल को गौतम बुध के काल से प्रारंभ हुआ मानते हैं। भारतीय परंपरा के अंतर्गत मनुष्य द्वारा प्रत्येक जीवधारी के प्रति समान व्यवहार करने की प्रवृत्ति वर्णित करते हुए जयशंकर प्रसाद ने लिखा है- “भारत के ऐतिहासिक काल का प्रारंभ धन्य है, जिसने संसार में पशु, कीट-पतंग से लेकर इंद्र तक के साम्यवाद की शंख ध्वनि की थी।” (5)

जयशंकर प्रसाद द्वारा दर्शाई गई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से पता चलता है कि भारत का इतिहास कितना गौरवशाली, समृद्ध परंपरा का वाहक और जीवन मूल्यों की गरिमा से मंडित था, जिसके अंतर्गत छोटे से छोटे जीवधारी से लेकर देवताओं के स्वामी तक को समान आदर भाव दिया जाता था।

उपर्युक्त कथन हमारे पुरातन ऐतिहासिक जीवन मूल्यों से समानता दर्शाता है, जिसके अंतर्गत पशु पक्षियों को भी देहधारी मानते हुए उनके प्रति भी संवेदनात्मक व्यवहार अपनाने के लिए प्रेरित किया गया है। वर्तमान संदर्भ में उस गौरवशाली जीवन मूल्यों से संबंधित, समग्र प्राणी समाज को समदर्शी दृष्टि से देखने वाली भावना का क्षरण हो रहा है और इस क्षरण को रोकने के लिए ही हरीश नवल खंडित होते सामाजिक मूल्यों को व्यंग्य संघात के माध्यम से दर्शाना चाहते हैं ताकि समाज को सुप्त अवस्था से जागृत किया जा सके। हरीश नवल के परवर्ती व्यंग्यकार राहुलदेव द्वारा संपादित *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* पुस्तक में पूरन सरमा लिखते हैं- “व्यंग्य को समाज सुधार का औजार माना गया है।” (39)

व्यंग्य, समाज सुधार के उद्देश्य को जनजीवन के समक्ष अवश्य रखता है परंतु उसके उद्देश्य की सफलता फिर भी मनुष्य मात्र की सुधरने की ईमानदार इच्छाशक्ति पर निर्भर करती है। इस संबंध में कमला प्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* पुस्तक में हरिशंकर परसाई ने लिखा है- “मैं सुधार के लिए नहीं, बल्कि बदलने के लिए लिखना चाहता हूँ यानी कोशिश करता हूँ। चेतना में हलचल आ जाए, कोई विसंगति नजर के सामने आ जाए, इतना काफी है। सुधरने वाला खुद अपनी चेतना से सुधरता है।” (353) यह कथन हरिशंकर परसाई के लेखन की चरम सीमा तक निष्पक्षता की ओर संकेत करता है। वे समाज सुधार का श्रेय भी नहीं लेना चाहते। उनके अनुसार व्यंग्य का समाज सुधार का उद्देश्य तब तक सफलता को प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक व्यक्ति, जो कि समाज की इकाई है, सुधार के लिए स्वयं अपने को तैयार नहीं करता।

व्यंग्य सामाजिक बुराइयों, विसंगतियों तथा भ्रष्टाचार के पदों को निसंदेह तार-तार करता है परंतु समाज में विसंगतियां और भी अधिक तीव्रता से सिर उठा रही है। व्यंग्यकारों के व्यंग्य प्रहार उतने प्रभावी सिद्ध नहीं हो पा रहे, जितने होने चाहिए, इस संदर्भ में राहुल देव द्वारा संपादित पुस्तक *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* पुस्तक में हरीश नवल के समकालीन व्यंग्यकार सुरेशकांत लिखते हैं- “आज व्यंग्यकार की कथनी और करनी में घोर विरोध नजर आता है, अपनी व्यंग्य रचनाओं में वह जिन विसंगतियों, विरूपताओं, अन्याय, अत्याचार, भेदभाव, पक्षपात का विरोध करता दिखता है, व्यवहार में उन्हीं का पोषण करता मिलता है।” (63)

सुरेशकांत के कथन के परिप्रेक्ष्य द्वारा यह स्पष्ट है कि व्यंग्यकार को सर्वप्रथम निस्वार्थ और प्रलोभन रहित होना पड़ेगा ताकि जिन विसंगतियों और अन्याय पूर्ण क्रियाओं के प्रति व्यंग्य-शरों का संधान कर रहा है, उनका लक्ष्य भेदन हो सके। वे सभी मान्यताएं और कथन खोखले और प्रभावहीन सिद्ध होते हैं यदि कहने वाला उनके विरुद्ध आचरण करता है। भ्रष्टाचार के विरोध में स्वर बुलंद करने वाले को समाज के समक्ष स्वयं सदाचार-व्रती होना पड़ेगा, तभी उसके संपर्क में रहने वाले लोग उसके लेखन अथवा उसके कथन के प्रति विश्वासी हो सकेंगे।

समाज में जो व्यक्ति समाज हित के लिए अपना कार्य संपादित करता है उसी का जीवन मूल्य आधारित कहा जाएगा। इस संबंध में अक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय *कल्याण* के हिंदू संस्कृति अंक में हिन्दु का सामाजिक और राष्ट्रीय आदर्श आलेख के अंतर्गत लिखते हैं-

कोई मनुष्य समाज के चाहे किसी स्तर में उत्पन्न क्यों न हुआ हो, चाहे किसी प्रकार की शक्ति और संपत्त का अधिकारी क्यों न हो.....इन सब के द्वारा उसके जीवन का मूल्य निर्धारित नहीं होता, उसकी मानवोचित मर्यादा का निरूपण नहीं हो सकता। वह किस प्रकार के आदर्श की सेवा में अपनी शक्ति और संपत्त को लगाता है, किस प्रकार की दृष्टि से समाज में औरों के साथ व्यवहार करता है-इन्हीं बातों पर उसके जीवन का मूल्य और मर्यादा निर्भर करती है।
(125)

उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि छोटे से छोटा कार्य भी यदि निस्वार्थ भावना से किया जाए तो वह अति मूल्यवान होता है, जिस व्यक्ति के कार्य संपादन के परिप्रेक्ष्य में सेवा भावना निहित रहती है, समष्टि का कल्याण निहित रहता है, वह व्यक्ति जीवन मूल्यों से संयोजित माना जाता है।

अतुल धन-दौलत के स्वामी होने पर भी यदि मनुष्य का जीवन, जीवन मूल्यों से संचालित नहीं है तो अथाह धन-संपत्ति और वैभव से संपन्न होना भी व्यर्थ है। पृथ्वी प्राणी-जगत के जीवन का आधार है, पृथ्वी की सतह पर ही वनस्पति-जगत फलता फूलता है, जिसके द्वारा जीव-जगत को जीवन का निर्वाह करने के साधन प्राप्त होते हैं। धरती मनुष्य को धन, वैभव और हर प्रकार का सुख प्रदान करती है। प्राणी-जगत का अस्तित्व पृथ्वी द्वारा प्रदत्त साधनों द्वारा ही सुरक्षित और परिचालित है। महान शक्ति से संपन्न होने के बावजूद पृथ्वी अनुशासनबद्धता का त्याग नहीं करती, वह अपनी धुरी के गिर्द 24 घंटे में एक चक्कर लगाती

है, जिसकी वजह से रात और दिन बनते हैं। सूर्य के गिर्द यह 365 दिन 6 घण्टे 48 मिनट और 45.51 सेकेंड में एक चक्कर पूरा करती है, जिससे ऋतु-चक्र का निर्माण होता है। पृथ्वी की यही मर्यादा जीव जगत के सुव्यवस्थित जीवन को सुनिश्चित करती है। मनुष्य पृथ्वी पर बसने वाले असंख्य जीवों में से एक है अतः पृथ्वी पर उसका अस्तित्व केवल एक इकाई के रूप में विद्यमान है। पृथ्वी सभी जीवों की आधार होते हुए भी यदि अपनी मर्यादा नहीं त्यागती तो मनुष्य को अपनी लघुता का ध्यान रखते हुए अपना जीवन मर्यादित रखना चाहिए। मनुष्य के जीवन के केंद्र में जीवन मूल्यों का निर्वहण होना चाहिए न कि स्वार्थ सिद्धि।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में शौर्य, मैत्री, संवेदनशीलता, स्वास्थ्य, कर्तव्यपरायणता, शरीर-रक्षा, अनासक्ति, सुख, निस्पृहता, तृप्ति, प्रमोद, कार्यकुशलता, स्वावलंबन, अध्यवसाय, प्रेम, गार्हस्थ्य, उपकारशीलता, करुणा, कोमलता, निर्मलता, सदाचार, प्रसन्नता, विश्वास, उर्ध्व चिंतन, सद्भवहार, व्रत पालन, संबद्धता, स्थिरचित्तता, सूझबूझ, पारिवारिकता, आत्मीयता, नम्रता, सम्मान, शिष्टाचार, मातृप्रेम, कृतज्ञता, आशीष, संतोष, अपनापन, सहृदयता, औचित्य, सबलता, स्फूर्ति, आत्मनिरीक्षण, विवेक, सर्वहितकारिता, अनुशासन, आत्म संयम, गवेषणा तथा चिंतनशीलता, सामाजिक मूल्यों का क्षरण दिखाया गया है। प्रकृति निर्मित जीवधारियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है, प्राकृतिक मूल्यों को वैयक्तिक मूल्यों से जोड़ा गया है, तथा व्यक्ति परिवार और समाज का महत्वपूर्ण घटक है इसलिए वैयक्तिक और पारिवारिक मूल्य भी सामाजिक मूल्यों के साथ संश्लिष्ट किए गए हैं।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य का, सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में विश्लेषण करने के पश्चात यह स्पष्ट है कि 'अपने मुंह मियां मिट्टू' व्यंग्य रचना के अंतर्गत वैयक्तिक मूल्य, शौर्य का हनन दर्शाया गया है, क्योंकि मनुष्य यदि अपने शौर्य का प्रयोग, समाज कल्याण के लिए करता है, तो यह शौर्य प्रदर्शन का सकारात्मक रूप है। यदि मानव द्वारा शौर्य का प्रदर्शन सामान्य - जन को प्रताड़ित करने के उद्देश्य से किया जाता है तो यह नकारात्मक पक्ष है। 'विक्रमार्क, बुढ़िया और सराय रोहिल्ला' व्यंग्य रचना के अंतर्गत पारिवारिक मूल्यों का ध्वस्तीकरण हुआ है, क्योंकि इस व्यंग्य रचना के अंतर्गत संतान द्वारा मां का तिरस्कार दर्शाया गया है। मां, हर संतान द्वारा आदर की अधिकारिणी है। संतान की हृदय में मां के समर्पण के प्रति कृतज्ञता का भाव होना चाहिए। बुढ़िया के पुत्र द्वारा मां की दवाई तक बंद किए जाना, चरम सीमा तक पारिवारिक मूल्यों के क्षरण का संकेतक है।

सभी व्यंग्य रचनाओं के अंतर्गत, उपर्युक्त मूल्य ध्वस्त होते दर्शाए गए हैं। सभी मूल्यों का निर्वहण, मानव के अस्तित्व के लिए, उसके व्यक्तित्व के लिए, मानवता के स्थायित्व के लिए आवश्यक है। हरीश नवल की विभिन्न व्यंग्य पुस्तकों के अंतर्गत, पुनरावृत्ति के दोष से बचने के लिए अलग-अलग सामाजिक मूल्य रेखांकित किए गए हैं, इनमें से अनेक मूल्य अन्य व्यंग्य पुस्तकों में भी चिन्हित हुए हैं। उदाहरण के लिए 'निस्पृहता' सामाजिक मूल्य *दिल्ली चढ़ी पहाड़* पुस्तक के अंतर्गत, 'दिल्ली दिल वालों की' व्यंग्य रचना में रेखांकित किया गया है तथा *वाया पेरिस आया गांधीवाद* पुस्तक के अंतर्गत, 'डॉलर भाग्य विधाता' व्यंग्य रचना में भी चिन्हित हुआ है। इसी प्रकार 'संबद्धता' सामाजिक मूल्य *वाया पेरिस आया गांधीवाद* पुस्तक की व्यंग्य रचना डॉलर भाग्य विधाता के अंतर्गत भी लिपिबद्ध किया गया है, तथा *माफिया जिंदाबाद* पुस्तक के अंतर्गत, 'अल्ट्रा मॉडर्न होली डॉट कॉम' व्यंग्य रचना के अंतर्गत भी लिखा गया है। 'संवेदनशीलता' सामाजिक मूल्य *बागपत के खरबूजे* पुस्तक के अंतर्गत, 'बाढ़ में एक संवाद कथा...' व्यंग्य रचना में रेखांकित की गई, और *पीली छत पर काला निशान* पुस्तक के अंतर्गत, 'मिलना एक अदद ज्ञानपीठ' व्यंग्य रचना के अंतर्गत भी लिपिबद्ध की गई है। विभिन्न व्यंग्य रचनाओं के अंतर्गत, आलोचनात्मक शोध प्रविधि, तुलनात्मक शोध प्रविधि, ऐतिहासिक शोध प्रविधि तथा मनोविश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का यथा स्थान प्रयोग किया गया है।

इस अध्याय में हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में विसंगति निवारण क्षमता का प्रामाणिक आकलन किया गया है। हरीश नवल ने इस अध्याय के अंतर्गत, ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलने के परिप्रेक्ष्य में एक व्यंग्य रचना रचित की है। अनेक व्यंग्यकारों द्वारा प्रेषित पांडुलिपियों में से, हरीश नवल की पुस्तक बागपत के खरबूजे को सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य कृति चयनित करना, इस तथ्य का प्रमाण है कि हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में विसंगति निवारक क्षमता सर्वाधिक है, क्योंकि व्यंग्य लेखन विसंगतियों की निवृत्ति के लिए किया जाता है। सामाजिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता, मनुष्य के पारिवारिक और सामाजिक संबंधों के सूत्र सुदृढ़ करती है। वर्तमान समय में परिवार टूट रहे हैं, सामाजिक संबंधों में शिथिलता दृष्टिगत हो रही है, हरीश नवल, व्यंग्य प्रहार के द्वारा सामाजिक मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयासरत हैं।

हरीश नवल ने व्यंग्य के माध्यम से, सामाजिक परिवेश की विसंगतियों के निराकरण की दिशा में कदम उठाया है। व्यंग्य के सामाजिक सरोकार होते हैं, व्यंग्य लेखन को सामाजिक कर्म बताते हुए सुरेश आचार्य ने *व्यंग्य का समाजदर्शन* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "व्यंग्य

साहित्य देश के असंख्य लोगों को आशा, आकांक्षा और संभावनाएं देने के लिए किया जाने वाला सामाजिक कर्म है।" (8)

समाज के भीतर पनप रही असामाजिक गतिविधियां, व्यंग्य-बीज के अंकुरण के लिए उर्वर भूमि तैयार करती हैं। सुरेश आचार्य ने व्यंग्य साहित्य को संभावनाएं देने वाला सामाजिक कर्म इसलिए कहा है क्योंकि व्यंग्य, समाज में जागरूकता लाने का कार्य करता है। सामान्य व्यक्ति में व्यंग्यकार जैसा खरी-खरी बात कहने का साहस नहीं होता, समाज की विकृतियों के प्रति सजग दृष्टि रखने के बावजूद वह विसंगतियों के विरोध में सर उठाने का खतरा मोल नहीं ले पाता। व्यंग्य-लेखन समाज को इस दिशा में आशान्वित अवश्य करता है कि समाज में कुछ व्यक्ति पर्याप्त रूप से सजग, निर्भीक और समाज के परिष्कृत रूप की स्थापना के प्रति प्रयासरत हैं। सामान्य-जन के अंतर्मन में समाज-सुधार की आशा क्षीण न होने पाए, इसके लिए व्यंग्य लेखन, संभावनाओं की पृष्ठभूमि तैयार करता है। शेरजंग गर्ग द्वारा संपादित पुस्तक *व्यंग्य वैविध्य* में धर्मस्वरूप गुप्त ने "सामाजिक बुराइयों पर कुठाराघात" आलेख के अंतर्गत, व्यंग्यकार के उच्चतम सामाजिक सरोकारों को वर्णित करते हुए लिखा है- "व्यंग्यकार अपनी रचनाधर्मिता से, व्यवस्था की विद्रूपताओं, विसंगतियों को उजागर करता है, तथा वह सामाजिक प्रहरी बनकर समाज में सुधारात्मक प्रवृत्ति लाने का प्रयास करता है।" (70)

उपर्युक्त कथन के आलोक में तथा व्यंग्य कथन कहने के परिप्रेक्ष्य में, व्यंग्यकार का समाज सुधार का उद्देश्य निहित है। समाज का प्रहरी असंदिग्ध रूप से, समाज के रक्षण के प्रति कटिबद्ध होगा। धर्मपाल गुप्त ने उपर्युक्त कथन सभी व्यंग्यकारों की व्यंग्यधर्मिता के विषय में लिखा है। जिससे हरीश नवल स्वतः ही सामाजिक सरोकारों के प्रति, प्रतिबद्ध सिद्ध हो जाते हैं।

चतुर्थ अध्याय-

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में राष्ट्रीय मूल्य

ऐसा मानव समूह, जिसकी समान संस्कृति, समान अधिकार और समान कर्तव्य हों, वह मानव-समुदाय जिस भौगोलिक वृत्त के अंतर्गत निवास करता है, वह भूखंड विशेष, राष्ट्र कहलाता है। राष्ट्र की परिधि में रहने वाले नागरिक अपनी समग्र शक्ति के साथ उसके उत्कर्ष हेतु उद्योगरत रहें, उसकी आन के लिए निस्वार्थ भाव से सर्वस्व समर्पित करने को तत्पर रहें तथा सभी के आचरण द्वारा राष्ट्र के प्रति भावात्मक एकता परिलक्षित हो, ऐसे नागरिकों को राष्ट्रीय मूल्यों से सम्प्राणित कहा जा सकता है। राष्ट्र की सर्वांगीण सुरक्षा की रणनीति राष्ट्र के राजतन्त्र द्वारा निर्धारित होती है, इसलिए राष्ट्र को राजनीतिक इकाई भी कहा जाता है।

किसी भूखंड विशेष को राष्ट्र बनने में शताब्दियां लग जाती हैं। जब तक वहां बसने वाला जनसमूह उससे भावनात्मक लगाव नहीं रखता, जब तक वह उसकी अस्मिता के लिए अपने प्राण तक निछावर करने के लिए तत्पर नहीं हो जाता, जब तक वहां के नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों में समानता का भाव नहीं आ जाता, तब तक वह भूखंड राष्ट्र के नाम से अभिहित नहीं हो सकता। राष्ट्र से संबंधित किसी भी क्षेत्र में, चाहे वह आर्थिक हो, प्रशासनिक हो, शैक्षणिक अथवा साहित्यिक हो, अवहेलना का भाव राष्ट्रीय मूल्यों के क्षरण का संकेतक है। वर्तमान समय में मनुष्य इतना स्वार्थ केंद्रित हो गया है कि वह अपने हित के लिए राष्ट्रीय हित को भी तिरस्कृत करने में संकोच नहीं करता।

हरीश नवल अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय मूल्यों के क्षरण पर प्रहार करते दृष्टिगत होते हैं। जैसा कि साहित्य की परिभाषा में भी कहा गया है कि साहित्य समाज का दर्पण है, समाज में यदि जीवन मूल्यों का हनन होता दिखाई देगा तो प्रत्येक विधा का रचनाकार अपनी रचनाओं के द्वारा जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए प्रयत्नशील दिखाई देगा।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में कर्तव्यपरायणता, प्रियवादिता, राष्ट्रभाषा-प्रेम, मौलिकता, अतीत गौरव, राष्ट्र निर्माण, बलिदान, राष्ट्रीय विकास, विकासप्रियता, रचनात्मकता, तन्मयता, चारुता, सौंदर्य बोध, राष्ट्र-सुरक्षा, सुराज, मंगलकामना, भलाई, परहित, राष्ट्र निर्माण, मनुष्यत्व, मनोविनोद, करुणा, स्वाधीनता, उत्तुंगता, निष्कलुषता, राष्ट्रीय एकता, उत्सर्ग, विश्व बंधुत्व, रक्षण, परमार्थ-दृष्टि तथा लोकप्रियता क्षरित होते राष्ट्रीय मूल्यों की ओर संकेत किया गया है।

4.1 कर्तव्यपरायणता, प्रियवादिता, राष्ट्रभाषा-प्रेम तथा मौलिकता। इन राष्ट्रीय मूल्यों का क्षरण, हरीश नवल द्वारा रचित पुस्तक *बागपत के खरबूजे* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

'मुसीबतों के पहाड़ और एक अदद अभिनेता' व्यंग्य रचना में हरीश नवल राष्ट्र की पुलिस व्यवस्था पर व्यंग्य-शरों का संधान करते हैं। भारत में पुलिस अपनी कर्तव्यपरायणता दर्शाने हेतु आम आदमी को भी अपराधी समझकर पकड़ लेती है और कभी-कभी बड़े-बड़े शातिर अपराधी भी उनकी नाक के नीचे से सुरक्षित निकल जाते हैं।

प्रस्तुत व्यंग्य रचना का मुख्य पात्र एक नाटक में अभिनय करने के उपरांत घर लौटने को उद्यत होता है। रात अधिक होने के कारण वह नाटक की वेशभूषा में ही घर जाने की सोचता है क्योंकि विलंब होने से आखिरी बस के निकल जाने का भय है हरीश नवल के शब्दों में, "यदि मेकअप साफ करता तो जब तक घर पहुंचता, मेरी बीवी तलाक के कागजों पर हस्ताक्षर कर चुकी होती।" (69)

उपर्युक्त कथन के परिपेक्ष्य में कहा जा सकता है कि व्यंग्य रचना का मुख्य पात्र घर पहुंचने की शीघ्रता में था। नाटक में भाग लेने के कारण रात गहराती जा रही थी, अंतिम बस निकल जाने का भी डर था, घर देर से पहुंचने की स्थिति में पत्नी के अत्यधिक रूष्ट हो जाने का भी भय था, इसलिए उसने अपना मेकअप भी नहीं उतारा। वह नाटक के पात्र का वेश धारण किए ही, बस पकड़ने के लिए दौड़ पड़ा। अभिनेता के बस पकड़ने से पूर्व ही हवलदार और सिपाही उसे पकड़ लेते हैं। वे उसे किसी अपराधी संगठन का सदस्य समझ कर पूछताछ करते हैं। अभिनेता की स्थिति उस समय 'आसमान से गिरा खजूर पर अटका' जैसी हो जाती है, जब उसकी नकली मूछ गिर जाती है। हवलदार का संदेह और भी पुख्ता हो जाता है। कोतवाली में जाकर वे उस अभिनेता का जो हाल करते हैं, उसे अभिनेता के शब्दों में वर्णित करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- "वे दोनों मुझे पकड़कर कोतवाली ले गए, वहां जो मेरा हाल हुआ वह न जाने तो बेहतर है।" (70)

प्रस्तुत व्यंग्य रचना के अंतर्गत राष्ट्र के एक नागरिक की अंतर्व्यथा छिपी हुई है। पुलिस कर्मचारी सामान्य आदमी को अपने पक्ष में बोलने का अवसर दिए बिना उसे प्रताड़ित करना प्रारंभ कर देते हैं। उनके इसी रवैये के कारण कई बार निरपराध भी यातना का शिकार हो जाता है, जिस प्रकार व्यंग्य रचना का यह पात्र हुआ।

ऊपर लिखित कथन के द्वारा व्यंग्यकार इस सत्य को भी उद्घाटित करना चाहता है कि राष्ट्र में कितनी ही ऐसी वारदातें हो जाती हैं कि अपराधी, अपराध करके फरार हो जाते हैं। सांप निकल जाता है, पुलिस लकीर पीटती रह जाती है। हरीश नवल उपर्युक्त व्यंग्य रचना के

द्वारा राष्ट्र के जिम्मेवार कर्मचारियों की कर्तव्य निष्ठा के प्रति अवहेलना का उल्लेख करते हैं जो राष्ट्रीय मूल्यों के निर्वहण के प्रति सजगता पूर्ण व्यवहार नहीं करते। अंतिम पंक्ति में वक्रता द्वारा व्यंग्यकार पाठकों को इस तथ्य से भी अवगत करा देता है कि व्यंग्य रचना का मुख्य पात्र पुलिस विभाग द्वारा बुरी तरह से प्रताड़ित हुआ। उपर्युक्त कथन द्वारा पुलिस अधिकारियों की कर्तव्यहीनता का भाव प्रकट होता है। पुलिस अधिकारियों द्वारा कर्तव्यपरायणता, राष्ट्रीय मूल्य का हनन दर्शाया गया है। अभिनेता को प्रताड़ित करते हुए, सिपाही और हवलदार द्वारा खरे-खोटे शब्दों का उच्चारण, प्रियवादिता राष्ट्रीय मूल्य के ध्वस्तीकरण का संकेतक है।

व्यंग्य के रंग पुस्तक में हरीश नवल के समकालीन व्यंग्यकार अशोक गुजराती पुलिस विभाग के भ्रष्ट व्यवहार पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं- "एक पुलिस अधिकारी था। मुठभेड़ विशेषज्ञ। नाम था दयानायक, लेकिन दयाविहीन नायक था। ढूँढ ढूँढ कर बदमाशों को मौत के घाट उतारता था...। जलने वाले कहां नहीं होते, उसकी बेनामी संपत्ति पर जनहित याचिका दायर कर दी।" (81)

अशोक गुजराती अपने तीक्ष्ण व्यंग्य प्रहार से पुलिस अधिकारी की दबंग प्रवृत्ति को भी दर्शाते हैं और साथ-साथ उनके द्वारा भ्रष्ट तरीकों से संग्रह की हुई संपत्ति का भी उल्लेख करते हैं। उसे दया विहीन बताते समय व्यंग्यकार इस सत्य को उद्घाटित करता है कि जब राष्ट्र के रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं जब न्याय करने का प्रण करने वाले अन्यायी बन जाते हैं; जब जनता का कष्ट हरण करने वाले प्रशासन तंत्र के घटक दया का त्याग करते हुए दयाहीन बन जाते हैं। तब राष्ट्रीय मूल्यों के मजबूत स्तंभ भरभरा कर गिर जाते हैं।

पुलिस विभाग द्वारा शतवार्षिकी समारोह मनाए जाने के अवसर पर हरीश नवल के पूर्ववर्ती व्यंग्यकार, व्यंग्य प्रणेता हरिशंकर परसाई ने पुलिस प्रशासन को चोर, उच्चको और लुटेरों का संरक्षक बताया है। उपर्युक्त समारोह के दौरान वे सुझाव देते हैं कि उस इलाके के चोर- उच्चके तथा लुटेरे पुलिस को अभिनंदन-ग्रंथ उपहार स्वरूप प्रदान करें। चोरों और लुटेरों के समूह तथा पुलिस के मध्य जो वार्तालाप के बिंदु होने चाहिए, उनके द्वारा पुलिस प्रशासन का अपकर्ष दर्शाते हुए हरिशंकर परसाई ने कमला प्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित पुस्तक *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* में लिखा है- "पिछले वर्षों में अपराधी को छोड़ देने के तरीकों में क्या विकास हुआ है?..... जिसने अपराध किया ही नहीं है उससे अपराध कबूल करवाने के तरीके, एक शताब्दी में कितने आगे बढ़ गए हैं?" (124)

हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के अपकर्ष साधन का प्रयोग करते हुए व्यंग्य प्रहार किया है। अंतिम पंक्ति में उनके द्वारा कहा गया वाक्य हरीश नवल की व्यंग्य रचना से साम्य भाव रखता है, क्योंकि उसके अंतर्गत भी पुलिस निरपराध व्यक्ति को ही गिरफ्तार करती है और हवालात में भीषण यंत्रणाएं देती है। जिससे परिकल्पित किया जा सकता है कि पुलिस कर्मचारियों का उद्देश्य यही था कि वह व्यक्ति पुलिस की पिटाई से बचने के लिए स्वयं को अपराधी समझ ले, ताकि पुलिस वाले अपनी पीठ ठोक कर गर्वित हो सकें और मन ही मन फूल कर कुप्पा हो सकें कि आखिरकार अपराधी उनके समक्ष घुटने टेक ही देता है।

हरीश नवल के समकालीन व्यंग्यकार गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा संपादित पुस्तक *पुलिस व्यवस्था पर व्यंग्य* में गिरिराज शरण अग्रवाल पुलिस प्रशिक्षण देने वाले अधिकारी से वार्तालाप करते हुए उनका असली रूप जनता के सामने लाते हैं, वे थानेदार से पूछते हैं- "कौन-कौन से मुद्दे हैं, जिनमें पुलिस को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है? पहला मुद्दा तो प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा का है, थानेदार साहब ने बताया।" (21)

व्यंग्यकार पूछता है कि आम लोगों के प्रजातांत्रिक अधिकारों की रक्षा तो पुलिस विभाग द्वारा की नहीं जाती, थानेदार के प्रत्युत्तर को उद्धृत करते हुए गिरिराज शरण अग्रवाल आगे लिखते हैं- "जिस देश का आम नागरिक अपने अधिकार ही नहीं जानता समझता, उसकी रक्षा की बात ही कहां पैदा होती है! और फिर सरकार भी तो आखिर जनता का ही प्रतिनिधित्व करती है।" (22)

गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा कहा गया कथन इस तथ्य का उद्घाटन करने में पर्याप्त रूप से सक्षम है कि राष्ट्र के प्रशासनिक तत्व भी चढ़ते सूरज को सलाम करते हैं। सरकार के अधिकारों की रक्षा करना-अर्थात् नेता वर्ग के हितों की सुरक्षा करने में संलग्न रहना। जिसकी लाठी उसकी भैंस-इस मुहावरे की तर्ज पर पुलिस अधिकारी उन नेता गणों की खुशामद किया करते हैं, जो वर्तमान में सत्ता पर आसीन होते हैं। सत्तासीन नेताओं की जी-हजूरी वे इसलिए करते हैं, ताकि नेताओं के कुशल नेतृत्व में वे जनता के मध्य अपना दबदबा बनाए रखें। आम नागरिक के जीवन की सुरक्षा से इन्हें कोई सरोकार नहीं होता। ये प्रशासनिक लोग जड़ की नहीं, टहनी की हिफाजत करने में जी- जान से जुटे होते हैं।

पुलिस विभाग की कर्तव्य परायणता पर व्यंग्य करते हुए *भारत एक बाजार है* पुस्तक में विष्णु नागर लिखते हैं- "सत्य और न्याय की सेवा के महान उद्देश्य से संचालित होकर ही तो

पुलिस वाले आफ ड्यूटी में भी खाकी वर्दी में रहते हैं और नींद तक में खाकी वर्दी पहनना नहीं छोड़ते। सत्य और न्याय की विजय के लिए ही वह अपराधियों के हित में सबूत मिटाते हैं और प्रमाण नष्ट करते हैं।" (78)

विष्णु नागर द्वारा कहे गए कथन के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि राष्ट्र के प्रशासनिक वर्ग पर ही न्याय व्यवस्था का स्तंभ टिका होता है और राष्ट्र की अनुशासनात्मकता को भी प्रशासनिक वर्ग ही सुनिश्चित करता है। यदि पुलिस प्रशासन इसी प्रकार गैर जिम्मेदार होकर निरपराधी को दंडित और अपराधी को प्रश्रय प्रदान करता रहेगा तो राष्ट्रीय कार्यों के निर्वहण में अनिश्चितता दृष्टिगत होती रहेगी और सामान्य नागरिक स्वयं को सुरक्षित अनुभव नहीं करेगा। उपर्युक्त कथन के माध्यम से विष्णु नागर पुलिस प्रशासन के अपकर्ष को दर्शाते हैं। उनका कटाक्ष पुलिस विभाग की कर्तव्यहीनता की ओर संकेत करता है। अपराधी के हित में सबूत मिटाना तथा प्रमाणों को नष्ट करना, राष्ट्र के अंतर्गत अपराधीकरण को बढ़ावा देने के पक्ष में उठाया गया अनुचित कदम है।

कालिदास के काल के अंतर्गत दंड नीति वर्णित करते हुए भगवतशरण उपाध्याय *कालिदास का भारत* पुस्तक में कहते हैं- "शासन की कला दंड की नीति थी। इसलिए राज व्यवस्था का सार तत्व दंड नियम ही था।..... एक निश्चित तथा पूर्ण कानून के अनुसार दंड-विधान होता था, जिसमें अपराध का, गुरुता के विचार से वर्गीकरण होता था।" (206)

कालिदास के काल के अंतर्गत, दंड नीति और व्यंग्य रचना में वर्णित दंडनीति में पर्याप्त वैषम्य दृष्टिगत होता है। उस काल के अंतर्गत, अपराध के घनत्व को देखते हुए दंड का निर्धारण होता था दंड देते समय इस तथ्य पर गौर किया जाता था कि अपराधी ने अपराध किसके विरुद्ध किया है? किसी व्यक्ति के विरुद्ध? समाज के विरुद्ध? अथवा समग्र राष्ट्र के विरुद्ध? इसके पश्चात यह ध्यातव्य रखा जाता था कि अपराध का गुरुत्व कितना है?

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर ही अपराधी के दंड को सुनिश्चित किया जाता था। व्यंग्य रचना में केवल बाहरी वेशभूषा के आधार पर रचना के मुख्य पात्र को दंडित किया जाता है, उसे अपना पक्ष प्रस्तुत किए बिना ही शाब्दिक और शारीरिक बल लगाकर यातना दी जाती है। संदेह के आधार पर किसी को पकड़ना तो पुलिस के कार्य क्षेत्र में आता है परंतु उसे अपराधी सिद्ध करने के लिए पुलिस की वर्दी के साथ-साथ विवेकपूर्ण निर्णय भी अपेक्षित रहता है।

इस विषय में महेश शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक *चाणक्य नीति* में चाणक्य ने कहा है- "विवेकी मनुष्य विवेक द्वारा अपने गुणों का सदुपयोग कर समाज के साथ-साथ अपने कुल का कल्याण भी करता है। इसलिए गुणवान व्यक्ति का विवेकी होना आवश्यक है।" (132)

चाणक्य के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रशासनिक स्तर पर नियुक्त राष्ट्र के रक्षकों को विवेकपूर्ण ढंग से अपराधी और निरपराधी के मध्य अंतर की परख करने का विवेक होना चाहिए। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए यदि अपराधी को दंडित होने से बचाया जाएगा, तो राष्ट्र में आपराधिक संगठनों का साहस बढ़ जाएगा, वे अपराध-कार्यों को अंजाम देने के विषय में निर्भीक हो जाएंगे, जिससे राष्ट्र में अव्यवस्था और असुरक्षा का वातावरण निर्मित होने लगेगा। निरपराध को यदि दंडित किया जाएगा तो सामान्य जनता का राष्ट्र की न्याय व्यवस्था से विश्वास उठ जाएगा, और दोनों ही स्थितियां राष्ट्र की खुशहाली के लिए घातक सिद्ध होंगी।

'मिलना डिग्री का चिमनलाल बंसल को' व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल, राष्ट्र की शैक्षणिक संस्थाओं में व्याप्त विसंगतियों पर आक्षेप करते हैं। एक प्रोफेसर चिमनलाल बंसल उन्हें रेलगाड़ी में मिलते हैं, जो उन्हें बताते हैं कि बी.काम. अंतिम वर्ष में अनुत्तीर्ण हो जाने पर उन्होंने विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार से मुलाकात की, यह बताने के लिए कि वे अपनी कक्षा के मेधावी छात्रों में गिने जाते हैं, इसलिए वे अनुत्तीर्ण नहीं हो सकते, अवश्य अंको की गणना में कोई त्रुटि हुई होगी। रजिस्ट्रार, यह पता लगने पर कि उन्होंने अंग्रेजी माध्यम से परीक्षा दी थी, प्रभावित हो जाते हैं। व्यंग्यकार, चिमनलाल बंसल से रजिस्ट्रार के साथ हुई बातचीत बताते हैं- "वे..... मेरी अंग्रेजी की तारीफ करते हुए बोले-बेटा, तू तो फेल हो ही नहीं सकता, तेरे पास तो अंग्रेजी मीडियम था, तू पास ही नहीं बल्कि सेकंड पोजीशन भी लाया होगा।" (8)

उपर्युक्त पंक्ति के द्वारा हरीश नवल राष्ट्र की शिक्षण संस्थाओं के उच्चाधिकारियों की उपनिवेशवादी मानसिकता दर्शाते हैं, जहां विद्यार्थियों की मेधा शक्ति को अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के आधार पर आंका जाता है। जिस राष्ट्र में सर्वोच्च पदों पर नाम-मात्र पढ़े-लिखे व्यक्ति विराजमान हो जाते हैं-केवल सांख्यिकी गणना की प्रत्यक्ष प्रमाणिकता के कारण, वहां अगर रजिस्ट्रार की अंग्रेजी भक्ति के कारण चिमनलाल बंसल उत्तीर्ण हो भी गए तो क्या आश्चर्य!

जब दूसरे विश्वविद्यालय में एम. काम. में प्रवेश लेने के लिए चिमनलाल बंसल जाते हैं तो अधिकारी महोदय प्रमाण पत्र को प्रांतीय भाषा में लिखित देख भड़क जाते हैं, हरीश नवल,

शिक्षा अधिकारी के कथन को उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "यह क्या है रे भाई, यह अंड-बंड क्या लिखा है? कागज तो मजबूत है परंतु यह भाषा कौन सी है? हमें तो राष्ट्रभाषा अंग्रेजी में ही सर्टिफिकेट चाहिए, प्रांतीय भाषा तो हम अपनी भी नहीं पढ़ सकते।" (9)

हरीश नवल द्वारा कथित पंक्ति के आलोक में राष्ट्रीय मूल्य, राष्ट्रभाषा प्रेम तथा मौलिकता क्षरित होते दृष्टिगत हुए हैं। अन्तिम पंक्ति में घोर विडंबना है! राष्ट्र के भावी कर्णधार जिन संस्थाओं द्वारा निर्मित किए जाते हैं, वहां के जिम्मेदार अधिकारी विदेशी भाषा को राष्ट्रभाषा के नाम से संबोधित करते हैं। राजनीतिक, प्रशासनिक कार्य तो अंग्रेजी में क्रियान्वित होते ही हैं, जो राजतंत्र के अंतर्गत स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी ब्रिटिश प्रशासन के प्रभाव को सुनिश्चित करते हैं। परंतु शिक्षा संस्थानों में अधिकारियों द्वारा उपर्युक्त कथन कहा जाना कहां तक उचित है? विदेशी भाषा के प्रयोग पर बल देना, स्वभाषा के स्थान पर उसे महत्व देना, हमारी मौलिकता के भाव को विखंडित करता है।

विद्यार्थियों में राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति आदर के भाव को स्थापित करना शिक्षा प्राप्ति के विभिन्न उद्देश्यों में से एक है। विश्वविद्यालय का एक अधिकारी यदि अपनी प्रांतीय भाषा से ही अनभिज्ञ होने में अपना गौरव समझेगा तो राष्ट्रीय मूल्यों के क्षरण की संभावना बढ़ जाएगी। अपनी प्रांतीय भाषा न जानना लज्जाजनक है न कि गर्व का सूचक।

भाषा के संबंध में अधिकांश भारतीयों की अंग्रेजी भक्ति पर कटाक्ष करते हुए विजय कुमार व्यंग्य पुस्तक *कुर्सी तू बड़ी बड़भागिनी* में लिखते हैं, "दुनिया में कौन ऐसा देश है जिसे अपनी भाषा, भूषा, परंपरा और इतिहास पर गर्व न हो। भारतीय इससे भी आगे हैं। यहां हिंदी बोलने वालों को अनपढ़ और अंग्रेजी में गिटपिट करने वालों को शिक्षित माना जाता है।" (124)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से विजय कुमार अंग्रेजी भाषा की अंधभक्ति करने वाले भारतीयों को उपालंभ देते हैं। वे दूसरे देशों के नागरिकों की देशभक्ति की भावना दर्शाते हुए उन्हें उलाहना देते हैं कि अन्य देशों के नागरिक अपनी भाषा, अपने पहनावे और अपनी परंपरा पर अभिमान करते हैं। वे अपनी राष्ट्रभाषा का सर्वाधिक सम्मान करते हैं, इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि जर्मनी, जापान तथा ग्रीस इत्यादि देशों में पढ़ाई के लिए अथवा रोजगार के लिए, जब कोई जाता है तो उसे इन देशों की संबंधित भाषाएं सीखनी पड़ती हैं। भारत के लोग अपने ही देश में, अपने ही देशवासियों के साथ अंग्रेजी भाषा में वार्तालाप करते हुए गौरवान्वित होते हैं, यह कैसा विरोधाभास है?

ऊपर लिखे कथन में व्यंग्य रचना का पात्र, विश्वविद्यालय के अधिकारी के व्यवहार से साम्य भाव रखता है, वह भी अंग्रेजी भाषा के ज्ञाता से बुरी तरह प्रभावित होते हैं और विजय कुमार भी अधिकांश भारतीयों द्वारा अंग्रेजी भाषा के ज्ञान को शिक्षा प्राप्ति की कसौटी माने जाने पर व्यंग्य प्रहार करते दृष्टिगत होते हैं।

अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दिलाने का आकर्षण समाज के पूंजीपति वर्ग में तो है ही, एक मध्यमवर्गीय अभिभावक भी इसी कोशिश में रहता है कि वह अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दिलवाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पब्लिक स्कूलों में अभिभावक एड़ी-चोटी का जोर लगाते देखे जाते हैं। प्रेम जन्मेजय *कोई मैं झूठ बोलया* पुस्तक में उपर्युक्त मनोवृत्ति के धारक अभिभावकों को उपालंभ देते हुए लिखते हैं-"बच्चे का अंग्रेजी स्कूल में प्रवेश करवाना है, पांच हजार 'डोनेशन' दीजिए, एडमिशन हो जाएगा। गुलामी की जंजीरों को 31 वर्ष पहले रक्त बहाकर तोड़ा था, आज लोग उन्हें पाँच हज़ार देकर सहर्ष अपने बच्चों को पहना रहे हैं।" (153)

प्रेम जन्मेजय के कथन से राष्ट्र की विडंबनापूर्ण स्थिति का पता चलता है। जिस ब्रिटिश साम्राज्यवाद से परित्राण दिलाने हेतु रामप्रसाद बिस्मिल, चंद्रशेखर आजाद, शहीदे आज़म भगतसिंह, सुखदेव तथा राजगुरु इत्यादि देशभक्तों ने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया, उसी साम्राज्य की प्रतीक अंग्रेजी भाषा सीखने और सिखाने के लिए 'भागीरथ प्रयत्न' किए जा रहे हैं। अंग्रेजी भाषा तथा विश्व की अन्य भाषाओं का ज्ञाता होना बहुत उन्नत विचार है, परंतु उसके साथ-साथ अपनी राष्ट्रभाषा तथा प्रांतीय भाषा में पारंगत होना भी जरूरी है। अपने देशवासियों से हम अपने राष्ट्र के अंतर्गत बोली जाने वाली भाषाओं में वार्तालाप करें, तो राष्ट्रीय मूल्यों के भाव भी पल्लवित होंगे, अपने समाज से संबंध भी प्रगाढ़ होंगे और उन देशभक्तों के प्रति भी सच्ची श्रद्धांजलि होगी, जिन्होंने अपना जीवन राष्ट्र की स्वतंत्रता अग्नि में भस्म कर डाला था।

अंग्रेज़ी भाषा के प्रति अधिकांश भारतीयों के आकर्षण पर प्रहार करते हुए सुरेशकांत राहुलदेव द्वारा संपादित पुस्तक *चयन और चिंतन व्यंग्य के संग* में कहते हैं- "अपने इस प्यारे देश का नाम इंडिया है और यहां की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी है। कुछ सिरफिरे लोग इसे भारत....कहकर भी पुकारते हैं और यहां की राष्ट्रभाषा हिंदी होने की गलतफहमी पैदा करने की कोशिश करते हैं।" (62)

सुरेशकांत अधिकांश भारतीयों द्वारा राष्ट्रभाषा हिंदी की अवहेलना का अतिशयतापूर्ण वर्णन करते हुए व्यंग्य प्रहार करते हैं। सिर से लेकर पैर तक अंग्रेजी प्रभाव से सराबोर लोग, अपने राष्ट्र को भारत न कह कर इंडिया कहते हैं और परम तृप्ति का अनुभव करते हैं। अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा कहते हुए तो उनका सीना गर्व से चौड़ा हो जाता है।

सुरेश कांत के कथन में आक्रोश भरा उपालंभ है कि हमारे देशभक्तों द्वारा ब्रिटिश शासन को खदेड़े जाने के बाद भी हमारे राष्ट्र में उपनिवेशवादी प्रवृत्ति का अंत नहीं हो रहा। सरकारी कार्यों से लेकर आम बोलचाल की भाषा में भी अधिकाधिक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग कर उसके वर्चस्व को प्रमाणित किया जा रहा है, और अप्रत्यक्ष रूप से उनकी दासता को स्वीकार किया जा रहा है।

शासकीय कार्य की भाषा जब अंग्रेजी है, परस्पर बातचीत में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग महिमामंडित समझा जाता है तो जाहिर है कि वास्तव में वही भारत की राष्ट्रभाषा है। सुरेशकांत हमारे द्वारा चयनित नेताओं की ढुलमुल प्रशासकीय नीतियों पर व्यंग्य प्रहार कर रहे हैं जो आजादी प्राप्त होने के 72-73 वर्ष बीतने के उपरांत भी हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्रदान करने में समर्थ नहीं हो पाए।

प्रभात झा द्वारा संपादित पुस्तक *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद* में स्व-भाषा को महत्त्व देने की आवश्यकता पर बल देते हुए दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' लिखते हैं- "जिन राष्ट्रों की अपनी भाषा, संस्कृति नहीं होती, निश्चय ही वे राष्ट्र कहलाने के योग्य नहीं है।" (186)

दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' के कथन से स्पष्ट है कि किसी भी भूखंड विशेष को राष्ट्र की संज्ञा तभी दी जा सकेगी जब उसकी कोई सुनिश्चित भाषा हो, उसकी अपनी समृद्ध और गौरवशाली संस्कृति हो। संस्कृति का जहां तक प्रश्न है, तो भारत से बढ़कर अन्य किसी देश की संस्कृति इतनी उदात्त, समृद्ध और गौरवशाली नहीं है। भाषा के संबंध में यदि हमारा राजतंत्र पूर्वाग्रहों से मुक्त हो जाए और शिक्षण और प्रशासन के सभी कार्य राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से संपन्न किए जाएं तो वह दिन दूर नहीं, जब भारत पुनः विश्व-गुरु के सिंहासन पर आरूढ़ होगा।

उपर्युक्त कथन के आलोक में प्रस्तुत व्यंग्य रचना में वर्णित शैक्षणिक संस्थाओं में अंग्रेजी भाषा के प्रति झुकाव को राष्ट्रीय मूल्यों के अवमूल्यन का द्योतक ही कहा जा सकता है,

इस संबंध में *राजनीति और नैतिकता* पुस्तक में आशुतोष पार्थेश्वर लिखते हैं- "हमारे लिए यह लज्जा और ग्लानि का विषय है कि लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक अंग्रेजी शासन के अधीन होने के फलस्वरूप हमारी जबान पर अंग्रेजी भाषा इस तरह चढ़ गई है कि अब स्वाधीन होने पर भी राजकाज में अपनी राष्ट्रीय भाषा का व्यवहार करने में हम संकोच और कठिनाई का अनुभव करते हैं।" (159)

आशुतोष पार्थेश्वर उपर्युक्त कथन के माध्यम से भारतीयों को लज्जित करते हैं। अनेक वर्षों तक अंग्रेजों के अधीन रहने पर भारतीय जनता उनके वर्चस्व को सहन करने की अभ्यस्त हो गई और अब उसे इस दासता भरे परिवेश से बाहर निकलने में कठिनाई का अनुभव हो रहा है। राष्ट्र के नियामक, नेतागण सत्ता की कुर्सी पर विराजमान होते ही, उससे इतना घनिष्ठ संबंध स्थापित कर लेते हैं कि पाँच साल से बस कुछ समय पूर्व उसके आकर्षण से मुक्त हो पाते हैं। राष्ट्रहित के लिए सुनीतियों का निर्धारण करने के लिए उनके पास अवकाश नहीं बचता। जिन नीतियों का निर्धारण स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद होना चाहिए था, वे उस समय से लेकर अब तक अधर में लटकी हुई हैं।

विभिन्न विचारकों के विचारों के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि यदि राष्ट्रीयता के भाव को अक्षुण्ण रखना है, तो स्व-भाषा के प्रयोग के प्रति जागरूक होना ही पड़ेगा, आखिर हम कब तक उधार की भाषा के प्रयोग से राष्ट्र से संबंधित कार्यों का क्रियान्वयन करते रहेंगे।

4.2 अतीत गौरव, राष्ट्र निर्माण, बलिदान, राष्ट्रीय विकास तथा विकासप्रियता। इन राष्ट्रीय-मूल्यों का क्षरण, हरीश नवल कृत व्यंग्य पुस्तक *दिल्ली चढ़ी पहाड़* के अंतर्गत, रेखांकित किया गया है।

'मुझे काफी हाउस चाहिए' व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल साहित्यिक क्षेत्रों में स्वहित साधने की प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हैं। वर्तमान लेखन क्षेत्र में नित नई-नई प्रतिभाएं प्रवेश कर रही हैं, उनमें योग्यता भी है और संभावनाएं भी, परंतु धैर्य नहीं है। उन्हें अतिशीघ्र प्रसिद्धि चाहिए, अविलंब पुरस्कार चाहिए, अपनी रचनाओं के प्रकाशन हेतु त्वरित प्रकाशक चाहिए, इन कार्यों की सिद्धि के लिए वे ऐसे स्थान खोजते हैं, जहां मूर्धन्य और प्रसिद्ध साहित्यकारों की बैठकें होती हैं।

व्यंग्यकार की दृष्टि में महानगरों के कॉफी हाउस ऐसे स्थान हैं जहां लगभग हर विधा के रचनाकार एकत्रित होते हैं। दिग्गज साहित्यकार, नवोदित साहित्यकारों से अपनी आवश्यकतानुसार कार्य करवाते हैं और स्वयं को शीर्ष पर रखते हुए हाशिए पर कुछ स्थान नवोदित साहित्यकारों को भी प्रदान कर देते हैं, इस प्रकार परस्पर सहयोग का आदान-प्रदान होता रहता है।

जल्दी से जल्दी अपना लक्ष्य सिद्ध करने के इच्छुक नवोदित साहित्यकारों के विषय में हरीश नवल लिखते हैं- "मोमबत्ती और दियासलाई लेकर उस स्थल पर पहुंच जाएं, जहां बगुले रहते हों, निकट पहुंच कर मोमबत्ती को जला लीजिए और जो बगुला पकड़ना हो, चुपचाप उसके पास पहुंच कर मोमबत्ती उसके सिर पर रख दीजिए"। (59)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरीश नवल कहना चाहते हैं कि उभरते साहित्यकार पहले पता लगाते हैं कि स्थापित साहित्यकार की बैठकें प्रायः कहां होती हैं, फिर जिस स्थापित साहित्यकार से उन्हें अपना स्वार्थ साधना होता है, वे उसके सर पर सवार हो जाते हैं और हर संभव प्रयत्न करते हैं कि वह येन-केन प्रकारेण उनकी सहायता करने के लिए तैयार हो जाए। वास्तव में प्रतिभा तो स्वयं प्रकाशित होती है, उसे प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं होती, न ही उसका बखान करना पड़ता है। प्रतिभा संपन्न साहित्यकार कॉफी हाउस अथवा किसी भी ऐसे स्थान की खोज नहीं करते, जहां से उन्हें किसी प्रकार का प्रश्रय मिलने की संभावना हो। वे बिना किसी हानि-लाभ का विचार किए, बिना प्रसिद्धि की कामना किए अपने साहित्य सृजन के कार्य में संलग्न रहते हैं, प्रसिद्धि तो स्वयं उनके द्वार खटखटाती है।

इस विषय में हरीश नवल आगे कहते हैं- "प्रसाद, निराला, महादेवी, पंत, अज्ञेय, नगेन्द्र, स्नातक, उदयभानु सिंह, भवानी भाई आदि काफी हाउस नहीं जाते थे।..... क्या उस्ताद केवल काफी हाउसवादी ही होते होंगे, या हैं?" (64) इन पंक्तियों द्वारा व्यंग्यकार ने अतीत के झरोखे से झांकते हुए, अपने से वरिष्ठ साहित्यकारों की ओर संकेत किया है, जिन्होंने प्रसिद्धि प्राप्ति के लिए किसी विशेष स्थान पर एकत्रित होने का और किसी से लाभ उठाने का कोई प्रयास नहीं किया, उनकी स्वयं- प्रकाशित प्रतिभा ही उनकी लोकप्रियता का कारण बनी। वर्तमान समय में, नवोदित साहित्यकारों द्वारा रातों-रात प्रसिद्ध होने की कामना के परिप्रेक्ष्य में, संपर्क सूत्रों के गठजोड़ के प्रयासों द्वारा राष्ट्रीय मूल्य, अतीत-गौरव का खंडन हुआ है।

काफी हाउस जाने वाले उभरते रचनाकार अपनी रचना के मूल्यांकन के लिए, प्रसिद्धि के लिए, स्थापित रचनाकारों का आश्रय लेते हैं। इस प्रकार के रचनाकारों के विषय में राहुलदेव द्वारा संपादित पुस्तक *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* में पूरन सरमा लिखते हैं- "रचनाकार का धर्म सृजनशीलता से है तो मूल्यांकन देर-सवेर हो ही जाएगा। न भी हो तो उसका लेखन कलामयी बने या न बने, उसे जिंदा अवश्य रखता है। सारी विधाएं साधना चाहती हैं, इसके बिना ऐसा शॉर्टकट है नहीं, जिसका प्रतिफल प्राप्त हो सके।" (39)

पूरन सरमा के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि किसी भी विधा में संलग्न रचनाकार को सफलता अथवा ख्याति प्राप्त करने के लिए लघु मार्ग अपनाने की आवश्यकता नहीं है। सच्ची लगन, दृढ़ निश्चयात्मकता तथा धैर्यपूर्ण कर्मठता, रचनाकार की रचना को अंततः कालजयी बनाती ही है। न भी बनाए, उसके द्वारा समाज हित का कार्य तो सधता ही है, बशर्ते उसमें स्वार्थ की गंध न हो। सृजनशीलता की निरंतरता के लिए जिस प्रकार एक लघु बीज स्वयं को गला देता है, उसी प्रकार सृजनशील रचनाकार को भी स्वयं को गलाना पड़ता है, अपने आप को समग्र रूप से उस कला के प्रति समर्पित करना पड़ता है। जिस प्रकार बीज गलकर कालांतर में एक बृहद तरु के रूप में परिणत हो जाता है, उसी प्रकार स्वयं को गलाने वाला रचनाकार स्वतः ही समाज में उच्च स्थिति को प्राप्त कर लेता है, स्वाभाविक रूप से ही प्रतिष्ठित हो जाता है।

इस व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल नवोदित साहित्यकारों का यह कहते हुए मार्गदर्शन करते हैं कि प्रसाद, निराला महादेवी वर्मा इत्यादि साहित्यकारों ने किसी चढ़ते सूरज को सलाम नहीं किया, वे लोग धैर्य धारण करते हुए अपनी साहित्य-साधना में तल्लीन रहे। उन लोगों को भी धैर्य धारण करते हुए साहित्य-सृजन के कार्य में अनवरत जुटे रहना चाहिए। वर्तमान समय में, मनुष्य में धैर्य का गुण लुप्त होता जा रहा है। अधिकांश मनुष्य लगन, परिश्रम और कर्मठता का भाव त्यागते हुए छल-फरेब को अपनाकर, अथवा संपर्क सूत्र बढ़ाकर शीघ्र अति शीघ्र अपना अभीष्ट लक्ष्य साधना चाहते हैं, ऐसे मनुष्यों को धैर्य का महत्व समझाते हुए धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (उदात्त मूल्य भाग: 4) में मृत्युंजय उपाध्याय लिखते हैं- "धैर्य वह गुरुत्वाकर्षण शक्ति है, जो कठिन से कठिन समय आने पर भी व्यक्ति में विश्वास लाकर उसे सहिष्णु, सामर्थ्यवान तथा सौम्य और बलवान बनाती है।" (93-94)

मृत्युंजय उपाध्याय के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि धैर्य, मनुष्य का वह मौलिक गुण है, जिसके अंतर्गत दूसरे मनुष्य, धैर्यवान मनुष्य से प्रभावित होने पर विवश हो जाते हैं। धैर्यवान व्यक्ति में एक चुंबकीय आकर्षण होता है, जिससे आकर्षित होकर, समस्याग्रस्त व्यक्ति उनके पास खिंचा चला जाता है, क्योंकि उसे यह विश्वास होता है कि जो व्यक्ति समाज में अपने धैर्य धारण करने के गुण से, लोकप्रिय है वह व्यक्ति, धैर्यपूर्वक उसकी समस्या को समग्र रूप से सुनेगा, समझेगा और कोई न कोई समाधान भी अवश्य सुझाएगा। हरीश नवल उपर्युक्त व्यंग्य रचना में साहित्य क्षेत्र के अंतर्गत, उभरते हुए रचनाकारों को धैर्य धारण करने के लिए प्रेरित करते हैं। धैर्यवान व्यक्ति ही अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति सजग हो सकता है। धैर्य का गुण चातक पक्षी से सीखा जा सकता है। चातक धैर्यपूर्वक वर्षा ऋतु की प्रतीक्षा करता है। मेघ-जल के अतिरिक्त वह किसी अन्य जल से अपने तृषा शांत नहीं करता। यदि एक पक्षी धैर्य के गुण को आत्मसात कर सकता है, तो मनुष्य क्यों नहीं? वह तो प्रकृति द्वारा निर्मित सर्वश्रेष्ठ कृति है, उसे अन्य जीवों से बेहतर प्रदर्शन का प्रमाण तो देना ही होगा, तभी वह अपनी मनुष्यता के भाव को अक्षुण्ण रख पाएगा।

‘हाई कमान की हाई स्पीड ट्राम’ व्यंग्य रचना में राजनेताओं द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों के हनन पर व्यंग्य किया गया है। हरीश नवल सामान्य भारतीय नागरिक का प्रतिनिधित्व करते हुए स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात जिस भारत की उन्होंने कल्पना की थी, उसके विषय में बताते हुए कहते हैं- "बचपन से हम सुनते आए हैं कि समाजवाद आएगा। पंडित नेहरू के जमाने से चलकर शास्त्री जी, मोरारजी भाई.....से होता हुआ देवगौड़ा युग आ गया परंतु समाजवाद नहीं आया।" (75)

हरीश नवल द्वारा कथित पंक्तियां दर्शाती हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रत्येक भारतीय के मन में यह विचारधारा उद्वेलित हो रही थी कि यद्यपि आजादी हमें बहुत कुर्बानियां देने के बाद मिली है, परंतु मिलने के बाद अब देशवासियों की समस्त कठिनाइयां दूर हुई समझनी चाहिए। राष्ट्र भी अपना है और राष्ट्र का नेतृत्व करने वाले नेता भी अपने ही हैं। वे राष्ट्र की सुख-समृद्धि सभी नागरिकों में समान रूप से वितरित करेंगे, परंतु भारतीयों का यह विचार कपोल-कल्पना साबित हुआ और अब तक हो रहा है। सभी शासकीय और प्रशासकीय स्तरों पर बंदरबांट हो रही है। समाजवाद सिर्फ नेताओं और पूंजीपतियों की तिजोरियों में बंद है।

इस व्यंग्य रचना में हरीश नवल बदलते सरकारी तंत्र, बदलते परिवेश, बदलती स्वार्थनीति, बदले हुए नेताओं के बदले हुए रूपों पर व्यंग्य संधान करते हुए लिखते हैं- "दुनिया बदल गई है-मूल्य बदल गए हैं, कीमतें हावी हो गई हैं। व्यक्ति समाज से बड़ा हो गया है।" (77)

उपर्युक्त कथन के अंतर्गत हरीश नवल व्यंग्य के साधन अतिशयता का प्रयोग करते हैं, यह कहकर कि 'व्यक्ति समाज से बड़ा हो गया है'। मात्र एक पंक्ति के द्वारा ही वे मानव की स्वार्थवृत्ति की पराकाष्ठा का उल्लेख कर देते हैं। यह तथ्य स्वयंसिद्ध है कि व्यक्ति समाज की इकाई है और समाजहित, व्यक्तिहित से बड़ा ही होता है परंतु राष्ट्र के कर्णधार जिनके हाथों में राष्ट्र की नैया की पतवार थमा दी जाती है, वे छलांग लगाकर व्यक्तिगत स्वार्थ की नाव में कूद जाते हैं और अपनी अपनी ढफली-अपना अपना राग अलापने लगते हैं। हरीश नवल वर्तमान अर्थ-संस्कृति के फैलाव की ओर संकेत करते हैं। वह मूल्य, जिनके निर्वहण के द्वारा समग्र मानव जगत मर्यादित और अनुशासित ढंग से संचालित होता है, जो प्राणी मात्र के कल्याण की ओर अग्रसर करता है, उस मूल्य को वर्तमान समय में कोई विरला मनुष्य ही महत्व देता है। अधिकांश लोगों के अंतर्मन पर तो कीमतों के बिंब का आधिपत्य है। जो वस्तुएं दाम देकर खरीदी जाएं, उनकी ओर अधिकांश मनुष्यों का झुकाव है, जो मूल्य अनमोल हैं, जो मनुष्य की मनुष्यता के सूचक हैं, उनके निर्वहण की तरफ ध्यान केंद्रित नहीं किया जा रहा।

दिल्ली में नवगठित सरकार के द्वारा हाई स्पीड ट्राम के चलाए जाने की घोषणा के विषय में हरीश नवल आगे लिखते हैं- "उन्होंने दिल्ली के लिए ट्राम को उचित समझा और उन्होंने घोषणा करने की योजना बनाई।.....भूतल परिवहन मंत्री दौरा कर जापान, सिंगापुर और कोरिया में परिवहनीय अध्ययन कर रहे थे।" (77)

नई पार्टी की सरकार जब सत्ता में आती है तो राष्ट्रीय समस्याओं के अंतर्गत उन्हें उन समस्याओं का समाधान तुरंत अन्वेषित करना होता है, जिसके द्वारा वे अधिक से अधिक अपना घर भर सके, अपने संबंधियों को प्रशासनिक पदों पर आसीन कर सकें और अधिक से अधिक विदेश भ्रमण हेतु गमन कर सकें। चुनावी समय में अत्यधिक श्रम करके वे अत्यंत थकान अनुभव करते हैं इसलिए थकान उतारने के लिए वह विदेश के दौरों पर निकल जाना पसंद करते हैं। हरीश नवल सत्तासीन नेताओं के विदेश भ्रमण का कारण उन्हीं के कथन के द्वारा

दर्शाते हुए लिखते हैं-"भारत में तो लो स्पीड ट्राम है, हमें हाई स्पीड ट्राम के लिए अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड आदि जाना चाहिए।"(78)

हरीश नवल कहना चाहते हैं कि राष्ट्र की तरक्की के नाम पर राजनेता विदेशों में जाते अवश्य हैं परंतु उनका मुख्य उद्देश्य कुछ और होता है। विदेश में यातायात से संबन्धित विकसित नई तकनीक की जानकारी के लिए उस तकनीक से संबंधित योग्य व्यक्ति को जाना चाहिए न कि राजनेताओं को, जिनके लिए परिवहन विभाग से संबंधित तकनीक काला अक्षर भैस बराबर है परंतु विडंबना है कि सर्वेक्षण करने के लिए राजनेता ही वहां जाते हैं। नेता वर्ग राष्ट्र के नीति-निर्णायक हैं, उन्हें ही सभी प्रकार के फैसले करने का अधिकार है। उनके विदेश-भ्रमण से राष्ट्र पर आर्थिक बोझ पड़ता है तो पड़े, उन्हें इससे क्या? राष्ट्र के आर्थिक संकट के लिए पिछली सरकार को सरलता से उत्तरदायी ठहरा कर वर्तमान नेता अपने कर्तव्यों से पल्ला झाड़ लेते हैं।

समग्र व्यंग्य रचना के केंद्रीय भाव से यह परिलक्षित होता है कि राष्ट्र के शासकीय पद पर आसीन नेता वर्ग के लोग राष्ट्र के सम्मुख मौजूद किसी समस्या के निराकरण के प्रति चिंतित तो भला क्या होंगे अपितु उस समस्या के ताने-बाने में से भी अपने लाभ का सूत्र तलाश करने का ही यत्न करते हैं। उस समय वे यह भूल जाते हैं कि उनकी स्वार्थवृत्ति अनुवांशिकता के आधार पर उनकी अगली पीढ़ियों में स्थानांतरित होगी और इसका प्रभाव उनके जीवन पर, उनकी भावी पीढ़ियों के जीवन पर और यहां तक कि समग्र राष्ट्र पर भी किसी न किसी रूप में पड़ेगा क्योंकि प्रत्येक नागरिक राष्ट्र की इकाई होता है।

अरुण कुमार सिंह एवं आशीष कुमार सिंह द्वारा संपादित पुस्तक *मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास* में स्पेंसर द्वारा कहे गए कथन को उद्धृत करते हुए अरुण कुमार लिखते हैं- "जब कोई साहचर्य बार-बार दोहराई जाती है, उनका स्वरूप अनुवांशिक हो जाता है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पुनरावृत्त होने लगता है, जो संचित होकर इतना शक्तिशाली बन जाता है कि उससे मूल प्रवृत्ति का जन्म होता है।" (46)

स्पेंसर के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि जब जीवन में लोभ और लालच के भाव को क्रियात्मक तौर पर बार-बार दोहराया जाता है तो यह वृत्ति अनुवांशिक बन जाती है और अगली पीढ़ी में उस वृत्ति का आविर्भाव स्वतः हो जाता है। यहां तक कि यह भावी पीढ़ियों की मूल प्रवृत्ति में सन्निहित हो जाता है।

हरीश नवल विदेश भ्रमण के इच्छुक राजनेताओं के साथ-साथ स्वदेश भ्रमण के इच्छुक नेताओं की अव्वल दर्जे की स्वार्थी मनोवृत्ति पर भी प्रकाश डालते हुए आगे लिखते हैं- "इस बार देश में वर्षा तो ताबड़तोड़ हुई पर दिल्ली में बाढ़ नहीं आई, जिसकी उम्मीद अनेक नेताओं के परिजन कर रहे थे, ताकि बाढ़ का हवाई दौरा कर लुत्फ उठाएं।" (77)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरीश नवल ने राजनेताओं की हीनतम स्वार्थ वृत्ति पर प्रकाश डाला है। नेताओं को बड़ी हैरानी होती है कि अतिवृष्टि होने के बावजूद बाढ़ नहीं आई, नदियों का पानी किनारे तोड़कर गांव अथवा शहरों में प्रवाहित नहीं हुआ। वे सोचते हैं, कुदरत भी कितनी बेरहम है, यदि बाढ़ आती तो वे परिवार सहित हवाई यात्रा का आनंद उठाते।

यह घोर विडंबना की स्थिति है कि हमारे भाग्य-विधाताओं को बाढ़ से होने वाली राष्ट्रीय हानि की कोई चिंता नहीं, अपितु अपने क्षणिक आनंद-उल्लास के साधन और अवसर तलाश करने के भरसक प्रयास हैं। व्यंग्यकार की मानसिकता यह देख कर क्षुब्ध है कि क्या कोई व्यक्ति राष्ट्र के सर्वोच्च पदों पर आसीन होकर इतनी निम्नतर विचारात्मकता भी रख सकता है? यही नहीं, उसकी सफलता के लिए उद्योग निरत भी रह सकता है? जब कोई नेता सत्तासीन हो जाता है, तो उसके साथ-साथ उसके परिजनों, सगे-संबंधियों तथा परिचितों तक की पांचों उंगलियां घी में होती हैं। वे नेता जी के प्रभाव की आड़ में अपने लिए अधिक से अधिक सुविधाएं तो अर्जित करते ही हैं, अपने जीवन को विलासयुक्त बनाने का भी प्रयास करते हैं। इस प्रयास के अंतर्गत चाहे उनकी हार्दिक संवेदनाएं भी समाप्त हो जाएं, वे लोग इसकी भी परवाह नहीं करते। बाढ़ का हवाई दौरा करने के लिए उनकी उत्सुकता, जीवन मूल्यों के क्षरण की ओर संकेत करती है, क्योंकि बाढ़ की विभीषिका के दौरान सामान्य जनता को कितने कष्टों का सामना करना पड़ेगा, कितनी असुविधाएं झेलनी पड़ेगी, इस तरफ उन लोगों का ध्यान ही नहीं जाता।

नेताओं का विदेश गमन उनके पंचवर्षीय कार्यकाल का केवल एक पक्ष है, उनके जीवन के समग्र सुख सुविधाएं जुटाने में राष्ट्र की आर्थिकता की कमर ही टूट जाती है। नेताओं के रहने के लिए आलीशान बंगले, बड़ी-बड़ी वातानुकूलित गाड़ियां, अनेक सुरक्षाकर्मी तैनात करने में राष्ट्र का कितना धन व्यय होता है, यह सोच-सोच कर सामान्य ईमानदार नागरिक के पसीने छूटने लगते हैं। कोई भी छोटे से छोटा नेता भी जब घर से निकलता है तो उसके आगे पीछे दस-बारह अन्य गाड़ियां उसकी सुरक्षा के लिए साथ-साथ चलती हैं। और इस खर्च का

सारा बोझ आम नागरिक की खून पसीने की कमाई से अदा किया जाता है। नेताओं के ऐश्वर्य पूर्ण जीवन की निरंतरता के लिए राष्ट्रीय धन को पानी की तरह बहाया जाता है, जिससे राष्ट्रीय मूल्य, राष्ट्र निर्माण क्षरित होता है। वर्तमान समय में राष्ट्र- निर्माण के कार्य के अंतर्गत जो भी आर्थिक व्यय होगा, उसका अधिग्रहण राष्ट्रीय कोष द्वारा ही किया जाएगा। राष्ट्रीय कोष का जितना भाग राजनीतिज्ञों की सुख- सुविधा तथा ऐश्वर्य पूर्ण जीवन शैली पर खर्च किया जाएगा, राष्ट्र निर्माण के कार्य के अंतर्गत होने वाला व्यय उसी अनुपात में कम होता जाएगा। कार्य की गुणवत्ता बाधित होगी, वह अलग से।

विदेश भ्रमण के द्वारा राजनेताओं द्वारा 'एक पंथ दो काज' साधे जाते हैं। विदेशी सरकार के साथ अपने राष्ट्र को पतन की खाई में धकेलने के समझौते किए जाते हैं, किस लिए ? केवल अर्थ संग्रह के लिए। इस विषय में हरिशंकर परसाई व्यंग्य पुस्तक *कहत कबीर* में कहते हैं- "कौन-कौन देश भक्तों को इस देश को खंडों में तोड़ने के लिए विदेशी पैसा मिलता है, यह सब आपस में जानते हैं, मगर यह ठाठ से राष्ट्रीय एकता की मीटिंग में बैठते हैं। किसी एक क्षेत्र में नहीं सारे देश में विदेशी धन के नाले बह रहे हैं और देशभक्त घड़े भर रहे हैं।" (64)

उपर्युक्त कथन के द्वारा हरिशंकर परसाई नेताओं का अपकर्ष दर्शाते हैं। वे देशद्रोहियों को देशभक्त कहकर उनके द्वारा किए गए कार्यों के अन्तर्गत राष्ट्रीय मूल्यों का हनन दर्शाते हैं। उनके कहने का अप्रत्यक्ष भाव यह है कि वर्तमान में राष्ट्र की स्थिति अत्यंत विडंबना पूर्ण है क्योंकि जब बाड़ ही खेत को खाने लगती है, तब खेत की सुरक्षा के तमाम उपाय धरे के धरे रह जाते हैं।

हरिशंकर परसाई, शासक वर्ग के लोभ के चरमोपकर्ष को दर्शाते हैं। शासन तंत्र के सभी सदस्य एक दूसरे के रहस्यों को जानते हैं, प्रकट में तो वे राष्ट्र की एकता के लिए गोष्ठी का आयोजन करते हैं परंतु भीतर ही भीतर विदेशी शक्तियों के साथ मिलकर राष्ट्र की जड़े काटते हैं, और इसके साथ ही कट जाते हैं राष्ट्रीय मूल्यों के संश्लिष्ट तंतु, जिनके द्वारा राष्ट्र का प्रत्येक घटक एक दूसरे के साथ जुड़ा होता है।

राष्ट्र के कुछ राजनेता जब भ्रमण के लिए विदेश नहीं जा पाते, बाढ़ न आने से हवाई दौरा भी नहीं कर पाते तब हार कर बेचारे राष्ट्र की सड़कों को ही भ्रमण का जरिया बनाते हैं, इस विषय में राहुलदेव द्वारा संपादित पुस्तक *चयन और चिंतन व्यंग्य के संग* आलेख "ऐसा देश है मेरा" के अंतर्गत सुरेशकान्त लिखते हैं- "बड़े-बड़े नेता आम आदमियों की तकलीफे

जानने के लिए अक्सर देश का दौरा करते हैं और सर्किट हाउसों से लेकर फाइव स्टार होटल तक की खाक छान मारते हैं लेकिन उन्हें कहीं कोई भूखा-नंगा नजर नहीं आता।" (66)

उपर्युक्त प्रकार के नेताओं की मानसिकता पर तरस आता है। वे क्यों नहीं समझ पाते कि आम आदमी की तकलीफें होटलों या सर्किट हाउस में बैठकर नहीं अनुभव की जा सकतीं। उसके लिए उसके जीवन के भीतर झांकना होगा और नेताओं के पास इतनी फुर्सत ही कहां होती है? उन्हें राष्ट्र के बहुत से आवश्यक कार्य पूर्ण करने होते हैं। जिसकी योजना वे बड़े-बड़े होटलों के वातानुकूलित कमरों में तैयार करते हैं। पांच सितारा होटलों में नेताओं को कोई भूखा नंगा नजर नहीं आता, वातानुकूलित गाड़ियों में जाते समय सड़क के दोनों ओर वे देख नहीं पाते, क्योंकि गाड़ी की खिड़की के कांच काले होने की वजह से वे बाहर का दृश्य देख नहीं पाते। नेताजी घर पहुंच कर चैन की सांस लेते हैं और अपनी कर्तव्यनिष्ठा के प्रति स्वयं नतमस्तक हो जाते हैं। उन्हें पक्का विश्वास हो जाता है कि उनके इलाके में पूर्ण रूप से खुशहाली है, भूखे नंगे और अभावग्रस्त लोगों के विषय में विपक्ष द्वारा अफवाह उड़ाई गई है।

आम आदमी की तकलीफें जानने के लिए ये बेताब अवश्य दृष्टिगत होते हैं-ठीक चुनावों से कुछ समय पहले। तब उन्हें अचानक सामान्य जनता की पीड़ा का एहसास तड़पाने लगता है और वे जन-जन से मिलने के लिए, उनके दुख दर्द जानने के लिए अपने महलों से निकल पड़ते हैं। भारत के पुरातन शासक अपने राजकोष पर प्रजा का अधिकार समझते थे, क्योंकि अधिकांशतः प्रजा द्वारा दिए गए कर से ही राजकोष में वृद्धि होती थी। आवश्यकता पड़ने पर राजा राजकोष का धन कुछ सीमा तक जरूरतमंदों में वितरित कर दिया करते थे। इस संदर्भ में *कल्याण* हिंदू संस्कृति अंक के अंतर्गत "भगवान महावीर" आलेख में हनुमान प्रसाद पोद्दार, उनके शासक रूप के विषय में बताते हुए लिखते हैं- "उन्होंने दीन-दुखियों में राजकुल के संचित द्रव्य का दान प्रारंभ किया। 1 वर्ष में 3 अरब, 88 करोड़, 80 लाख स्वर्ण-मुद्राओं का दान कुमार वर्धमान ने याचकों को दिया।" (999)

इतनी अधिक स्वर्ण मुद्राओं का मूल्य कितना अधिक होगा, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उपर्युक्त कथन के आलोक में भारत के पुरातन शासकों तथा वर्तमान नेता रूपी शासकों में अंतर स्पष्ट होता है। राजकुमार वर्धमान ने प्रजा के जरूरतमंद लोगों के लिए खजाने के द्वार खोल दिए। वर्तमान शासक भी ऐसा ही करते हैं, परंतु वे राष्ट्र के खजाने का

रुख अपनी तिजोरियों की ओर करते हैं। कृष्णा नन्द शास्त्री द्वारा संपादित पुस्तक *हितोपदेश* में नारायण पंडित ने लिखा है-

"लोभात्क्रोधः प्रभवति, लोभात्कामः प्रजायते। लोभान्मोहश्च नाशश्च, लोभः पापस्य कारणम्॥" (39)

अर्थात् लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ से काम उत्पन्न होता है और लोभ से ही मोह का नाश होता है, लोभ ही सब पापों का मूल है। लोभी व्यक्ति के अंतर्मन में जिस वस्तु के प्रति लोभ का भाव होता है, उसकी प्राप्ति होने पर भी वह तृप्त नहीं होता। उस वस्तु को अधिक से अधिक प्राप्त करने के प्रति उसकी इच्छा बलवती होती रहती है। उस वस्तु की प्राप्ति के मार्ग में, बाधा आने पर उसका क्रोध बढ़ जाता है। लोभ इच्छित वस्तु के प्रति आसक्ति का भाव जगाता है। आसक्ति की अधिकता से वह उस वस्तु के मोहपाश में जकड़ा जाता है और अंततः विनाश को प्राप्त होता है।

श्रीरामचरितमानस के अंतर्गत कैकेई अपने पुत्र के लिए राज्य का लोभ करती है। महाराज दशरथ उसे ऐसा करने से रोकते हैं, तो वह क्रोध करने लगती है। पिता के वचन का पालन करने के लिए श्रीराम वन चले जाते हैं, परंतु कैकेई का मनोरथ पूरा नहीं हो पाता, भरत अयोध्या का राज्य स्वीकार नहीं करते। श्रीराम को अयोध्या वापस लाने के लिए भरत चित्रकूट जाते हैं। भारद्वाज मुनि के आश्रम पहुंचने पर वे उनसे कहते हैं कि उनकी माता ने पुत्र-मोह के वशीभूत होकर राज्य-प्राप्ति के लिए लोभ किया, ताकि उनका पुत्र एक राजा की भांति ऐश्वर्य-पूर्ण जीवन व्यतीत कर सके। गोस्वामी तुलसीदास *श्रीरामचरितमानस* में भरत के कथन को उद्धृत करते हुए लिखते हैं-

"मोहि लागि यह कुठाटु तेहिं ठाटा। घालेसि सब जगु बारहबाटा॥" (503)

भरत के कहने का भाव यह है कि उनकी माता ने पुत्र के सुख के लिए यह सारा कुठाट रचा। कैकेई ने तो भरत का जीवन ठाट-बाट से व्यतीत हो, इस लक्ष्य को साधने के लिए महाराज दशरथ से दो वरदान मांगे थे, परंतु उसके द्वारा सोचा गया ठाट-बाट भरत की दृष्टि में कुठाट है। भरत अपने बड़े भ्राता श्रीराम के प्रति अत्यधिक आदर का भाव रखते थे कि उन्हें वन के कष्ट सहन करते देख अयोध्या का राज्य भी तृणवत लगा, इसलिए उन्होंने अपनी माता द्वारा किए गए दुष्प्रयास की भर्त्सना की। कैकेई के अंतर्मन में लोभ का वास पूरे राज परिवार

और समग्र अयोध्यावासियों के लिए अवसाद का कारण बन गया। यह विषम स्थिति कैकई के लोभ तथा पुत्र-मोह के कारण उत्पन्न हुई।

हरीश नवल भी अप्रत्यक्ष रूप से नेताओं की लालची प्रवृत्ति को दर्शाते हुए, सामान्य नागरिकों को सजगता धारण करने का संदेश देते हैं, ताकि वह ऐसे लोभी नेताओं से सावधान रहें और उनके पक्ष में मतदान न करें। नागरिकों में जागृति आने से राष्ट्र ऐसे लोभी शासकों के कुशासन से बच सकेगा और इस प्रकार राष्ट्रीय मूल्यों का संरक्षण हो सकेगा।

‘जब हारी महामारी’ व्यंग्य रचना में उच्च पदस्थ लोगों के अति वैभवशाली जीवन पद्धति पर व्यंग्य प्रहार किया गया है, जिसके द्वारा हरीश नवल बताना चाहते हैं कि राष्ट्र में किसी भी प्रकार की आपदा आए-चाहे महामारी के रूप में, चाहे अकाल के रूप में अथवा बाढ़ के रूप में-उसका निशाना राष्ट्र का सामान्य नागरिक ही बनता है। हरीश नवल नेताओं का अपकर्ष दर्शाते हुए लिखते हैं- "जीवाणु बड़े लोगों के तो चिपकते ही नहीं है, वे स्वयं विषाणुओं से भी अधिक सशक्त होते हैं अतः नेता कभी महामारी से नहीं मरता-जनता ही मरती है। मर भी जाए तो क्या, जीती तो नेताओं के दम से ही है।" (52)

हरीश नवल के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि कोई भी नेता तथा धन-कुबेर किसी प्राकृतिक आपदा से प्रभावित होते नहीं देखा गया। कोई पूंजीपति अथवा राजनेता राष्ट्र की सीमा पर दुश्मनों की गोलियों का निशाना बनते नहीं देखा गया क्योंकि उसके लिए हमारे सैनिक जो हैं, राष्ट्र की सुरक्षा का समग्र उत्तरदायित्व उनका है, राजनेता तो केवल नीति निर्माण के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। उनकी नीतियां भी अपने अथवा उन पूंजीपतियों के हित के लिए निर्मित होती हैं, जो चुनाव के दौरान उनकी आर्थिक सहायता किया करते हैं। किसी भी प्राकृतिक आपदा के आने पर राजनेता दूरदर्शन पर जनता के नाम संदेश प्रसारित करके अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लिया करते हैं।

देश में फैली महामारी की तुलना राष्ट्र के भ्रष्टाचारी नेताओं, घोटालेबाजों और प्रशासनिक दलालों से करते हुए हरीश नवल कहते हैं- "बड़े से बड़े संकट भी दिल्ली वालों को न हिला सके, यह बीमारी जिसके बारे में मालूम भी नहीं है कि क्या है, क्या बिगाड़ लेगी? बोफोर्स, हर्षद मेहता, सूटकेस तक दिल्ली वालों को विचलित नहीं कर सके तो यह नामुराद तथाकथित प्लेग क्या चीज है?" (54)

ऊपर लिखे कथन के माध्यम से हरीश नवल भ्रष्ट व्यवहार करने वालों तथा राष्ट्र की समृद्धि से अपना घर भरने वालों पर तीक्ष्ण व्यंग्य करते हैं। प्रशासनिक दलालों और गुरु-घंटालो को महामारी से भी अधिक विषाक्त बताते हुए वास्तव में हरीश नवल ने उन्हें सिर से पैर तक लज्जित करने का प्रयास किया है, ताकि शायद उनकी आंखों का मरा हुआ पानी पुनः जीवंत हो सके। वे व्यक्तिगत स्वार्थों को तिरस्कृत करते हुए राष्ट्रीय मूल्यों के रक्षण के लिए अपने उत्तरदायित्व का समुचित निर्वहण कर सकें।

हरीश नवल द्वारा कहा गया व्यंग्य कथन दर्शाता है कि राष्ट्र में कैसी भी समस्याएं आएँ, नेताओं का जीवन उससे अप्रभावित ही रहता है। समग्र राष्ट्र पर आने वाली कोई भी आपदा, राजनीतिज्ञों के जीवन पर असर कर ही नहीं सकती, क्योंकि वे लोग किसी भी स्थिति में अपनी सुख-सुविधा, अपना समय अथवा व्यक्तिगत धन बलिदान नहीं कर सकते। उनके अंतर्मन में सदैव यही भाव अवस्थित रहता है कि किसी भी तरीके से वे अधिक से अधिक समृद्धि, सुख - साधन तथा ख्याति बटोर सकें।

किसी भी प्रकार की प्राकृतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक आपदा के समय उत्कृष्ट और सर्वोत्तम पदों पर आसीन लोगों से, साधन तथा शक्ति संपन्न लोगों से निस्वार्थ सहयोग की अपेक्षा की जाती है। वर्तमान समय में उलटी गंगा बह रही है, साधन-संपन्न लोग धन की चकाचौंध के कारण प्राकृतिक आपदा से ग्रस्त लोगों के कष्टों को अनुभव नहीं कर पाते। शक्तिशाली लोग शक्ति के मद में चूर रहते हैं, वे समर्थ होते हुए भी आपदाग्रस्त लोगों की सहायतार्थ आगे नहीं आते।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* (सत्यम शिवम सुंदरम परक मूल्य : भाग 3) में आदित्य प्रचण्डिया लिखते हैं- "किसी महान प्रयोजन के लिए अपनी सामर्थ्य अनुसार शक्ति एवं साधनों का वैराग्य पूर्ण नियोजन उत्सर्ग है। दायित्व बोध, सामर्थ्य और साहस उत्सर्ग के अनिवार्य तत्व हैं। दायित्व बोध उत्सर्ग की पहली आवश्यकता है। इसके अभाव में उत्सर्ग कर पाना असंभव है।" (48)

व्यंग्य रचना के अंतर्गत राजनेताओं में, प्रशासनिक अधिकारियों में, पूंजीपतियों में दायित्व बोध का सर्वथा अभाव देखने को मिलता है। उनके पास राष्ट्र हितार्थ कल्याणकारी कार्य करने का सामर्थ्य भी है और साधन भी हैं परंतु दायित्व बोध न होने से वे केवल राष्ट्र में व्याप्त समस्याओं के निराकरण का केवल दिखावा करते हैं, कोई सार्थक उद्योग नहीं करते। राष्ट्र के

नागरिक उन पर असीम विश्वास करके उन्हें चयनित करते हैं। जनता के समक्ष अगर कोई विकट समस्या आती है, तो नेताओं को उस समस्या के समाधान के प्रति सार्थक उपाय करने चाहिए। कोई भी जरूरतमंद व्यक्ति, सामर्थ्यवान के पास ही अपनी समस्या का हल तलाशने जाता है। नेताओं के अवहेलना पूर्ण व्यवहार से राष्ट्रीय मूल्य बलिदान विखंडित हुआ है, क्योंकि नेता लोग सामान्य जन की समस्या का समाधान करने के लिए अपनी क्षणिक सुख सुविधा का भी बलिदान करने की ओर प्रवृत्त नहीं होते।

बाढ़ का प्रकोप हो अथवा महामारी का फैलाव, राष्ट्रीय समस्याएं हैं, इन के निदान के प्रयास नेता वर्ग को करने चाहिए, परंतु अक्सर देखने में आता है कि नेताओं के प्रयास आटे में नमक के बराबर ही सिद्ध होते हैं।

‘दिल्ली चढ़ी पहाड़’ सन्दर्भगत पुस्तक का ही नाम है इसका कलेवर अत्यंत प्रभावशाली तथा प्रहारत्मक है। व्यंग्यकार ने अप्रस्तुत के विधान से बड़े-बड़े नेताओं, अधिकारियों और धन कुबेरों की ऐश्वर्ययुक्त जीवन शैली का चित्रण किया है। नेता लोग उद्घाटन करने के लिए, अधिकारी वर्ग बैठकें करने के लिए तथा बड़े-बड़े व्यापारी उपर्युक्त लोगों से मिलने के लिए ग्रीष्म ऋतु में पहाड़ों की सैर पर चले जाते हैं।

हरीश नवल सत्ता के अधिष्ठाताओं का पर्वतीय प्रदेश के भ्रमण का व्यंग्यात्मक औचित्य बताते हुए कहते हैं कि वैभवशाली और सुख सुविधा युक्त जीवन तो चंद लोगों का ही होता है, सत्ता पर आसीन नेता, उच्च प्रशासनिक वर्ग, तथा पूंजीपति वर्ग अपना जीवन हर प्रकार से वैभवयुक्त बिताते हैं आम नागरिक तो जीवन पर्यंत अपनी मूलभूत आवश्यकताएं जुटाने में ही आजीवन संघर्ष करते रहते हैं। हरीश नवल नेताओं द्वारा किए गए अथक परिश्रम को उपहास के माध्यम से वर्णित करते हुए लिखते हैं- “राष्ट्रपति को सेल्यूट लेते-लेते और उद्घाटन करते करते खासी थकान हो ही जाती है, वे मिटाने जाते हैं। उनके कारण दो सौ अस्सी जनों का भी कल्याण हो जाता है जो दफ्तर और सुरक्षा देखते हैं।” (47)

उपर्युक्त कथन के आलोक में राष्ट्रीय मूल्य, राष्ट्र-विकास का हनन लक्षित होता है। राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति, राष्ट्रीय धन और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती है। राजतंत्र से संबंधित व्यक्ति, अपने व्यक्तिगत सुख-लाभ के लिए राष्ट्रीय धन का अपव्यय करेगा तो राष्ट्र के विकास का मार्ग बाधित होना सुनिश्चित है। हरीश नवल कहना चाहते हैं कि सामान्य व्यक्ति और उपर्युक्त प्रकार के व्यक्तियों के जीवन में कितना फासला है! एक नेता को अपने

आसपास अनेक सरकारी कर्मचारियों का भीड़ चाहिए, उसके कहीं भी आने-जाने पर एक पूरा कार्यालय और सुरक्षा दस्ता साथ चलता है, इससे राष्ट्र को कितनी आर्थिक क्षति होती है इसके विषय में न तो कोई नेता सोचना चाहता है और न ही उनके पास सोचने के लिए अवकाश होता है। सत्ता पर आसीन स्वार्थी लोग किस प्रकार राष्ट्र की जड़ें खोखली कर रहे हैं?

हरीश नवल वर्तमान नेताओं से बाबर और इब्राहिम लोधी की तुलना करते हुए कहते हैं- “कभी बाबर ने चढ़ाई की थी, कभी इब्राहिम लोधी ने, पर जो चढ़ाई दिल्ली वाले पहाड़ों पर कर रहे हैं उसका तो जवाब नहीं। रौंद कर रख दिया उन्हें। उनकी ऊंचाई धंसा दी है। वही कंपनी जो पर्यावरणीय बिगाड़ से उत्पन्न होता है, उत्तरकाशी को डिगा देता है।” (49)

प्रस्तुत कथन के माध्यम से हरीश नवल राजतंत्र में संलिप्त लोगों के व्यवहार को विदेशी आतताइयों के व्यवहार से भी अधिक निष्क्रिय बताते हैं। बाबर और इब्राहिम लोधी ने अपने शासन के विस्तार के लिए चढ़ाइयां कीं। वे लोग विदेशी थे, उन्हें हमारे राष्ट्र के उद्भव और पराभव से कोई सरोकार न था। हमारा प्रशासनिक वर्ग, राजतंत्र-वर्ग, पूंजीपति वर्ग तो भारतवंशी है ही, वह भी अपने ही राष्ट्र को दीमक की तरह खोखला कर रहा है, विलासिता पूर्ण जीवन जीते हुए केवल अपने हानि-लाभ के विषय में सोच रहा है, और उसी दृष्टिकोण से कार्य कर रहा है, जिससे राष्ट्रीय मूल्यों का हनन हो रहा है। यह सर्वविदित है कि राजनेता राष्ट्रीय कार्यों का, व्यापारी वर्ग देश की आर्थिक प्रगति का तथा प्रशासनिक वर्ग राष्ट्र के समग्र प्रबंधन को सुनिश्चित करते हैं।

नेतृत्व करने वालों की अहर्ताओं का वर्णन करते हुए धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अन्तर्गत (आधुनिक मूल्य : भाग 1) में सत्येंद्र शर्मा कहते हैं- “नेतृत्वकर्ता को दूरदर्शी होना चाहिए। उसे आने वाले समय और परिस्थितियों की आहट का बोध होता है। उसे निर्लोभी, अनासक्त, चरित्रवान और ईमानदार होना होगा।” (144)

सत्येंद्र शर्मा नेतृत्व करने के लिए जिन कसौटियों को सुनिश्चित करते हैं, उनका हमारे राष्ट्र के कर्णधारों में अभाव पाया जाता है। राजनेता राष्ट्र की समग्र नीतियों के नियामक होते हैं, प्रशासनिक वर्ग राष्ट्र के अनुशासित प्रबंधन को सुनिश्चित करता है और व्यापारी वर्ग राष्ट्र की अर्थनीति की रीढ़ होते हैं। परंतु ये सभी केवल अपना-अपना स्वार्थ साधने की होड़ में लगे हैं। उनकी आंखों पर स्वार्थ की पट्टी लगी है, इसलिए उन्हें राष्ट्र के उत्कर्ष-अपकर्ष से कोई सरोकार

नहीं। केवल उनके व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध होने चाहिए, वे लोग रात दिन इसी में उद्योग निरत रहते हैं। उनका यह व्यवहार राष्ट्रीय मूल्यों की गरिमा खंडित करता है।

‘अथ प्रदर्शनी दर्शनम्’ व्यंग्य रचना के माध्यम से व्यंग्यकार राष्ट्र में प्रदर्शन युक्त माहौल की ओर संकेत कर रहा है। दिल्ली जैसे महानगरों में हर समय कोई न कोई प्रदर्शनी आकर्षण का केंद्र बनी रहती है। प्रदर्शनी वर्णन के अंतर्गत हरीश नवल, सरकारी कर्मचारियों की कार्यशैली पर, पूंजीपतियों के भ्रष्ट व्यवहार पर, और राष्ट्र में बढ़ती हुई कृत्रिम जीवन शैली पर व्यंग्य प्रहार करते हैं। सरकारी कर्मचारियों की कर्तव्य निर्वहण के प्रति लापरवाही वर्णित करते हुए हरीश नवल कहते हैं, "दिल्ली में पहले... प्रदर्शनी स्थल टेपेरी होते थे-अब परमानेंट हैं, ठीक सरकारी कर्मचारियों की भांति, जो काम उचित ढंग से करें या न करें परंतु परमानेंट होते हैं, उन्हें निकाला नहीं जा सकता।" (40)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरीश नवल सरकारी नौकरी में लगे कर्मचारियों की अकर्मण्यता को निष्पक्षता के साथ वर्णित करते हैं। हरीश नवल द्वारा कहा गया कथन, सरकारी कर्मचारियों के अंतर्मन में राष्ट्र के प्रति विकास-प्रियता के भाव का क्षरण दर्शाता है। सरकारी कर्मचारी यदि अपने उत्तरदायित्व का निर्वहण तन्मयतापूर्वक नहीं करेंगे, तो उनकी कार्य क्षमता का विकास मार्ग अवरुद्ध हो जाएगा। उनके कार्य क्रियान्वयन की शिथिलता यह सिद्ध करती है कि उनका न तो अपने कार्य की गुणवत्ता में सुधार लाने का विचार है और न ही वे राष्ट्र के अंतर्गत, विकास लाने की दिशा में प्रयासरत हैं। एक बार सरकारी नौकरी मिल जाने के बाद अधिकतर मनुष्य चैन की बंसी बजाने लगते हैं। सरकारी नौकरी पाने के बाद वह जीवन भर की रोजी रोटी के प्रबंध के प्रति निश्चिंत हो जाते हैं। कार्यालय पहुंचने पर वे अपनी इच्छानुसार कार्य करते हैं। अधिकारीगण भी उन्हें दायित्व देने में संकोच करते हैं क्योंकि अकर्मण्य कर्मचारी के कार्य में अधिकतर त्रुटियां पाई जाती हैं।

सरकारी कार्यालयों में अकर्मण्यता की प्रवृत्ति के विषय में कमलाप्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित पुस्तक *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* के अंतर्गत हरिशंकर परसाई राष्ट्र की लोकलेखा समिति के विषय में बताते हैं कि यह समिति प्रशासन-तंत्र के सभी विभागों की जांच करके रिपोर्ट तैयार करती है। संसद में उस रिपोर्ट के विषय में बहस की जाती है, इतने उपक्रम के बाद उस रिपोर्ट का जो हश्र होता है, उस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए हरिशंकर परसाई ने लिखा है- "रिपोर्ट का पहले की असंख्य रिपोर्टों के ढेर में डाल दिया जाना

लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए जरूरी है। जितना जरूरी जांच है, उतना ही जरूरी यह है कि उस पर अमल न किया जाए।” (230)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरिशंकर परसाई प्रशासन-तंत्र के अधिकांश लोगों की अकर्मण्यता पर प्रकाश डालते हैं। सरकारी-तंत्र में कागजी कार्यवाही पूर्ण होने पर अधिक बल दिया जाता है, प्रायोगिक कार्यवाही की ओर से आंखें मूंद ली जाती हैं। सरकारी कार्यालयों में प्रायः ऐसा ही देखा जाता है कि पहले तो कर्मचारी अपने काम को आगे से आगे टालते रहते हैं, जब उच्च स्तर पर उनके कार्य का निरीक्षण होता है, तो वे लोग कागज पूरे करने में दिन-रात एक कर देते हैं। समग्र कार्य कागजों के अंतर्गत ही संपन्न कर लिया जाता है। कार्यालयों के प्रबंधक, मजदूर तथा उनके नेताओं के मध्य अघोषित समझौते के विषय में हरिशंकर परसाई ने आगे लिखा है- " सब में समझौता है कि चाहे इस देश पर दूसरा देश कब्जा कर ले पर न काम करेंगे, न करने देंगे। सब देश-भक्त हैं।" (230)

हरीश नवल का अनुभव भी हरिशंकर परसाई द्वारा कथित उपर्युक्त कथन का सजीव चित्रण उपस्थित करता है। अधिकतर लोगों द्वारा सरकारी नौकरी मिल जाने का अर्थ यही लगाया जाता है कि कागजी कार्यवाही पूर्ण होनी चाहिए, प्रायोगिक कार्य चाहे हो या न हो। हरिशंकर परसाई अपनी जिम्मेदारी से भागने वाले लोगों को 'देशभक्त' कहते हुए उनके चारित्रिक अपकर्ष की ओर संकेत करते हैं। वे सरकारी कर्मचारियों की कर्महीनता की पराकाष्ठा को दर्शाते हैं, यह कहते हुए कि दूसरे देश द्वारा कब्जा कर लिया जाने के प्रयास को जानते हुए भी ये लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। ऐसे लोगों का एक ही नारा है, स्वयं भी काम नहीं करेंगे और दूसरों के कार्यों में भी बाधा डालेंगे। हरिशंकर परसाई अप्रत्यक्ष रूप से राजतंत्र के अंतर्गत ऐसे लोगों की ओर संकेत करते हैं जो लोग राष्ट्र-हित में काम करने वालों के मार्ग में भी रुकावट बनते हैं।

महेश शर्मा द्वारा रचित विवेकानंद जी की जीवनी *युग द्रष्टा विवेकानंद* के अंतर्गत स्वामी विवेकानंद कार्य के प्रति प्रतिबद्धता रखने वाले लोगों के संदर्भ में कहते हैं- "प्रत्येक देश में कुछ ऐसे नवरत्न होते हैं जो केवल कर्म के लिए ही कर्म करते हैं। वे नाम-यश अथवा स्वर्ग की भी परवाह नहीं करते। वे केवल इस लिए कर्म करते हैं कि उसमें कुछ कल्याण होगा।" (146)

स्वामी विवेकानंद द्वारा जिन लोगों के विषय में कहा गया है, उनमें और उपर्युक्त व्यंग्य रचना के पात्र-सरकारी कर्मचारी वर्ग के कर्मों में कितना अंतर है? सरकार से वेतन प्राप्त करके भी वे लोग अपने उत्तरदायित्व को ईमानदारी के साथ नहीं निभाते जबकि स्वामी विवेकानंद ने जिन लोगों की ओर संकेत किया है, वे निस्वार्थ भाव से समग्र प्राणी जगत के कल्याण के हेतु कार्य करने में तत्पर रहते हैं। स्वामी विवेकानंद ने उपर्युक्त कथन में जिन लोगों का उल्लेख किया है, वे लोग कर्मयुक्त जीवन जीने में ही सार्थकता का अनुभव करते हैं, कर्महीनता तो जड़ता की निशानी है। सरकार, कर्मचारियों को यदि 5 घंटे कार्य करवाने का वेतन प्रदान करती है, तो उस प्राप्त-धन के प्रतिदान स्वरूप मुनासिब काम तो करना ही चाहिए। यदि राष्ट्र के सभी नागरिक स्वामी विवेकानंद के निर्देशानुसार कर्मशीलता का निर्वहण करने में संलग्न रहेंगे तो राष्ट्र दिन दुगनी रात चौगुनी उन्नति करेगा, इस विषय में संदेह नहीं है।

सरकारी कर्मचारियों को अकर्मण्यता त्याग कर कर्मठता का संदेश देते हुए धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (उदात्त मूल्य: भाग 4) में मृत्युंजय उपाध्याय लिखते हैं- "कर्मठ के शब्दकोश में असंभव शब्द नहीं रहता, वे दृष्टि जिधर को देते हैं, इतिहास उधर झुक जाता है।" (74)

मृत्युंजय उपाध्याय के कथन को हरीश नवल की व्यंग्य रचना में वर्णित कर्तव्यहीन सरकारी कर्मचारियों के व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए कहा जा सकता है कि कर्मशीलता मनुष्यता की गतिशीलता की कसौटी है। मनुष्य की मनुष्यता को, उसकी जीवंतता को उसके द्वारा किए गए कर्म ही सुनिश्चित करते हैं। कर्मशीलता की सौद्येश्यता पृथ्वी, चंद्र और सूर्य इत्यादि ग्रहों की निरंतर गतिशीलता से प्रमाणित होती है। उपर्युक्त कथन के माध्यम से मृत्युंजय उपाध्याय कहना चाहते हैं कि कर्मठ व्यक्ति अपनी कर्मशीलता के बल पर असंभव कार्यों को भी संभव बनाने का सामर्थ्य रखते हैं। कर्मठ व्यक्ति ही अपने ऊर्जस्वित कर्मों के द्वारा इतिहास का निर्माण करते हैं। इतिहास के पृष्ठों पर कर्मठ व्यक्तियों का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहता है। *श्रीरामचरितमानस* में गोस्वामी तुलसीदास समग्र प्रकृति को कर्म प्रधान मानते हुए लिखते हैं-

"कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करे, हो तस फल चाखा॥" (509)

उपर्युक्त चौपाई के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास कहना चाहते हैं कि प्रकृति ने अपने प्रत्येक घटक को कर्मपाश से बांधा हुआ है। नदियां निरंतर अपने उद्गम स्थल से चलती हुई

सागर में जाकर विलीन हो जाती हैं, सूर्य निरंतर वनस्पतियों की उत्पत्ति तथा विकास के लिए अपनी रश्मियां उत्कीर्ण करता रहता है, चंद्रमा की किरणें वनस्पतियों में औषधीय गुणों का संचार करती रहती हैं। मनुष्य प्रकृति का सर्वोत्तम, सशक्त तथा बौद्धिकता-संपन्न घटक है, उसे तो अकर्मण्यता यत्किंचित भी शोभा नहीं देती।

4.3 रचनात्मकता, तन्मयता, चारुता, सौंदर्य बोध, राष्ट्र-सुरक्षा, सुराज, मंगल कामना, भलाई तथा परहित। इन राष्ट्रीय मूल्यों का हनन हरीश नवल द्वारा रचित व्यंग्य पुस्तक, *पीली छत पर काला निशान* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

‘चेयरमैन कवि और पासपोर्ट की पंक्ति’ व्यंग्य रचना में साहित्यिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगति पर कटाक्ष किया गया है। एक कवि जो शिक्षा विभाग का अध्यक्ष तो है ही, राष्ट्र के विदेश विभाग का चेयरमैन भी है। उसके उच्च पद पर आसीन होने के कारण उसकी एक दर्जन पुस्तकों का विमोचन हो जाता है। उस अवसर पर उपस्थित साहित्यकार उनके प्रशस्तिगान में व्यस्त हैं। उस समय की स्थिति वर्णित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- “माननीय मंत्री ने तालियों की गड़गड़ाहट के बीच बारह पुस्तकों को मुक्त किया और दो शब्द बोलने आरंभ किए हैं। वे बता रहे हैं कि उन्हें ज्ञात हुआ है कि चेयरमैन कवि इस समय हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।” (19)

ऊपर लिखी गई पंक्तियों के माध्यम से हरीश नवल यह सत्य दर्शाना चाहते हैं कि मंत्री महोदय ने विदेश विभाग का चेयरमैन होने भर से शिक्षा विभाग के अध्यक्ष का उच्च- गुणवत्ता - संपन्न कवि होना सुनिश्चित कर दिया है। एक विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, चेयरमैन कवि द्वारा लिखित पुस्तकों को उच्च कोटि की सिद्ध करने के लिए जो कथन कहते हैं, उन्हें उद्धृत करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- “वे सद्यः विमोचित सभी पुस्तकों को कोर्स में लगवा देंगे, चाहे इसके लिए उन्हें पूरा कोर्स ही क्यों न बदलना पड़े।” (19)

उपर्युक्त पंक्तियों के आलोक में राष्ट्रीय मूल्य, रचनात्मकता, तथा तन्मयता का क्षरण होता दृष्टिगत होता है। एक व्यक्ति, जो सरकारी तौर पर विदेश विभाग का चेयरमैन है, उसके द्वारा अल्प समय में लिखा गया साहित्य इतना गुणवत्ता-संपन्न नहीं हो सकता, जितना साहित्य-साधना में समग्र समय तन्मयतापूर्वक लगाने वाले साहित्यकार के लेखन में पाया जाता है, क्योंकि किसी भी कार्य की गुणवत्ता, उसके प्रति लगाए गए परिश्रम के अनुपात द्वारा ही सुनिश्चित होती है। विदेश विभाग के चेयरमैन को प्रसन्न करने के उद्देश्य से, विश्वविद्यालय के

विभागाध्यक्ष द्वारा उनके द्वारा लिखित पुस्तकों को, विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के परिप्रेक्ष्य में, विभागाध्यक्ष का दुराग्रह ही प्रतिबिंबित होता है।

आज का विद्यार्थी कल का राष्ट्र निर्माता है, इसलिए पाठ्यक्रम में ऐसी पुस्तकें सम्मिलित करनी चाहिए, जिनके द्वारा विद्यार्थियों में रचनात्मकता, सृजनात्मकता का विकास हो, उन पुस्तकों को पढ़ने में विद्यार्थी सरसता का अनुभव करे और तन्मयतापूर्वक उन पुस्तकों का अध्ययन करे। कालांतर में, उन पुस्तकों के अध्ययन के द्वारा विद्यार्थी के अंतर्मन में शिवत्व का भाव जागृत हो। विदेश विभाग के चेयरमैन द्वारा लिखित पुस्तकों द्वारा विद्यार्थियों के अंतर्मन में उपर्युक्त राष्ट्रीय मूल्यों का अंतर्निहित होना संदिग्ध है, क्योंकि प्रत्येक साहित्यकार अपनी लेखन सामग्री, अपने आसपास के परिवेश से ही उठाता है। विदेश विभाग का चेयरमैन सामान्य सामाजिक जीवन से अनभिज्ञ रहता है क्योंकि उसका अधिकांश समय विदेश भ्रमण में व्यतीत होता है। वह पूर्ण प्रतिबद्धता के साथ साहित्य साधना के क्षेत्र में अग्रसर नहीं हो सकता।

उपर्युक्त कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि विदेश विभाग में चेयरमैन होने के कारण ही उनके द्वारा लिखी पुस्तकें, विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष कोर्स में लगवाने का पक्का वादा कर रहे हैं और उनके कथन से खुशामद के भाव स्पष्ट दृष्टिगत हो रहे हैं। शिक्षा जगत में भी अगर राजनीति होने लगेगी तो जीवन-मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता के भाव कैसे जागृत हो सकेंगे?

शैक्षणिक संस्थानों को सर्वथा निष्पक्ष, निस्वार्थ और पारदर्शी होना चाहिए, क्योंकि तभी ये शिक्षा संस्थान विद्यार्थियों के अंतर्मन में जीवन-मूल्यों के भाव पल्लवित कर पाएंगे। वर्तमान विद्यार्थी राष्ट्र के भविष्य का निर्माता है, यदि उसके लिए उचित मार्गदर्शन नहीं किया गया तो राष्ट्र का उन्नत भविष्य संदेह की परिधि में आवृत हो जाएगा। 'चढ़ते सूरज को सलाम' मुहावरे के आधार पर यदि विद्यार्थियों का पाठ्यक्रम बनाया जाएगा, और गुणवत्ता का आधार गौण समझा जाएगा तो विद्यार्थियों के पास गुणवत्तायुक्त साहित्य पहुंच नहीं पायेगा, वे जिस प्रकार की पुस्तकों का अध्ययन करेंगे, उनके मस्तिष्क पर उन्हीं पुस्तकों का प्रभाव पड़ेगा।

समय से बहुत पीछे जाने की आवश्यकता नहीं है, चंद्र सोनाने *देश समाज और संस्कृति* पुस्तक के अंतर्गत राजतन्त्र द्वारा नैतिक शिक्षा को सोची समझी साजिश के अधीन लुप्त करने की अघोषित नीति के विषय में बताते हैं- "आज से करीब चार दशक पहले बच्चों को स्कूल में नैतिक शिक्षा दी जाती थी। इस कारण से बच्चे जहां अपने बड़ों का आदर सम्मान

करना सीखते थे, वहीं बचपन से ही आदर्श नागरिक बनने के लिए उनमें नींव पड़ जाती थी। बाद में धीरे-धीरे शिक्षा से नैतिक शिक्षा को विलोपित करने का अघोषित षड्यंत्र चला जो आज तक जारी है।" (162)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यंग्य रचना में वर्णित उच्च पदों पर बैठे शिक्षा विभाग के अध्यक्ष जब विदेश विभाग के चेयरमैन के पद पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं तो आनन-फानन में बारह पुस्तकें लिख डालते हैं। हरीश नवल विदेश विभाग के चेयरमैन के कथन को उपहास जनित तरीके से उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "जाने कैसे 12 पुस्तकें उनके द्वारा लिखी गई हैं, वे स्वयं चकित हैं कि इतना कार्य कैसे हो गया?" (20)

विदेश विभाग के चेयरमैन द्वारा कहा गया कथन दर्शाता है कि उन्होंने पुस्तक लेखन में कोई विशेष श्रम नहीं किया क्योंकि श्रम-साध्य कार्य करने में व्यक्ति के पसीने छूट जाते हैं। एक पुस्तक का लेखन ही अत्यंत श्रम-साध्य कार्य है। 12 किताबें लिखने में तो लेखक की रातों की नींद ही उड़ जाती है। विदेश विभाग के चेयरमैन को पता ही नहीं लग रहा कि आखिर इतनी पुस्तकें उनके द्वारा कैसे लिखी गई। उनके कथन से यह परिलक्षित होता है कि वे लेखन-कार्य को गंभीर रचना-कर्म नहीं मानते। उनके द्वारा रचित पुस्तकों को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना, शैक्षणिक दायित्वों की अवहेलना करना है। विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में जिन पुस्तकों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, वे अत्यंत उत्तरदायित्व पूर्ण नीति से रचित होनी चाहिए, उन पुस्तकों के अंतर्गत विद्यार्थियों के लिए कोई उत्कृष्ट संदेश निहित होना चाहिए, उन पुस्तकों के माध्यम से विद्यार्थी राष्ट्र का एक आदर्श नागरिक बन सके, यह प्रयास भी सुनिश्चित होना आवश्यक है।

नैतिकता का अर्थ बताते हुए आशुतोष पार्थेश्वर *राजनीति और नैतिकता* पुस्तक में लिखते हैं-"न्याय, दया, सहानुभूति, परदुःखःकातरता, सौहार्द, प्रेम इत्यादि मानवोचित गुणों को ही, समवेत रूप में नैतिकता की अभिधा दी गई है।" (154) आशुतोष पार्थेश्वर के कथन द्वारा परिलक्षित होता है कि उपर्युक्त गुणों के आधार पर किसी मनुष्य के व्यक्तित्व में अंतर्निहित, नैतिकता के भाव का आंकलन हो सकता है।

प्रस्तुत व्यंग्य रचना के पात्र, विदेश विभाग के चेयरमैन के चरित्र में नैतिकता का अभाव देखने को मिलता है। वे भली प्रकार जानते थे कि विश्वविद्यालय द्वारा जो सम्मान उन्हें दिया जा रहा है, वे उसके अधिकारी नहीं हैं, फिर भी उन्होंने अपनी नाक न होने का ही परिचय दिया है।

इसी प्रकार विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष द्वारा, उनकी पुस्तकों को विभिन्न कक्षाओं के पाठ्यक्रम के अंतर्गत निश्चित रूप से, लगवाने की बात कहना भी नैतिकता के विरुद्ध है। विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम के अंतर्गत महान विचारकों, उत्कृष्ट साहित्यकारों और संस्कृति के उन्नायकों की विचारधारा से सम्प्राणित पुस्तकें लगवाई जानी चाहिए, जिनके अध्ययन से, विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास हो सके और वह राष्ट्र का सजग और कर्तव्यनिष्ठ नागरिक बन सके।

‘पीली छत पर काला निशान’ व्यंग्य रचना के अंतर्गत सरकारी कार्यालयों में हो रही भ्रष्टाचारी कार्यनीति की ओर संकेत किया गया है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना में सरकारी कार्यालयों की विसंगतियों की ओर संकेत किया गया है। सरकारी कर्मचारी प्रत्येक समस्या को अर्थ प्राप्ति से संदर्भित कर लेते हैं। बिजली विभाग के कर्मचारी, व्यंग्यकार को एक कमरे से दूसरे कमरे तक, दूसरे कमरे से तीसरे कमरे तक तथा आगे भी अनेक कमरों में भेजते रहते हैं। अंत में जब व्यंग्यकार जनसंपर्क अधिकारी के कमरे में जाता है तो वहां तिल जैसी समस्या को ताड़ में परिवर्तित होते देख आश्चर्यचकित रह जाता है। जनसंपर्क अधिकारी व्यंग्यकार को बिजली दफ्तर की छत पर लगे जाले हटवाने के लिए, जिस दीर्घ-सूत्री कार्यों की सूची बताता है, उसे सुनकर व्यंग्यकार के पैरों तले की जमीन सरक जाती है। जनसंपर्क अधिकारी के कथन को उद्धृत करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- “हमारे महल की छत बहुत ऊंची है, बहुत लंबे बांस मंगवाने पड़ेंगे।” (44)

जनसंपर्क अधिकारी के कथन के पश्चात आगे की कार्य-विधि स्वतः सामने आ जाती हैं क्योंकि सरकारी कार्यालयों में जो काम करवाया जाता है, उसके लिए निविदाएं मंगवाई जाती हैं, अखबार में विज्ञापन दिए जाते हैं, कई बार मीटिंग होती है, फिर ठेकेदार नियुक्त किए जाते हैं, कचहरी में कागजों पर हस्ताक्षर होते हैं। जनसंपर्क अधिकारी द्वारा कहे गए कथन से परिलक्षित होता है कि कार्य को लंबा खींचते हुए उनके मन में अर्थ-सिद्धि की कामना बलवती हो उठी है। उनकी इस मनोवृत्ति की पुष्टि करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- “जनसंपर्क अधिकारी और कार्यकारी अभियंता, जाला हटाने के ठेके से होने वाले लाभांश की गवेषणा में जुटे हुए थे।” (45)

धन के प्रति मनुष्य की प्रबल लालसा को देखकर आश्चर्य होता है। एक मनुष्य कितना भोजन खा सकता है? पेट भर ही तो। एक समय में कितने परिधान धारण कर सकता है? उत्तर

होगा-एक। उसके विश्राम के लिए कितना स्थान चाहिए? उत्तर है, केवल एक चारपाई। अर्थात् मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित हैं, परंतु साधन संचित करने के प्रति उसका लोभ असीम है। जीवन की संतुलित गतिशीलता के लिए जितने साधन पर्याप्त हों, मनुष्य को उतने भर से संतोष करना चाहिए, परंतु अधिकांशतः ऐसा होता नहीं है। मनुष्य के अंतर्मन में किसी भी वस्तु के प्रति जब लालच की भावना उत्पन्न हो जाती है तो उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। ऐसे मनुष्य अपने आप को 'गांठ के पूरे' समझते हुए गौरवान्वित होते रहते हैं। गांठ के पूर्ण हो जाने पर वह छलकना प्रारंभ कर देती है फिर भी मनुष्य किसी को सहभागी नहीं बनाता, अपितु उसे संग्रह करने के असंख्य मंसूबे बनाने लगता है। सत्य तो यह है कि प्रकृति के समक्ष उसकी एक नहीं चलती, उसके बनाए सभी मंसूबे धरे के धरे रह जाते हैं।

व्यंग्यकार का बिजली के दफ्तर में बिल जमा करवाने जाना, वहां की छत पर जाले लगे देख उन्हें हटवाने के लिए, एक विभाग से दूसरे विभाग के चक्कर काटना तथा हर विभाग द्वारा कार्य को टाला जाना वर्तमान अकर्मण्य सरकारी कार्यप्रणाली पर तो प्रहार करता ही है साथ ही इस कटु सत्य को भी उभारता है कि यदि कोई नागरिक, राष्ट्रीय मूल्यों के भावों का अधिग्रहण करता हुआ, स्वयं यह कार्य करने का बीड़ा उठाता है तो उस पर दूसरे के कार्य क्षेत्र में व्यवधान डालने का आरोप लगा दिया जाता है। व्यंग्यकार को स्वयं जाले उतारने का उपक्रम करते देख कार्यालय के कर्मचारियों द्वारा न केवल मारा-पीटा जाता है, अपितु पुलिस के सुपुर्द भी कर दिया जाता है। हरीश नवल बिजली दफ्तर के कर्मचारी का कथन उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "इसने हमारे ऐतिहासिक भवन में से वर्षों से लगी हुई अनमोल वस्तुएं हड़पने की कोशिश की है, सविधान के प्राचीन स्मारक सुरक्षा अधिनियम 1904 की धारा 16 के अंतर्गत..... साफ लिखा है कि ऐतिहासिक स्मारकों, भवनों आदि को नुकसान पहुंचाने वाले को ₹25000 नकद जुर्माना और तीन बरस की कड़ी कैद होती है।" (46)

हरीश नवल, सरकारी तंत्र की कार्य-प्रणाली के अंतर्गत विडम्बनापूर्ण स्थिति वर्णित करते हैं। निस्वार्थ भाव से राष्ट्रीय इमारतों की स्वच्छता के प्रति जागरूक होना, इस संदर्भ में निष्काम-भाव से सेवा-कार्य करना अपराध समझा जाता है। व्यंग्यकार बड़ी करुण दृष्टि से आकाश की ओर देखता है, ताकि ईश्वर के समक्ष तथा राष्ट्र के प्रति अपना निस्वार्थ रूप दर्शा सके। नज़र ऊंची करने पर उसे जो आभास होता है, उसे वर्णित करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- "आकाश के उस पार भगवान को देखने की चेष्टा की, पर पाया कि ऊपर सब ओर जाले ही जाले लगे हुए हैं।" (46)

उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर कहा जा सकता है कि लेखक को सर्वत्र देखने पर यही आभास हुआ कि दसों दिशाओं में भ्रष्टाचार का जाल बुना हुआ है। भ्रष्टाचार से संश्लिष्ट यह जाल राष्ट्रीय-मूल्यों को अपने तानेबाने में उलझाए हुए है और जाल की जीवंत प्रतिमाएं उसमें फंसे हुए निरीह प्राणियों को अपना निशाना बनाने के लिए व्यग्र दिखाई देती हैं। अंतिम पंक्ति में व्यंग्यकार के शब्दों से विडम्बना भासित होती है। यह विडम्बना नहीं तो और क्या है कि राष्ट्र का कोई नागरिक यदि राष्ट्रीय धरोहर को साफ-स्वच्छ रखने का निस्वार्थ प्रयास करता है तो उसे भी अकर्मण्य कर्मचारी संदेह की दृष्टि से देखते हैं।

हरीश नवल द्वारा कही गई पंक्तियों के आलोक में राष्ट्रीय मूल्य चारुता तथा सौंदर्य-बोध का खंडन दर्शाया गया है। व्यंग्यकार, बिजली दफ्तर को राष्ट्रीय गरिमा का प्रतीक मानते हुए उसकी चारुता, भव्यता, मनोहरता तथा सौंदर्य-बोध के रक्षण के लिए, बिजली दफ्तर की छत से जाले हटाने का प्रयास करने के लिए उद्यत होता है। इस कार्य के परिप्रेक्ष्य में उसके हृदय में राष्ट्र-कल्याण तथा सर्वहितकारिता की भावना विद्यमान रहती है। बिजली दफ्तर में आने वाले नागरिकों की स्वच्छता को ध्यातव्य रखते हुए, तथा वहां आने वाले जनसामान्य के अंतर्मन में राष्ट्र के सौंदर्य-बोध में अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से वह जाले हटाने का बीड़ा उठाता है। प्रशासन क्षेत्र की विद्रूपताएं उसकी कल्याण भावना को भी संदेह की दृष्टि से देखती हैं।

वर्तमान में ऐसा ही हो रहा है। मनुष्य की स्वार्थ-सिद्धि, पराकाष्ठा तक पहुंच गई है थी, उसने अपने सुख के लिए वनों को नष्ट कर डाला, पहाड़ों को काट-काट कर सड़कों का जाल बिछा दिया, नदियों पर बांध बना डाले, सड़कें चोड़ी करने के लिए पेड़ काट डाले। मनुष्य अपने लिए हर प्रकार का सुख-सुविधायुक्त वातावरण तैयार करने लगा। ग्रीष्म ऋतु में उसे ठंडक चाहिए, शीत ऋतु में गर्माहट चाहिए, इसके लिए उसने वातानुकूलित वैज्ञानिक उपकरण बना डाले। अपनी सुख-सुविधाओं के साधन बढ़ाने में वह इतना तल्लीन हुआ, इस तथ्य को ही भूल बैठा कि उसके द्वारा प्रकृति द्वारा निर्मित, जीवन जीने के लिए अनिवार्य, पाचों तत्व प्रदूषित होते जा रहे हैं। प्रकृति के साथ खिलवाड़ करने के दुष्परिणाम दिखाई दे रहे हैं। अभी तो प्रकृति ने अपना एक सूक्ष्म कण ही छोड़ा है, समग्र विश्व त्राहि-त्राहि कर उठा है। यदि मनुष्य अभी भी न चेता, तो आने वाली पीढ़ियों का भविष्य अंधकारमय होने का खतरा है।

उपर्युक्त कथन का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार जनसंपर्क अधिकारी और कार्यकारी अभियंता बिजली दफ्तर से जाले हटवाने की प्रक्रिया के अंतर्गत अर्थ-लाभ के प्रति

लार टपकाते दृष्टिगत हो रहे हैं, उससे धन के प्रति उनका आसक्ति-भाव पुष्ट होता है। धन के प्रति आसक्ति के परिप्रेक्ष्य में, अपने जीवन को अधिक से अधिक सुख-सुविधाओं से पूर्ण बनाने का लक्ष्य निहित होता है। इस प्रयास ने मनुष्यता को कहां लाकर पटका है, यह परिदृश्य सबके समक्ष उपस्थित है।

व्यंग्यकार द्वारा कही गई अंतिम पंक्ति से पता चलता है कि सरकारी कार्यालय की छोटी सी समस्या को सुलझाते हुए भी अधिकारीगण अपनी जेब भरने की फिराक में लगे रहते हैं। ब्रिटिश प्रशासन का जमाना बहुत प्राचीन नहीं है, उस समय भी लोगों के मन में राष्ट्रीय मूल्यों की प्रतिष्ठा बचाने के लिए, बड़े से बड़े अर्थ-लाभ का त्याग करने का साहस था। सन 1858 में बिहार की क्रांतिकारी सेना का नेतृत्व राजा अमर सिंह कर रहे थे। अमर सिंह ब्रिटिश सेना से बचने के लिए अपनी क्रांतिकारी सेना के साथ, छिपते फिरते थे। ब्रिटिश ब्रिगेडियर ने उन्हें तलाश करने के लिए जमीन-आसमान एक कर दिया था, परंतु वह उन्हें ढूंढ पाने में असफल रहा। उसने जनसाधारण के मध्य यह ऐलान भी करवाया था कि अमर सिंह को छल-फरेब, किसी भी विधि से ब्रिटिश प्रशासन के सम्मुख प्रस्तुत करने वाले को बड़ी रकम पारितोषिक के रूप में दी जाएगी। उस समय की स्थिति को आशुतोष पार्थेश्वर *राजनीति और नैतिकता* पुस्तक में वर्णित करते हुए कहते हैं- "ऐसा कौन करता ? बिहार का प्रत्येक व्यक्ति राजा अमर सिंह को स्वतंत्रता का अग्रदूत एवं ईश्वर का प्रतिनिधि स्वरूप समझता था।" (150)

कितना उज्ज्वल, पावन, त्याग पूर्ण, गरिमामंडित तथा राष्ट्रीय-मूल्यों से ओतप्रोत चरित्र था बिहार के लोगों का। कोई प्रलोभन उनके-राष्ट्रीय मूल्यों के निर्वहण के मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर सका। घोर विडम्बना है कि अपनी जिन भावी पीढ़ियों के लिए वे लोग बड़े से बड़े अर्थ-लाभ को ठोकर मारते गए, वही पीढ़ी थोड़े-थोड़े आर्थिक लाभ के लिए राष्ट्रीय-मूल्यों की प्राचीरों को ध्वस्त करने पर तुली हुई है। खेद का विषय है कि उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत बिजली विभाग के कर्मचारी अपनी इमारत को ऐतिहासिक धरोहर बताते हैं, उसे नष्ट करने वाले के विरुद्ध संविधान द्वारा सुनिश्चित की गई सजा का भी विवरण देते हैं, परंतु भारतीय परंपरा में उत्कृष्ट जीवन-मूल्यों से समन्वित जो प्रविधि निर्धारित की गई है, उसे विखंडित करने में जरा भी संकोच नहीं करते, इस संदर्भ में वे 'थाली का बैंगन' सिद्ध हो रहे हैं।

बिजली विभाग के कार्यालय से जाले हटवाने के लिए वहां के अधिकारियों के मध्य धन बटोरने के मंसूबों को गिरिराज शरण अग्रवाल द्वारा संपादित पुस्तक *मानव चरित्र के व्यंग्य* के

अंतर्गत हरीश नवल के समकालीन व्यंग्यकार पूरन सरमा के कथन से जोड़ा जा सकता है। भ्रष्टाचार से धन बटोरना और बटोरते ही जाना-इस प्रवृत्ति के लिए व्यंग्यकार पूरन सरमा ने एक प्रतीक बनाया-मूलचंद और इस प्रतीक को वे जीवन-मूल्यों के विघटन का उत्तरदायी मानते हैं। "मूलचंद और मूल्य विघटन" आलेख के अंतर्गत वे लिखते हैं- "मूलचंद का लक्ष्य अधिकाधिक संपत्ति व धन बटोरना है। इसके लिए उसने अपने को इतना गिरा लिया है कि उसे किसी भी बैरोमीटर से नापना संभव नहीं है।" (69)

वास्तव में मूलचंद मनुष्य की धन-आकांक्षा की प्रवृत्ति का संकेतक है। लालच के क्षेत्र की परिधि को किसी यंत्र से नापा नहीं जा सकता। मूलचंद के अस्तित्व का सर्वत्र आधिपत्य दर्शाते हुए तथा मूलचंद की धन के प्रति लिप्सा का अतिशयतापूर्ण वर्णन करते हुए पूरन सरमा आगे लिखते हैं- "मूलचंद जब किसी सरकारी कार्यालय में प्रवेश करता है तो ईमानदारों के सिंहासन हिलने लगते हैं तथा रिश्वतखोरों के चेहरों पर लाली आ जाती है।" (69)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि मूलचंद प्रतीक है-लोभ का, लालच का, जो किसी न किसी प्रलोभन द्वारा मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। अपने जीवन को अधिक से अधिक सुख सुविधाएं प्रदान करने के लिए भ्रष्टाचार का जो मार्ग अपनाया जाता है, वह निरंतर गतिशील रहता है, उस पथ के राही को विश्राम कहां ? सब प्रकार से जीवन सुविधामय हो जाने के बाद मानव धनसंग्रह की ओर पग बढ़ाता है। धन का संग्रह एक संदेहयुक्त संचयन है क्योंकि धन गुम हो सकता है अथवा चोर डाकू द्वारा लूटा जा सकता है इसकी अपेक्षा जीवन-मूल्यों की निधि जो मानव जगत की शाश्वत संपत्ति है, उसे लुटा कर भौतिक संपत्ति का संचय कोई बुद्धिमानी का कार्य नहीं।

संचित किए हुए धन की उपयोगिता बताते हुए महेश शर्मा द्वारा सम्पादित पुस्तक *चाणक्य नीति* में चाणक्य कहते हैं- "धन उसी स्थिति में महत्वपूर्ण और उपयोगी होता है जब वह किसी एक व्यक्ति के लिए न होकर संपूर्ण समाज के लिए लाभकारी हो.... इसलिए धन को स्वार्थ हेतु संचित करने के स्थान पर समाज कल्याण हेतु प्रयोग में लाना चाहिए।" (133)

चाणक्य के कथन के अनुसार यदि लोग अपने आचरण को संचालित करें तो न तो उन्हें धन प्राप्ति के लिए भ्रष्ट तरीके अपनाने पड़ेंगे और न ही किसी को गलत रास्ते से प्राप्त किये गये धन को छिपाने के लिए भ्रष्ट भगीरथ प्रयत्न करने पड़ेंगे।

‘जश्र-ए-आजादी’ व्यंग्य रचना में हरीश नवल राष्ट्रीय-मूल्यों की स्थिरता के उत्तरदाता पुलिस विभाग द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों की धजियां उड़ाए जाने पर आक्षेप करते हैं। व्यंग्य रचना के पात्र नवरत्न चौधरी स्थानीय निगम के पार्षद द्वारा स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य में राष्ट्रध्वज अपने घर पर फहराते हैं। किन्हीं कारणों से उन्हें शहर से बाहर जाना पड़ता है, अगले दिन दूसरे शहर से लौटते ही पुलिस विभाग उन्हें धर दबोचता है। जब वे थानेदार से अपने अपराध के बारे में पूछते हैं तो वह उन्हें बताता है कि नवरत्न चौधरी द्वारा राष्ट्र का अपमान हुआ है। हरीश नवल थानेदार के शब्दों को वर्णित करते हुए लिखते हैं- "आपको इतनी भी जानकारी नहीं कि राष्ट्रीय झंडा यदि प्रातः फहराया जाता है तो संध्या तक उसे नीचे उतार लिया जाता है। यह भारतीय संविधान के अंतर्गत जुर्म है, कानूनी अपराध है जो आपने किया है।" (54)

नगर निगम के पार्षद भी इस अवसर पर वहां पहुंच जाते हैं, हरीश नवल पार्षद के कथन को वर्णित करते हुए आगे लिखते हैं- "चौधरी जी, यह तो राष्ट्र के अपमान का केस है, बहुत बुरा हुआ। आप यदि राष्ट्र-धर्म निभा नहीं सकते थे तो ध्वजारोहण करवाया ही क्यों?" (55) वे नवरत्न चौधरी को थानेदार की मुट्टी गर्म करने की सलाह देते हैं। यह घोर विडम्बना पूर्ण स्थिति है कि धन की चकाचौंध के सम्मुख अपराध को भी अंधेरी कालकोठरी में धकेल दिया जाता है। चांदी के खनखनाते सिक्के, अपराध बोध के भाव को मिटा डालते हैं।

नवरत्न चौधरी द्वारा दिए गए रूपयों से थाने में जश्र ए आजादी मनाया जाता है। वहां की स्थिति का वर्णन हरीश नवल, नवरत्न चौधरी के इन शब्दों द्वारा करते हैं- "पीड़ा, अपमान, दासता, विडम्बना, थकान और उनींदी निगाहों के वशीभूत मैंने देखा कि थानाध्यक्ष की कुर्सी के पीछे लगी महात्मा गांधी की तस्वीर कांप रही थी, लज्जित हो रही थी ... गलीचे के स्थान पर राष्ट्रीय ध्वज बिछा हुआ था।" (56)

हरीश नवल के कथन के आलोक में राष्ट्रीय मूल्य, राष्ट्र-सुरक्षा, तथा सुराज का हनन हुआ है। राष्ट्र के प्रहरी थानेदार की आंखों के सामने राष्ट्रीय ध्वज का भूमि पर गिरा होना, राष्ट्र सुरक्षा के भाव का खंडन करता है। थानेदार के कार्यस्थल पर ही राष्ट्रीय ध्वज अगर सुरक्षित नहीं, तो राष्ट्र के अन्य स्थलों की सुरक्षा स्वतः ही संदिग्ध हो जाती है। राष्ट्रीय ध्वज की असुरक्षित स्थिति राष्ट्र के सुराजत्व पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है।

उपर्युक्त कथन के द्वारा हरीश नवल वहां की समग्र स्थिति का और राष्ट्रीय-मूल्यों के संरक्षक पुलिस कर्मचारियों का मानसिक अपकर्ष दर्शाते हैं। जिस राष्ट्रीय ध्वज को फहराने के

बाद, नीचे न उतारने के जुर्म में थानेदार नवरत्न चौधरी को थाने बुलवाता है और उनके इस कृत्य को राष्ट्रीय-मूल्यों का ध्वस्त होना सिद्ध करता है, उसी राष्ट्रीय ध्वज को वह थाने के फर्श पर गिरा देखता है परंतु मदिरा के नशे में उसे इस बात का होश नहीं रहता कि उसके ही कार्यक्षेत्र में राष्ट्रीय ध्वज का कैसा अपमान हो रहा है। महात्मा गांधी की तस्वीर को लज्जित दर्शाते हुए हरीश नवल उनके माध्यम से, राष्ट्र के प्रशासनिक तत्व अर्थात् थानेदार को उपालंभ देना चाहते हैं कि क्या राष्ट्र का वर्तमान स्वरूप देखने के लिए उन्होंने, स्वतंत्रता-प्राप्ति के निमित्त अनेक आंदोलन किए थे? क्या प्रशासनिक तंत्र की ऐसी भ्रष्ट कार्यप्रणाली देखने के लिए, स्वतंत्रता सेनानियों ने अपना सर्वस्व समर्पित किया था?

व्यंग्य रचना के अंत में हरीश नवल ने गांधी जी की प्रतिमा को दिखाया है क्योंकि राष्ट्र के रक्षक थानेदार ने नशे में मदमस्त होकर राष्ट्रीय ध्वज को भूमि पर गिरा देख, अनदेखा कर दिया था। अर्थात् उसे उस वक्त राष्ट्रीय ध्वज के अपमान की कोई चिंता नहीं थी जबकि नवरत्न चौधरी को वह इसीलिए हिरासत में लेता है कि उन्होंने राष्ट्रीय ध्वज का अपमान किया था। अधिकांश भारतीयों के मानसिक अपकर्ष को दर्शाते हुए *त्राहि-त्राहि* पुस्तक में नरेंद्र कोहली कहते हैं- "अपमान सहना हमारी राष्ट्रीयता का अंग है। देश के भीतर, देश के बाहर हम अपमान सहते हैं और प्रसन्न होते हैं।..... जहां किसी ने भारत की राष्ट्रीयता छोड़ी, नोबल प्राइस मिल गया।" (145)

प्रस्तुत कथन के माध्यम से नरेंद्र कोहली यह दर्शाना चाहते हैं कि अपने स्वार्थ की रोटियां सेंकने के लिए कुछ लोग अपने स्वाभिमान तक को भाड़ में झोंक देते हैं। नेताओं के चाटुकार अपना कोई भी कार्य सिद्ध करवाने के लिए नेताओं के अपशब्द भी सरलता से सुन लेते हैं। हरीश नवल द्वारा रचित उपर्युक्त व्यंग्य रचना का पात्र थानेदार भी अपनी मुट्ठी गर्म करवाने के बाद, राष्ट्रीय ध्वज के अपमान के विषय में सोचना भूल जाता है। थाने के भीतर राष्ट्रीय ध्वज को भूमि पर पड़ा देखकर भी उसके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। मुट्ठी गर्माने से पहले वह राष्ट्रीय ध्वज के अपमान की बात कहते हुए, कितना लाल-पीला हो रहा था, परंतु लक्ष्मी का वरदान मिलते ही वह समदर्शी हो गया, उसके लिए मान-अपमान में कोई अंतर नहीं रहा।

इस व्यंग्य रचना के परिप्रेक्ष्य में स्वामी भूमानंद तीर्थ के विचारों का उल्लेख किया जा सकता है। श्रीधरन और अरुण वाखलू द्वारा संपादित पुस्तक *सशक्त मूल्यों का तेजस्वी भारत*

की भूमिका के अंतर्गत स्वामी भूमानंद तीर्थ कहते हैं- "निर्वाचित और चयनित प्रतिनिधि, राष्ट्र के संसाधनों का निर्माण और तैनाती निष्ठा, ईमानदारी तथा दूर दृष्टि के साथ कहने में, और नागरिकों के अंदर सही धारणा, मानक तथा लक्ष्य अनुप्राणित करने में समर्थ नहीं हुए हैं। राष्ट्रीय-मूल्यों का भारी क्षरण हुआ, जिससे व्यापक संकट पैदा हुआ है।" (6)

व्यंग्य रचना के प्रतिपाद्य तथा स्वामी भूमानंद तीर्थ के विचारों को सूत्रबद्ध करते हुए कहा जा सकता है कि यदि प्रशासनिक सेवा के अंतर्गत चयनित थानेदार और लोकमत द्वारा चयनित निगम पार्षद की तैनाती ईमानदारी और निष्ठा के साथ हुई होती तो राष्ट्रीय-मूल्यों का वैसा अवमूल्यन न हुआ होता, जैसा कि हरीश नवल द्वारा उपर्युक्त व्यंग्य रचना में दर्शाया गया। राष्ट्रीय मूल्यों का क्षरण, राष्ट्रीय एकता के मार्ग को भी अवरुद्ध करता है।

धर्मपाल मैनी किसी भी राष्ट्र का मूल्यांकन वहां के नागरिकों के आचरण के आधार पर सुनिश्चित करते हैं, *भारतीय जीवन मूल्य* पुस्तक के अंतर्गत वे कहते हैं- "किसी भी राष्ट्र का मूल्यांकन वहां के जन-समाज के आचरणगत मूल्यों के आधार पर होता है..... किसी भी देश की भौतिक प्रगति का भी महत्व है लेकिन भौतिक प्रगति को उस देश का शरीर कहा जा सकता है जबकि उसमें प्राण तत्व का संचार करने वाले जीवन मूल्य ही हैं।" (3)

धर्मपाल मैनी के कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत थानेदार और नगर निगम के पार्षद को अपने आचरण द्वारा, राष्ट्रीय-मूल्यों के प्रति, प्रतिबद्धता सुनिश्चित करनी चाहिए थी परंतु उन्होंने अर्थ-ग्राह्यता को महत्व दिया। उनके भ्रष्ट आचरण द्वारा राष्ट्रीय मूल्य खंडित हुए। वर्तमान समय में केवल भौतिक प्रगति को महत्व दिया जा रहा है। भौतिक साधनों की उपलब्धता के आधार पर किसी नागरिक के उत्कर्ष का आंकलन किया जा रहा है। जिस कार्य द्वारा उसकी जीवंतता सुनिश्चित होती है, उसका मानव होना सुनिश्चित होता है, उस कार्य को अपने आचरण द्वारा सिद्ध करने का कोई प्रयास नहीं किया जा रहा।

'रामलीला उर्फ रावण का ऊंचा कद' व्यंग्य रचना में हरीश नवल राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों की ओर संकेत करते हैं। इन विसंगतियों के चित्रण के लिए वे रावण का प्रतीकात्मक रूप उल्लेखित करते हैं। रावण को बुराई का, अन्याय का, अत्याचार का, अधर्म का और जीवन मूल्यों के हनन का प्रतीक माना जाता है। रावण को वर्तमान समय में व्याप्त

विसंगतियों का प्रतीक बनाते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "हम रावणमय होते जा रहे हैं। रावण प्रतीक है बुराई का।" (48)

वर्तमान समय में अपनी कपट-गाथा कहना गौरव का विषय माना जाता है। कपटी मनुष्य डंका पीट कर अपने भ्रष्ट व्यवहार का बखान करते हैं। कर्तव्यहीनता को झूठी शान का प्रतीक समझने वाले, कर्मचारियों का अपकर्ष दिखाते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- "यदि हम अध्यापक हैं तो बखान करते हैं कि हमारे बड़े मजे हैं, कक्षा ले या न लें कोई पूछने वाला नहीं है, नहीं लेने की बात कहते ही हमारी छाती फूल जाती है। यदि हम राजकीय अधिकारी हैं तो हमें रावण से और अधिक निकटता बढ़ाने का अवसर मिल जाता है।" (48)

हरीश नवल के कथन द्वारा राष्ट्रीय मूल्य मंगलकामना, भलाई तथा परहित क्षरित होते नजर आते हैं। एक अध्यापक यदि कक्षा न लेने में आनंद का अनुभव करता है तो इससे स्पष्ट है कि उसके अंतर्मन में विद्यार्थियों की भलाई और मंगल कामना के भाव निहित नहीं हैं। राजकीय पद पर प्रतिष्ठित होकर अधिकारियों का रावण के निकट होना यह दर्शाता है कि उस अधिकारी के अंतर्मन में अन्याय, अत्याचार तथा मिथ्या अभिमान का वास है। ऐसा व्यक्ति परहित के मार्ग पर अग्रसर कैसे हो पाएगा?

उपर्युक्त सभी क्षेत्र राष्ट्र से संबंध रखते हैं। अध्यापक का संबंध विद्यार्थियों से होता है और विद्यार्थी राष्ट्र के भविष्य के निर्माता होते हैं। अध्यापक का कार्य अत्यंत श्रमसाध्य और गरिमामंडित होता है। राष्ट्र के भावी निर्माता कैसे हों ? यह सुनिश्चित करने का गुरुतर भार उसके कंधों पर होता है यदि वह कक्षा न लेने में अपना गौरव समझता है तो आदर्श नागरिक के निर्माण की प्रक्रिया कैसे पूर्ण होगी? राजकीय कर्मचारी राष्ट्र के शासन तंत्र के महत्वपूर्ण घटक होते हैं, यदि वे कम कार्य करना अपनी शान समझेंगे तो अकर्मण्यता को बढ़ावा मिलेगा, अपने उत्तरदायित्व को उचित ढंग से न निभाना उनकी आदत में शामिल हो जाएगा। वह आदत उनके पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालेगी।

हरीश नवल रावण को प्रतीक बनाकर यह समझाना चाहते हैं कि रावण के समानांतर ही राम का चरित्र भी है परंतु हम रावण के चरित्र की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं क्योंकि बुराई को अपनाना सरल है, और अच्छाई के मार्ग का अनुगमन कठिन। व्यंग्य रचना के शीर्षक के अंतर्गत रावण के कद को ऊंचा दर्शाना अप्रत्यक्ष रूप से यह संकेत करता है कि वर्तमान समय में बुराई की ऊंचाई बढ़ रही है।

प्रस्तुत व्यंग्य रचना में हरीश नवल वर्तमान समय में मनुष्य के अंतस में विद्यमान कलुषित भावना का निराकरण करना चाहते हैं इसलिए वे निज राष्ट्र के नागरिकों के अंतर्मन में स्थित बुराइयों को दूर करने के लिए क्रियाशील हैं, इसी संदर्भ में पुस्तक *गीतिका* में कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला द्वारा रचित सरस्वती वंदना में कवि मां शारदा के सम्मुख प्रार्थना करता है- "वीणा वादिनी वर दे,.....कलुष भेद तम हर, प्रकाश भर, जगमग जग कर दे।" (33)

अर्थात् हे माता सरस्वती, आप मानव जगत के हृदय से कालिमायुक्त भेदभाव रूपी अंधकार को समाप्त कर दीजिए और समता रूपी प्रकाश से समस्त विश्व का अंतर्मन प्रकाशित कर दीजिए। महाप्राण कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला मां भारती से केवल अपने अंतर्मन को परिष्कृत करने का वरदान नहीं मांगते, अपितु उन की मंगल कामना समग्र विश्व के लिए है। यही विचारात्मकता जीवन मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को प्रमाणित करती है।

हरीश नवल मानव जगत में बुरी भावनाओं का प्राधान्य देखते हैं, इसलिए राष्ट्र से बुराई की निवृत्ति करना चाहते हैं और अच्छाई की वृद्धि करना चाहते हैं। अच्छाई के संबंध में धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (विस्तारक मूल्य: भाग 2) में नीरू लिखती हैं- "अच्छाई और बुराई के देवासुर-संग्राम में अंतिम विजय अच्छाई की होती है।" (38)

नीरू के कथनानुसार अच्छाई देवत्व का, और बुराई आसुरी- वृत्ति की प्रतीक है। किसी विशेष परिस्थिति में कर्तव्य-अनुसार जो कार्य करणीय है, उसे क्रियान्वित करना अच्छाई है। जो कार्य प्राणी-मात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है, जिस कार्य को प्रायोगिक रूप देने के परिप्रेक्ष्य में परहित की भावना कार्य करती है, वह अच्छा है। निस्वार्थ-भाव से कर्मरत रहने की प्रवृत्ति को अच्छाई की कसौटी बताते हुए नीरू आगे लिखती हैं- "स्वार्थ भावना से पूर्णतः मुक्त होकर निरंतर कष्ट सहते हुए भी मानव- मात्र के लिए कल्याणकारी धर्मों का निर्वाह करना ही अच्छाई की सबसे बड़ी कसौटी है।" (39)

लेखिका नीरू के विचारों के आलोक में कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में मानव बुराई के पथ का अनुगमन करता हुआ अपने जीवन को सुख-सुविधा युक्त बनाना चाहता है। अपने जीवन को सुख से संपन्न बनाने का प्रयास मनुष्य की उन्नति का परिचायक है, परंतु इस प्रयास की आड़ में नितांत सुविधाभोगी बन जाना उचित नहीं। वर्तमान मानव इस सीमा तक सुविधा-भोगी बन चुका है कि इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए वह अपने कर्तव्य पालन से भी विमुख हो जाता है। सरकारी अथवा गैर-सरकारी, किसी भी संस्थान में कार्य करते हुए उसकी

यही कोशिश होती है कि वह कम से कम काम करे, अधिक से अधिक विश्राम करे, अधिक से अधिक सुख-सुविधा के साधन प्राप्त करे। अपने कार्य को औचित्यपूर्ण सिद्ध करना, नागरिक का राष्ट्रीय कर्तव्य है, एक नागरिक के रूप में, अपने कर्तव्य-पालन करने में सजगता धारण करना, उसका राष्ट्रीय धर्म है।

मनुष्य के अंतर्मन में अच्छाई और बुराई के मध्य संग्राम छिड़ा रहता है, जिस वक्त अच्छाई का पलड़ा भारी होगा उस समय मानव आत्म-साक्षात्कार करेगा, वह निष्पक्षता से अतीत में अपने द्वारा किए गए कार्यों का आंकलन करेगा, अपने कुकृत्यों के प्रति लज्जित होगा और भ्रष्ट रीति से पाए गए सभी सुख-साधन उसे कांटो की तरह चुभने लगेंगे। उसके अंतर्मन में अपने दुष्कर्मों के प्रति ग्लानि और भर्त्सना के भाव जागृत होने लगेंगे।

व्यंग्यकार मानव जगत को लज्जित होने की, और अपराध बोध से ग्रसित होने की परिस्थिति से बचाना चाहता है इसलिए बुराई के भाव की निवृत्ति और अच्छाई के भाव की स्थिति से मानव जगत को संयोजित करना चाहता है।

4.4 राष्ट्र निर्माण, मनुष्यत्व, मनोविनोद तथा करुणा। इन राष्ट्रीय मूल्यों का क्षरण, हरीश नवल कृत पुस्तक *वाया पेरिस आया गांधीवाद* के अंतर्गत चिन्हित किया गया है।

'आर्य पुत्र दे चुके परीक्षा' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल शिक्षा जगत में व्याप्त विसंगतियों पर कड़ा प्रहार करते हैं। विद्यालय -महाविद्यालयों में परीक्षा के उपरांत उत्तर पुस्तिकाओं के परीक्षण का कार्यभार शिक्षक वर्ग पर आ जाता है। शिक्षक वर्ग का अपने कर्तव्यों से विमुख होना राष्ट्रीय मूल्यों की गंभीर क्षति का संकेतक है क्योंकि शिक्षक के ऊपर ही व्यक्ति निर्माण की प्रक्रिया का महान दायित्व होता है।

शिक्षा प्राप्ति का उद्देश्य व्यक्तिगत होता हुआ भी अंततः राष्ट्रीय महत्व को सुनिश्चित करता है क्योंकि किसी भी नागरिक की शिक्षा राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति में सहायक सिद्ध होती है। किसी राष्ट्र की उन्नति में वहां के नागरिकों की साक्षरता का महत्वपूर्ण योगदान होता है। हरीश नवल, परीक्षा- केंद्र में निरीक्षक के तौर पर कार्य करने वाले एक वरिष्ठ सहयोगी के विषय में लिखते हैं- "वे परीक्षा केंद्र में निरीक्षण करने आते हैं और वहीं बैठे उत्तर पुस्तिकाएं जांचते रहते हैं।" (26)

उपर्युक्त व्यंग्य कथन के अंतर्गत राष्ट्रीय मूल्य, राष्ट्र निर्माण का ध्वस्त होना दिखाई देता है। एक नागरिक राष्ट्र की इकाई होता है। शिक्षक, विद्यादान द्वारा विद्यार्थी को एक आदर्श नागरिक के रूप में तराशता है। इस उदात्त कार्य के निर्वहण के कारण, शिक्षक को समग्र समाज आदर की दृष्टि से देखता है। परीक्षा भवन के भीतर शिक्षक, विद्यार्थियों पर सजग दृष्टि न रखते हुए, यदि व्यक्तिगत कार्यों में संलग्न हो जाएगा तो आदर्श नागरिक के निर्माण की प्रक्रिया का भाव खंडित हो जाएगा। विद्यार्थियों के हृदय में ऐसे शिक्षक के प्रति आदर का भाव स्वतः क्षीण हो जाएगा।

परीक्षा के उपरांत उत्तर पुस्तिकाओं की जांच में लापरवाही दर्शाने वाले अध्यापकों को हरीश नवल व्यंग्यात्मकता के द्वारा उत्तम कोटि का तथा अपने जैसे जिम्मेदार शिक्षकों को अधम कोटि का बताते हुए लिखते हैं- "एक मुझ जैसे अधम कोटि के हैं जो आंखें खोल कर आर्य पुत्रों की परीक्षा लेते हैं और आंखें खोल कर ही जांचने की धृष्टता करना चाहते हैं, धृतराष्ट्रता से दूर रहते हैं।" (27)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरीश नवल वाग्वैद्वध्य द्वारा, लापरवाही से परीक्षा केंद्र में निरीक्षण करने वाले शिक्षकों को धृतराष्ट्र की उपमा देते हैं। वाणी के कौशल से वे कम शब्दों के प्रयोग द्वारा ही अपना मंतव्य स्पष्ट कर देते हैं। हरीश नवल उन परीक्षकों को धृतराष्ट्र कहते हैं जो परीक्षार्थियों को नकल करते देख भी अनदेखा कर देते हैं। उत्तर-पुस्तिकाएं जांचने के संबंध में भी वे धृतराष्ट्र बने रहते हैं, वे औचित्यपूर्ण ढंग से उत्तर-पुस्तिकाएं जांचने का कार्य नहीं करते। वे कम से कम समय में, अधिक से अधिक उत्तर-पुस्तिकाएं जांचना चाहते हैं, ताकि उन्हें अधिक से अधिक अर्थ-लाभ हो सके। जो निरीक्षक परीक्षा-भवन में उत्तर पुस्तिकाओं की जांच करेंगे, वे निरीक्षक के तौर पर अपने कर्तव्य-निर्वहण के प्रति सजग कैसे रह पाएंगे? इस स्थिति में उन परीक्षार्थियों के लिए नकल करना सरल हो जाएगा, जो आलस्य-वश परीक्षा की यथेष्ट तैयारी नहीं करते।

वर्तमान समय में अधिकतर शिक्षकों की कार्य-विधि को जिस प्रकार, हरीश नवल ने अपने एक सहयोगी के उदाहरण से दर्शाया है, उसी प्रकार के गुरुओं का व्यंग्यात्मक अर्थ बताते हुए हरीश नवल की समकालीन व्यंग्यकर्त्री सूर्यबाला देश सेवा के अखाड़े में पुस्तक के अंतर्गत लिखती हैं- "यदि आप 'गुरु' शब्द का विश्लेषण करेंगे तो इसका अर्थ होगा-गुरु अर्थात्

'गुरु' को जानने वाला। प्रश्न-कौन सा गुरु जानने वाला? उत्तर-विद्या को लय करने का गुरु जानने वाला।" (79)

सूर्यबाला के कहने का भाव यह है कि वर्तमान समय में गुरु शब्द की परिभाषा बदल गई है। जो शिक्षक, विद्या को अविद्या में लय करने की दिशा में अग्रसर है, वही गुरु है। वर्तमान समय की गति को देखते हुए जिस गुरु को अपने लक्ष्य-सिद्धि के सभी गुरु मालूम हैं, वही गुरु है। परीक्षा केंद्रों में, परीक्षण के दौरान यदि शिक्षक, सजगता-पूर्वक अपना कर्तव्य पालन नहीं करेंगे, वहां बैठकर उत्तर पुस्तिकाओं की जांच करते रहेंगे, तो नकल करने वाले परीक्षार्थी भी उत्तीर्ण हो जाएंगे। उन्होंने जो प्रश्न-पत्र हल किया होगा, उसके परिप्रेक्ष्य में उनके परिश्रम का कोई योगदान नहीं होगा। उनके द्वारा नकल करके, उत्तर-पुस्तिकाओं में जो लिखा जाएगा, उस विद्या का वास्तविक ज्ञान परीक्षार्थी को नहीं होगा। इस प्रकार विद्या-प्राप्ति के सभी प्रयास उस परीक्षार्थी के लिए असंगत सिद्ध होंगे। विद्यार्थी विद्या-प्राप्ति के लक्ष्य की साधना के लिए विद्यालय जाता है। यदि वह संकल्पित लक्ष्य को पूर्ण करने हेतु परिश्रम नहीं करता, तो विद्या प्राप्ति का वास्तविक लक्ष्य फलीभूत नहीं होगा। नकल करके परीक्षा में उत्तीर्ण तो हुआ जा सकता है, परंतु उस विद्या को अपने आचरण द्वारा प्रायोगिक स्वरूप नहीं दिया जा सकता।

इस तरह के विद्या-दाताओं के विषय में महेश शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक *चाणक्य नीति* में चाणक्य ने कहा है- "जो ब्राह्मण अपनी विद्या का प्रयोग केवल धन प्राप्ति के लिए करता है, समाज में उसका होना या न होना एक बराबर होता है। संसार में उसकी विद्वत्ता एवं ज्ञान का प्रसार कभी नहीं होता। ऐसे ब्राह्मण का एकमात्र उद्देश्य धनार्जन ही होता है।" (82)

चाणक्य द्वारा कहे गए कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि विद्या के क्षेत्र में विद्या दान देने वाले शिक्षकों को अपना उत्तरदायित्व जिम्मेदारी और ईमानदारी से निभाना चाहिए क्योंकि विद्या दान देने वाले गुरु का महत्व ईश्वर से भी अधिक माना गया है। व्यंग्य रचना में वर्णित कुछ शिक्षकों की वजह से पूरे शिक्षक समाज की गरिमा खंडित होती है और उन्हीं की वजह से औचित्य पूर्ण ढंग से कार्य करने वाले शिक्षक भी वह सम्मान नहीं पाते, जिसके वे अधिकारी हैं। प्रशासन में ऊंचे-ऊंचे पदों पर कार्यरत अधिकारी हों, अथवा ऊंची-ऊंची उपाधियों से नवाजे गए कलाकार हों, उनकी उपलब्धियों के मूल में सर्वाधिक योगदान उनके शिक्षक-वर्ग का ही होता है। विद्यार्थी की मेधा-दीपिका उसके गुरु के प्रभामण्डल से ही प्रदीप्त होती है।

‘भविष्य बनाने के सुनहरे कोर्स’ व्यंग्य रचना में हरीश नवल राष्ट्र के भावी निर्माताओं अर्थात् युवा वर्ग के उन भ्रष्ट प्रयासों पर व्यंग्य- शरों का संधान करते हैं जिनके द्वारा आज का युवा वर्ग बिना मेहनत से अथवा कम मेहनत से अपने लक्ष्य तक पहुंचना चाहता है। हरीश नवल, राष्ट्र के भावी कर्णधारों का भविष्य उज्ज्वल बनाने हेतु ऐसे कैरियर कोर्स की रूपरेखा तैयार करते हैं जिसका प्रयोग भ्रष्टाचार में दक्ष लोग कर रहे हैं। हरीश नवल व्यंग्यात्मकता के आधार पर निम्नलिखित पाठ्यक्रमों के द्वारा युवा वर्ग को उनके मनपसंद पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने का परामर्श देते हैं। हरीश नवल प्रथम कोर्स ‘सीढ़ी-पताका’ की पात्रता बताते हुए लिखते हैं- “बाल्यपन से थोड़ी बेईमानी करने पर भी मां बाप से शाबाशी प्राप्त शिक्षार्थी जल्दी ही सुयोग्य घोषित होता है। आत्मा की आवाज कान तक न पहुंचे, ऐसे गुण संपन्न को यह कोर्स अवश्य करना चाहिए।” (19)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरीश नवल इस तथ्य पर प्रकाश डालना चाहते हैं कि कोई भी मनुष्य जन्म लेते ही बेईमानी नहीं सीख लेता। उसके पारिवारिक परिवेश द्वारा उसका आचरण प्रतिबिंबित होता है। शैशवावस्था में कई बार, अभिभावक बच्चों द्वारा की गई बेईमानी को उसकी बाल-सुलभ हरकत समझ कर अनदेखा कर देते हैं। कई अभिभावक अपने बालकों के भ्रष्ट आचरण पर प्रसन्नता की अभिव्यक्ति भी करते हैं, यह सोचते हुए कि बालक वक्त के साथ कदम मिलाकर चल रहा है। ऐसे अभिभावकों के अंतर्मन में यह भावना प्रबल रूप से विद्यमान होती है कि जब समग्र तंत्र, चाहे सामाजिक हो, या राजनीतिक, यदि भ्रष्टाचार को अपने जीवन का एक अभिन्न अंग मानकर चलता है तो उसके अनुरूप चलना ही प्रगतिशीलता का प्रमाण है। आत्मा की आवाज को अनसुना कर देने से, आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक लाभ भले ही प्राप्त हो जाए, परंतु उसके मनुष्यत्व पर प्रश्नचिन्ह अवश्य लगता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

द्वितीय ‘अड़ंगी दबोच’ कोर्स की विशेषता के विषय में हरीश नवल ने बताया है इस कोर्स के उम्मीदवार अपने लक्ष्य की सिद्धि के साथ प्रतिपक्षी को धूल चटाने का कार्य बड़ी निपुणता के साथ निभाते हैं। ऐसे उम्मीदवारों के विषय में जानकारी देते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- “ढंग से, मेहनत करने पर इच्छित फल की प्राप्ति तो होती ही है, प्रतिपक्षी को मुंह की खानी पड़ जाती है।” (19)

हरीश नवल समाज के कुटिल लोगों की ओर संकेत करते हैं, जो किसी के बनते हुए कार्य में विघ्न उपस्थित कर, अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं। इस प्रक्रिया के प्रतिफलन से वे अन्य व्यक्ति के संभावित लाभ को तो अपनी झोली में डाल ही लेते हैं, दूसरे को परास्त करके अपने अहं की तुष्टि भी कर लेते हैं। प्रतिपक्ष को चारों खाने चित्त करने में उन्हें असीम आनंद की अनुभूति होती है। हरीश नवल द्वारा कहा गया उपर्युक्त कथन राष्ट्रीय मूल्य, मनोविनोद तथा करुणा के खंडन की ओर संकेत करता है। दूसरों के काम में व्यवधान डाल कर, उसके प्रयासों को निष्फल करते हुए आनंदित होना मनोविनोद का निषेधपरक रूप है। इससे यह पता चलता है कि दूसरे के दुख में खुशी अनुभव करने वाला व्यक्ति करुणा की भावना से विहीन है।

उपर्युक्त विवरण द्वारा हरीश नवल इस वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालना चाहते हैं कि वर्तमान समय में धन और यश की प्राप्ति के लिए उचित-अनुचित की परवाह किए बगैर, भ्रष्टाचार का मार्ग अपनाकर राष्ट्रहित के प्रतिकूल है, क्योंकि उपर्युक्त सभी विधियां अयोग्य पात्र की लक्ष्य-सिद्धि में सहायक हो जाती हैं और योग्य पात्र एक किनारे परित्यक्त और प्रतीक्षारत बैठे रहते हैं। ईमानदार व्यक्ति निरंतर असफलता का सामना करते-करते हार जाता है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की अपूर्णता, उससे उसकी सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु-ईमानदारी छीन लेती है।

शिक्षा के क्षेत्र में व्यवसायीकरण का प्रवेश हो चुका है। पहले पढ़ाई में कमजोर विद्यार्थियों को येन-केन प्रकारेण परीक्षाओं में उत्तीर्ण करवाने का प्रचलन था, परंतु वर्तमान में शिक्षा-जगत में क्रांति आ गई है। अब पढ़ने की भी जरूरत नहीं रही। इस संबंध में हरीश नवल के समकालीन व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय *कौन कुटिल खल कामी* पुस्तक में, शिक्षा-जगत का अपकर्ष दर्शाते हुए लिखते हैं- "आजकल बिना पढ़े डिग्रियां दिलवाने का धंधा जोरों पर है। दुकानें खुली हैं, दाम चुकाइये और जैसी चाहें डिग्री ले जाइए।" (129)

शिक्षा का क्षेत्र अत्यंत पावन, परिष्कृत एवं नीर-क्षीर विवेकी है। वर्तमान समय में इसके अंतर्गत विसंगतियां प्रवेश कर चुकी हैं। जो विद्यार्थी किसी पुस्तक का अध्ययन किए बिना, केवल दाम चुकाकर डिग्री हासिल करेगा, वह अपने कार्य-क्षेत्र के अंतर्गत गुणवत्तायुक्त कार्य कैसे कर पाएगा? उसके पास शिक्षा-प्राप्ति का केवल प्रमाण पत्र होगा, व्यावहारिक तौर पर वह उसे सिद्ध नहीं कर पाएगा, अपने विषय को स्पष्ट नहीं कर पाएगा। वर्तमान समय में राष्ट्र के

प्रत्येक सरकारी अथवा गैर-सरकारी, क्षेत्र में अधिकांशतः अयोग्य कर्मचारी कार्यरत हैं। परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय क्षेत्रों से संबंधित कार्यों की गुणवत्ता बाधित हो रही है। ऐसी स्थिति में गुणवत्ता-विहीन लोगों की पांचों उंगलियां घी में हैं और गुणवत्ता-युक्त लोग हाथ मलते दृष्टिगत हो रहे हैं।

यह बहुत खेदजनक और लज्जाजनक बात है कि हमारे पास उच्च जीवन मूल्यों से संयोजित परंपरा है और फिर भी हम लोग अपनी आंखों पर स्वार्थ की पट्टी बांधे जीवन मूल्यों से विखंडित जीवन जी रहे हैं, किस लिए ? केवल परिश्रम से बचने के लिए। हम कम समय में, कम मेहनत के द्वारा अधिक से अधिक सुख-सुविधा के साधन, ऐश्वर्य और यश पाना चाहते हैं। ऐसे लोगों के लिए महेश शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक *चाणक्य नीति* में *चाणक्य* ने कहा है- "यददूरं यद्दूराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥" (138)

उपर्युक्त श्लोक में चाणक्य ने श्रम रूपी तप का वर्णन किया है। चाणक्य के कथन का भाव यह है कि परिश्रम के द्वारा मनुष्य असंभव कार्यों को भी संभव बना सकता है। जिस वस्तु की प्राप्ति को साधारण-जन सीमा से परे मानते हैं, जिस वस्तु की प्राप्ति उन्हें संदिग्ध लगती है, और वे पूर्ण विश्वास के साथ यह मानते हैं कि किसी भी परिस्थिति में, किसी भी प्रकार की विधि अपनाने से वह वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती, परिश्रमी व्यक्ति कठोर श्रम के बल पर उसे भी प्राप्त करने की क्षमता रखता है।

मानव को प्रकृति ने असीम उर्जावान बनाया है, अनंत शक्तियों से संपन्न किया है, परंतु अपने व्यक्तित्व से उस शक्ति को उभारने के लिए मेहनत करनी पड़ती है। मनुष्य ने अपने आदिकालीन अरण्य-वास के उपरांत सभ्यता के विभिन्न सोपानों को पार किया, उत्तरोत्तर उन्नति के उच्च शिखरों को स्पर्श किया, किस के बल पर? जाहिर है, अपने परिश्रम के बल पर। अपनी मेहनत से उसने ऐसे चमत्कारी यंत्रों का निर्माण किया, जिनके द्वारा वह आकाश में विचरण कर सकता है, असीम सागर को लांघ सकता है, और रात में भी दिन का उजाला कर सकता है। वास्तव में परिश्रम ही वह आधारभूत गुण है, जिसके द्वारा जीवन में प्रत्येक कार्य की सफलता सुनिश्चित हो सकती है।

4.5 स्वाधीनता, उत्तुंगता, निष्कलुषता तथा राष्ट्रीय एकता। इन राष्ट्रीय मूल्यों का विखंडन, हरीश नवल द्वारा लिखित पुस्तक *इक्यावन व्यंग्य रचनाएं* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

‘गणतंत्र दिवस पर जलता हुआ मकान’ व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल उस वक्त की बात बताते हैं, जब गणतंत्र दिवस की परेड देखने के बाद उनकी पुत्री उनसे निबंध लिखने को कहती है, जिसका शीर्षक है ‘हाउस ऑन फायर’। यह शीर्षक सुनकर लेखक का ध्यान राष्ट्र में व्याप्त उन विसंगतियों रूपी अग्नि की तरफ चला जाता है, जिसकी ज्वलनशीलता से राष्ट्र की गरिमा, अखंडता, संस्कृति तथा अस्मिता के दग्ध होने का खतरा है।

गणतंत्र दिवस को प्रतीक बनाकर इस सच्चाई को रेखांकित किया गया है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीयों ने अपना संविधान बनाया और गर्व से विश्व की ओर देखा कि अब भारत पूर्णरूपेण स्वतंत्र हो चुका है। अब भारत में भारतवंशियों के द्वारा बनाए गए कानून लागू होंगे, परंतु क्या वास्तव में हम स्वाधीन हैं ? क्या वास्तव में हमने उपनिवेशवादिता का पूर्णतः त्याग कर दिया है ? क्या वास्तव में हम विदेशी प्रभाव से मुक्त हो चुके हैं? उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "हम अंग्रेजों के नहीं, उनकी अंग्रेजियत के मारे हुए हैं। अपनी अंग्रेजियत से उन्होंने हमारे घर जला रखे हैं और हम हैं कि होश में नहीं आ रहे हैं।" (146) उपर्युक्त कथन के आलोक में राष्ट्रीय मूल्य स्वाधीनता की भावना खंडित होते दर्शाई गई है। क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरांत भी, अधिकतर भारतीय जनमानस में अंग्रेजियत के प्रति प्रबल आकर्षण का भाव विद्यमान है। वे मानसिक दासता से मुक्त नहीं हो पाए हैं।

ऊपर लिखी पंक्तियों के माध्यम से हरीश नवल भारतीय जनमानस में जागृति लाना चाहते हैं कि वे इस सच्चाई को जानें कि राष्ट्र की स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए और भारतीयों ने अपना संविधान बना लिया, बस अब आप स्वतंत्रता के दिवास्वप्न देखने प्रारंभ कर दो। वास्तविक स्वतंत्रता तो मन से संबंध रखती है, यदि हमारे अंतर्मन में अंग्रेजी रहन सहन, अंग्रेजी पहरावा और अंग्रेजी तौर-तरीकों के प्रति आकर्षण न केवल बरकरार है अपितु उसके लिए हम अपने लोक-व्यवहार, भारतीय विचार तथा वेशभूषा इत्यादि को तिलांजलि दे रहे हैं तो यह स्वतंत्रता का दिखावा मात्र है। पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करने वालों को प्रशंसित दृष्टि से देखा जाता है और भारतीयता का अनुगमन करने वालों को पिछड़ा हुआ समझ कर उनका उपहास किया जाता है।

कौन कुटिल खल कामी पुस्तक के अंतर्गत प्रेम जनमेजय अंग्रेजियत को पसंद करने वाले अपने एक मित्र बी.डी. गुप्ता के अंग्रेजी प्रभाव से ग्रस्त होने के विषय में बताते हैं। वे अपने

उपनाम को गुप्ता के स्थान पर 'गुष्टा' कहलाना अधिक पसंद करते हैं, क्योंकि अंग्रेजी वर्णमाला में 'त' वर्ण नहीं होता। बी.डी. गुप्ता के मन पर ब्रिटिश प्रभाव का उल्लेख करते हुए प्रेम जनमेजय लिखते हैं- "हमारे गुष्टा जीहर उस तरह की वस्तु को पसंद करते हैं, जिसमें से अंग्रेजियत की 'सुगंध' आती हो। इसी सुगंध के चलते अंग्रेजी बोलना ही पसंद करते हैं।" (136)

उपर्युक्त प्रकार के नागरिक राष्ट्र की अस्मिता का रक्षण करने के स्थान पर हनन करते हैं क्योंकि हर राष्ट्र की अपनी स्वतंत्र भाषा होती है, उसके अंतर्गत जो प्रदेश हैं, उन की अपनी प्रादेशिक भाषाएं होती हैं, हर प्रदेश का अपना रहने सहने का अलग तरीका होता है, पारिवारिक और सामाजिक उत्सव मनाने के अलग-अलग ढंग होते हैं और उसी रीति से जीवन-यापन करने में ही राष्ट्र की लोक संस्कृति की, और राष्ट्रीय अखंडता की अक्षुण्णता सुनिश्चित होती है। यह बहुत बड़ी विडंबना है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के अनेक वर्ष बीत जाने के बाद भी अधिकांश भारतीयों की आंखों से अंग्रेजी चश्मा नहीं उतरा। स्वतंत्रता प्राप्ति का यह अर्थ नहीं है कि आजाद भारत में भारतीय मूल के लोग ही प्रशासनिक कार्य कर रहे हैं। यदि हमारे मन पर अभी भी ब्रिटिश प्रभाव है, तो इसका अर्थ यह है कि हमारे मस्तिष्क पर अभी तक उन्हीं का शासन है, फिर हम स्वतंत्र कैसे हुए? परतंत्र मानसिकता को धारण करने से हम समग्र रूप से, स्वयं को स्वतंत्र नहीं कह सकते।

स्वतंत्रता अथवा स्वाधीनता के विषय में *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (विस्तारक मूल्य: भाग 2) में लेखिका नीरू कहती हैं- "स्वाधीनता स्व की अधीनता है अर्थात् अपनी अधीनता। इसलिए 'स्व' इसका अनिवार्य तत्व है। यह 'स्व' जितना प्रबुद्ध होगा, स्वाधीनता उतने ही सक्षम रूप से क्रियान्वित होगी।" (262)

नीरू के कथन के परिप्रेक्ष्य में यह सत्य उभरकर सामने आता है कि विदेशी प्रभाव के कारण अपनी भाषा, वेशभूषा तथा परंपरा इत्यादि को त्याग कर मनुष्य 'स्व' को सुरक्षित रख ही नहीं सकता, क्योंकि वह तो 'पर' के प्रभाव से आवृत है। अपनी राष्ट्र-भाषा से इतर भाषा बोलते हुए, विदेशी परिवेश के अनुरूप अपने आचरण को दर्शाते हुए 'स्व' का प्रभाव शिथिल पड़ जाता है, और 'पर' की जकड़न सशक्त होती जाती है जो राष्ट्रीय मूल्यों के विखंडन की संकेतक है। इस कथन के आलोक से यह पता चलता है कि स्वतंत्रता या स्वाधीनता, जीवन मूल्य के अंतर्गत निरंतर जागृति और अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठा अत्यंत आवश्यक है। हरीश नवल द्वारा

कही गई पंक्तियां इस तथ्य पर प्रकाश डालती हैं कि बाहरी तौर पर तो राष्ट्र स्वतंत्र हो चुका है परंतु मानसिक गुलामी का अंत होना अभी शेष है।

अंग्रेजियत द्वारा हमारे घरों के जलने से यह अभिप्राय है कि हमारी घरों से अंग्रेजियत का प्रभाव पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है, हम अभी भी अंग्रेजी भाषा में बातचीत करने में, अंग्रेजी तौर तरीकों से जीने में और अंग्रेजी भाषा में अखबार या पत्रिकाएं पढ़ने में गौरवान्वित होते हैं, ऐसा करते समय हम यह भूल जाते हैं कि हमारे ये प्रयास हमारे राष्ट्र के स्वतंत्र होने की अवधारणा को खंडित करते हैं। अंग्रेजी प्रभाव के कारण यदि हमारी बातचीत में, कार्यप्रणाली में राष्ट्रीयता की झलक नजर नहीं आती तो हमारी स्वतंत्रता अधूरी है। विदेशी भाषा को महत्व देने से राष्ट्रीय एकता का भाव खंडित होता है क्योंकि जब राष्ट्रभाषा को कार्यालयी भाषा अथवा संपर्क भाषा, नहीं बनाया जाएगा तो राष्ट्रीय एकता निश्चय ही खंडित होगी।

‘संस्कार’ व्यंग्य रचना शिक्षा जगत में व्याप्त विसंगतियों पर तीखा प्रहार करती है। व्यंग्य की भाषा सरल होते हुए भी हृदय पर गाम्भीर्य की, अचूक चोट करते हुए पाठक तक भाव-संप्रेषण में पूर्णतः सक्षम है। शिक्षा क्षेत्र के उच्च कोटि के शिक्षाविद अपनी प्रभाव क्षमता का उपयोग शैक्षणिक क्षेत्र के पोषक के रूप में दर्शाते हुए अंततः अपनी जेब गर्म करने में ही तत्पर हैं, इस तथ्य को उपर्युक्त व्यंग्य रचना में अति प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

एक विद्यालय के प्रोफेसर एक सांस्कृतिक संस्थान के आयोजक को यह विश्वास दिलाने में सफल हो जाते हैं कि उन्होंने प्रतिभाशाली कवियों का एक वर्ग बनाया है जो अत्यंत गुणवत्ता-युक्त कविताओं का सृजन अत्यंत गंभीरता के साथ करता है। संस्थान का आयोजक उन पर विश्वास करके उन्हें पचास हजार रुपये देता है ताकि वे, उनके सम्मेलन में प्रतिभागिता करने के लिए दस योग्य कवियों का चयन कर सकें। उनके चरित्र का दूसरा पक्ष हरीश नवल इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं- "घर लौट कर प्रोफेसर महेश्वर ने लिफाफे में से आधे रुपए निकालकर अपनी सेफ में रखे और शेष आधे लेकर अपने जैसे दस संस्कारी कवियों की खोज में निकल गए।" (96)

प्रस्तुत कथन के आलोक में राष्ट्रीय मूल्य, उत्तुंगता का, विखंडन दृष्टिगत होता है। समाज के अंतर्गत शिक्षक वर्ग का अत्यंत महत्वपूर्ण और आदरयुक्त स्थान है। बाल्यकाल से लेकर, यौवन तक विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए, उनके सानिध्य में रहता है, अतः विद्यार्थी के चरित्र पर गुरु की प्रतिच्छाया का पड़ना स्वाभाविक है। प्रोफेसर महेश्वर ने संस्था से पचास

हज़ार रुपये लेकर, पच्चीस हज़ार रुपये अपने पास रखे, इस क्रिया द्वारा वे बेईमानों की श्रेणी में सम्मिलित तो हुए ही, गुरुपद की गरिमापूर्ण स्थिति पर भी अडिग कहां रह सके?

उपर्युक्त कथन के उल्लेख से हरीश नवल, शिक्षा जगत के अपकर्ष की ओर संकेत करते हैं। उनके कथन के द्वारा व्यंग्य के सत्यान्वेषी होने की भी पुष्टि होती है, क्योंकि हरीश नवल स्वयं प्रोफेसर होते हुए भी, दूसरे प्रोफेसर की पोल खोल कर रख देते हैं। उपर्युक्त पंक्ति प्रोफेसर महेश्वर की धन-लिप्सा की वृत्ति की ओर संकेत करती है और उनके विश्वासघाती रूप को भी दर्शाती है। ऊपर लिखी पंक्ति पढ़कर पाठक के मन में प्रश्न उभरता है कि सरस्वती का उपासक जब अर्थ का दास बन जाएगा, तो राष्ट्रीय मूल्यों का संरक्षण फिर कौन करेगा? क्योंकि शिक्षक ही वह कुशल निर्माता है जो राष्ट्र रूपी भवन की स्थिरता के लिए मज़बूत स्तंभ रूपी नागरिकों का निर्माण करता है।

जो विद्यार्थी-जीवन की कर्म-अग्नि में तपकर कुंदन रूपी आदर्श नागरिक का रूप धारण करते हैं, ऐसे ही नागरिकों के उज्ज्वल चरित्र के द्वारा राष्ट्र का इतिहास स्वर्णिम अक्षरों में अंकित होता है। यदि प्रोफेसर महेश्वर जैसे शिक्षक, विद्यार्थी जगत को मिलते रहे, तो राष्ट्रीयता की भावना जनमानस के हृदय से विलुप्त होने लगेगी क्योंकि कृतिकार जैसी कृति का निर्माण करेगा वह वैसी ही प्रदर्शित होगी।

वर्तमान समाज अर्थ प्रधान क्यों बन रहा है? इसलिए, क्योंकि विद्यार्थी होश संभालते ही समग्र समाज को अधिक से अधिक धन संचित करने के लिए दौड़-भाग करते देखता है। वह अनुभव करता है कि ज्यादातर लोग उचित-अनुचित को ताक पर रखते हुए, केवल धन प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य बनाए हुए हैं। ऐसी स्थिति में यदि वह भी राष्ट्रीय मूल्य भुला कर केवल धन एकत्रित करने पर ध्यान केंद्रित करे तो आश्चर्य कैसा? लेकिन यह स्थिति अत्यंत चिंतनीय है, इससे जीवन-मूल्य अर्थ संग्रह की भट्टी में झुलस कर रह जाते हैं, और समग्र राष्ट्र का ढांचा डगमगाता है। सरस्वती की आराधना करने वाले जब धन की आराधना करने लग जाएंगे तो पाठशाला, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का आदर्श नागरिक निर्माण करने का गरिमायुक्त उद्देश्य, अपूर्ण रह जाएगा। कालांतर में राष्ट्र के प्रति सर्वस्व उत्सर्ग करने के भावों के अंकुरण के लिए मानसभूमि की उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाएगी।

जो लोग साहित्य की किसी विधा के प्रसार प्रचार के लिए मिले हुए धन में से कुछ अंश स्वयं हड़प लेते हैं, हरीश नवल की समकालीन व्यंग्यकर्त्री सूर्यबाला उन्हें महापुरुष की संज्ञा

देती है। *देश सेवा के अखाड़े में* व्यंग्य पुस्तक के अंतर्गत वे ऐसे ही एक महापुरुष को तीन विकल्प देते हुए जानना चाहती हैं कि वे किस श्रेणी के महापुरुष हैं? इस विषय में सूर्यबाला लिखती हैं- "आप जो चंदा इकट्ठा करते हैं वह-(अ) सिर्फ आप हथिया लेते हैं? (ब) चमचों में भी बंट जाता है? (स) काफी हिस्सा पार्टी ले लेती है?" (59)

सूर्यबाला पहले प्रश्न के उत्तर के लिए चार, दूसरे प्रश्न के लिए दो, तथा तीसरे प्रश्न के उत्तर के लिए एक अंक निर्धारित करती हैं। वे सर्वाधिक अंक पाने वाले को महापुरुष की संज्ञा से विभूषित करती हैं। उपर्युक्त महापुरुषों के चोले को अभेद्य सुरक्षा कवच मानते हुए वे आगे लिखती हैं-" इस महापुरुषी चोले को उतारने की किसी माई के लाल में हिम्मत नहीं। अब खुले मुंह खाइए..... इस क्षेत्र के जंगल में कोई रोक-टोक, कोई मनाही नहीं।" (59)

हरीश नवल कृत व्यंग्य रचना और सूर्यबाला के व्यंग्यात्मक कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान समय इतना विसंगति भरा है कि लोग अधिक से अधिक धन-प्राप्ति की होड़ में सबसे आगे रहना चाहते हैं। अपने स्तर पर अपनाए गए भ्रष्ट तरीकों से जितना धन संग्रह कर सकते हैं वह तो करते ही हैं, यदि कोई अन्य व्यक्ति उन पर विश्वास करके उन्हें किसी राष्ट्रीय अथवा सामाजिक कार्य करने हेतु धन देते हैं तो वे लोग उसमें से भी कुछ राशि हड़प लेते हैं। ऐसा करके वे अमानत में खयानत तो करते ही हैं, दूसरों के प्रति विश्वासघात भी करते हैं। उनके द्वारा किया गया यह भ्रष्ट कृत्य राष्ट्र और समाज की गरिमा को खंडित करता है।

व्यंग्य रचना में वर्णित शिक्षक की मानसिकता, धन संचय के वृत्त के गिर्द घूमती है और धन का लोभ उसे शिक्षण के उदात्त उद्देश्य से परे ले जाता है। शिक्षक को तो जीवन मूल्य की जलती हुई मशाल लेकर आदर्श पथ से अनभिज्ञ, विद्यार्थियों को उचित मार्गदर्शन देना है, इसी विचार को विनोद कुमार अपनी पुस्तक *संघर्ष के साथ साथ* में प्रस्तुत पंक्तियों द्वारा दर्शाते हैं-

"जीवन सचमुच युद्ध है इससे, क्यों और कैसे टलोगे तुम।

दृढ़ प्रतिज्ञ हो बढ़ते रहो, दुनिया भी चलती रहे,

संघर्षरत लोगों के हाथ में, यह मशाल जलती रहे।" (55-56)

उपर्युक्त पंक्तियों में विनोद कुमार शिक्षक वर्ग को संघर्षरत बताते हुए कहते हैं कि वर्तमान अर्थ प्रधान युग में विद्यार्थियों को धन के प्रति आसक्ति से विमुख करना और राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति जागरूक करना अत्यंत कठिन और संघर्ष युक्त कार्य है। जीवन रूपी युद्ध में अच्छाई और बुराई में निरंतर संघर्ष होता रहता है। बुराई के मूल में अक्सर स्वार्थ भी नीहित रहता है। स्वार्थ के घेरे में बंधे, बुराई के चक्रव्यूह को को भेदना कठिन तो अवश्य है परंतु असंभव नहीं।

शिक्षक, शिक्षा के मूल उद्देश्य को विस्मृत न करता हुआ समस्त जीवन मूल्यों के प्रकाश स्तंभ द्वारा विद्यार्थियों को राह दिखाता रहे। राष्ट्रीय मूल्यों की तेजस्विता से प्रकाशित यह मशाल अनवरत जलती रहनी चाहिए, तभी मानव का मानव होना सुनिश्चित हो जाएगा। वर्तमान समय में प्रकृति अपने उग्रतम रूप को दर्शाते हुए मनुष्य को सावधान कर रही है कि धन का कोश जीवन की गतिशीलता के लिए अनिवार्य तत्व नहीं है। जीवन को संतुलित, सुव्यवस्थित तथा सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करना अपेक्षित है। जितना अधिक प्रकृति के साथ सहचर्य-भाव स्थापित होगा, मनुष्य स्वार्थ से उतना ही दूर होता जाएगा। मनुष्य का निस्वार्थ भाव उसे समाजहित और अंततः राष्ट्रहित की ओर उन्मुख करेगा।

'सैपल' व्यंग्य रचना, कलेवर में लघु होते हुए भी अर्थ-गाम्भीर्य की दृष्टि से, राष्ट्र की एक बृहद समस्या को उद्घाटित करती है। उपर्युक्त व्यंग्य रचना सरकारी कर्मचारियों की भ्रष्टाचारी वृत्ति की ओर इशारा करती है। उच्च स्तर पर लगे हुए सरकारी कर्मचारी बड़े-बड़े घोटाले करते हैं और छोटे स्तरों के कर्मचारी मुफ्त की भोजन व्यवस्था से ही संतुष्ट हो जाते हैं। यदि कोई अवसर हाथ लगे तो अपने अधिकार से भी अधिक वस्तु प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं।

प्रस्तुत व्यंग्य रचना में दर्शाया गया है कि मनोहर लाल एक सरकारी दफ्तर में छोटा सा कर्मचारी था। हिंदी कार्यशाला के दौरान वह नाश्ते में बाल गिरा होने की शिकायत करता है। नाश्ते का दूसरा डिब्बा मिल जाने पर भी वह पहले वाला डिब्बा यह कहकर ले लेता है कि वह नाश्ते का सैपल भरवा कर कसूरवार हलवाई को दंडित करवाएगा, इस तथ्य को वर्णित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "अपनी साइकिल के कैरियर पर बाल वाला डिब्बा रख मनोहर लाल बहुत ही मनोयोग से उसका उपभोग कर रहा था।" (102)

उपर्युक्त प्रसंग इस कटु सत्य की ओर संकेत करता है कि व्यापारी, दुकानदार, सरकारी कर्मचारी किसी न किसी रूप में बेईमानी से, अधिक से अधिक वस्तुएं पाने, के लिए

प्रयत्नशील रहते हैं, भले ही इसके लिए उन्हें राष्ट्रीय मूल्यों अथवा सामाजिक मूल्यों का हनन भी करना पड़े। उपर्युक्त व्यंग्य रचना वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति, वस्तुवादिता तथा हृदय दर्जे की स्वार्थी वृत्ति को प्रतिबिंबित करती है।

मनोहर लाल द्वारा किया गया भ्रष्ट व्यवहार, यत्किंचित स्वार्थ सिद्धि को दर्शाता है परंतु इसके द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों के उच्चतम कलश में दरार अवश्य पड़ती है क्योंकि मनोहर लाल तो केवल एक प्रतीक मात्र है, इसी प्रकार प्रत्येक सरकारी कार्यालय में, उस जैसे अनेक कर्मचारी हैं। कुल मिलाकर राष्ट्रीय धन का अत्यधिक अपव्यय होता है। उच्च स्तर पर विराजमान अफसर बड़ी राशि हजम करते हैं और छोटे स्तर पर बैठे कर्मचारी छोटी। निष्कर्षतः दोनों वर्गों के अधिकांश लोग राष्ट्र की समृद्धि को नष्ट करते हैं। छोटे पद पर कार्यरत कर्मचारी का असंगत व्यवहार इस कटु सत्य की ओर संकेत करता है कि यदि उसे अवसर मिले तो वह बड़े स्तर पर भी भ्रष्टाचार कर सकता है। मनुष्य के अंतर्मन में लोभ की वृत्ति जब वास कर लेती है, तो किसी अन्य शत्रु की आवश्यकता नहीं रहती।

उपर्युक्त कथन के द्वारा हरीश नवल, प्रशासन-तंत्र की छोटी सी विसंगति की ओर संकेत करते हैं, इसके लिए वे मनोहर लाल को प्रतीक बनाते हैं। इस विसंगति को यदि समग्र भारत के कार्यालयों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो इस विसंगति का बृहद रूप उभर कर सामने आता है। सरकारी तंत्र की इस विसंगति की ओर संकेत करना, हरीश नवल की परिष्कारक वृत्ति का संकेतक है।

मनोहर लाल द्वारा हिंदी कार्यशाला के दौरान मिलने वाले नाश्ते के डिब्बे में त्रुटि निकालना, दूसरा डिब्बा मिलने पर भी पहले वाले डिब्बे को ग्रहण करना और फिर डिब्बे में रखें त्रुटिपूर्ण भोजन का सेवन करना यह दर्शाता है कि मनोहर लाल में आत्म-नियंत्रण का अभाव है। यदि वह आत्म-नियंत्रण से संयुक्त होता तो यह भ्रष्ट आचरण न करता। आत्म-नियंत्रण एक जीवन मूल्य है, इस विषय में *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (विस्तारक मूल्य: भाग 2) में लेखिका नीरू का मानना है कि जब मनुष्य लोकमंगल के उदात्त लक्ष्य को लेकर चलता है, तो उसकी वृत्ति त्यागमयी हो जाती है। लोक-कल्याण का कार्य करते हुए सर्वप्रथम वह समय का त्याग करता है, परहित में संलग्न होने के कारण उसे अपना समय तो व्यय करना ही पड़ता है। जब मनुष्य अपना अमूल्य समय समर्पित कर देता है, तब वह अन्य भौतिक वस्तुओं का त्याग करने में विलंब नहीं करता, इस विषय में नीरू लिखती हैं- "लोक

कल्याण तथा आत्मोद्धार के लक्ष्य से निग्रह की उस अवस्था तक पहुंच जाना आत्म नियंत्रण की कसौटी है जहां पहुंचकर न भोगों में आसक्ति रहती है न कर्मों में।" (81)

किसी मनुष्य में आत्म-नियंत्रण का भाव होगा, तो वह उसके प्रत्येक कार्य द्वारा प्रतिबिंबित होगा। आत्म-नियंत्रण के द्वारा मनुष्य में जो सकारात्मक परिवर्तन होता है, उसे वर्णित करते हुए नीरू आगे लिखती हैं- "इसी से मनुष्य अधोगति से बचकर उर्ध्वगामी बनता है। वह स्वार्थ को त्यागता है, वह परहित के लिए अपने को गलाता है, वह खुद को जलाता है, दूसरों को रोशनी देता है। मानव जन्म की सार्थकता भी तो यही है।" (81)

ऊपर लिखित कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि आत्म-नियंत्रण की प्रवृत्ति अपनाने से मनुष्य मानवीय दुर्बलताओं से बचा रहता है। मानवीय दुर्बलताओं के अंतर्गत लोभ की प्रवृत्ति त्याग देने से मनुष्य आसक्ति रहित हो जाता है, और अपने संचित साधनों को समाज हितार्थ समर्पित कर देता है। यही नहीं, समाज-हित के लिए वह श्रमदान करने से भी पीछे नहीं हटता। मनुष्य दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए अपने सुख और आराम यदि त्यागता है, तो उस समय वह अपने मानवीय कर्तव्य का निर्वहण करता है, इसी में उसकी मनुष्यता की सार्थकता है। आत्मानियंत्रण मानवता की कसौटी है और व्यंग्य-रचना का पात्र मनोहर लाल अपने व्यवहार से आत्म नियंत्रण से हीन सिद्ध होता है। उसकी आत्मनियंत्रण से हीन वृत्ति दर्शाती है, कि वह अपने कार्यालयी कर्तव्य के निर्वहण के प्रति पर्याप्त सजग नहीं है। मनोहर लाल द्वारा किया गया भ्रष्टाचार भले ही लघु स्तर का रहा हो, परंतु उसका यह कृत्य उसके अंतर्मन में स्थित कपट और कलुष के भाव को अवश्य प्रतिबिंबित करता है। जिसके द्वारा राष्ट्रीय मूल्य निष्कलुषता का हनन हुआ है।

'रैली हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' व्यंग्य रचना में हरीश नवल रैलियों के आयोजन के परिप्रेक्ष्य में आयोजनकर्ताओं के भ्रष्ट मंसूबों की पोल खोलते हैं। रैलियों का लाभ चंद चतुर प्रकार के लोगों को मिलता है जो येन केन प्रकारेण लोगों की भीड़ इकट्ठी करवाते हैं और उसके द्वारा अपने स्वार्थ की रोटियां सेकते हैं। रैली के आयोजक, राजनेताओं को तथा समाज के नेताओं को थैलियां भेंट करते हैं। जो प्रकट में जनता द्वारा अपने प्रिय नेता को प्रदान की जाती हैं परंतु इसकी आड़ में राष्ट्र का धनिक वर्ग अपने काले धन को शुभ्र वर्ण प्रदान करता है। इस सन्दर्भ में हरीश नवल लिखते हैं- "रैली आयोजन में अपार राशि खर्च होती है। राशियां थैलियों में आती हैं...ये थैलियां प्रसारित की जाती हैं कि जनता द्वारा दी गई हैं, परंतु

वास्तविकता यह है कि यह उनके द्वारा दी जाती हैं, जिनका जनता से एक ही लेनदेन होता है कि उसे उल्लू कैसे बनाएं।" (112)

उपर्युक्त कथन यद्यपि हास्य का प्रेरक प्रतीत होता है, तथापि इसके द्वारा व्यंग्य के सत्यान्वेषी होने की पुष्टि होती है। हरीश नवल रैलियों की आड़ में, पूंजीपतियों तथा नेताओं की मिलीभगत तथा चरम सीमा तक पहुंचे हुए, उनके भ्रष्ट व्यवहार की कलई खोलते हैं। नेताओं को चुनाव जीतने के लिए रैलियों का आयोजन करवाना पड़ता है, इसके लिए वे पूंजीपतियों की शरण में जाते हैं। पूंजीपति-वर्ग समय की नब्ज को पहचान कर चुनाव के उस प्रत्याशी के लिए तिजोरियां खोल देता है, जिसके, चुनाव में विजित होने की पूर्ण संभावना होती है। पूंजीपति-वर्ग इस प्रक्रिया में एक तीर से दो शिकार करता है। पहला, काले धन को सफेद करना, दूसरा, चुनाव जीतने के बाद चयनित नेता से असाध्य कार्यों की सिद्धि करवाना। नेताओं और पूंजीपतियों के समीकरण के द्वारा हरीश नवल सामान्य जनता को, सजगता धारण करने के लिए प्रेरित करते हैं, ताकि जनता चुनाव के दौरान सोच- समझकर मतदान कर सके।

रैली प्रकरण में जनता नेता और पूंजीपति-चक्की के इन दो पाटों के मध्य पिसती है। रैली में भाग लेने के लिए कुछ लोग स्वार्थ में शामिल होते हैं और कुछ लोगों को उकसा कर, भड़का कर गाय भैंसों की तरह हांक कर शामिल किया जाता है। इस समग्र प्रक्रिया में वे लोग, जो नेता और जनता के बीच सेतु बनते हैं, वे अपनी खूब चांदी बनाते हैं। पूंजीपति- वर्ग, अपने-अपने नेता को चुनाव में विजय दिलवाने हेतु, पैसा पानी की तरह बहाते हैं। पैसे का अधिकांश भाग मध्यस्थ लोगों की तिजोरी में चला जाता है, सामान्य जनता के लिए केवल पानी ही शेष रह जाता है। कहने का भाव यह है कि सामान्य जनता के समक्ष आश्वासनों की बौछार कर दी जाती है, यह कहते हुए कि अरे, नेताजी को जीतने तो दो, फिर देखना तुम्हारे कैसे वारे-न्यारे होते हैं। चुनाव जीतने के बाद ये मध्यस्थ चुपके से कच्ची काट जाते हैं, और सामान्य जनता से न्यारे हो जाते हैं, अर्थात् पृथक हो जाते हैं।

इस विषय में हरीश नवल आगे लिखते हैं- "रैली में आम आदमियों को भेड़ बकरियों की तरह हांक कर लाया जाता है। गाय भैंस की भांति उनको दुहा जाता है। हम झुंड हैं हम रेवड़ हैं, हमारे बाल से ऊन बना लो, हमारे सींग से कंघा बना लो,.... हमारा क्या है, हम तो रैली के लिए ही हैं।" (112) इस कथन के आलोक में राष्ट्रीय मूल्य, राष्ट्रीय एकता का भाव खंडित हुआ है।

उपर्युक्त कथन द्वारा हरीश नवल जनता की विवश और विडम्बनापूर्ण स्थिति को उजागर करते हैं। कुछ चतुर चालाक लोग अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिए सामान्य जनता का केवल इस्तेमाल करते हैं-कभी न्याय की दुहाई देकर, कभी गरीबी हटाने के सब्जबाग दिखाकर, कभी जाति अथवा धर्म का संभावित खतरा बताकर। रैलियों के अंतर्गत साधारण जनता को भविष्य के सुनहरे सपने दिखाकर, कुछ लोग अपनी आने वाली अंसख्य पीढ़ियों के दिन स्वर्णमय और रात्रि रजतमय बना लेते हैं। चतुर और नीति निपुण लोग रैलियों के द्वारा अर्थ लाभ के साथ-साथ यश लाभ भी अर्जित कर लेते हैं और भोली भाली जनता को बरगला कर अपनी स्वार्थ सिद्धि की कामना फलित कर लेते हैं। सामान्य जनता हर परिस्थिति में नेताओं के लिए चुनाव जीतने का एक साधन मात्र है। नेता लोग इक्का-दुक्का चाटुकारों को ,राजनीतिक लाभ प्रदान कर देते हैं। नेताओं को, चाटुकार-वर्ग को खुश रखना ही पड़ता है, क्योंकि रैली का आयोजन करने हेतु ,भीड़ जुटाने का प्रबंध यही लोग करते हैं। अपनी स्वार्थ सिद्धि होते ही चाटुकार-वर्ग नेताओं की जयजयकार करते हुए, समाज और राष्ट्र में उनके उज्ज्वल छवि का प्रसार करवा देते हैं।

रैली का गठन चाहे चुनाव प्रचार के लिए हो, चाहे राष्ट्र के किसी क्षेत्र विशेष से जुड़ी समस्या को लेकर हो, चाहे, किसी सामाजिक बुराई की निवृत्ति के प्रयास के लिए हो, उस एकत्रीकरण में विद्यमान लोग किसी एक विचार बिंदु पर एकमत होते हैं या एकमत दर्शाए जाते हैं। दर्शाए जाते हैं, कथन से अभिप्राय है कि कुछ लोगों को तो इस तथ्य का ज्ञान तक नहीं होता कि उन्हें किस उद्देश्य के लिए एकत्रित किया गया है, वे लोग समाज के प्रभावशाली लोगों के प्रभाव या दबाव के कारण रैली में सम्मिलित हो जाते हैं। रैली अनगिनत नागरिकों से निर्मित एक बृहद समुच्चय है जिसे राष्ट्रीय एकता के विधिपरक उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए ही प्रायोगिक रूप देना चाहिए।

कुछ नेता इतने दूरदर्शी होते हैं कि भविष्य में होने वाली रैलियों की भी रूपरेखा, अग्रिम रूप से बना लेते हैं। समान जाति और सामान पूजा-पद्धति के मठाधीश अपनी जाति को परिवार सीमित रखने के लिए प्रेरित नहीं करते, अपितु परिवार बढ़ते रहने का आशीर्वाद देते हैं, जिसके परिप्रेक्ष्य में उनकी अतिरंजना-पूर्ण स्वार्थ से प्रेरित रणनीति होती है। वे सोचते हैं कि उनकी जाति के अंतर्गत जितने अधिक बच्चे होंगे, आने वाले समय में वोटों की संख्या भी उसी अनुपात से बढ़ेगी। उपर्युक्त कथन की पुष्टि हरीश नवल के समकालीन व्यंग्यकार सुरेश सेठ के कथन से हो सकती है। इस संदर्भ में सुरेश सेठ *नशतर की मुस्कान* पुस्तक में लिखते

हैं- "नेताजी को अपनी रैली करने के लिए किराए की भीड़ चाहिए, तो वहां भी उनके परिवार के अधिक आदमी जाकर 'मानवाधिकार जिंदाबाद'का नारा लगा सकते हैं।" (182)

सुरेश सेठ के कहने का भाव यह है कि रैली में भाग लेने के लिए जिस जाति के लोग अधिक होंगे, उस जाति के प्रत्याशी का चुनाव प्रचार अधिक सशक्त और प्रभावशाली हो जाएगा। वे लोग रैली में भाग लेने वाले अन्य नागरिकों के समक्ष अपने नेता की शान में कसीदे पढ़ेंगे, तो उनमें से कुछ लोगों के प्रभावित होने की संभावना तो रहेगी ही। रैली के आयोजन के परिप्रेक्ष्य में नेताओं का यही प्रयोजन रहता है कि सामान्य जनता पर उनका यथेष्ट प्रभाव पड़ सके। रैली के भीतर उनके चाटुकार सर्वत्र बिखरे होते हैं। वे जनसाधारण से अपने नेता की उदार और सहयोगी वृत्ति का बढ़-चढ़कर बखान करते हैं और झूठे-सच्चे उदाहरणों द्वारा नेता की विरुदावली गा-गाकर सुनाते हैं, जिससे यह सिद्ध हो सके कि उक्त नेता के अंतर्मन में समाज सेवा की भावना कितनी प्रखरता के साथ विद्यमान है।

इतिहास साक्षी है कि राष्ट्र को स्वतंत्र कराने के लिए भारत के जननायकों ने असंख्य रैलियां निकाली, ब्रिटिश शासन के विरुद्ध कई आंदोलन किए, ये रैलियां राष्ट्र की स्वतंत्रता के उद्देश्य से आयोजित हुईं, जिसके अंतर्गत किसी व्यक्ति, जाति, धर्म अथवा संप्रदाय का कोई दखल नहीं था। सभी राष्ट्र के जिम्मेवार नागरिक का कर्तव्य निभाते हुए अपना-अपना कार्य करने में तल्लीन थे। वे सभी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के स्थान पर लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना चाहते थे।

लोकतंत्र की संकल्पना को मूर्त रूप देने के लिए जिन मूल्यों की अनिवार्यता है-उस विषय में धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (आधुनिक मूल्य: भाग 5) में सत्येंद्र शर्मा कहते हैं- "निस्वार्थता, सहिष्णुता, संवेदनशीलता, आत्मसम्मान, जागरूकता और सक्रियता आदि वे मूल्य हैं जिन से लोकतांत्रिक जीवन शैली का गठन होता है।" (172)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से सत्येंद्र शर्मा इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि राष्ट्र में नागरिकों के संगठन का आधार निस्वार्थ होना चाहिए, राष्ट्रहित पर आधारित होना चाहिए। उसके अंतर्गत समाज में सर्वत्र सहिष्णुता का प्रसार होना चाहिए, और नागरिकों के कार्य व्यापार में राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति तथा राष्ट्र की सुरक्षा के प्रति कटिबद्धता का भाव होना चाहिए। उपर्युक्त व्यंग्य रचना में रैली का गठन राष्ट्र और समाज के कुछ नीति-निपुण नेता

अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की सिद्धि के लिए करते हैं, जिसके अंतर्गत सामान्य जनता का केवल शोषण होता है। चुनाव प्रचार की रैलियां नेताओं, उनके परिचितों तथा पूंजीपतियों के लिए ही कल्याणकारी सिद्ध होती हैं। सामान्य नागरिकों को नेताओं के झूठे आश्वासनों से संतुष्ट रह जाना पड़ता है और अगले 5 वर्षों के व्यतीत होने की प्रतीक्षा में समय गुजारना पड़ता है।

4.6 उत्सर्ग, विश्व बंधुत्व, रक्षण, परमार्थ-दृष्टि तथा लोकप्रियता। इन राष्ट्रीय मूल्यों का ध्वस्तीकरण, हरीश नवल कृत व्यंग्य पुस्तक *माफिया जिंदाबाद* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

'ऑल इज वेल' व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल चढ़ते सूरज को सलाम कहने की स्वार्थी वृत्ति की ओर संकेत करते हैं, जिसके अंतर्गत राष्ट्रीयता के स्थान पर प्रांतीयता को बढ़ावा दिया जाता है। राष्ट्रीय हितों को तिरस्कृत कर व्यक्ति हित को प्रमुखता दी जाती हैं। जो व्यक्ति समाज में प्रभुत्व से संपन्न हैं, उसके आगे-पीछे घूम-घूम कर उसी के नाम का डंका पीटा जाता है, इस तथ्य को रेखांकित करते हुए हरीश नवल कहते हैं- "कितना सही लगता है कि राष्ट्र से महाराष्ट्र ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है। युद्ध से..... महायुद्ध, कुंभ से 'महाकुंभ' तथा जन से बड़ा 'महाजन' होता है न।" (85)

सही अर्थों में राष्ट्र महत्वपूर्ण है, क्योंकि राष्ट्र का अर्थ समग्र भारत है। महाराष्ट्र भारत का एक हिस्सा है, एक प्रांत है। उपर्युक्त एक पंक्ति के द्वारा हरीश नवल 'गागर में सागर भरना' मुहावरे को सार्थक कर देते हैं। महाराष्ट्र को हरीश नवल ने व्यंग्यात्मकता के अंतर्गत, महा-राष्ट्र कहा है, इस शब्द को प्रयुक्त करते हुए हरीश नवल ने, राजनेताओं की संकीर्ण मनोवृत्ति पर आक्षेप किया है। नेता लोग, अपने प्रांत की छवि उभारने हेतु राष्ट्रीय मूल्यों का निर्वहण करना भूल जाते हैं। राष्ट्र के उच्च प्रशासनिक पद पर आसीन नेता, किसी स्थानीय नेता को भारत में खेले जाने वाले, क्रिकेट मैच के अवलोकन का, आमंत्रण देने स्वयं चल कर जाते हैं। उनके इस प्रयास से स्थानीय नेता के वर्चस्व का उद्घाटन तो होता ही है, राजनीतिक तंत्र की वोट पुख्ता करने की रणनीति भी प्रतिबिंबित होती है। राष्ट्र की संपत्ति से अपने भंडार भरने के लिए प्रथम चरण, जिसे तय करना अपेक्षित रहता है, वह है, वोटों के भंडार एकत्रित करना।

समाज में जिस महापुरुष की जयजयकार होती हो, उसे अपने पक्ष में रखना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि उनके पक्ष में आते ही उनके समस्त अनुयायियों के वोट अपने -आप ही खुद की तरफ खिंचे चले आते हैं। उपर्युक्त लक्ष्य की सिद्धि के लिए जब भी कोई उचित अवसर हाथ लगे, उस महापुरुष को नेता लोग सामाजिक रूप से सम्मानित कर देते हैं, इस तथ्य को

रेखांकित करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- "शरद भाई को मुंबई जाकर उन्हें आईपीएल प्रकरण के लिए मनाना पड़ा, क्योंकि 'माय नेम इज खान'के आगे ठाकरेज के नाम भारी पड़ रहे थे-पवार बाबू आभारी हो रहे थे।" (85) उपर्युक्त कथन के आलोक में राष्ट्रीय मूल्य, उत्सर्ग का क्षरण हुआ है। नेता लोग व्यक्तिगत हितों को प्रमुख मानते हुए राष्ट्रीय हितों का उत्सर्ग करने को प्रवृत्त हो जाते हैं। वे अगले चुनाव में विजित होने की पूर्व-पीठिका के निर्माण हेतु समाज में लोकप्रिय व्यक्ति की चाटुकारिता करने में गौरव समझने लगते हैं। राष्ट्रीय हित के सम्मुख व्यक्तिगत हित को प्रमुख मानना, उत्सर्ग का निषेधपरक रूप है।

हरीश नवल द्वारा कहे गए कथन के आधार से सिद्ध होता है कि महाराष्ट्र में जिस स्थानीय नेता का बोलबाला है, जिनके नाम का डंका बजता है, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री भी उनके आगे घुटने टेकते हैं। कोई भी प्रतिस्पर्धा हो चाहे खेल से संबंधित, चित्रकला से संबंधित अथवा अभिनय से संबंधित, सभी स्पर्धाएं राष्ट्रीयता की भावना से पूरित होती हैं। अगर यह प्रतिस्पर्धाएं विभिन्न राज्यों के मध्य हों तो इन के माध्यम से राष्ट्रीय एकता की भावना को बल मिलता है। भारत की स्पर्धा यदि अन्य राष्ट्र से हो तो अंतरराष्ट्रीय संपर्क सूत्र जुड़ते हैं और विभिन्न राष्ट्रों के मध्य सद्भावना का प्रसार होता है।

हरीश नवल राष्ट्र के अंतर्गत होने वाले क्रिकेट के खेल को राजनीति से संश्लिष्ट करते हैं और और उनकी समकालीन व्यंग्यकर्त्री सूर्यबाला अपनी व्यंग्य रचना के अंतर्गत उन संदर्भों को वर्णित करती हैं, जिस दौरान हमारी क्रिकेट टीम अन्य देशों से प्रतिस्पर्धा करती हुई निरंतर हार का सामना कर रही थी। यह तथ्य सर्वविदित है कि अधिकांश भारतीय, विदेशी वस्तुओं के प्रति अत्यंत आकर्षण का भाव रखते हैं, परंतु विदेशी खेल, क्रिकेट के प्रति लगभग हर भारतीय आकर्षित है। वर्तमान में क्रिकेट मैच के दौरान लोग दूरदर्शन पर आंखें गड़ाए रहते हैं। दूरदर्शन का पदार्पण जब भारत में नहीं हुआ था, तब क्रिकेट-प्रेमी लोग ट्रांसिस्टर को कानों से लगाए रखते थे। क्रिकेट के प्रति अत्यधिक आकर्षण का भाव होने से, यह जानने की भी बहुत उत्सुकता रहती थी कि प्रतिस्पर्धा में किस राष्ट्र की जीत हुई। उन दिनों क्रिकेट-प्रेमी इस दुख के कारण सूख-सूख कर कांटा हुए जा रहे थे, कि आखिर भारतीय टीम लगातार हार क्यों रही है? हार के कारणों पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए सूर्यबाला *देश सेवा के अखाड़े* में पुस्तक के अंतर्गत लिखती हैं- "निश्चित रूप से इसके पीछे कुछ विदेशी ताकतों और साजिशों का हाथ है, जिसकी वजह से हमारी टीम खेल का सही प्रदर्शन नहीं कर पा रही।" (155)

उपर्युक्त कथन द्वारा सूर्यबाला अप्रत्यक्ष रूप से इस सत्य को उद्घाटित करना चाहती हैं कि विदेशी शक्तियां, कुछ भारतीय खिलाड़ियों पर, धन की वर्षा कर देती हैं; जिसमें भीगकर बेचारा खिलाड़ी बेहतर प्रदर्शन नहीं कर पाता। हरीश नवल ने क्रिकेट को राष्ट्र की राजनीति से जोड़ा है, सूर्यबाला उनसे भी एक कदम आगे जाकर उसे अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति से जोड़ती हैं। दोनों ही स्थितियों में राष्ट्रीय मूल्यों का क्षरण होता है। पहली स्थिति में, राजतंत्र द्वारा खेल को, खेल-भावना से न लेते हुए वोट बैंक पुख्ता करने के प्रयास दर्शाए गए हैं। दूसरी स्थिति में, एक खिलाड़ी द्वारा व्यक्तिगत अर्थ-लाभ के लिए समग्र राष्ट्र की गरिमा खंडित करने का दुस्साहस दर्शाया गया है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जब भी प्रतिस्पर्धा होती है, तो यह नहीं कहा जाता कि अमुक खिलाड़ी हारा है; तब सब जगह यही प्रसारित होता है कि क्रिकेट मैच में भारत की करारी हार।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के द्वारा हरीश नवल राजनेताओं की राष्ट्र के प्रति, प्रतिबद्धता का संदिग्ध होना दर्शाते हैं। सूर्यबाला की व्यंग्य रचना में खेल के दौरान राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाले खिलाड़ी की खंडित प्रतिबद्धता दृष्टिगत होती है। उसका भ्रष्ट व्यवहार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समग्र राष्ट्र की छवि को श्रीहीन करता है। यद्यपि सभी खिलाड़ी या किसी अन्य कला से संबंधित कलाकार, उपर्युक्त ढंग से भ्रष्टाचार नहीं करते, परंतु यह मुहावरा तो प्रसिद्ध है कि 'एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है।' कला का सच्चा उपासक अपनी विधा के प्रति पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध होता है, पूरी तरह समर्पित होता है। कला के प्रति उसका समर्पण- भाव राष्ट्र के प्रति उसकी प्रतिबद्धता को भी सुनिश्चित करता है, क्योंकि वह राष्ट्र का एक प्रमुख घटक है। प्रमुख इसलिए, क्योंकि उसकी कला के द्वारा राष्ट्र के अधिकांश लोग उसे जानते हैं। उसके द्वारा उठाया गया सकारात्मक कदम समूचे राष्ट्र की कीर्ति को महिमामण्डित भी कर सकता है, और उसके द्वारा उठाया गया नकारात्मक कदम राष्ट्र की साख को मिट्टी में भी मिला सकता है।

विभिन्न प्रदेशों के प्रतियोगियों की प्रतिभागिता द्वारा एक दूसरे के प्रदेश की वेशभूषा, खानपान, रहन सहन और लोक-संस्कृति के विषय में जानकारी मिलती है। इस प्रकार की प्रतिस्पर्धाएं राष्ट्रीय अखंडता के भाव को सुनिश्चित करने की दिशा में एक सशक्त प्रयास सिद्ध होती हैं। इसी मत की पुष्टि करते हुए धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित पुस्तक *मानव मूल्य व्याख्या* कोश के अंतर्गत (सत्यम शिवम सुंदरम परक मूल्य : भाग 3) में आदित्य प्रचण्डिया लिखते हैं- "किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उसकी आत्मा होती है। उसमें राष्ट्र की परंपरा, विरासत, धरोहर,

आस्था, अतीत, की स्मृति आदि का संश्लिष्ट रूप होता है..... अपनी संस्कृति की व्याख्या, विवेचना और महत्ता का आख्यान नाना रूपों में होते रहना चाहिए।" (211)

आदित्य प्रचंडिया के कहने का भाव यह है कि राष्ट्र और संस्कृति परस्पर सापेक्ष हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संस्कृति के अभाव में राष्ट्र की संकल्पना असंभव है। संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में ही राष्ट्र की परंपरा और आस्था का भाव परिलक्षित होता है। समकालीन पीढ़ी को राष्ट्र की संस्कृति से जोड़ने के लिए जो कार्य किए जाने चाहिए, उसके संदर्भ में आदित्य प्रचंडिया आगे लिखते हैं- "लोकगीत, लोक नृत्य, लोकनाट्य और लोक साहित्य की समृद्धि का प्रयास इसकी एक दिशा है..... मनुष्य अपना त्याग परिवार के लिए, परिवार का कुल के लिए, कुल का समाज के लिए और समाज का राष्ट्र के लिए करता है।" (211)

आदित्य प्रचंडिया ने संस्कृति की महत्ता संप्रेषित करने के लिए जिन तत्वों का उल्लेख किया है, उनमें से लोकनाट्य भी एक है। उर्दू भाषा में नाटक को खेल कहा जाता है। उपर्युक्त रचना में क्रिकेट के खेल का जिक्र है। यद्यपि यह भारतीय खेल नहीं है, परंतु हरीश नवल ने इसे एक प्रतीक के रूप में ही लिया है। विदेशी खेलों के प्रति भी समान खेल-भावना दर्शाना व्यंग्यकार की 'वसुधैव कुटुंबकम' की अवधारणा की पुष्टि करता है। राजनेता, कला के अन्य क्षेत्रों के प्रति भी ऐसा ही 'एक पंथ दो काज' वाला व्यवहार करते रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर कोई भी खेल अथवा सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करते समय, वे किसी प्रभावशाली व्यक्ति को आमंत्रित करना नहीं भूलते। इस प्रक्रिया में वे उस प्रभावशाली व्यक्ति को सम्मानित भी करते हैं और समाज में अपनी छवि को भी उज्ज्वल बनाने की कोशिश करते हैं।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना में हरीश नवल ने क्रिकेट के खेल प्रकरण के संबंध में मुख्यमंत्री द्वारा एक प्रभुता संपन्न व्यक्ति के आगे विनयशील होना दर्शाया है। विनयशील होना अच्छी बात है, परंतु बात यदि राष्ट्रीय महत्व की है तो इस संदर्भ में प्रत्येक नागरिक समान है। आदित्य प्रचंडिया ने भी कहा है कि राष्ट्र की अखंडता के लिए लोकगीत, लोकनाट्य इत्यादि कार्यक्रमों का आयोजन होते रहना चाहिए तो इस कड़ी में खेल भी परिगणित होते हैं।

खेलों के आयोजन के लिए मुख्यमंत्री किसी विशेष व्यक्ति के आभारी बनते हैं तो उनके इस कार्य से वैयक्तिकता की गंध आती है। खेलों का आयोजन राष्ट्रीय आयोजन है, राष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों को एक सूत्रता में बांधने की दिशा में उठाया गया कदम है। एक आदर्श नागरिक तो राष्ट्र के लिए अपने परिवार तथा अपने कुल तक का त्याग करने को तत्पर हो जाता है फिर

राष्ट्रीय स्तर के खेल आयोजन में नेता वर्ग अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का, व्यक्तिगत संपर्क सूत्रों का परित्याग नहीं कर सकता?

‘ददा! अगले जन्म की भोर ना करें’ व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, अपने अग्रज व्यंग्य-कवि मुकुटबिहारी ‘सरोज’ के प्रति श्रद्धा के भाव समर्पित करते हैं। प्रख्यात व्यंग्य-कवि मुकुटबिहारी ‘सरोज’ को अति प्रतिभावान होने पर भी, बहुत विलंब से पुरस्कार प्रदान किया गया, क्योंकि वे अत्यंत सरल हृदय, स्वाभिमानी तथा ठकुरसुहाती वृत्ति को नापसंद करते थे। हरीश नवल उन्हें व्यंग्यात्मक ढंग से जमाने की नब्ज पहचान कर जीवन-पथ पर अग्रसर होने का आग्रह करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर मिलने वाले पुरस्कारों के वितरण के परिप्रेक्ष्य में राजनेता, जो रणनीति अपनाते हैं वह सर्वविदित है। पुरस्कारों के आकांक्षी लोग पुरस्कार -दाता की ऐसी अतिशयोक्ति-पूर्ण स्तुति करते हैं कि यदि चाटुकारिता साकार रूप धारण कर ले, तो लज्जित होकर भाग खड़ी हो। स्वाभिमानी व्यक्ति को पुरस्कार -प्राप्ति के लिए प्रतीक्षारत रहना पड़ता है; धैर्य को अपनाना पड़ता है। पुरस्कार पाने के प्रयासरत लोगों के, उतावलेपन का उपहास करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- “उपाधि-प्राप्ति के लिए कौन-कौन, क्या-क्या, कैसे-कैसे पापड़ बेलता है,..... कौन नहीं जानता-कि राजनीतिक राष्ट्रीय उत्सवों पर यूं ही उपाधियां नहीं मिल जाती, इस खाला जी के घर का रास्ता बड़ा विकट है, सबको पता है।” (92)

हरीश नवल न केवल साहित्य क्षेत्र की विसंगतियां वर्णित करते हैं अपितु आजादी के बाद से राष्ट्र में व्याप्त, विसंगतियों की तरफ भी इशारा कर रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत भूमि, राष्ट्र में एक ऐसा परिवेश निर्मित होने की संकल्पना कर रही थी, जो क्षेत्रवाद, प्रांतवाद, भाषावाद, जातिवाद तथा भ्रष्टाचार से सर्वथा मुक्त हो। प्रत्यक्षतः हरीश नवल, मुकुटबिहारी सरोज को विलंब से साहित्यिक सम्मान मिलने पर खेद की अभिव्यक्ति करते हैं, वास्तव में वे मुकुट बिहारी सरोज की ईमानदारी की श्लाघा कर रहे हैं, कि ईमान के रास्ते पर उन्हें उनका प्राप्य नहीं मिल पाया, जिसके वे अधिकारी थे। उनसे कम प्रतिभाशाली लोग बड़ी-बड़ी उपाधियों से लाभान्वित हो गए, केवल अवसरवादिता और चाटुकारिता के बल पर। मुकुट बिहारी सरोज के यह कहने पर कि-मुंह देखे की उनसे नहीं कही जाती, हरीश नवल आगे कहते हैं- “देखना श्रद्धेय, बिना मुंह देखे कि गणतंत्र दिवस के पुरस्कार तंत्र की तैयारियां झूठे-सच्चे, पक्के-कच्चे बायोडाटाओं के द्वारा खूब जोर से और बिन शोर के की जा रही हैं।”(94)

उपर्युक्त कथन के द्वारा राष्ट्रीय मूल्य, विश्व-बंधुत्व का क्षरण दर्शाया गया है। राष्ट्रीय पुरस्कार वितरण के अंतर्गत, भाई भतीजावाद, संपर्क सूत्र तथा चाटुकारिता के आधार पर प्रश्रय दिया जाना, विश्व बंधुत्व की विचारात्मकता को क्षीण करता है। विश्व-बंधुत्व के अंतर्गत समग्र सृष्टि के प्राणियों के प्रति आत्मीय भाव रखना अपेक्षित है। यदि मानव-जगत में भेदभाव करते हुए, समृद्धि और यश के प्रतीक रूप में पुरस्कार प्रदान किए जाएंगे तो विश्व बंधुत्व की गरिमामंडित भावना खंडित हो जाएगी।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (विस्तारक मूल्य: भाग 2) में नीरू ने विश्व-बंधुत्व की कसौटी को वर्णित करते हुए लिखा है-"संपूर्ण चराचर के प्रति मैत्री व करुणा का भाव रखना ही विश्व-बंधुत्व की कसौटी है।" (201) हमारे पुरस्कार दाता तो अपने ही राष्ट्र के नागरिकों के प्रति निष्पक्षता से, करुणा भाव को अपने अंतर्मन में स्थान नहीं देते, तो विश्व-बंधुत्व की अवधारणा का अनुपालन करना उनके लिए टेढ़ी खीर है।

हरीश नवल, साहित्य क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर मिलने वाले पुरस्कारों के प्रबन्धन पर प्रकाश डालते हैं कि जो लोग वास्तव में राष्ट्रीय स्तर पर मिलने वाले पुरस्कारों के हकदार हैं, परंतु संकोच वश अथवा स्वाभिमान वश आगे नहीं आते हैं, उन्हें राष्ट्र का पुरस्कार-तंत्र तिरस्कृत कर देता है। जो लोग संपर्क का लाभ उठाकर, झूठे-सच्चे साक्ष्य प्रस्तुत कर, स्वयं को पुरस्कार प्राप्ति के योग्य सिद्ध कर लेते हैं, उन्हें पुरस्कारों से सम्मानित कर दिया जाता है। छल से अथवा चाटुकारिता से पुरस्कार पाते हुए, मनुष्य की अंतरात्मा उसे अवश्य आगाह करती है कि यह पुरस्कार उसे, उसकी प्रतिभा अथवा परिश्रम के आधार पर नहीं मिल रहा, अपितु कई प्रकार के जोड़-तोड़ से, विभिन्न संपर्क-सूत्रों के प्रयोग से प्राप्त हुआ है।

हरीश नवल, व्यंग्यात्मकता के द्वारा मनुष्य के अंतर्मन में स्थित लोभ की वृत्ति को दर्शाता चाहते हैं। यश और धन-प्राप्ति का लोभ, मनुष्य से विसंगति युक्त आचरण करवाता है। राष्ट्रीय स्तर पर मिलने वाले पुरस्कारों के द्वारा धन और यश दोनों प्राप्त होते हैं, इसलिए योग्यता और अयोग्यता को ताक पर रखते हुए, धन और यश के लोभी, योग्य लोगों को हाशिए पर डाल देते हैं, और स्वयं को पुरस्कार के अधिकारी मानते हुए पुरस्कारों पर हाथ साफ कर जाते हैं।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना में हरीश नवल, मुकुटबिहारी सरोज को पुरस्कार प्राप्त किए जाने की विधि, व्यंग्यात्मक ढंग से समझाते हैं। भारत में देश पर मर-मिटने वालों के नाम पर नहीं, अपितु सत्तारूढ़ नेताओं के नाम पर, अथवा उनके बाप दादाओं के नाम पर, विश्वविद्यालय

खोले गए हैं। पुरस्कार के इच्छुक उम्मीदवारों को इन विश्वविद्यालयों में अपने संपर्क-सूत्र बढ़ाने चाहिए। पुरस्कारों के इच्छाधारियों की अहर्ता बताते हुए *आलोचना और संस्कृति* पुस्तक में अजय तिवारी लिखते हैं- "महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी के नाम वाले केंद्रीय विश्वविद्यालय साधन और शक्ति की दृष्टि में सब में बड़े चढ़े हैं। उनमें पैठ बनानी चाहिए।" (55)

अजय तिवारी वर्तमान समय में साहित्य-लेखन के अपकर्ष की ओर इंगित करते हैं। साहित्य क्योंकि समाज का दर्पण कहा जाता है, इसलिए सजग साहित्यकार समाज की यथार्थ तस्वीर को अपनी रचनाओं द्वारा प्रतिबिंबित करते हैं। वर्तमान समय में, जिस कविता को गुणवत्ता युक्त माना जाता है, उस पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए अजय तिवारी आगे लिखते हैं- "उत्कृष्टता का लक्षण यह नहीं है कि आपकी बात समझ ली जाए.... श्रोता जिसका अर्थ समझ ले वह तो तुकबंदी है भाई। जिसे स्वयं कवि समझ न पाए, वह कविता है सबसे हाई।" (57)

अजय तिवारी, व्यंग्यात्मक ढंग से साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्धि पाने के उपाय बता रहे हैं। व्यंग्य के अपकर्ष साधन का इस्तेमाल करते हुए वास्तव में वे इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि वर्तमान में रचना की गुणवत्ता पर विचार न करते हुए, उसके प्रसिद्ध होने की विधियों के विषय में अधिक सोचा जाता है, और उसी के अनुरूप रचना की रचना की जाती है। गुणवत्ता-विहीन रचना के पक्ष में यह कहकर पल्ला झाड़ लिया जाता है कि उत्कृष्ट रचना को विषय के मर्मज्ञ व्यक्ति ही समझ सकते हैं।

अयोग्य व्यक्तियों को उपाधियां मिलने के विरोध में हरिशंकर परसाई ने अत्यंत निर्भीक और प्रहारक रीति से कमला प्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* पुस्तक में इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि इतिहास में जो घटित होता है, कालांतर में उसकी पुनरावृत्ति की संभावना रहती ही है। रीतिकाल में श्रृंगार रस पर आधारित साहित्य अधिक रचा गया। वर्तमान समय में शैक्षणिक क्षेत्र के अंतर्गत, धन की देवी चंचला की आराधना पर बल दिया जा रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो उद्यम किए जा रहे हैं, उन पर प्रकाश डालते हुए हरिशंकर परसाई ने लिखा है- "आजकल देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में मंत्रियों को डॉक्टर ऑफ लिटरेचर (साहित्य मर्मज्ञ) की उपाधियां देने में जो होड़ लगी हुई है, उसे देख कर अचंभा और दुख दोनों होते हैं।" (47)

हरिशंकर परसाई उन विश्वविद्यालयों को फटकार लगाते हैं जो मंत्रियों को डॉक्टरेट की उपाधि देकर साहित्य का उत्कर्ष नहीं, अपितु अपकर्ष कर रहे हैं। मंत्रियों का कार्यक्षेत्र पृथक है, उन्हें अपने कार्य क्षेत्र के अंतर्गत उत्कृष्ट परिणाम दर्शाने हेतु पुरस्कार मिलने चाहिए। विश्वविद्यालय विद्या की देवी सरस्वती के आराधना-स्थल हैं, इनके द्वारा केवल मां शारदा के उपासकों को सम्मान मिलना चाहिए, इस संदर्भ में हरिशंकर परसाई ने आगे लिखा है- "सारा जीवन राजनीतिक दांवपेच में बिता कर फुर्सत के समय एक आध पुस्तक लिखकर यदि कोई मंत्री डॉक्टरेट का अधिकारी हो सकता है, तो अपना सारा जीवन साहित्य को अर्पण करने वाला तपस्वी माखनलाल चतुर्वेदी और पदुमलाल मंत्री क्यों नहीं हो सकता ?" (48)

प्रस्तुत कथन के अंतर्गत हरिशंकर परसाई आक्रोश, विडंबना तथा उपालंभ के द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर योग्य व्यक्तियों को सम्मानित न करने और अयोग्य व्यक्तियों को सम्मानित किए जाने पर क्षोभ की अभिव्यक्ति करते हैं। साहित्य का क्षेत्र ही एक ऐसा क्षेत्र है, जहां नीरक्षीर विवेक शालिनी प्रज्ञा के द्वारा पुरस्कार वितरण किया जाना चाहिए, परंतु राजनीतिक स्तर पर लाभ प्राप्त करने के लिए पुरस्कार अथवा उपाधि के वास्तविक अधिकारी नजरअंदाज कर दिये जाते हैं। अनधिकारी राजतंत्र के अधिष्ठाता मंत्रियों को उपाधियों से विभूषित कर दिया जाता है, यह व्यवहार राष्ट्रीय मूल्यों के क्षरण की ओर संकेत करता है।

उपर्युक्त क्रिया व्यापार के मूल में धन और प्रसिद्धि की कामना ही प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। प्रत्येक व्यक्ति धन और यश की प्राप्ति चाहता है, इसके लिए उसे निष्पक्ष और ईमानदार विधि से यह चिंतन अवश्य करना चाहिए कि वह क्षेत्र में पदार्पण करते हुए किस सीमा तक गुणवत्ता युक्त कार्य कर सकता है? यदि वह प्रतिभा संपन्न है तो उसे देर-सवेर अवश्य उसका प्राप्य प्राप्त होगा। धन और यश के लोभ के कारण अनुचित मार्ग अपनाना जीवन मूल्यों के विरुद्ध है। इस प्रकार के भ्रष्ट आचरण द्वारा योग्य व्यक्ति के प्रति अन्याय होता है और राष्ट्र एक प्रतिभाशाली रचनाकार को सम्मान देने से वंचित रह जाता है।

हरीश नवल और हरिशंकर परसाई के कथन के परिप्रेक्ष्य में यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि साहित्य सेवा में वर्षों से श्रम करने वालों को उपाधि, अथवा पुरस्कार देने में कछुए की चाल अपनाई जाती है, और सत्तासीन नेताओं को उपाधियां, प्रकाश की गति के आधार पर प्रदान की जाती हैं। इस प्रक्रिया में साहित्यिक-मूल्यों का क्षरण होता है, रक्षण कदापि नहीं। रक्षण को एक 'मूल्य' मानते हुए *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (सत्यम शिवम सुंदरम

परक मूल्य : भाग 3) में आदित्य प्रचंडिया लिखते हैं- "शिक्षा संस्थान, समाज, धर्म, दर्शन सर्वत्र रक्षण की आवश्यकता रहती है।" (160)

आदित्य प्रचंडिया ने रक्षण करने योग्य, विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा संस्थानों को भी सम्मिलित किया है। हरीश नवल दर्शाते हैं कि उच्चतम शैक्षणिक संस्थानों द्वारा मुकुटबिहारी सरोज को योग्यता होते हुए भी विलंब से पुरस्कार दिया गया, हरिशंकर परसाई दर्शाते हैं कि शिक्षा संस्थानों द्वारा अयोग्य व्यक्तियों को 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के आधार पर उपाधियां दे दी जाती हैं। दोनों ही स्थितियों में शैक्षणिक और साहित्यिक जगत का अपकर्ष दृष्टिगत होता है।

'आज का साहित्यिक परिवेश और शताब्दी-त्रयी' व्यंग्य रचना के अंतर्गत व्यंग्य की परिष्कारक वृत्ति की ओर संकेत किया गया है। वर्तमान समय में सड़कें बनवाना, विश्वविद्यालय बनवाना, गगनचुंबी अट्टालिकाएं बनवाना, विदेशों से तीव्रगामी रेलों का आयात करना, तरक्की का मापदंड माना जा रहा है। मशीनों के साथ रहते-रहते मानव का व्यवहार भी मशीनी होता जा रहा है, क्योंकि 'जैसी संगत वैसी रंगत' तो होती ही है। मानव मूल्यों के निर्वहण को कल्पनलोक और यथार्थवादिता से हीन मानते हुए उनकी धज्जियां उड़ाई जा रही हैं। संवेदनशील और सिद्धांतवादी व्यक्ति को युगानुकूल नहीं माना जा रहा है। जिस प्रकार शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पौष्टिक भोजन अपेक्षित है, उसी प्रकार विचारों को स्वच्छ और परिष्कृत रखने के लिए मस्तिष्क का पोषण आवश्यक है; जो श्रेष्ठ मनुष्य की संगति और श्रेष्ठ साहित्य के अध्ययन से ही संभव है। समाज के नव निर्माण के लिए नदियों पर सेतु बांधना, नहरें खुदवाना, और विज्ञान की नई नई तकनीकें अपनाना, अपेक्षित नहीं है, इसके लिए उत्तम साहित्य की रचना होनी चाहिए। साहित्यकार को मानव आत्मा का अभियंता मानते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "श्रेष्ठ अभियंता नया आवास बनाता है और श्रेष्ठ साहित्यकार उसमें बसने योग्य नए नागरिक का निर्माण करता है।" (157)

हरीश नवल द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि किसी भी राष्ट्र के नागरिकों के अंतर्मन में परिष्कृत विचारों की अवस्थिति के लिए, समकालीन उत्कृष्ट साहित्य का अप्रतिम योगदान रहता है। हरीश नवल, प्रस्तुत व्यंग्य रचना में महादेवी वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और हरिवंश राय बच्चन को ऐसे उत्कृष्ट अभियंता मानते हैं, जिन्होंने अपनी महान लेखनी से समाज के नव निर्माण का सकारात्मक प्रयास किया है।

उपर्युक्त साहित्यकार केवल प्रतीक रूप में लिए गए हैं, इसी श्रृंखला में सभी भाषाओं के अनेक साहित्यकार निर्विवाद रूप से सम्मिलित हैं, यह तथ्य स्वयं सिद्ध है। वर्तमान समय में साहित्यकार समाज के नव निर्माण के कार्य से विमुख, और स्वयं के सुख-साधनों के निर्माण और उनके एकत्रीकरण के प्रति अधिक क्रियाशील दिखाई देता है। धन, यश और लोकप्रियता पाने की लालसा, साहित्यकार को उसके शाश्वत लक्ष्य से विचलित कर रही है, परिणामस्वरूप उसकी प्रतिभा उन्नति के उच्च शिखर को स्पर्श नहीं कर पाती। जो साहित्यकार प्रतिबद्धता से लेखन कार्य में संलग्न हैं, उन्हें महत्व नहीं दिया जा रहा। इस संदर्भ में हरीश नवल आगे लिखते हैं- "आज का बोनसाई वर्ग लंबे हाथ वाला हो गया है और दीर्घ तरु सूख रहे हैं। बौनों का साम्राज्य है।..... सत्ता से लाभ की आकांक्षा हेतु जघन्य स्तुति कर्म जारी हैं।" (158)

हरीश नवल अप्रत्यक्ष रूप से बता रहे हैं कि जो साहित्यकार, साहित्य क्षेत्र में जुम्मा जुम्मा आठ रोज से अवतरित हैं, वे अपने संपर्क सूत्र बढ़ाकर अधिक सामर्थ्यवान हो गए हैं और जो साहित्यकार अनेक वर्षों से साहित्य साधना में रत हैं, उनकी प्रतिभा कुंठित हो रही है। सत्तासीन प्रशासकों की प्रशंसा में आकंठ डूबे रहकर, अल्प समय में ही सामर्थ्यशाली बनने के प्रयास जारी हैं। सत्ता द्वारा लाभ प्राप्त करने की इच्छा के लिए स्तुति करने को व्यंग्यकार ने 'जघन्य'विशेषण से विभूषित करके वास्तव में इस प्रवृत्ति के प्रति घृणा का भाव दर्शाया है। जो साहित्यकार धनी अथवा यशस्वी बनने का लोभ त्याग कर साहित्य-सेवा में रत है, उनके प्रति व्यंग्यकार के हृदय में प्रेम का भाव विद्यमान है, जब धन और यश के लोलुप साहित्यकार, निस्वार्थ-भाव से साहित्य-रचना में प्रतिबद्धता का भाव दर्शाएंगे, तो उनके प्रति भी व्यंग्यकार की घृणा प्रेम में परिणत हो जाएगी। बदलते समय में, बदलते युग धर्म की ओर संकेत करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- "बदलते युग धर्म से युग सत्य भी बदल गए हैं।.... तीन सत्य हैं, जिनकी ओर भागा जा सकता है-पद सत्य, प्रतिष्ठा सत्य और वित्त सत्य।" (159)

उपर्युक्त कथन के अंतर्गत राष्ट्रीय मूल्य, परमार्थ दृष्टि का अवमूल्यन हुआ है। जब साहित्यकार स्तुति राग अलापते हुए उच्च पद पर आसीन होने की, यश और धन प्राप्ति की आकांक्षा को प्रश्रय देगा तो उसके अंतर्गत समग्र भावनाएं स्वार्थ के वशीभूत ही होंगी, उनमें परमार्थ का लेश मात्र भी सन्निहित नहीं होगा।

बदलता युगधर्म जो पद सत्य, प्रतिष्ठा सत्य तथा वित्त सत्य पर आधारित है, वह मानवता के शाश्वत सत्य से मनुष्य को दूर किए जा रहा है और शाश्वत सत्य हैं-मानव मूल्याश्रित सत्य-

क्योंकि पद प्रतिष्ठा और वित्त, इन्हें सत्य मानना स्वयं को अंधकार में रखना है। ये तीनों ही स्थिर नहीं रहते। मानव का मानवोचित कर्म करना एक अटल सार्वयुगीन सत्य है, इस सत्य का अनुगमन करना हर युग में, हर स्थिति में और हर परिवेश में अत्यावश्यक है क्योंकि इसी से मानव का मानव होना सुनिश्चित होता है। अपने कर्म को सम्यक रीति से करना ही मनुष्य को सभी जीवधारियों में सर्वश्रेष्ठ बनाता है।

जो साहित्यकार समाज का नवनर्माण करने को तत्पर हैं, उसके समर्पण भाव को वर्तमान साहित्य-लेखन के अनुरूप नहीं माना जा रहा, उनकी रचनाधर्मिता को युगानुकूल नहीं समझा जा रहा। इस विडम्बनापूर्ण स्थिति के संदर्भ में हरीश नवल के समकालीन व्यंग्यकार सुरेश सेठ *नशतर की मुस्कान* पुस्तक में लिखते हैं- "हम उम्र भर अपनी कलम और समर्पण से समाज को बदल देने का सपना देखते रहे। समाज तो क्या बदलना था, वह तो इस बीच आधुनिक हो जाने के नाम पर, और रसातल में चला गया।" (186)

सुरेश सेठ समाज परिवर्तन के अपने प्रयासों को, विफल होते देख व्यथित हैं। साहित्यकार अत्यंत जीवट वाला मनुष्य होता है, वह संघर्षों से घबराता नहीं, अपितु संघर्ष के साथ-साथ, अपने आत्मविश्वास को अक्षुण्ण रखता हुआ, अपनी रचनाधर्मिता के प्रति, प्रतिबद्ध रहता है। जब उसे अपने संघर्ष फलदायक दृष्टिगत नहीं होते, तो अपनी कोशिशों के निष्फल हो जाने पर, उसके हृदय में खिन्नता का भाव जागृत होना सहज-स्वाभाविक है। वर्तमान समय में प्रासंगिक और सार्थक लेखन के स्थान पर, सतही लेखन अधिक मात्रा में लिखा जा रहा है। उत्कृष्ट साहित्य लेखन परिश्रम की मांग करता है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन यात्रा-वृतांत लिखने के लिए, अति दीर्घ तथा दुर्गम यात्राएं किया करते थे; इससे उनके यात्रा- वृतांतों में स्वाभाविकता दृष्टिगत होती है। वर्तमान साहित्यकारों द्वारा श्रेष्ठ साहित्य-रचना के स्थान पर, प्रसिद्ध होने के लिए जो-जो कर्म किए जा रहे हैं, उन्हें वर्णित करते हुए, सुरेश सेठ आगे लिखते हैं- "अच्छा लिखने से अधिक जरूरी है, उसके लिए प्रशंसा लगी समीक्षाएं लिखवाना और लोकप्रिय पोस्टरनुमा अखबारों में छपवाना, अपने लिए स्वयं गोष्ठियां आयोजित करवाना।" (186)

उपर्युक्त कथन द्वारा भासित होता है कि प्रसिद्धि प्राप्ति के लिए कई साहित्यकार परिश्रम की लंबी डगर तय न करते हुए, येन-केन प्रकारेण अपनी कृतियों को प्रशंसित करवाने के लिए, नित्य नए तरीके ढूंढते रहते हैं। जब एक साहित्यकार समग्र गोष्ठी का प्रबंधन अपने

बलबूते पर करेगा, तो आमंत्रित साहित्यकार, न चाहते हुए भी उसकी कृति को प्रशंसित करेगा। हमारी संस्कृति में 'अतिथि देवो भव' की परंपरा है; जब अतिथि देवता सदृश माना जाएगा; तो देवता को आशीर्वाद तो देना ही पड़ेगा, आशीर्वचन कहते हुए वह आतिथेय की साहित्यिक रचना को स्तरहीन कैसे कह पाएगा?

हरीश नवल अपने कथन द्वारा दर्शाते हैं कि कुछ साहित्यकार, लोकप्रियता का लोभ अंतर्मन में रखते हुए, राजतंत्र तथा समाज के प्रभुत्व- संपन्न लोगों की जी- हजूरी करते हैं। लोकप्रियता, लोकहित से संबद्ध मानव मूल्य है। इसके लिए मनुष्य को अपनी मानवीय दूर्बलताओं पर, विजय पाना आवश्यक है। इस बात की पुष्टि करते हुए *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (सत्यम शिवम सुंदरम परक मूल्य : भाग 3) में आदित्य प्रचंडिया लिखते हैं- "लोकप्रियता के विधि पक्ष के अंतर्गत उदार अंतःकरण वाला व्यक्ति लोकहित के कार्य करता है, पर इस तरह की सक्रियता में उसे स्वार्थ, लोभ, मोह, आसुरी मनोवृत्तियों का निषेध भी करना पड़ता है।" (190) प्रस्तुत व्यंग्य रचना के अंतर्गत, प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए, गुणवत्ताहीन उपायों का आश्रय लेना, लोकप्रियता राष्ट्रीय मूल्य के खंडन की ओर इशारा करता है।

आदित्य प्रचंडिया के कथन से यह सिद्ध होता है कि लोकप्रियता, लोकहित पर आधारित तत्व है। लोकहित के कार्य में संलग्न रहते हुए मनुष्य को किसी की स्तुति करने की आवश्यकता नहीं रहती। निस्वार्थ भाव से, लोक-कल्याण के पथ पर अग्रसर व्यक्ति स्वतः लोकप्रिय हो जाता है। एक व्यक्ति जब लोग कल्याण का कार्य करेगा, तो लोग उसे अपना प्रिय मानेंगे, उसके द्वारा किए गए निस्वार्थ कार्य को, समाज के समक्ष वर्णित करेंगे, इस प्रकार धीरे-धीरे उसकी लोकप्रियता में चार चांद लगते जाएंगे। अन्ना हजारे को आज सारा भारत ही नहीं, अपितु समग्र विश्व जानता है। उन्होंने समाज अथवा राष्ट्र से अपने लिए कुछ नहीं मांगा। राष्ट्र की न्याय-व्यवस्था के लिए तत्परतापूर्वक कार्य किया, परिणाम-स्वरूप वे लोकप्रिय हो गए।

हरीश नवल की व्यंग्य रचनाओं में राष्ट्रीय मूल्यों के क्षरण के प्रति व्यंग्यात्मकता का अनुशीलन करते हुए कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय मूल्यों के पुर्नस्थापन के लिए प्रत्येक नागरिक के अंतर्मन में राष्ट्रीयता के भाव अवस्थित होना आवश्यक है। राष्ट्रीयता के भाव को देवेन्द्र स्वरूप द्वारा लिखित पुस्तक *संस्कृति एक नाम-रूप अनेक* के परिपेक्ष्य में बेहतर समझा जा सकता है। इस विषय में देवेन्द्र स्वरूप लिखते हैं- "राष्ट्रीयता एक ऐसी समूह चेतना है जो किसी भूखंड पर रहने वाले समाज को उसकी अनेक बाह्य विविधताओं के होते हुए भी एक

लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया के फल स्वरूप उस भूमि के प्रति माता- पुत्र भाव से जोड़ देती है।"

(26)

देवेंद्र स्वरूप का कथन दर्शाता है कि पृथ्वी के किसी विशाल भूखंड पर बसने वाले लोगों में बाहरी तौर पर बेशक भिन्नताएं हों परंतु आंतरिक रूप से उस भूखंड के प्रति उनका वैसा ही आत्मीय जुड़ाव होता है जैसा माता और पुत्र के मध्य होता है। यही भाव उस स्थान के निवासियों को एक सूत्र में बांधने का कार्य भी करता है, यही भाव उनके अंतर्मन में राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता को सुनिश्चित भी करता है। राष्ट्र पर जब दुर्भिक्ष, बाढ़, तूफान जैसी कोई प्राकृतिक आपदा आती है अथवा राष्ट्र पर किसी शत्रु द्वारा आक्रमण कर दिया जाता है; तब राष्ट्र के कोने-कोने से असंख्य हाथ उस विपत्ति में एकजुट हो जाते हैं। उस समय राष्ट्र के नागरिक के अंतर्मन में प्रत्येक प्रकार के भेदभाव समाप्त हो जाते हैं और समग्र राष्ट्र एकता के सूत्र में बद्ध दृष्टिगत होता है।

हरीश नवल द्वारा रचित और संदर्भित की गई व्यंग्य रचनाओं के अंतर्गत प्रशासनिक, शैक्षणिक, साहित्यिक तथा राजतंत्र से संबंधित विसंगतियों पर प्रकाश डाला गया है। ये सभी क्षेत्र राष्ट्रीय कार्यकारिणी के आधार स्तंभ हैं। साहित्यिक पुस्तकें विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम के अंतर्गत शामिल की जाती हैं। शिक्षा तंत्र द्वारा व्यक्ति निर्माण का कार्य संपन्न किया जाता है और यहीं से विद्यार्थी एक आदर्श नागरिक बनकर राष्ट्र के शासकीय कार्यों में प्रतिभागिता करता है। यदि राष्ट्र-तरु की जड़ को ही घुन लग जाएगा तो वृक्ष पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाएगा। हरीश नवल इन सभी क्षेत्रों पर व्यंग्य प्रहार करते हुए राष्ट्र के जनजीवन को जागरूक करने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं।

राष्ट्रीय मूल्यों के निर्वाह का अपेक्षित होना इसी तथ्य से सिद्ध हो जाता है कि राष्ट्र के महान चिंतक, भारत के नागरिकों की राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति बढ़ती उदासीनता से चिंतित हैं। इस संदर्भ में ई. श्रीधरन और भारत वाखलू द्वारा संपादित पुस्तक *सशक्त मूल्यों का तेजस्वी भारत* में रतन टाटा कहते हैं- "भारतीय समाज में नैतिक आचरण में समग्र क्षरण, सही सोच वाले प्रत्येक भारतीय के लिए बढ़ती चिंता का कारण रहा है। यह ढांडस की बात है कि स्वामी भूमानंद तीर्थ और श्रीधरन जी के नेतृत्व में 'राष्ट्रीय मूल्य पुनः प्रतिष्ठापन फाउंडेशन' इस चिंता को दूर करने के लिए जीवन के सभी क्षेत्रों के नेताओं के साथ मिलकर काम कर रहा है।" (9)

उपर्युक्त कथन से विदित होता है कि राष्ट्रीय मूल्यों के क्षरण की निवृत्ति के लिए अलग से एक संस्था कार्य कर रही है, इस परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय मूल्यों का महत्व स्वयं सिद्ध हो जाता है और उनके निर्वहण की अनिवार्यता भी सुनिश्चित हो जाती है। राष्ट्रीय मूल्यों के महत्व के प्रति जनसाधारण को जागरूक करने के लिए एक राष्ट्रव्यापी संस्था का निर्माण इस तथ्य का संकेतक है कि राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति चैतन्यता किसी भी राष्ट्र के नागरिकों के लिए अत्यावश्यक है। रतन जी टाटा के कथन में राष्ट्र के प्रति चिंता की अभिव्यक्ति मिलती है।

राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति नागरिकों की अवहेलना उनकी ही चिंता का कारण नहीं है अपितु हर वह व्यक्ति स्वयं को पीड़ा के भयानक वन में भटकता हुआ अनुभव करता है, जिसके हृदय में राष्ट्र के प्रति प्रेम का भाव है, समर्पण का भाव है और राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति की उत्कट कामना है।

राष्ट्रीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में, हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में कर्तव्यपरायणता, प्रियवादिता, राष्ट्रभाषा-प्रेम, मौलिकता, अतीत गौरव, राष्ट्र निर्माण, बलिदान, राष्ट्रीय विकास, विकासप्रियता, रचनात्मकता, तन्मयता, चारुता, सौंदर्य बोध, राष्ट्र-सुरक्षा, सुराज, मंगलकामना, भलाई, परहित, राष्ट्र निर्माण, मनुष्यत्व, मनोविनोद, करुणा, स्वाधीनता, उत्तुंगता, निष्कलुषता, राष्ट्रीय एकता, उत्सर्ग, विश्व बंधुत्व, रक्षण, परमार्थ-दृष्टि तथा लोकप्रियता, राष्ट्रीय-मूल्यों का अवमूल्यन दर्शाया गया है। राष्ट्र के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करने के लिए उपर्युक्त मूल्यों का निर्वहण अपेक्षित है। 'रैली हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने विभिन्न सामाजिक एवं राष्ट्रीय आंदोलनों के लिए भीड़ जुटाए जाने की बात लिखी है, जिसके द्वारा राष्ट्रीय एकता का भाव मंडित होने के स्थान पर, खंडित होता है। जनता का यह एकत्रीकरण, केवल चंद लोगों की स्वार्थ पूर्ति करता है। रैली में एकत्रित हुए अनेक लोग इस सच्चाई से अनभिज्ञ रहते हैं कि आखिर उन्हें किस उपलक्ष्य में इकट्ठा किया गया है, क्योंकि बहुत से लोग देखा-देखी, रैली में भाग लेने चले आते हैं। 'संस्कार' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल ने शैक्षणिक क्षेत्र की विसंगतियां दर्शाते हुए प्रोफेसर महेश्वर के माध्यम से एक गरिमामंडित व्यक्तित्व को धन-लोलुप दर्शाया है। अर्थ-संग्रह के लालच को त्रुटिपूर्ण बताते हुए, ई. श्रीधरन और भारत वाखलू द्वारा संपादित पुस्तक *सशक्त मूल्यों का तेजस्वी भारत* पुस्तक में भारत वाखलू ने लिखा है-"लालच, या अपनी आवश्यकता, या पात्रता से अधिक की इच्छा रखने की मानसिक अवस्था को त्रुटि की अवस्था कहा जाता है।" (124)

व्यंग्य रचना में वर्णित प्रोफेसर महेश्वर, इसी प्रकार की त्रुटिपूर्ण अवस्था में रहते हुए जिंदगी बिता रहे हैं। किसी संस्था द्वारा, किसी शैक्षणिक कार्य की संपन्नता के लिए दी गई राशि में से आधी राशि हड़प जाना, उनकी धन-लोलुपता की वृत्ति को प्रतिबिंबित करता है। प्रोफेसर महेश्वर तो प्रतीक मात्र हैं, ऐसे-ऐसे प्रोफेसर महेश्वर एक ढूँढो, हजार मिलते हैं। शैक्षणिक जगत राष्ट्र की साक्षरता से संबंधित है, आज का विद्यार्थी कल का राष्ट्र निर्माता है, इसलिए हरीश नवल ने राष्ट्र के अंतर्गत शैक्षणिक विसंगतियों के परिष्कार के लिए, व्यंग्यात्मकता को आधार बनाया है। विद्यार्थी, जाने-अनजाने अपने गुरु का अनुकरण करते हैं, अतः शैक्षणिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियां राष्ट्र के भविष्य को अंधकारमय बना सकती हैं।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के अंतर्गत, जिन राष्ट्रीय मूल्यों के क्षरण के प्रति किसी एक व्यंग्य पुस्तक में इंगित किया गया है, अन्य व्यंग्य पुस्तकों में भी यत्र-तत्र उन्हीं राष्ट्रीय मूल्यों के विखंडन के प्रति, संकेत मिलता है। 'गणतंत्र दिवस पर जलता हुआ मकान' तथा 'रैली हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' दोनों व्यंग्य रचनाओं के अंतर्गत राष्ट्रीय एकता का भाव खण्डित होता दर्शाया गया है। ये दोनों व्यंग्य रचनाएं *इक्यावन व्यंग्य रचनाएं* पुस्तक में संकलित है। 'जश्र ए आजादी' व्यंग्य रचना के अंतर्गत भी राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय मूल्य खंडित होता दर्शाया गया है, यह व्यंग्य रचना *पीली छत पर काला निशान* पुस्तक के अंतर्गत रचित है। इसी प्रकार राष्ट्रीय मूल्य बलिदान का क्षरण 'जब हारी महामारी' व्यंग्य रचना के अंतर्गत दर्शाया गया है, जो *दिल्ली चढ़ी पहाड़* पुस्तक के अंतर्गत लिखित है। यही मूल्य, *माफिया जिंदाबाद* के अंतर्गत लिखित व्यंग्य रचना 'ऑल इज वेल' के अंतर्गत भी रेखांकित हुआ है। किसी एक राष्ट्रीय मूल्य का हनन, केवल एक पुस्तक में ही चिन्हित नहीं हुआ, अपितु अन्य पुस्तकों में भी चिन्हित हुआ है।

राष्ट्रीय एकता का भाव तो हमारे पूर्वजों के अन्तर्मन में नीहित था। हमारे पूर्वज इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि ईश्वर की आराधना घर बैठे भी की जा सकती है। वे लोग ईश्वर की सर्वव्यापकता में विश्वास रखते थे। यातायात के साधनों का विकास न होने पर भी, वे लोग पैदल, बैलगाड़ियों से अथवा घोड़ागाड़ियों से तीर्थयात्रा पर निकल जाते थे। राष्ट्र के विभिन्न धार्मिक स्थलों पर जाने के परिप्रेक्ष्य में उनका यही उद्देश्य रहता था कि इन यात्राओं के माध्यम से राष्ट्रीय एकता का भाव परिपक्व हो। यात्रा के दौरान, मार्ग में पड़ने वाले गांववासियों तथा शहरवासियों से मिलना, उनकी भाषा-पहरावा तथा लोक संस्कृति को जानना, अपनी भाषा, रहन-सहन तथा खान-पान के विषय में उन्हें बताना। इस प्रकार परस्पर संपर्क करने से राष्ट्रीय एकता का भाव सुदृढ़ होता है। वर्तमान समय में, संचार क्रांति के प्रादुर्भाव के बावजूद, राष्ट्रीय

एकता का भाव मुट्टी में भरी रेत की भांति फिसलता जा रहा है। इसका मुख्य कारण है, अधिकांश नागरिकों का स्वयं-केंद्रित होना। अधिकांश नागरिक, केवल अपनी ही प्रगति के उद्योग में निरत रहते हैं, उन लोगों ने, स्वयं को स्वार्थ के पाश में इस कदर जकड़ रखा है कि वे लोग अपने स्वार्थ से हटकर किसी और विषय में सोच भी नहीं सकते। 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की संकल्पना, अंतर्मन में अवस्थित करते हुए ही राष्ट्र की सुस्थिरता और प्रगति को सुनिश्चित किया जा सकता है।

प्रत्येक नागरिक, चाहे वह सरकारी कर्मचारी हो, व्यवसायी हो, शिक्षक हो, अथवा साहित्यकार, अपने-अपने स्तर पर सभी का कर्तव्यनिष्ठ होना राष्ट्रीय मूल्यों के सम्वर्धन का संकेतक है; कर्तव्यहीनता की स्थिति राष्ट्र को पतन की गर्त में धकेल देती है। राष्ट्र के प्रति सर्वस्व बलिदान की भावना ही, राष्ट्र की प्रगति और सुरक्षा की कसौटी है।

सीमा पर तैनात सैनिक हों, अथवा पुलिस कर्मचारी, स्वास्थ्य कर्मचारी हों अथवा वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ता, सभी नागरिकों के अंतर्मन में विभिन्न क्षेत्र, चयनित करने के परिप्रेक्ष्य में यही भावना काम करती है कि उनकी प्रतिभा और कार्यकुशलता के द्वारा, राष्ट्र का विकास हो। विकासप्रियता की भावना विभिन्न नागरिकों की प्रतिभा का विकास तो करती ही है, कई बार नवीन आविष्कारों के सूत्रपात का आधार भी बनती है। अपने अंतर्मन में सरसता को स्थान देने वाले नागरिक, राष्ट्र के स्वरूप को अपनी रचनात्मकता द्वारा भव्यता, चारुता तथा मनोहरता प्रदान करते हुए राष्ट्र के सौंदर्य-बोध को बढ़ाते हैं, जिससे आकर्षित होकर विदेशी पर्यटक, भ्रमणार्थ आते हैं। विदेशी पर्यटकों के स्वदेश में आने से न केवल राष्ट्र की आर्थिक प्रगति होती है, अपितु विश्व-बंधुत्व का प्रसार भी होता है।

पंचम अध्याय :

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में सांस्कृतिक मूल्य

सम्यक कृति, सम्यक चेष्टाएं, सांस्कृतिक मूल्यों के निर्वहण का मार्ग प्रशस्त करती हैं। आदिकालीन युग के अंत के बाद, मानव जीवन को अनुशासनबद्ध करने के लिए, मनुष्य के सम्यक आचरण की सुनिश्चितता के लिए, अनेक नियमों और सिद्धांतों का गठन किया गया, उनका समुचित निर्वहण संस्कृति कहलाता है। संस्कृति के पथ पर अग्रसर होते हुए मानव जीवन, सरलता और सुगमता से गतिमान होता है। यही सिद्धांत उत्तरोत्तर, आगामी पीढ़ियों में स्थानांतरित होते रहते हैं। संस्कृति का अर्थ बताते हुए, रमेश पोखरियाल ने *भारतीय संस्कृति सभ्यता एवं परंपरा* पुस्तक में लिखा है- "मूलतः संस्कृति शब्द का अर्थ संस्कार से है। संस्कार का अर्थ है, परिष्कृत करना, शुद्धि करना या संशोधन करना।" (17)

रमेश पोखरियाल के कथन से स्पष्ट है कि संस्कृति द्वारा किसी भी वस्तु अथवा व्यवहार का परिष्कार होता है। मनुष्य का आचरण सुसंस्कृत हो सके, इसे सुनिश्चित करने के लिए हमारे पूर्वजों ने कुछ नियमों का निर्देश किया और उसे सर्व-प्रचारित किया। उन नियमों का अनुपालन करते हुए जनसाधारण ने, अपने जीवन-संचालन में सुख, सुविधा और सरलता का अनुभव किया और इस प्रकार वे सिद्धांत, सर्व-स्वीकृत भी हो गए। मानव समाज के अस्तित्व की अक्षुण्णता, उसकी संस्कृति पर अवलंबित है। संस्कृति के सुदृढ़ आधार द्वारा ही किसी भी समाज अर्थात् जाति का स्थायित्व सुनिश्चित होता है। अनेक आक्रमणकारियों के भयंकर दंश झेलने के उपरांत भी, भारतीयता का भाव अक्षत रहा, उसके मूल में जो कारण रहा, वह था भारत की गौरवशाली संस्कृति का अवलंब।

उपर्युक्त विचार की पुष्टि, *कल्याण* के हिंदू संस्कृति अंक में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने "रामायण में हिंदू संस्कृति" आलेख के अंतर्गत की है- "संस्कृति ही वह आधारशिला है, जिसके सहारे जाति-जीवन का विशाल प्रासाद निर्मित होता है।" (363) अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का कथन दर्शाता है कि संस्कृति की सुदृढ़ नींव, किसी भी मानव समाज अथवा जाति के विशाल भवन को अटल और अडिग बनाए रखती है। संस्कृति का विध्वंस होते ही उस जाति का भी ध्वंस होना प्रारंभ हो जाता है, आने वाली पीढ़ियों को उसके केवल भग्नावशेष ही उपलब्ध होते हैं।

महात्मा गांधी को राष्ट्रपिता की संज्ञा से अभिहित करने के परिप्रेक्ष्य में तथा भारत में उनके सर्वप्रिय बनने के परिप्रेक्ष्य में क्या कारण है? इस विषय पर प्रकाश डालते हुए *संस्कृति एक नाम-रूप अनेक* पुस्तक के अंतर्गत देवेन्द्र स्वरूप लिखते हैं- "गांधी, भाषा-क्षेत्र-जाति के

भेदों को पाटकर पूरे भारत के अमीर-गरीब, पढ़े-लिखे व अपढ़ सभी भारतीयों की आंखों का तारा बने हैं तो इसलिए, कि वे राजनीतिक प्राणी नहीं हैं, अपने लिए सत्ता पाना उनके जीवन की लालसा नहीं है, वे भारत की चिरंतन आध्यात्मिक संस्कृति के प्रतिनिधि हैं।" (47) देवेन्द्र स्वरूप के कथन के आलोक में संस्कृति के विराट स्वरूप, उद्देश्य और विशेष महत्व का पता चलता है। पांचवे अध्याय में हरीश नवल की व्यंग्य रचनाओं के अंतर्गत सुकृत, प्रेरकता, संतुलन, लज्जा, विनय, विनीतता, निष्ठा, सुनीति, समदर्शिता, लोक कल्याण, सत्संगति, नियम, समचित्तता, सज्जनता, विश्वास, अनासक्ति, उद्देश्य, समदर्शिता, विनम्रता, धर्म-निष्ठा, आचार, आत्मबल, विमलता, नैतिकता, प्रार्थना, धर्म, धैर्य, स्थैर्य, सदाशयता, निर्वेद, उद्यम, श्रमशीलता, अध्यवसाय, ध्यान तथा साधना, निर्मलता, आत्मबोध, संतुलन, नैतिकता, शुभ कर्म तथा निर्विकारिता, सांस्कृतिक मूल्यों के निर्वहण के प्रति व्यंग्यात्मकता को रेखांकित किया गया है।

5.1 सुकृत, प्रेरकता, संतुलन, लज्जा, विनय, विनीतता, निष्ठा, सुनीति, समदर्शिता तथा लोक कल्याण। इन सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण, हरीश नवल द्वारा रचित व्यंग्य पुस्तक, *बागपत के खरबूजे* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

'गृह प्रवेश' एक लघु कलेवर से संयुक्त व्यंग्य रचना है, इसके माध्यम से व्यंग्यकार ने धर्म के नाम पर जनमानस में जो अंधविश्वास, बाह्याचार तथा पाखंड प्रचलित हैं, उन पर व्यंग्यात्मक कटाक्ष किए हैं। अपना घर बनाना हर गृहस्थी का स्वप्न होता है। बाबू रामदीन बैंक से कर्ज लेकर फ्लैट खरीदते हैं। गृह प्रवेश के लिए वे पंडित से कोई शुभ दिन निर्धारित करने के लिए कहते हैं। पंडित के कथन को बताते हुए हरीश नवल कहते हैं-"तारा 13 मई को डूब जाएगा, उससे पहले-पहले मुहूर्त करवा लिया जाए तो परिवार खुशियों से भरपूर रहेगा।" (29) गृह प्रवेश के लिए पंडित जी दोपहर दो बजे का समय निर्धारित करते हैं। ग्रीष्म ऋतु की भीषण गर्मी के कारण रामदीन का एकमात्र पुत्र बीमार हो जाता है। पुत्र को किसी पड़ोसी के घर पंखे की हवा में लिटा कर डॉक्टर को बुलाने की बात होती है, जिसे उनकी पत्नी और पंडित यह कहकर स्थगित कर देते हैं कि हवन में पुत्र द्वारा भी आहुति पड़ना आवश्यक है। हवन की प्रचंड अग्नि और ग्रीष्म ऋतु के ताप के कारण रामदीन का पुत्र काल का ग्रास बन जाता है।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के माध्यम से व्यंग्यकार, जनसाधारण को तत्कालिक स्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन करने, और परिस्थिति के अनुकूल त्वरित कार्यवाही करने के लिए प्रेरित करना चाहता है ताकि लोग कर्मकांडों, विधि विधानों को पूर्ण करने की धुन में अपने जीवन की

किसी अमूल्य निधि से हाथ न धो बैठें, जैसा कि उपर्युक्त व्यंग्य रचना में हुआ। अंधविश्वासों के कारण जो विडंबित स्थिति उत्पन्न हुई, उसके विषय में हरीश नवल अत्यंत कारूणिक भाव से कहते हैं-"13 मई का तारा, पता नहीं डूबा कि नहीं डूबा, पर रामदीन का परिवार अवश्य डूब गया। गृह प्रवेश की हवन में साक्षात् रामेश्वर की ही आहुति जो उस दिन दे दी गई।" (30)

हरीश नवल के कथन के माध्यम से पता चलता है कि पंडित के कहने से रामदीन, एक तो ग्रीष्म ऋतु में गृह प्रवेश का हवन करवाते हैं। दूसरे, गृह प्रवेश का समय भरपूर दोपहरी में रखते हैं। तीसरे, आंख बंद करते हुए पंडित का कहना मानते हैं। पुत्र के बीमार होने पर भी हवन में उसकी प्रतिभागिता करवाते हैं, प्रत्येक दृष्टिकोण उनके अंधविश्वासी होने की पुष्टि करता है।

अंधविश्वासों, बाह्याचारों और पाखंडों के प्रति विद्रोह का प्रखर भाव, हमें कबीर के साहित्य में देखने को मिलता है। बाहरी धर्माचारों को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर कबीरदास साधना के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। कबीर ने समाज में प्रचलित बाह्याडंबरों का डट कर विरोध किया। केवल खंडन करने की वृत्ति हृदय में रखकर, व्यवहार करना विधिपरक प्रक्रिया नहीं है। किसी महान उद्देश्य को समक्ष रखते हुए ही खंडन करना औचित्यपूर्ण होता है। इस विषय में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने *कबीर* पुस्तक में लिखा है- "बिना उद्देश्य का विद्रोह विनाशक है, पर साधु-उद्देश्य से प्रणोदित विद्रोह, शूर का धर्म है।" (146)

हजारी प्रसाद द्विवेदी यह कहना चाहते हैं कि कबीर का विद्रोह रूढ़ियों, अंधविश्वासों और पाखंडों के प्रति था, और उनका यह विद्रोह निरुद्देश्य नहीं था। अपने विद्रोह के द्वारा वे समाज में जागृति लाना चाहते थे। मानव-मूल्यों के निर्वहण में वे उपर्युक्त बाह्याचारों को अवरोधक समझते थे। कबीर की निडरता और अक्खड़ता के विषय में बताते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी आगे लिखते हैं-"रूढ़ियों और कुसंस्कारों की विशाल वाहिनी से वे आजीवन जूझते रहे, प्रलोभन और आघात, काम और क्रोध भी उनके मार्ग में जरूर खड़े हुए होंगे, उन्होंने उनको असीम साहस के साथ जीता।" (146)

हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर सामाजिक कुरीतियों को ध्वस्त करने के लिए प्राण हथेली पर लेकर डटे रहे। समग्र समाज जिन विधि विधानों, कर्मकांडों और अंधविश्वासों का आंख मूंदकर अनुगमन कर रहा था, उसके विरोध में स्वर बुलंद करना कोई सरल कार्य न था। कबीर एक सच्चे साधक और कर्मठ

योद्धा की तरह इन बाह्याचारों के विरुद्ध आजीवन संघर्ष करते रहे। पाखंड, अंधविश्वास और कर्मकांड के विषम जाल से उन्होंने न केवल स्वयं को बचाया, अपितु जनसाधारण को भी उस उलझन से बचाने का भरसक प्रयास किया। हर मनुष्य के सामने संसार के अद्भुत आकर्षणों का विस्तृत साम्राज्य है, जिनके द्वारा मनुष्य का आकर्षित होना सहज संभाव्य है। कबीर के जीवन में भी ऐसे क्षण अवश्य आए होंगे, जिसके अंतर्गत उन्हें भी सांसारिक आकर्षणों ने अपनी ओर खींचा होगा। कबीर मानसिक रूप से इतने सशक्त, निर्भीक और दृढ़ निश्चयी थे कि वे किसी भी आकर्षण के प्रति दुर्बल सिद्ध नहीं हुए। संसार के आकर्षणों को, प्रलोभनों को, विषय वासनाओं के जाल को, बेधते हुए कबीर साधना पथ पर अविचल भाव से, आगे बढ़ते रहे।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत रामदीन, पंडित द्वारा फैलाए गए अंधविश्वास के जाल में फंसकर अपना पुत्र गंवा देता है। अंधविश्वास के जाल में केवल एक ही व्यक्ति नहीं उलझता, कभी-कभी तो अनेक लोगों का समूह भी अंधविश्वासी हो जाता है। साधुओं के द्वारा व्रत रखने से बड़ौदा में वर्षा हो गई-ऐसा समाचार एक प्रेस ट्रस्ट द्वारा सुनने में आया। इस विषय में हरिशंकर परसाई ने कमला प्रसाद और प्रकाश दुबे द्वारा संपादित *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "प्रेस ट्रस्ट बड़ी विश्वस्त समाचार एजेंसी है। उसका नाम ही 'ट्रस्ट' से बना है, फिर विश्वास कौन नहीं करेगा? तो समाचार यह है कि बड़ौदा के पास सन्यासियों ने 7 दिन तक उपवास किया। परिणाम हुआ कि आठवें दिन झमाझम पानी बरसने लगा।" (60)

आस-पास के लोगों की उन सन्यासियों के प्रति श्रद्धा और भी अधिक बढ़ गई होगी। भारत की अधिकांश धर्म परायण जनता अपने मन में, साधू सन्यासियों पर उच्चतम आस्था के भाव रखती है। वर्षा का होना या न होना, भूमंडलीकरण से संबंधित, एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। हरिशंकर परसाई ने अंधविश्वासी लोगों की मानसिकता पर व्यंग्याघात करते हुए आगे लिखा है- "भारत सरकार को कुछ लाख साधु, मासिक वेतन पर रखने चाहिए।" (61) हरिशंकर परसाई व्यंग्य के 'उपहास' साधन का प्रयोग करते हुए लोगों की अंधविश्वासी मनोवृत्ति पर कटाक्ष करते हैं क्योंकि यह केवल एक संयोग मात्र हो सकता है कि कुछ साधु वर्षा लाने के लिए उपवास करें और उनका प्रयास सफल हो जाए। वास्तव में वर्षा का आगमन प्रकृति के चक्र का परिणाम होता है। जहां भी, जब भी वायु का कम दबाव का क्षेत्र निर्मित होता है, वहां वर्षा होने की संभावना बनने लगती है।

मानव जगत को अंधविश्वास से, बचने के लिए प्रेरित करते हुए *सांस्कृतिक उत्थान का मार्ग* पुस्तक में रामसहाय लिखते हैं- "उन बातों को कतई नहीं मानना चाहिए जो आपको अंधविश्वास की तरफ ले जाएं चाहे वह धर्म हो या परंपरा।" (224) रामदीन भी अगर विवेक का आश्रय लेते हुए अपने पुत्र की अस्वस्थ स्थिति देखकर, हवन का दिन स्थगित कर देता और अपने पुत्र को तत्काल चिकित्सा उपलब्ध करवाता तो उपर्युक्त व्यंग्य रचना में वर्णित दुखद घटना न घटी होती। जीवन अनमोल है, उसे किसी भी प्रकार के अंधविश्वास, कर्मकांड अथवा पाखंड के कारण खतरे में नहीं डाला जा सकता। इस कथन के द्वारा जीवन-मूल्यों के आधार, 'जीवन के प्रति विश्वास' की भी पुष्टि होती है। प्रस्तुत कथन के द्वारा रामसहाय प्रत्येक बात को, विवेक के आधार पर स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रकृति-निर्मित सभी जीवों में मानव सर्वोत्तम है। मनुष्य में उचित और अनुचित के मध्य अंतर करने का विवेक है। जीवन में किसी भी निष्कर्ष तक, विवेक के आधार पर पहुंचना सम्यक सिद्ध होता है।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत सुकृत, प्रेरकता, तथा संतुलन, सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण दृष्टिगत होता है। रामदीन अपने नए फ्लैट में प्रविष्ट होने से पूर्व, कोई सुकृत करवाना चाहता था। उसकी पूर्ति हेतु उसने हवन का आयोजन किया, परंतु उस कार्य में पंडित की भूमिका सत्संगतियुक्त सिद्ध नहीं हुई, क्योंकि उसने स्थिति की संवेदनशीलता को नहीं समझा और रामदीन को कर्मकांडों के चक्कर में उलझाए रखा। रामदीन द्वारा संकल्पित सुकृत का प्रभाव नकारात्मक सिद्ध हुआ। रामदीन की स्त्री द्वारा उसे सम्यक रूप से प्रेरित भी नहीं किया गया कि वह स्थिति की गंभीरता को समझते हुए हवन के आयोजन में कुछ बदलाव कर सकता, इस प्रकार 'प्रेरकता' सांस्कृतिक मूल्य भी क्षरित हुआ। रामदीन द्वारा किया गया समग्र प्रबंधन, मंगलमय सिद्ध नहीं हुआ, अतः इस संदर्भ में उसका आचरण, मंगल परिणाम प्रस्तुत नहीं कर सका। 'संतुलन' सांस्कृतिक मूल्य का अभाव तो सर्वत्र दृष्टिगत होता है। गृह प्रवेश के लिए रामदीन, अनुकूल मौसम की प्रतीक्षा करता, अथवा हवन का आयोजन प्रातः या सांय-काल को रखता, पुत्र को अस्वस्थ देखते हुए हवन का आयोजन किसी और दिन के लिए स्थगित कर देता तो संभवतः यह विडंबनापूर्ण स्थिति उपस्थित न होती। रामदीन, परिस्थितियों के संदर्भ में संतुलन नहीं बैठा पाया, उसने परिस्थितियों के दोनों पलड़ों में, हवन का आयोजन ही भारी रखा।

'संस्कृति के चार अध्याय' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, एक अध्याय त्रेता युग से और तीन अध्याय द्वापर युग से लेते हैं और उन्हें वर्तमान संस्कृति से संश्लिष्ट करते हुए

व्यंग्याक्षेप करते हैं। प्रथम अध्याय के अंतर्गत उस प्रसंग को उल्लेखित करते हैं जिसके अंतर्गत पंचवटी में मारीच को स्वर्ण मृग के रूप में देखकर सीता उस पर मोहित हो जाती है। राम, सीता के अनुरोध पर उस मृग को पकड़ने उसके पीछे जाते हैं-यहां तक की कथा तो सर्वविदित है परंतु उसके आगे की कथा हरीश नवल वर्तमान संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में वर्णित करते हैं-"जब तक थके- मांदे राम उस हिरण को साथ लेकर पर्णकुटी तक पहुंचे, उन्होंने पाया लक्ष्मण और सीता गायब हैं तथा वन के सभी रास्तों पर लक्ष्मण द्वारा रेखाएं खींच दी गई हैं।" (48)

हरीश नवल, सांस्कृतिक मूल्यों के अवमूल्यन की ओर इंगित करते हुए कहना चाहते हैं कि वर्तमान युग में एक भाई दूसरे भाई के प्रति विश्वसनीय प्रमाणित नहीं हो पाता। वर्तमान समय में एक भाई दूसरे भाई की संपत्ति, उसकी जमीन जायदाद को हड़पने की ताक में रहता है। अगर उसका बस चलता है तो वह अपने भाई की कीर्ति तथा सम्मान को भी अपने नाम करने में गुरेज नहीं करता, यहां तक कि उन सभी मार्गों में अवरोध भी खड़े कर सकता है जिनके द्वारा बड़ा भाई पुनः अपनी पहली स्थिति तक आ सकता था। राम की कथा प्रत्येक युग में जीवन मूल्यों की संस्थापना के लिए प्रासंगिक रही है। लक्ष्मण के साथ सीता को गायब दर्शाते हुए हरीश नवल अप्रत्यक्ष रूप से यह कहना चाहते हैं कि वर्तमान समय में छोटा भाई, बड़े भाई के सम्मान को तथा उसकी अस्मिता को, अपने स्वार्थ की भेंट चढ़ा सकता है।

उपर्युक्त प्रसंग में, विश्वास, सुनीति, सच्चरित्रता, तथा लज्जा, इन सांस्कृतिक मूल्यों का हनन दर्शाया गया है। एक भाई का दूसरे भाई के प्रति विश्वास का खंडन, स्त्री द्वारा सहज लज्जा का त्यागना, भाई और पत्नी का सच्चरित्रता के शिखर से गिरना, सुनीति की जगह कुनीति का पथ ग्रहण करना, सांस्कृतिक मूल्यों के हनन के संकेतक हैं।

हरीश नवल, वर्तमान समय में सांस्कृतिक मूल्यों का विखंडन दर्शाने के लिए, सीता-लक्ष्मण को यद्यपि प्रतीकात्मक रूप से दर्शाते हैं, परंतु उन्हें सांस्कृतिक अपकर्ष का माध्यम बनाना उनकी आदर्श छवि को धूमिल करता है। राम भारतीय जनमानस की आस्था के प्रतीक है, राम के जीवन से संबंधित प्रत्येक पात्र का चरित्र, आदर्श की कसौटी है। सीता, जो सभी रिश्ते- नाते त्याग कर, राज महलों के भोग-विलास तथा ऐश्वर्य को नगण्य मानते हुए, पति की अनुगामिनी बनती है, वनों के दुसाध्य कष्टों को वहन करती है, उसे सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण का प्रतीक बनाना उचित नहीं। लक्ष्मण के भ्रातृत्व की तुलना, सिवाय भरत के, इतिहास के किसी पात्र से नहीं की जा सकती। भाई का साथ देने के लिए, जिसने अपनी जन्मदात्री तथा

अर्धांगिनी तक का साथ त्याग दिया, जिसने 13 बरस तक अपने भाई-भाभी की सेवा की, वह चौदहवें वर्ष में, अपने बड़े भाई की भार्या के साथ, कहीं अन्यत्र चला जाएगा, यह बात गले नहीं उतरती। सीता और लक्ष्मण के चरित्र को सांस्कृतिक अवमूल्यन दर्शाने के लिए, प्रतीक रूप में लेना भी सम्यक नहीं जान पड़ता।

दूसरे अध्याय के अंतर्गत द्वापर युग के उस प्रसंग को आधार बनाया गया है, जिसके अंतर्गत श्री कृष्ण उद्धव का ज्ञान मर्दन करने के लिए उसे ब्रज भेजते हैं ताकि उद्धव गोपियों को ज्ञान मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित कर सकें और श्री कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम को हटा सकें। गोपियों द्वारा यह पूछे जाने पर कि कृष्ण, गोपियों की विरह वेदना को शांत करने हेतु ब्रज क्यों नहीं आए? हरीश-नवल उद्धव के माध्यम से वर्तमान समय के परिप्रेक्ष्य में, गोपियों को श्री कृष्ण के ब्रज न आने का यह कारण बताते हैं- "कृष्ण की दशा ठीक नहीं है, वे प्रायः खिन्न रहते हैं। मानसिक स्थिति कुछ ठीक नहीं है, शरीर भी बिगड़ गया है, आर्थिक अभाव है।" (49) गोपियों द्वारा यह पूछने पर कि श्री कृष्ण की इस स्थिति के परिप्रेक्ष्य में वजह क्या है, उद्धव के कथन को उद्धृत करते हुए हरीश नवल आगे कहते हैं- "उन्होंने एक लघु पत्रिका निकाल ली है।" (49)

हरीश नवल द्वारा संस्कृति के दूसरे अध्याय के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में लघु पत्रिका निकालना अधिकतर हानिप्रद ही सिद्ध होता है। वर्तमान समय में प्रेम सदृश जीवन मूल्य भी अर्थ पर आधारित हो चुका है। अधिकांश नारी-जगत धनहीन व्यक्ति से प्रेम नहीं करता। जीवन की मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति हेतु धन आवश्यक तो है, उसकी प्राप्ति के लिए उद्यम करना भी आवश्यक है, लेकिन धन की कमी आ जाने पर प्रेम के नैसर्गिक भाव को तिरस्कृत करना उचित नहीं। आर्थिक अभावों के कारण वर्तमान कृष्ण गोपियों के प्रेम के प्रति उदासीन हो गए हैं और इसलिए इस समस्या के निराकरण के विषय में ही सोचते रहते हैं, अर्थाभाव की समस्या उन्हें गोपियों की सुध नहीं लेने देती। उपर्युक्त प्रसंग में, 'निष्ठा' सांस्कृतिक मूल्य विखंडित हुआ है। प्रेम के क्षेत्र में, निष्ठा के भाव का बहुत महत्व है। प्रेम जीवन का एक नैसर्गिक तत्व है, इसके अंतर्गत निष्ठा के भाव का होना अनिवार्य भी है। वर्तमान कृष्ण जानते हैं कि धन का अभाव गोपियों की निष्ठा को धूल में मिला देगा, इसलिए वे अर्थाभाव के कारण गोपियों से संपर्क नहीं स्थापित करते।

तीसरे अध्याय में महाभारत के युद्ध के दौरान के उस प्रसंग को वर्णित किया गया है, जब पांडवों को पता चलता है कि द्रोणाचार्य अगले दिन चक्रव्यूह की रचना करने वाले हैं। चक्रव्यूह भेदन की कला केवल अर्जुन जानते थे, जिन्हें द्रोणाचार्य ने जानबूझकर युद्ध क्षेत्र से दूर भेज दिया था। पांडवों के समक्ष यह समस्या थी कि अर्जुन की अनुपस्थिति में चक्रव्यूह का भेदन कैसे किया जाए? अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु उन्हें इस स्थिति से उबारने का बीड़ा उठाता है। यहां तक की कथा तो ज्यों की त्यों है परंतु हरीश नवल, अभिमन्यु द्वारा जो कथन कहलवाते हैं, वह वर्तमान परिप्रेक्ष्य की सांस्कृतिक मूल्यहीनता की ओर संकेत करता है, हरीश नवल अभिमन्यु का कथन वर्णित करते हुए लिखते हैं- "पहले आप लिख कर दें कि हस्तिनापुर वाला सिनेमा का बड़ा प्लॉट मेरे नाम कर देंगे।" (50)

हरीश नवल कहना चाहते हैं कि वर्तमान समय में पुत्र कर्तव्य परायणता का पालन करने से पहले ही उसका फल प्राप्त कर लेना चाहता है। परिवार यदि किसी समस्या में घिर जाता है तो घर के युवा सदस्य, समस्या के निदान में उसी सूरत पर सहायक होते हैं यदि उन्हें किसी प्रकार का लाभ प्रदान करने का न केवल आश्वासन दिया जाए अपितु उसकी प्रदानगी का प्रमाण भी दिया जाए। अभिमन्यु को प्रतीक बनाकर हरीश नवल वर्तमान समय में मनुष्य के स्वार्थ की चरम सीमा की ओर इशारा करते हैं। समग्र परिवार यदि किसी समस्या से घिरा है तो जिस सदस्य में सामर्थ्य है, उस उस समस्या का समाधान कर सकने का, तो उसे तुरंत समस्या का निदान करने की तरफ प्रवृत्त हो जाना चाहिए। वर्तमान समय का अभिमन्यु परिवार को समस्या से निजात दिलाने का मूल्य, पहले चाहता है। उसकी स्वार्थी वृत्ति सांस्कृतिक मूल्यहीनता की परिचायक है।

उपर्युक्त प्रसंग में विनय, विनीतता, तथा निष्ठा, सांस्कृतिक मूल्यों का अवमूल्यन दर्शाया गया है। अभिमन्यु, अपने ताया युधिष्ठिर तथा भीम के समक्ष, चक्रव्यूह भेदन की समस्या के निदान के लिए जब शर्त रखता है तो विनय और विनीतता, सांस्कृतिक मूल्यों की धज्जियां स्वतः ही उड़ जाती हैं, निष्ठा का भाव तिरोहित हो जाता है। अभिमन्यु द्वारा कार्य की सिद्धि से पूर्व, उसका मूल्य मांगा जाना उसकी अधीरता को दर्शाता है।

चौथे अध्याय में महाभारत के युद्ध आरंभ होने से पूर्व की स्थिति का वर्णन किया गया है। युद्ध क्षेत्र में पहुंचने पर अर्जुन अपने विपक्ष में अपने गुरु, अग्रज, बंधु बांधव तथा मित्र-गणों को देखकर मोहग्रस्त हो जाता है तथा गांडीव को भूमि पर रखकर युद्ध न करने का निर्णय

लेता है, यहां तक का प्रसंग ऐतिहासिक है परंतु इससे आगे की कथा हरीश नवल वर्तमान संदर्भ से सूत्रबद्ध कर देते हैं, वे कृष्ण के द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश नहीं देते। अर्जुन को युद्ध करने के लिए श्री कृष्ण कैसे तैयार करते हैं-इस संबंध में हरीश नवल लिखते हैं-"उन्होंने अर्जुन को कोई उपदेश न दिया अपितु चौड़ी बेल्ट वाली एक खाकी नेकर उसे बलात् पहना दी।" (51)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरीश नवल इस सत्य को उद्घाटित करते हैं कि वर्तमान समय में यदि कोई सैनिक व्यवस्था के विरुद्ध भिड़ने से आनाकानी करे तो उसे किसी राष्ट्रीय संस्था अथवा किसी सामुदायिक केंद्र से जोड़ देना चाहिए। वह व्यक्ति बिना कोई विचार किए, कार्य के निर्वहण के प्रति कटिबद्ध हो जाएगा, क्योंकि संस्था के नियमों का पालन करना उसके लिए आवश्यक होगा। उपर्युक्त प्रसंग में, सुनीति तथा निष्ठा, इन दो सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण दृष्टिगत होता है। किसी नीति के अंतर्गत, किसी व्यक्ति को बाध्यतापूर्वक, किसी कार्य में प्रवृत्त कर देना कुनीति ही कहा जाएगा। अपने प्रति किसी व्यक्ति की निष्ठा का अनुचित लाभ उठाना भी मूल्यबद्धता के विरुद्ध किया गया कार्य है।

हरीश नवल द्वारा वर्णित संस्कृति के पहले अध्याय के अंतर्गत अगर वर्तमान लक्ष्मण अपने बड़े भाई की धरोहर पर बुरी नजर न रखता और अपने पास उपलब्ध साधनों द्वारा ही संतुष्टि का अनुभव करता तो वह असंतोष की दुर्बलता से स्वयं को बचा सकता था।

संस्कृति के दूसरे अध्याय के अंतर्गत हरीश नवल ने मनुष्य जीवन की विडंबना को दर्शाया है कि धनहीन स्थिति में मनुष्य, प्रेम जैसे नैसर्गिक तत्व से भी विरक्त हो जाता है। धन के प्रति लोभ, मनुष्य की दुर्बलता को सिद्ध करता है परंतु जीवन की गतिशीलता के लिए समय-समय पर धन की आवश्यकता तो रहती ही है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी धन अपेक्षित रहता है, परन्तु धन के प्रति आसक्ति रखना अनुचित है। संस्कृति के दूसरे अध्याय के अंतर्गत, वर्तमान समय की गोपियां धन के प्रति यदि आसक्ति भाव न दर्शातीं, तो वर्तमान कृष्ण को अर्थ-अभाव के कारण गोपियों की मित्रता से वंचित होकर, अकेलेपन से न जूझना पड़ता।

महेश शर्मा द्वारा संपादित *चाणक्य नीति* के अंतर्गत चाणक्य, धन के महत्व को वर्णित करते हुए कहते हैं- "व्यक्ति के पास ज्ञान-विवेक का अभाव हो, लेकिन यदि उसके पास अतुल्य धन है तो समाज में उसे ही आदर सम्मान के योग्य माना जाएगा। इसके विपरीत ज्ञान,

विवेक एवं बुद्धि से युक्त किसी भी निर्धन व्यक्ति को तुच्छ और उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है।”
(68)

ऊपर लिखित कथन के माध्यम से चाणक्य संसार के अत्यंत कटु सत्य से परिचय कराते हैं। धनी व्यक्ति कभी किसी के लिए धन का भंडार नहीं खोलता, बौद्धिकता की कसौटी पर खरा न उतरते हुए भी, वह समाज में प्रतिष्ठा पाता है। निर्धन व्यक्ति किसी के आगे हाथ न भी फैलाए, तो भी अधिकांश लोग उसका तिरस्कार ही करते हैं। गुणवत्ता संपन्न होने पर भी उसे यथेष्ट आदर नहीं मिलता। धन की शक्ति को वर्णित करते हुए चाणक्य ने आगे लिखा है-
"धन की शक्ति इतनी अपार है कि उसके प्रभाव से पराए भी अपने हो जाते हैं, जबकि निर्धनता अपनों को भी पराए की श्रेणी में खड़ा कर देती है। धन का अभाव ही विपत्ति में मनुष्य को अकेला रहने के लिए विवश कर देता है।" (69)

चाणक्य द्वारा कहे गए कथन को हरीश नवल द्वारा रचित उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत दूसरे अध्याय के संदर्भ में देखा जा सकता है। श्री कृष्ण और गोपियों के प्रसंग के अंतर्गत हरीश नवल, धन के अभाव के कारण, श्री कृष्ण द्वारा गोपियों को विस्मृत किए जाना मानते हैं। धन की कमी ही उन्हें अकेला रहने पर विवश करती है, क्योंकि वर्तमान गोपियां इतना निस्वार्थ प्रेम नहीं कर सकती कि धन के अभाव में भी श्री कृष्ण से एकनिष्ठ प्रेम दर्शा सकें।

संस्कृति के तीसरे अध्याय के अंतर्गत, यदि वर्तमान अभिमन्यु बिना किसी शर्त परिवार की रक्षा के लिए सहायक बनने को तैयार हो जाता तो वह लोभ की प्रवृत्ति से बच सकता था। संस्कृति के चौथे अध्याय के अंतर्गत यदि अर्जुन अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर हो जाता तो मोह की दुर्बलता से बच सकता था। अर्जुन को मोह की स्थिति से उबारने के लिए ही श्री कृष्ण को उसे किसी राष्ट्रीय संस्था का सदस्य बनाना पड़ा ताकि वह उस संस्था के अनुशासनात्मक मानदंडों पर खरा उतरने के लिए अपने पारिवारिक कर्तव्य को भी पहचाने।

'बीनने का स्वर्णिम दौर' व्यंग्य रचना में हरीश नवल वर्तमान समय में मानव की अतिशय स्वार्थ से अनुरंजित मानसिकता को व्यंग्यात्मकता का आधार बनाते हैं। आज का मानव अपनी लाभ-हानि के प्रति प्रखर रूप से जागरूक हो गया है। उसके प्रत्येक कार्य के क्रियान्वयन के पीछे एक ही उद्देश्य निहित रहता है कि यह सुनिश्चित हो जाए कि उस कार्य के

संपन्नता के उपरांत उसे क्या-क्या लाभ प्राप्त होंगे। प्रत्येक कोण से देख-परख कर ही वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि फलां काम उसे करना चाहिए या नहीं।

वर्तमान समय में दैनिक क्रियाकलापों से लेकर दीर्घ-सूत्री योजना तक, मनुष्य अपने अंतर्मन में स्वार्थ बीनने के तरीके तलाश करता रहता है। अपना या दूसरों का, कोई भी कार्य करने में, किसी के साथ संपर्क सूत्र बढ़ाने में तथा किसी के साथ भी मित्रता का भाव स्थापित करने में एक ही चयन प्रणाली क्रियाशील रहती है-स्वार्थ बीनने की। बीनने की परंपरागत प्रक्रिया को वर्णित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- “दाल बीनी जाती है, चावल बीने जाते हैं, गेहूं बीना जाता है, अन्य खाद्य पदार्थ भी बीने जाते हैं। एक कंकर बीने बिना रह जाए तो स्वादिष्ट से स्वादिष्ट और ढंग से पकाया गया पदार्थ भी जगत में अपनी निस्सारता ही व्यक्त करता रह जाता है।” (52) हरीश नवल द्वारा कहा गया उपर्युक्त कथन, बीनने की क्रिया के सकारात्मक पक्ष को रेखांकित करता है।

खाद्य वस्तुओं के बीने जाने की बात कहने के बाद हरीश नवल, साहित्यिक क्षेत्र, राष्ट्रीय क्षेत्र तथा व्यक्तिगत क्षेत्रों के अंतर्गत स्वार्थ बीनने की बात कहते हैं- “संपादक रचनाएं बीनते हैं, नेता मंत्री बीनते हैं, मंत्री विधायक बीनते हैं, विधायक वोटर बीनते हैं, वोटर बीनते हैं आशा की चंद किरणों और सभी किरणों को पहले से ही बीन चुके होते हैं नेता।” (52)

संपादक उन रचनाओं को बीनते हैं जो स्थापित रचनाकारों द्वारा रचित होती हैं, अथवा उनके द्वारा अनुमोदित होती हैं। चुनाव जीतने के बाद बड़े नेता, विजित प्रत्याशियों में से, मंत्री बीनते हैं। उच्च स्तर के नेताओं द्वारा, उन प्रत्याशियों को मंत्री रूप में बीना जाता है, जो उनके वर्चस्व को मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं। चुनाव से पहले जनता जिस प्रत्याशी को अपना वोट देती है, उसके प्रति आशाओं को बीन -बीन कर सहेजती जाती है। चुनाव जीतने के बाद नेता लोग उन आशाओं की पूंजी को चुपके से बीनकर अदृश्य हो जाते हैं, अगले 5 साल की अवधि तक।

हरीश नवल द्वारा कहे गए कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो, अपने स्वार्थ बीनने की क्रिया में संलग्न रहता है। हरीश नवल द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन के अंतर्गत, संतुलन, विश्वास वृत्ति तथा समदर्शिता-सांस्कृतिक मूल्यों का विखंडन दृष्टिगत होता है। कुछ नीति निपुण लोग, जब अपना ही सुख बीनते रहेंगे तो अन्य लोगों के सुख-दुख का संतुलन बिगड़ जाएगा। जब मनुष्य

समष्टि- हित के स्थान पर, व्यष्टि हित की बात सोचेगा तो समदर्शिता का भाव सर्वथा लुप्त हो जाएगा। प्रत्येक मनुष्य स्वहित साधने में संलग्न रहेगा तो परस्पर विश्वास-वृत्ति का भाव खंडित होगा।

बीनने की प्रक्रिया में कुछ लोग ईमानदारी और बेईमानी में से चुन-चुन कर बेईमानी बीनते हैं। उन बेचारों को सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए बेईमानी को चयनित करना पड़ता है। भारत की विविधता में ही एकता है-यह भारतीय संस्कृति की अन्यतम विशेषता है। इस सांस्कृतिक विरासत की रक्षा हेतु कुछ लोगों को विवशतावश बेईमानी अपनानी पड़ती है। इस संदर्भ में विष्णु नागर *राष्ट्रीय नाक* पुस्तक के अंतर्गत बताते हैं कि भारत की स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती के अवसर पर प्रधानमंत्री ने अपने संभाषण के दौरान बहुत महत्वपूर्ण बात कही कि भारत में केवल पांच प्रतिशत बेईमान है। बाकी 95 प्रतिशत तो ईमानदार हैं। भारत में अनेक विविधताओं के होते हुए भी एकता है, विविधता के भाव को अक्षुण्ण रखने के लिए, कुछ लोगों को बेईमानी अपनानी पड़ती है। पांच प्रतिशत लोगों के द्वारा बेईमानी बीने जाने की विवशता बताते हुए विष्णु नागर लिखते हैं-"सब के सब ईमानदार हो जाएं, तब एकता में विविधता का क्या होगा? सारे ही ईमानदार हो गए तो विविधता कैसे बचेगी?" (138)

विष्णु नागर, बेईमानी बीनने वाले पांच प्रतिशत लोगों के चारित्रिक अपकर्ष की ओर संकेत करते हैं। सत्य ही, कुछ लोग चरम सीमा तक त्याग की भावना से ओतप्रोत होते हैं। राष्ट्र में विविधता को बचाने के लिए कुछ त्यागी महापुरुष, चुपचाप बेईमानी ओढ़ लेते हैं। ऐसे लोगों के त्याग और समर्पण को न पहचानते हुए, सामान्य जनता उन्हें तिरस्कृत दृष्टि से देखती है। भोली-भाली जनता यह नहीं जानती कि ये पाँच प्रतिशत लोग बेईमानी सिर्फ इसलिए करते हैं ताकि देश में, एकता में विविधता विद्यमान रहे, इस भाव को कोई क्षति न पहुंचे।

अपने स्वार्थ तथा अपने सुख बीनने की मनोवृत्ति आधुनिक युग की देन है। भारतीय परंपरा में तो दूसरों के सुख के लिए तत्पर रहने की प्रेरणा दी गई है। जिसके अंतर्गत सबके मंगल की कामना निहित रहती है, केवल अपना स्वार्थ साधने का प्रयास नहीं रहता। इसी भावना का विस्तार बल्देव भाई शर्मा भारतीय *सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान* पुस्तक के अंतर्गत शांति मंत्र के माध्यम से देते हैं-"सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मां कश्चित् दुःख भाग भवेत्।" (8) अर्थात् सभी सुख से रहें, आरोग्ययुक्त रहें, परस्पर मंगल कार्य करने में प्रयत्नशील रहें। किसी के कारण, किसी को दुःख, क्लेश अथवा पीड़ा का

अनुभव न हो। उपर्युक्त मंत्र का विस्तार पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक बताते हुए बल्देव भाई शर्मा आगे लिखते हैं- "यह भाव ही भारतीय संस्कृति की पहचान है। इस सांस्कृतिक चेतना से गढ़े गए भारतीय जीवन मूल्य वैश्विक चेतना और मनुष्यता के पोषक हैं।" (8)

बल्देव भाई शर्मा के कथन के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति में जिन जीवन मूल्यों के निर्वहण के प्रति आग्रह परिलक्षित होता है, वस्तुतः वे विश्व में मानवता के भावों को संप्रेषित करते हैं; मानव को मानवता की कसौटी पर खरा उतरने के लिए प्रेरित करते हैं। भारतीय संस्कृति मनुष्य में मनुष्यता के भाव का बीजारोपण करते हुए उसे पोषित करती है। केवल अपना स्वार्थ बिनने के लिए, उद्योग निरत रहना भारतीय संस्कृति में निषिद्ध है। मनुष्य जब सभी के मंगल की कामना करेगा, सभी के कल्याण की इच्छा अपने अंतर्मन में रखते हुए, उन्हें प्रायोगिक रूप देने के लिए क्रियाशील रहेगा तो उसका अपना भी तो मंगल ही होगा। पुष्प वाटिका लगाने वाला माली, दूसरों को सुगंधित वायु प्रदान करेगा तो क्या स्वयं पुष्पों की सुगंध से निर्लिप्त रह जाएगा? जब एक व्यक्ति के प्रयास से, दूसरे व्यक्ति के मुख पर संतुष्टि के भाव आते हैं तो वह व्यक्ति भी तो अपने अंतर्मन में संतुष्टि का अनुभव करता है, यह सोचते हुए कि दूसरे को सुख पहुंचाने के उद्देश्य से किया गया उसका प्रयास सफल हुआ।

'छेड़छाड़ एक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक अध्ययन 'व्यंग्य रचना के अंतर्गत, छेड़छाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बताते हुए हरीश नवल, मनुष्य जाति को ईश्वर द्वारा की गई छेड़छाड़ का परिणाम मानते हैं। ऐसा माना जाता है कि आदम और हव्वा के संयोग से, मनुष्य जाति की उत्पत्ति हुई। इस विषय में हरीश नवल लिखते हैं-"अच्छा- खासा भगवान बैठा था कि अनायास ही वह छेड़छाड़ कर उठा और तब से आदम-हव्वा की संतान के साथ-साथ वह भी परेशान है। अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने का इससे अधिक सटीक उदाहरण अन्यत्र नहीं है।" (40)

समग्र सृष्टि बनाने के बाद ईश्वर को ध्यान आया कि इतने जीव- जंतु , पशु -पक्षी, तथा वनस्पतियों इत्यादि का निर्माण तो कर दिया, अब इनकी देखभाल करने वाला कोई जीव भी तो बनाना चाहिए। ईश्वर ने मनुष्य रूप में उस जीव का निर्माण किया। मनुष्य को बौद्धिकता प्रदान की, सही और गलत में अंतर करने का विवेक प्रदान किया। मनुष्य को सामर्थ्य प्रदान करने के पीछे ईश्वर का यह उद्देश्य था कि मानव, अपनी देखभाल करने के साथ-साथ, ईश्वर-निर्मित अन्य जीवों के पालन-पोषण और संरक्षण का कार्यभार भी संभालेगा। आदिम युग के बाद, मनुष्य ने सामाजिक जीवन जीना प्रारंभ किया तो उसने ईश्वर-प्रदत्त उत्तरदायित्व को निभाया

भी। उसने मांसाहारी जानवरों से, शाकाहारी जानवरों को बचाने के लिए अपने घर में आश्रय दिया। उसने गाय, बैल, घोड़ा, गधा, तथा भेड़ बकरियों को घर पर पालना शुरू किया। मनुष्य ने उनके द्वारा अपने कई कार्य साधे और बदले में उनके भोजन- पानी, सुरक्षा का प्रबंध किया।

एक रचनाकार जब समग्र रूप से, सर्वगुण संपन्न रचना निर्मित कर लेता है, उसके बाद वह उसकी गुणवत्ता की ओर से निश्चित हो जाता है। ईश्वर ने मनुष्य को विवेकशील बनाया तो उसके बाद मनुष्य का यह उत्तरदयित्व है कि जिस कर्तव्य की पूर्ति के लिए, जिस कार्य की संपन्नता के लिए, ईश्वर द्वारा उसे सभी प्राणियों में सर्वोत्कृष्ट बनाया गया है, वह उन कार्यों के क्रियान्वयन के प्रति पर्याप्त सजग रहे, प्रतिबद्ध रहे। वर्तमान समय में यदि मानव अपने कर्तव्य पथ से विमुख हो गया है तो इससे ईश्वर को कोई परेशानी नहीं है। मनुष्य यदि सम्यक कार्य का निर्वहण करने के प्रति उदासीन है तो उसका दुष्परिणाम भी उसे ही भुगतना पड़ेगा।

उपर्युक्त कथन के आलोक में लोककल्याण, सांस्कृतिक मूल्य का क्षरण दृष्टिगत होता है। समष्टि-विकास के बृहद उद्देश्य के पथ पर अग्रसर मनुष्य, कब व्यष्टि विकास की पगडंडी पर मुड़ गया, इसका उसे भान तक नहीं हुआ। अपने ही मंगल के विषय में सोचता हुआ वह लोक कल्याण के, उदात्त उद्देश्य को ही नजरअंदाज करता गया। जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण को त्याग कर, संकुचित विचारधारा को ध्यातव्य रखने से विचारात्मकता में विकार तो आ ही जाता है।

वर्तमान परिदृश्य में यह तथ्य स्वयं प्रमाणित है। आज समग्र संसार कोरोना संकट से जूझ रहा है। मानव ने प्रकृति से छेड़छाड़ की, उसका संतुलन बिगाड़ा, उसके सुंदर और परिष्कृत रूप को खंडित किया। मानव ने अपने सुख के लिए, भौतिक साधन जुटाने प्रारंभ किए, वनों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, वन्य प्राणियों को आश्रय- विहीन कर दिया, पर्वतों को काट-काट कर, सड़कों का जाल बिछाया, पर्वतीय सौंदर्य छिन्न-भिन्न करते हुए वहां पांच सितारा होटलों का निर्माण किया। यह सारा उद्योग उसने अपने जीवन के विलास और क्षणिक आनंद की प्राप्ति के लिए किया। मानव ने प्रकृति-चक्र को इस सीमा तक छेड़ा कि प्रकृति क्रुद्ध हो गई। प्रकृति ने केवल एक सूक्ष्म जीव छोड़ा, जिसकी छेड़छाड़, समग्र मानव जाति को भारी पड़ रही है। मनुष्य के द्वारा बनाए गए सभी सुरक्षा तंत्र इस जैविक विषाणु के आगे, औंधे मुंह जमीन पर आ गिरे हैं। प्रकृति, व्यंग्यात्मकता का निर्वहण करते हुए, अप्रत्यक्ष दिशा निर्देश दे रही है कि मानव जगत को अब स्वार्थ रहित होकर प्रकृति संरक्षण के विषय में यथेष्ट रूप से जागरूक हो

जाना चाहिए क्योंकि इसके अतिरिक्त अब और कोई विकल्प नहीं बचा, जिसके द्वारा, इस वैश्विक संकट से उबरा जा सके।

अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए गए निरंकुश शासन को हरीश नवल, ऐतिहासिक छेड़छाड़ समझते हैं। अंग्रेजों ने भारतीयों पर मनमाने अत्याचार किए, उनके लघु उद्योगों से छेड़छाड़ की, मशीनी युग का सूत्रपात किया, और सरकारी नौकरी पाने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अनिवार्य घोषित किया। इस मानसिकता के परिप्रेक्ष्य में यह सुनियोजित षड्यंत्र था, कि अंग्रेजी पुस्तकों के अध्ययन का भारतीयों के मस्तिष्क पर प्रभाव निश्चित रूप से पड़ेगा। संस्कृत, हिंदी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन से विमुख होकर, भारतीय अपनी संस्कृति के प्रति भी उदासीन होते जाएंगे। भारतीयों को उनकी संस्कृति से दिग्भ्रमित करके, उन पर सुगमता से शासन किया जा सकेगा। संस्कृति से पृथक किसी भी राष्ट्र और उसके नागरिकों का अस्तित्व नहीं होता। इस विषय में रमेश पोखरियाल *भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं परंपरा* पुस्तक में लिखते हैं- "संस्कृति के बिना किसी भी राष्ट्र और उस राष्ट्र के नागरिकों का कोई अस्तित्व नहीं रहता" (17)

रमेश पोखरियाल के कथन से स्पष्ट है कि किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उसके प्राण सदृश होती है। जीवन में, जीवित रहने के लिए जितना महत्व हवा, जल और भोजन का है, उतना ही महत्व किसी राष्ट्र के नागरिकों के लिए उसकी संस्कृति का है। उस राष्ट्र में रहने वाले नागरिकों के रहन-सहन का ढंग तथा उनका आचरण, उस राष्ट्र की संस्कृति का प्रतिबिंब होता है। अंग्रेजों ने भारतीयों के साथ जो छेड़छाड़ की, उनकी छेड़छाड़ से त्रस्त होकर भारतीयों ने जो प्रतिक्रिया की, उस विषय में हरीश नवल आगे लिखते हैं- "अंग्रेजों ने भारतीयों को छोड़ा और भारतीयों ने गांधी जी द्वारा सत्याग्रह आंदोलन छोड़ कर, अंग्रेजों को ऐसा छोड़ा कि वे देश छोड़-छाड़ कर भाग निकले। इसमें क्रांतिकारियों की समय-समय पर की गई छेड़ों का भी महान योगदान है।" (43)

उपर्युक्त कथन में व्यंग्य का तत्व 'हास्य का प्रेरक' प्रयुक्त हुआ है। हरीश नवल के कथन के द्वारा किंचित्मात्र हास्य रस की सृष्टि तो होती है, परंतु इसके परिप्रेक्ष्य में इतिहास में घटित उन घटनाओं को भी स्मरण कराया गया है, जिसके द्वारा इस तथ्य की पुष्टि होती है कि भारतीय धैर्यवान अवश्य हैं, परंतु कायर नहीं। भारतीयों के स्वाभिमान को अगर बार-बार आहत किया जाएगा तो उनका प्रसुप्त वीर-रस अवश्य जागृत होगा।

इस संदर्भ में हरिशंकर परसाई ने *तुलसीदास चंदन घिसै* पुस्तक के अंतर्गत गोस्वामी तुलसीदास का कथन उद्धृत करते हुए लिखा है- "अतिशय रगड़ करै जो कोई, अनल प्रकट चंदन तें होई।" (13) उपर्युक्त कथन का भाव है कि चंदन, जिस की प्रकृति शीतल है, बार-बार उसका घर्षण करने से, उसमें से भी अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। अंग्रेजों ने भारतीयों की शांत प्रकृति को अनेक बार कुरेदा, तो उनके हृदय में स्थित वीरता का भाव जागृत हो उठा, और उन्होंने अंग्रेजों को, भारत से बाहर खदेड़ने के लिए कमर कस ली। अंग्रेजों द्वारा भारतीयों की भाषा, व्यवहार तथा रहन-सहन के तौर-तरीकों के प्रति, जो छेड़छाड़ की गई, भारतीयों ने शांति और क्रांति दोनों प्रविधियों के द्वारा उसका प्रतिरोध किया।

इतिहास का संबंध अतीत से है, इसलिए तत्कालीन शासन तंत्र इतिहासज्ञों द्वारा, इतिहास से अपनी सुविधानुसार, छेड़छाड़ करवाता रहता है। जिनके हाथों में नीति निर्माण का अधिकार होता है, वे अपने स्वार्थ के लिए, इतिहास के पृष्ठों से छेड़छाड़ करते रहते हैं, उनमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन करते रहते हैं। शासन तंत्र बदलता रहता है, छेड़छाड़ जारी रहती है, कालांतर में यह स्थिति उभरती है कि इतिहास में घटित वास्तविक घटना, इतिहास की गहन कंदरा में खो जाती है और अनेक बार परिवर्तित की गई घटना, कोई अन्य ही रूप ग्रहण कर लेती है। इस संदर्भ में भुवनेश्वर उपाध्याय द्वारा संपादित *व्यंग्य व्यंग्यकार... और जो जरूरी है* पुस्तक के अंतर्गत कमलेश पांडेय "इतिहास से एक ऐतिहासिक छेड़छाड़" व्यंग्य रचना में लिखते हैं- "इसमें से काम के सबूत निकालने के लिए छेड़छाड़ की भरपूर गुंजाइश है। इतिहास को सुविधानुसार तोड़-मरोड़ कर भी पेश करने की सुविधा उपलब्ध है।" (95)

लिखित इतिहास, प्रामाणिक तथ्य-अन्वेषण पर आधारित होता है। उससे छेड़छाड़ करने से, तथ्यों की प्रामाणिकता को क्षति पहुंचती है। आने वाली पीढ़ियों को, अपने पूर्वजों की आचार पद्धति की, तत्कालीन परिस्थितियों की तथा उस समय समाज में व्याप्त विसंगतियों की जानकारी इतिहास द्वारा ही मिलती है। इतिहास को अपनी सुविधाओं के लिए परिवर्तित करना सम्यक नहीं है। इतिहास के साथ की गई छेड़छाड़ से, उस समय की स्थिति का वास्तविक परिदृश्य लुप्त हो जाता है और आने वाली पीढ़ियों के समक्ष भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यही भ्रामक परिस्थितियां समाज में मतभेद उत्पन्न करती हैं और परस्पर मनोमालिन्य का कारण बनती है। ऐतिहासिक छेड़छाड़ को वर्तमान समय से संबद्ध करते हुए, कमलेश पांडेय आगे लिखते हैं- "ताजा दौर में किसी स्वार्थ के पुख्ता करने के लिए इतिहास में से, काम के पन्ने, संदर्भों से काटकर फाड़ लिए जाते हैं।" (95)

इतिहास, संस्कृति की गतिशीलता का साधन है। इतिहास के माध्यम से ही अगली पीढ़ियां अपनी परंपराओं और संस्कृति के विषय में जानकारी प्राप्त करती हैं। यह तो स्वार्थ सिद्धि की पराकाष्ठा है कि वर्तमान समय में, इतिहास के पन्नों से अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए छेड़छाड़ की जा रही है। उन पृष्ठों को काटा जा रहा है जो उनकी स्वार्थ सिद्धि में बाधक सिद्ध हो रहे हैं।

भारतीय संस्कृति पर अंग्रेजों के अतिरिक्त कई अन्य विदेशी आक्रमणकारियों ने अनेक घात- प्रतिघात किए, पर भारतीय संस्कृति अडिग रही, अचल रही। यवन निवासी सिकंदर, भारतीय संस्कृति को खंडित कर, यवन संस्कृति का प्रसार करना चाहता था। उस परम शक्तिशाली यवन का स्वप्न, एक भारतीय ब्राह्मण चाणक्य ने धूल-धूसरित कर डाला। इस विषय में *कल्याण* के हिंदू संस्कृति अंक के अंतर्गत "हमारी मृत्युंजय संस्कृति" आलेख में बलदेवजी उपाध्याय लिखते हैं- "उसने हमारी संस्कृति का आमूल नाश करने का तथा यवन-संस्कृति को विश्व की संस्कृति बनाने का प्रण किया था परंतु एक ब्राह्मण ने उससे टक्कर ली। उस महापुरुष का नाम था, कौटिल्य चाणक्य। चाणक्य ने चंद्रगुप्त के समान तेजस्वी शासक का निर्माण किया।" (271)

चाणक्य ने चंद्रगुप्त में निहित अप्रतिम वीरता के गुण को परख लिया था। चाणक्य की पारखी दृष्टि का, इतिहास साक्षी है। सिकंदर की भारतीय संस्कृति को भग्न करने की, और यवन संस्कृति को अखिल विश्व में प्रतिष्ठित करने की, आकांक्षा फलीभूत नहीं हो पाई। भारतीय संस्कृति सार्वयुगीन है, इसके अंतर्गत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा समाहित है। जिस संस्कृति के अंतर्गत समग्र विश्व को परिवार माना जाएगा, वहां किसी प्रकार के भेदभाव के लिए, कोई स्थान शेष कैसे रहेगा? जब-जब इस अवधारणा को विस्मृत किया गया, सांस्कृतिक मूल्यों के विरुद्ध आचरण किया गया, तब- तब भारत भूमि की संस्कृति खंडित हुई।

अंग्रेजों के भारत में पैर जमाने के मूल में भी यही कारण था कि अंग्रेज जब व्यापार करने के उद्देश्य से भारत आए तो उन्होंने अनुभव किया कि भारत अनेक स्वतंत्र राज्यों में विभाजित था। प्रत्येक शासक की स्वतंत्र सत्ता थी और कुछ राज्य अपने-अपने स्वार्थ के दायरे में कैद थे। अंग्रेजों ने स्थिति का लाभ उठाया। उन्होंने स्वार्थी राजाओं को साम्राज्य विस्तार का लालच देकर युद्ध के लिए उकसाया। यदि उस समय सभी भारतीय राजा एकता के सूत्र में बंधे होते और वसुधैव कुटुम्बकम् की धारणा से अनुप्राणित होते तो भारत का इतिहास कुछ और

होता। समग्र विश्व को परिवार मानना तो दूर, वे पड़ोसी राज्यों तक के प्रति, हितैषिता का भाव नहीं अपना पाए। इस विडंबना पूर्ण स्थिति का दुष्परिणाम यह निकला कि अन्ततः सभी राज्यों का ब्रिटिश साम्राज्य में विलयीकरण हो गया। हरीश नवल, अंग्रेजों द्वारा भारत के साथ की गई छेड़छाड़ वर्णित करते हुए, भारतीय जनता को सजगता धारण करने के लिए प्रेरित करते हैं। वर्तमान समय में राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र के अंतर्गत विसंगतियां दृष्टिगत हो रही हैं। हर व्यक्ति के लिए स्वहित प्राथमिक बन गया है और समाज-हित अथवा राष्ट्र-हित गौण हो गया है। स्वार्थी प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण, कर्तव्यों का सम्यक रीति से निर्वहण नहीं हो पा रहा।

5.2 सत्संगति, नियम, समचित्तता, सज्जनता तथा विश्वास। इन सांस्कृतिक मूल्यों का विखंडन, हरीश नवल कृत पुस्तक *दिल्ली चढ़ी पहाड़* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

अपसंस्कृति बनाम डाउन संस्कृति व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण की ओर, संकेत किया है। भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि अत्यंत समृद्ध, गौरवशाली और महिमामंडित है, जिसके अंतर्गत सत्यवादी हरिश्चंद्र, भगवान राम तथा सम्राट युधिष्ठिर जैसे त्यागी और आदर्श राजा हुए हैं। पुरातन और वर्तमान संस्कृति की तुलनात्मकता करते हुए हरीश नवल लिखते हैं-"बड़ों की इज्जत, गुरु का सम्मान, पड़ोसी धर्म का पालन एक गौरवशाली परंपरा थी, किंतु अब तो संस्कृति दांत किटकिटाती किट्टी संस्कृति है।" (71)

किट्टी संस्कृति वर्तमान समाज के धनी वर्ग में प्रचलित है। अधिकांश स्तर पर इसका आयोजन स्त्रियों द्वारा होता है, और इसके अंतर्गत प्रतिभागिता भी अधिकतर स्त्रियों द्वारा ही होती है। किट्टी पार्टी के आयोजन के दौरान, पड़ोसी धर्म को ताक पर रख दिया जाता है। ऊंचे स्तर में संगीत की धुन पर नृत्य करने की धुन, उनके सर पर इस कदर सवार हो जाती है कि पड़ोस में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की पढ़ाई में, विघ्न डालना भी अनुचित नहीं समझा जाता। घर में विद्यमान बुजुर्गों को भोजन अथवा दवाई देने में भले ही विलंब हो जाए, परंतु किट्टी पार्टी में विद्यमान मेहमानों को थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद, कुछ पेय, अथवा खाद्य पदार्थ प्रस्तुत करने में तनिक भी विलंब नहीं होता।

उपर्युक्त पंक्तियों में अति विडंबनापूर्ण स्थिति दृष्टिगत होती है, जिसके अंतर्गत उत्सर्ग, सत्संगति, नियम, संतुलन तथा समचित्तता, सांस्कृतिक मूल्यों का विखंडन दृष्टिगत होता है। किट्टी पार्टी में संलिप्त स्त्रियों में उत्सर्ग की भावना किस प्रकार होगी, क्योंकि किट्टी पार्टी में प्रतिभागिता के लिए, वे सप्ताह भर अपनी सजने-संवरने की तैयारी में ही संलग्न रहती हैं। उनके

पास परिवार तथा समाज के लिए उत्सर्ग करने हेतु समय ही नहीं बचता। जिस समय वे स्त्रियां ब्यूटी पार्लर में अथवा बाजार में सौंदर्य प्रसाधनों को एकत्रित करने में जुटी होती हैं, उस समय उनके परिवार के सदस्य अवहेलना का शिकार हो रहे हैं, इस और ध्यान देने की उनके पास फुर्सत नहीं होती। इस समग्र क्रियात्मकता में, पारिवारिक संतुलन बिगड़ जाता है। किट्टी पार्टी की तैयारी में पूरे परिवार का सोने, जागने तथा भोजन ग्रहण करने का समय अव्यवस्थित हो जाता है, जिससे नियम टूटता है। समचितता, अर्थात् धैर्य और शांति भी विछिन्न हो जाती है। किट्टी पार्टी के अंतर्गत अधिकांश स्तर पर, स्त्रियों के मध्य निंदा पुराण का पारायण अधिक होता है, इसलिए इस गोष्ठी को सत्संगति भी नहीं कहा जा सकता।

सांस्कृतिक मूल्यों का हास, युवा पीढ़ी पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, एकल परिवार के अंतर्गत भी अधिकांश स्त्री- पुरुष, नौकरीपेशा होते हैं। माता-पिता, दोनों के नौकरी पर चले जाने के बाद युवा बच्चे घर पर अकेले होते हैं। उस समय घर पर किसी का अंकुश न होने से युवा वर्ग के भटकाव के आसार बढ़ जाते हैं। ऐसे में यदि कोई युवा बुरी संगति में पड़ जाता है तो फिर एक-एक करके अनेक विकृतियां, उसके मानस में अंतर्निहित होने लगती हैं। पहले-पहल नशे को शौक के तौर पर अपनाया जाता है, कालांतर में युवा उसका अभ्यस्त हो जाता है। युवा वर्ग को नशे की ओर उन्मुख देख हरीश नवल ने आगे लिखा है-"दूध पीने वाले युवा स्मैक पीने लगे और नशीली संस्कृति फिर जहरीली संस्कृति हो गई।"(73)

ऊपर लिखे कथन का आशय है कि नशे की अधिकता, शनैः शनैः शरीर के भीतर विष के रूप में परिवर्तित होने लगती है। नशे की आदत से कितने बसे-बसाए परिवार उजड़ जाते हैं और कितने युवा अधिक नशा करने के कारण असमय काल के ग्रास बन जाते हैं, इसकी गणना करना कठिन है। संस्कृति नशीली अथवा जहरीली नहीं हो सकती। शहद में यदि नीम का रस मिला दिया जाए तो इसमें शहद का क्या दोष? मानव यदि अपनी क्रियाओं का सम्यक रीति से निर्वहण न करे, तो इससे संस्कृति की परिभाषा नहीं बदल जाएगी। हरीश नवल द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन से सांस्कृतिक मूल्य 'संतुलन' का विघटन दृष्टिगत होता है, क्योंकि खानपान के अंतर्गत दुग्ध-सेवन, मानव शरीर को स्वस्थ रखता है। मनुष्य द्वारा ग्रहण किए गए भोजन में, जिन पौष्टिक तत्वों की कमी रह जाती है, वह दुग्ध-सेवन से पूर्ण हो जाती है। नशे का सेवन मानव की भोजन प्रणाली का अंग नहीं है, इसके द्वारा शरीर में असंतुलन ही होगा।

युवा वर्ग का नशे के प्रति आकर्षित होने का एक कारण, बेरोजगारी भी है। यौवन का समय शारीरिक और मानसिक, दोनों प्रकार से ऊर्जावान होता है। उस उर्जा को सकारात्मक रूप देने के लिए, युवा वर्ग का किसी कार्य में व्यस्त रहना अति आवश्यक है। डिग्रियों का पुलिंदा थामे प्रतिदिन रोजगार कार्यालय के चक्कर काटकर जब वह थक जाता है, हार जाता है, तो अपनी असफलता को भुलाने के लिए नशे का सहारा लेता है। उपर्युक्त विडंबनापूर्ण स्थिति को वर्णित करते हुए सुरेश सेठ *नशतर की मुस्कान* पुस्तक में लिखते हैं- "देश के नौजवान नशे और मादक द्रव्यों के अंधड़ में, गुप्त होने लगे।" (266) सुरेश सेठ के कथन का भाव है कि अनेक बार नौकरी का साक्षात्कार देकर भी, जब नौजवानों को नौकरी नहीं मिलती तो बार-बार की असफलता उनके अप्रतिम साहस को भी विचलित कर देती है। ऐसी स्थिति में कई युवा, पथभ्रष्ट हो जाते हैं और छिपकर, विभिन्न प्रकार के मादक पदार्थों का सेवन करने लगते हैं।

हरीश नवल युवा पीढ़ी को सजगता का संदेश देते हैं, ताकि वे जीवन की किसी असफलता से घबराकर, नशे के चंगुल में न फंस जाएं। जिस युवा को अपना होश ही नहीं होगा, अपनी सुध बुध ही न होगी, वह अपने कार्यों का सम्यक रीति से, निर्वहण कैसे कर पाएगा? प्रभात झा द्वारा संपादित *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद* पुस्तक में प्रभात झा ने लिखा है- "जीवन में संपूर्ण अभिव्यक्ति का नाम संस्कृति है। संस्कृति हमें जोड़ती है।" (95) नशे में बेसुध युवा स्वयं को अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य कहां जुटा पाएगा? नशे के शिकंजे में वह इस कदर जकड़ा जाता है कि स्वयं अपने अस्तित्व से ही अपरिचित हो जाता है, ऐसी स्थिति में समाज से जुड़ाव की बात तो सोची भी नहीं जा सकती।

'दवे साहब की बैठक से' व्यंग्य रचना में हरीश नवल इस सत्य को उद्घाटित करते हैं कि विभिन्न विधाओं अथवा कलाओं में निपुण कलाकार, जो अपनी प्रतिभा को विकसित कर राष्ट्रव्यापी या विश्वव्यापी बन जाते हैं, उनकी सफलता के पीछे उनके उन साथियों का बड़ा हाथ होता है जो उनके साधारण से प्रयास को प्रशंसित करके उनका उत्साहवर्धन करते हैं और आत्मविश्वास बढ़ाते हैं। सफलता की ऊंचाइयों पर पहुंच कर वे लोग उन सहयोगियों को भूल जाते हैं जिनका उनकी विराट सफलता में अन्यतम योगदान होता है।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना में हरीश नवल बसंतराम दवे की बैठक के विषय में बताते हैं। उस बैठक में अनेक संघर्षरत कलाकारों का जमावड़ा होता था। उनमें से अनेक कलाकार प्रसिद्धि की चोटी तक पहुंच गए। विख्यात होते ही वे दवे साहब की बैठक, और दवे साहब

दोनों को भूल बैठे। हरीश नवल उन्हीं कलाकारों से प्रश्न करते हैं- "बसंतराम दवे कौन थे, वे कहां है? इतने कलाकारों को प्रश्न देने की उनकी भूमिका क्या महत्व रखती है? क्या कर्तव्य है इन कलाकारों का उनके प्रति, यह कोई नहीं बता सकता।" (82)

हरीश नवल, उन शीर्षस्थ कलाकारों को उपालंभ देते हैं, जो प्रसिद्धि के शिखर पर पहुंचकर अपने सहयोगियों को भूल जाते हैं। बसंतराम दवे की बैठक में उन कलाकारों ने अपनी कला के विस्तार के लिए रणनीति तैयार की, परस्पर सहयोग का आदान-प्रदान किया। जिस स्थान पर उन्होंने बुलंदियों तक पहुंचने के सूत्र ग्रहण किए, लक्ष्य सिद्धि के उपरांत वे उस आश्रय-स्थल को भी विस्मृत कर बैठे।

उस बैठक में सम्मिलित होकर जो कलाकार प्रसिद्धि के शिखर पर पहुंच जाता है वह अपने सहयोगियों के प्रति कृतज्ञ रहे और सदा स्मरण रखे कि उसकी सफलता के पीछे उसके सहयोगियों का भी योगदान है। दवे साहब को माली और प्रसिद्धि प्राप्त कलाकारों को बीज की उपमा देते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं- "बीज अंकुरित होते हैं, छोटे पौधे से वटवृक्ष बनते हैं, पर क्या उनका कोई बोध उस माली के प्रति भी होता है जो उन्हें सींचता है, बुहारता है, दुलारता है।" (83)

हरीश नवल करुणा, वेदना और पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हुए यह कहते हैं कि प्रत्येक बड़ी सफलता के परिप्रेक्ष्य में अनेक व्यक्तियों का, अनुकूल परिस्थितियों का और अनुकूल अवसरों का योगदान रहता है। इतिहास साक्षी है कि सम्राट चंद्रगुप्त के उत्कर्ष में महान कूटनीतिज्ञ चाणक्य का बहुत बड़ा हाथ था। चंद्रगुप्त ने इस तथ्य को कभी अपने हृदय से ओझल नहीं किया और सदैव उन्हीं के निर्देशन में शासन संबंधी तमाम कार्य किए, जो चाणक्य के प्रति उनके हार्दिक सम्मान को प्रगट करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में रामकुमार वर्मा *अग्निशिखा* पुस्तक में लिखते हैं- "चंद्रगुप्त ने अपने आचार्य की नीति से सदैव विजय प्राप्त की। चंद्रगुप्त ने उन्हें सदैव आचार्य के नाते मस्तक झुकाया।" (12)

रामकुमार वर्मा के कथन के आधार पर कह सकते हैं कि जिस प्रकार चंद्रगुप्त बल, पराक्रम और राज्य के विस्तार में चाणक्य की भूमिका को महत्वपूर्ण मानता रहा और उनका यथोचित सम्मान करता रहा, उसी प्रकार समग्र मानव जगत को अपने विवेक के द्वारा अपने सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता का भाव अपनाए रखना चाहिए। जीवन संघर्ष में अथवा अपनी

चतुर्दिक उन्नति के लिए अपने सहायकों को सदैव स्मरण रखते हुए उनका आदर करना चाहिए क्योंकि शाश्वत सांस्कृतिक मूल्यों के निर्वहण के यही निकष हैं।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत, सज्जनता और विश्वास, इन दो सांस्कृतिक मूल्यों का विखंडन दृष्टिगत होता है। बसंत राम दवे की बैठक में आकर, वहां से अनुकूल अवसर तथा मार्गदर्शन पाकर, अनेक लोग समृद्धि और प्रसिद्धि की सीढ़ियां चढ़ गए। जो स्थान, उनकी सफलता के सोपानों का माध्यम बना, उसी स्थान को, विस्मृत कर देना उस व्यक्ति के विश्वास को खंडित करता है, जो वहां स्थायी रूप से निवास करता है। उनके व्यवहार से यह कटु सत्य उभरकर सामने आता है कि उन लोगों ने बसंत राम दवे जैसे सज्जन व्यक्ति के प्रति, सज्जनता का व्यवहार नहीं किया। बसंत राम दवे तथा उनकी बैठक को याद करना तो दूर, कुछ कलाकार तो उन्हें भी भूल जाते हैं, जिनका उनकी प्रगति में आरम्भ से लेकर, उन्नति के शिखर स्पर्श करने तक अप्रतिम योगदान रहता है। इस विषय में हरीश नवल ने आगे लिखा है- "गुलजार भी दिल्ली के हैं, वे अपने उस्ताद नसीम साहब को देखने का समय चाहते हुए भी नहीं निकाल पाते थे।" (82)

जो कलाकार प्रख्यात होने के पश्चात, अपने गुरु को ही विस्मृत कर देता है उसके अंतर्मन में अपने गुरु के प्रति विनय, विनीतता तथा भक्ति के भाव कैसे निहित हो सकते हैं? अपने समय को गुरु के समय से भी अधिक मूल्यवान समझने पर उपर्युक्त सांस्कृतिक मूल्य, भरभरा कर गिर पड़ते हैं।

तुलसीदास द्वारा रचित *श्रीरामचरितमानस* में श्रीराम हनुमान द्वारा सीता की खोज में उनके सहयोग के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हैं और कहते हैं-

"सुनु कपि तोहि समान उपकारी, नहीं कोई सुर नर मुनि तनुधारी,

प्रति उपकार करौं का तोरा, सन्मुख होई ना सकत मन मोरा।" (727)

अर्थात् हे हनुमान! मेरे लिए देवता, मनुष्य और ऋषि मुनि इत्यादि कोई भी जीवधारी तुम्हारे समान उपकारी नहीं है। तुम्हारे उपकार के बदले में मैं तुम्हारा क्या अभीष्ट सिद्ध करूं? मेरा मन तो आपके समक्ष ही नहीं आ सकता। श्रीराम के जीवन से हमें प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल आचरण करने की शिक्षा मिलती है। जीवन की समस्याओं को सुलझाने में अथवा

जीवन के उत्कर्ष में जो-जो सहायक के रूप में साथ देता है, उसके प्रति आदर, सम्मान और कृतज्ञता के भाव हमेशा रहने चाहिए।

5.3 अनासक्ति, उद्देश्य, समदर्शिता, विनम्रता, धर्म-निष्ठा, आचार, आत्मबल, विमलता, तथा नैतिकता। प्रस्तुत सांस्कृतिक मूल्यों का हनन *पीली छत पर काला निशान* व्यंग्य पुस्तक के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

‘रामलीला उर्फ रावण का ऊंचा कद’ व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने रावण को बुराई का प्रतीक बताया है। हरीश नवल, अपने इलाके में रामलीला के दौरान, रावण का चरित्र निभाने वाले व्यक्ति के विषय में बताते हैं कि वह व्यक्ति दिल्ली में टाईपिस्ट का काम करता था। रावण का चरित्र अभिनीत करने से वह, अपने क्षेत्र में अत्यधिक लोकप्रिय हो गया था। उसके प्रभाव का वर्णन करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "उसकी तूती बोलती थी। और राम? इस बीच कितने ही राम आए और गए।" (49) विसंगतियों के आधिक्य को रावण के माध्यम से, तथा अच्छाई को राम के माध्यम से अभिव्यक्त करना सम्यक है, परंतु हरीश नवल द्वारा कथित उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि हरीश नवल इतिहास में वर्णित राम और रावण को भूल कर, उनका चरित्र निभाने वाले पात्रों के व्यक्तित्व के आलोक में अपने विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन में, समाज के मध्य पृथक प्रभाव होता है। जो व्यक्ति रामलीला में रावण का चरित्र निभाता था, उसका व्यक्तित्व राम का चरित्र निभाने वाले व्यक्ति से, अधिक प्रभावशाली हो सकता है, परंतु हरीश नवल द्वारा उस पात्र को ऐतिहासिक राम से अभिन्न सिद्ध करना उचित नहीं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम भारतीय संस्कृति के उन्नायक हैं। प्रस्तुत कथन की पुष्टि *जीवन अलभ्य है, जीवन सौभाग्य है* पुस्तक के अंतर्गत, विद्यानिवास मिश्र के कथन से की जा सकती है- "राम भारतीय संस्कृति के प्राण-पुरुष हैं।" (85)

अर्थात् राम भारतीय संस्कृति के जीवन्त प्रतीक है। उन्होंने अपने जीवन में, अपने आचरण द्वारा जिन आदर्शों की स्थापना की, सम्यक आचरण के जो मापदंड बनाए, वे भारतीय संस्कृति के निर्देशों के अंतर्गत ही निहित हैं। राम के विराट जीवन मूल्यों से समन्वित चरित्र को, राम का चरित्र निभाने वाले पात्र के परिप्रेक्ष्य में अवलोकित नहीं किया जा सकता। वर्तमान समय में रामलीला के आयोजन के दौरान, अर्थ संस्कृति की प्रधानता देखने को मिलती है। इस विषय में हरीश नवल आगे लिखते हैं- "मूल्य तो समाप्त हो चुके हैं-कीमत हर जगह हावी है-इक्यावन रुपये से लेकर ग्यारह हज़ार तक की कीमत के कार्ड छपते और बंटते हैं।" (50)

उपर्युक्त कथन के द्वारा सांस्कृतिक उत्सवों की विडंबनापूर्ण स्थिति का पता चलता है, तथा अनासक्ति, उद्देश्य, समदर्शिता, विनम्रता इत्यादि सांस्कृतिक मूल्यों का हनन दृष्टिगत होता है।

भारतीय परंपरा में प्रतिवर्ष रामलीला के आयोजन का विधान इसलिए बनाया गया ताकि समकालीन पीढ़ी तथा आगामी पीढ़ियां, राम और रावण के चरित्र की तुलना करते हुए सम्यक चरित्र को, अपने आचरण में सम्मिलित कर सकें। राम कथा हर घर में पढ़ी और सुनी तो जाती ही थी, परंतु रामलीला के आयोजन द्वारा रामायण के विभिन्न पात्रों का प्रस्तुतीकरण, दर्शकों पर अधिक देर तक प्रभावी सिद्ध होता था। वर्तमान समय में रामलीला के आयोजन का प्रमुख उद्देश्य पीछे कर दिया गया है और इसके परिप्रेक्ष्य में, आयोजकों की आसक्ति धन संग्रह की ओर अधिक दृष्टिगत होती है। रामलीला से पहले, दर्शकों के मध्य इक्यावन से लेकर ग्यारह हजार रुपये के कार्ड बांटे जाते हैं और निश्चित तौर पर ग्यारह हजार रुपये के कार्ड धारकों को अभिनन्दनीय विधि से, अग्रिम पंक्ति में बैठाया जाता है। आयोजकों का व्यवहार दर्शाता है कि वे सभी दर्शकों के प्रति समदर्शिता का भाव नहीं रखते। ग्यारह हजार रुपये देकर कार्ड प्राप्त करने वाला व्यक्ति, स्वयं को इक्यावन रुपये के कार्डधर्ता से विशिष्ट मानने लगता है। वह व्यक्ति यदि भूलवश उसकी दीर्घा के भीतर प्रविष्ट हो जाता है तो ग्यारह हजार रुपये का धारक उसे फटकार लगाने लगता है, उसकी वाणी में विनम्रता के स्थान पर अभिमान की अनुभूति होती है।

रामलीला के आयोजन द्वारा जो प्रेरक संदेश प्रसारित होता था, उसका तो लोप होता जा रहा है और उसके अंतर्गत विसंगतियों का प्राधान्य बढ़ता जा रहा है। इसी विचार को शेरजंग द्वारा संपादित पुस्तक *व्यंग्य वैविध्य* में शंकर पुणतांबेकर द्वारा लिखित आलेख "विचार प्रवर्तक व्यंग्य" के आलोक में देखा जा सकता है। शंकर पुणतांबेकर, व्यंग्यकार मधुसूदन पाटिल द्वारा लिखित किसी व्यंग्य रचना की पंक्ति उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "जितनी अधिक रामलीलाएं हुई, उतने अधिक रावण पैदा हुए।" (46)

उपर्युक्त कथन का आशय है कि वर्तमान समय में, हर इलाका अपनी अलग रामलीला आयोजित करता है। जितने स्थानों पर रामलीलाएं होंगी, उतने ही अधिक पात्र रावण का चरित्र निभाएंगे। यद्यपि यह बात हर पात्र के संबंध में कही जा सकती है, तथापि व्यंग्यकार के कहने का भाव यह है कि रामलीलाओं की संख्या बढ़ने से समाज पर सकारात्मक प्रभाव अधिक परिलक्षित होना चाहिए था, परंतु नकारात्मक प्रभाव अधिक विस्तारित हो रहे हैं। नकारात्मक

प्रभावों की वृद्धि का एकमात्र कारण यही है कि रामलीला के आयोजक, मुख्य उद्देश्य से विमुख हो गए हैं। रामलीला के आयोजन के लिए हर इलाके का आयोजक मंडल घर-घर जाकर चंदा उगाहता है, कुछ धन अपनी जेब के हवाले करता है और कुछ धन से रामलीला का आयोजन करता है।

रामलीला के आयोजन के परिप्रेक्ष्य में जो संदेश प्रसारित है वह यह है, कि राम के आचरण को अपनाने की, अपने जीवन में ढालने की कोशिश की जाए। वर्तमान समय में उस संदेश की अवहेलना की जा रही है। *कल्याण* के हिंदू संस्कृति अंक के अंतर्गत, "रामराज्य" आलेख में शांतिदेवीजी, महर्षि वाल्मीकिजी के कथन को उद्धृत करते हुए लिखती हैं-लोके न हि स विद्येत यो न राममनुव्रतः।" (565) अर्थात् इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ, जिसने राम का अनुगमन न किया हो। महर्षि बाल्मीकि के समय में, सर्वत्र राम के आदर्शों का अनुगमन करने वाला मानव समाज विद्यमान था। राम के व्यक्तित्व की विराटता विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित पुस्तक *जीवन अलभ्य है, जीवन सौभाग्य है* के अंतर्गत सत्य सिद्ध हो जाती है। इस विषय में विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं- "थाईलैंड ने अपने आधुनिक इतिहास को राम के साथ बांधा है। राजा का नाम (केवल राजा का नाम) वहां राम होता है।" (97)

विद्यानिवास मिश्र के कथन के द्वारा, राम के आदर्शों का सर्वांगीही होना सुनिश्चित होता है। एक राजा के रूप में प्रजा, सर्वगुण संपन्न, प्रजा हितकारी, लोकमंगल के संवाहक व्यक्ति को चयनित करती है। एक देश में हर राजा का नाम अगर राम रखा जाना, अनिवार्य घोषित हो जाता है, तो राम का सर्वत्र लोकप्रिय होना स्वयं सिद्ध है। लोकप्रिय इस संदर्भ में, क्योंकि राम द्वारा दर्शाया गया, आचरण हर युग में मानव द्वारा अनुगमन किए जाने योग्य है।

'हम मूर्ख थे मूर्ख हैं और मूर्ख रहेंगे' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, भारतीय जनता के मूर्ख बनने के विभिन्न कारणों को दर्शाते हैं। भारत के नेता, भारतीय नागरिकों को कभी धर्म के नाम पर, कभी जाति के नाम पर तो कभी प्रदेश के नाम पर उन्मादित करते हुए मूर्ख बनाते रहे हैं। धर्म, संस्कृति के व्यावहारिक पक्ष का नाम है। भारतीय दर्शन ग्रंथों में, जिन विचारों को व्यावहारिक रूप में अपनाने के लिए निर्देश दिया गया है, वह संस्कृति है। मनुष्य द्वारा उन विचारों को जब अपने आचरण द्वारा दर्शाया जाता है, तो सम्यक कार्यों का निर्वहण मनुष्य का धर्म कहलाता है। अधिकांश भारतीय, कबीर, गुरु नानक, बुल्लेशाह इत्यादि संतो के द्वारा लाख समझाए जाने पर भी, बाहरी कर्मकांडों को धर्म मानते जा रहे हैं। धर्म के ठेकेदार

तथा भ्रष्ट राजनीतिज्ञ, उनके इसी अंधविश्वास का लाभ उठाकर उन्हें मूर्ख बनाते रहते हैं। इस विषय में हरीश नवल लिखते हैं- "धर्म के नाम पर मूर्ख बनाना आज तक जारी है। स्वर्गादिपि गरीयसी धरित्री भारतवर्ष में, कुछ राजनीतिक दल धर्म के बल पर ही मूर्ख बना रहे हैं।" (58)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से हरीश नवल, कुछ राजनीतिक दलों द्वारा धर्म के बल पर लोगों को मूर्ख बनाने की बात कहते हैं, जोकि चौंकाने वाली है! धर्म में कितना बल है, यह तो राजा हरिश्चंद्र और सम्राट युधिष्ठिर के उदाहरणों द्वारा स्पष्ट है। उन दोनों ने सत्यवाचन को, अपना धर्म माना था, इसलिए इतिहास में सिवाय हरिश्चंद्र के, किसी के नाम के साथ 'सत्यवादी' विशेषण नहीं जुड़ता। इसी प्रकार सम्राट युधिष्ठिर के नाम के साथ ही 'धर्मराज' विशेषण संश्लिष्ट होता है। राजनीतिज्ञ, धर्म के नाम पर जनता को भ्रमित करते हैं, धर्म के बल पर नहीं। धर्म तो अपने आप में एक प्रधान सांस्कृतिक मूल्य है। यदि धर्म के बल पर कोई कार्य हो रहा है, तो उसे मूर्खता के अंतर्गत नहीं माना जा सकता। राजनीतिक दल तो विभिन्न उपासना पद्धतियों को धर्म का नाम देकर, नागरिकों में अलगाववाद का प्रचार करते हैं।

हरीश नवल, जनसाधारण को प्रेरित करते हैं कि वे सजगता धारण करते हुए धर्म के नाम पर, स्वयं को मूर्ख बनने से बचाएं। हरीश नवल के कथन के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि चुनाव के दौरान राष्ट्र के कुछ राजनीतिज्ञों को, वोट हथियाने के लिए कोई सनसनीखेज मुद्दा नहीं मिलता, तो वे मन्दिर और मस्जिद की आड़ में जनता की आस्था का शोषण करते हैं। जिससे सांस्कृतिक मूल्य धर्म निष्ठा का हनन हुआ है। वास्तव में वे रंगे सियार होते हैं, धर्म के नाम पर लोगों की भावनाओं को भड़का कर, वे अपना सत्ता प्राप्ति का स्वार्थ सिद्ध करते हैं। धर्म तथा संप्रदाय के नाम पर लोगों को मूर्ख बनाने वाले, चालाक लोगों के विषय में हरिशंकर परसाई ने *तुलसीदास चंदन घिसें* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "इतने सांप्रदायिक दंगे हुए, इनमें एक भी बड़ा हिंदू या बड़ा मुसलमान नहीं मारा गया। मारे गए कुंजड़े, पिंजाड़े, मजदूर, सब्जी के ठेले वाले, कुली।" (84)

हरिशंकर परसाई के कथन से स्पष्ट है कि हिंदू हो या मुसलमान, किसी भी जाति का कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति, किसी धार्मिक अथवा सांप्रदायिक दंगे में जान नहीं गंवाता। ये तथाकथित बड़े लोग केवल उत्तेजनापूर्ण भाषण देते हैं, लोगों को दिग्भ्रमित करते हैं, जिससे सामान्य जनता उन्मादित होकर, तोड़फोड़ और दंगा-फसाद करने पर उतारू हो जाती है। स्थिति को नियंत्रित

करने के लिए पुलिस द्वारा किए जाने वाले लाठी चार्ज आदि में भी कुछ लोग जान से हाथ धो बैठते हैं।

व्यंग्य लेखन, निष्पक्ष साहित्यिक लेखन है। व्यंग्य के अंतर्गत व्यंग्यकार को, निष्पक्ष भाव से व्यंग्यधर्मिता का निर्वहण करना पड़ता है। निष्पक्षता के प्रति, प्रतिबद्ध होते हुए कभी-कभी व्यंग्यकार स्वयं भी, व्यंग्य के कटघरे में खड़ा नजर आता है। व्यंग्य की प्रहारात्मकता के क्षीणतर होने का कारण बताते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "जब व्यंजना शक्ति के पोषक-तोषक ही रोगी हों, स्वयं ही मूर्ख हों तो मूर्खता नष्ट होगी कैसे?" (61)

उपर्युक्त कथन के अंतर्गत घोर विडंबना लक्षित होती है। व्यंग्यकार जब स्वयं को ही उपालंभ देने पर विवश हो जाए, तो विडंबनापूर्ण स्थिति का सहजता से, अनुमान लगाया जा सकता है। हरीश नवल के कथन का भाव है कि व्यंजना शब्दशक्ति की प्रहार क्षमता से व्यंग्यकार, विसंगतियों पर चोट करता है। यदि उसी के व्यवहार में विसंगतियां दृष्टिगत होंगी, तो समाज अथवा राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों से, विसंगतियों के निराकरण के लिए व्यंग्यकार के कदम कैसे उठ सकेंगे? उसके व्यंग्य कथन का समाज पर सम्यक प्रभाव कैसे पड़ेगा? समाज को धर्म के नाम पर उत्तेजना फैलाने वालों से बचाने के लिए, रामसहाय *सांस्कृतिक उत्थान का मार्ग* पुस्तक में लिखते हैं- "धार्मिक अंधविश्वास बेहद खतरनाक बीमारी है, इसलिए एक ऐसी आवाज बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा उठना, जो इस बीमारी के खिलाफ निरंतर रहे, जब तक आदर्श समाज रचना के लक्ष्य को प्राप्त न कर ले।" (163-164)

रामसहाय, राष्ट्र के बुद्धिजीवी वर्ग का आह्वान करते हैं कि वह अपने सुविचारों द्वारा, अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा, समाज को धार्मिक अंधविश्वासों से दूर रहने के लिए प्रेरित करे। विभिन्न सभाओं, गोष्ठियों तथा शैक्षणिक संस्थानों में अपने ऊर्जस्वित वक्तव्य द्वारा, वे जनसाधारण में जागृति ला सकते हैं। उनके प्रयासों से, अंधविश्वासों का घोर अंधकार समग्र रूप से नष्ट न भी हो पाए, कम अवश्य होगा। किसी भी निस्वार्थ, सकारात्मक लोक-मंगल के कार्यों की संपन्नता में समाज और राष्ट्र में व्याप्त विध्वंसक तथा विघटनकारी शक्तियां बाधा अवश्य पहुंचाती हैं। धार्मिक उन्माद फैलाकर वे सामाजिक एकता को विखंडित करती हैं और धार्मिक भेदभाव को सम्पुष्ट करते हुए, स्वार्थ की रोटियां सेकती हैं। बुद्धिजीवी वर्ग को धैर्य धारण करते हुए उनके कुप्रयासों को, असफल सिद्ध करना है।

'दिवाली राम के नाम से ही मनेगी' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल उस प्रसंग को वर्णित करते हैं जब पश्चिमी गायक, माइकल जैक्सन भारत आने वाला था। उस के आगमन से पश्चिमी संगीत के भारतीय प्रशंसक अत्यंत उत्साहित थे। माइकल जैक्सन अपने साथ, इतने शक्तिशाली जनरेटर ला रहा था कि उसके द्वारा पूरा शहर रोशन हो सकता था। माइकल जैक्सन के आगमन से भारतीयों पर क्या प्रभाव होगा, इसे वर्णित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं-"माइकल जैक्सन, उसके 200 कलाकार, भारतीयों को पश्चिमी संस्कृति परोसेंगे और एक-दो करोड़ रुपए वसूल कर, अपने विमानों से स्वदेश लौट जाएंगे।" (87)

हरीश नवल का कथन दर्शाता है कि माइकल जैक्सन के भारत आगमन को हरीश नवल, भारतीय संस्कृति के लिए हानिकारक मानते हैं। मन तो एक है, दस-बीस तो है नहीं। भारतीय मानसिकता यदि पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित होगी, तो उसके अंतर्मन में भारतीय संस्कृति के प्रति किंचित्मात्र ही सही, अवहेलना का भाव जागृत हो सकता है।

उपर्युक्त स्थिति को गणित के एक सरल सूत्र के द्वारा समझा जा सकता है। एक सरल रेखा को एक से लेकर सौ प्रतिशत तक बांटा गया है। यदि एक नागरिक, भारतीय संस्कृति के प्रति समग्र भाव से समर्पित है तो इसका अर्थ है कि उसका समर्पण भाव शत प्रतिशत है। किसी पश्चिमी गायक के भारत आने पर, यदि वह उससे बीस प्रतिशत भी प्रभावित हो जाता है, तो भारतीय संस्कृति के प्रति उसके समर्पण भाव का आंकड़ा निश्चित रूप से परिवर्तित हो जाएगा। यदि पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव अधिक हुआ तो उसी अनुपात से भारतीय संस्कृति के प्रति उसकी प्रतिबद्धता खंडित होगी। माइकल जैक्सन के आगमन, तथा राम के 14 वर्ष का वनवास काटकर अयोध्या आगमन, की तुलनात्मकता करते हुए हरीश नवल आगे लिखते हैं-"माइकल जैक्सन तो नेताओं की तरह अपनी दीवाली तथा स्वागत का प्रबंध स्वयं करके आया है।"(87)

अर्थात् जिस प्रकार किसी नेता के प्रवास पर, उसके चाटुकार और छुटभैए नेता, उसके स्वागत की पूर्व-तैयारी कर लेते हैं, उसी प्रकार माइकल जैक्सन अपने आगमन को विशिष्टतर बनाने और दर्शाने के साधन, स्वयं लेकर आने वाला था। राम के अयोध्या आगमन पर हरीश नवल अपने श्रद्धा पूर्ण उद्गार अभिव्यक्त करते हुए आगे लिखते हैं- "उनके तो पदार्पण मात्र से अयोध्या जितनी प्रकाशित हो उठी-लाखों दीयों से भी नहीं हो सकती थी।" (88) उपर्युक्त पंक्तियों द्वारा स्पष्ट है कि राम का व्यक्तित्व, अद्वितीय प्रकाश-पुञ्ज से आप्लावित है। उनके

गरिमा मंडित व्यक्तित्व के सम्मुख दीपों की रोशनी का क्या महत्व ? दीपक की रोशनी कृत्रिम प्रभामंडल निर्मित करती है, परंतु मनुष्य के सद्गुणों का प्रकाश-वृत्त, उसके चतुर्दिक विद्यमान रहता है, संसार में उसके रहते हुए भी, और संसार से विदा हो जाने के बाद भी। वर्तमान समय में अधिकांश मनुष्य तज्जन्य वृत्तियों को अपना रहे हैं। बुराई को अपनाना सरल है, अच्छाई की ओर अग्रसर होना कठिन है। अच्छाई को अपनाने के लिए स्वार्थ रहित होना पड़ता है, संयमशील तथा धैर्यवान बनना पड़ता है।

वर्तमान मनुष्य के पास न तो इतना समय है और न ही सहनशीलता, इसलिए वह कठिन डगर को त्याग कर सरल मार्ग चुनता है। इस विषय में हरीश नवल आगे लिखते हैं- "बुराई का संगीत सुनने लोग जाते ही हैं, हम बापू के वे बंदर हो गए हैं जो हाथ उठाकर बुरा देखने, बुरा सुनने और बुरा कहने में आनंद लेते हैं।" (89)

उपर्युक्त कथन के द्वारा हरीश नवल सांस्कृतिक मूल्यों के अपकर्ष की ओर संकेत करते हैं। बुराई की तरफ मुड़ना यही दर्शाता है कि मनुष्य अपने आचरण को सम्यक रीति से दर्शाने में अक्षम सिद्ध हो रहा है। जो व्यवहार, उसकी मानवीयता को सुनिश्चित करता है, वह उसके प्रतिकूल आचरण कर रहा है। गांधी जी ने मनुष्य को सांस्कृतिक मूल्यों से संबद्ध करने के लिए, तीन बंदरों को प्रतीकात्मक रूप से चित्रित किया था। बापू के तीन बंदर आंख, कान और मुख पर हाथ रखे दर्शाए जाते हैं, जिसका अर्थ है-बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो और बुरा मत कहो।

हरीश नवल वर्तमान समय की विडंबनापूर्ण स्थिति दर्शाते हैं कि वर्तमान समय में मनुष्य का आचरण, अपेक्षित आचरण से सर्वथा विपरीत हो गया है। उसे बुराई देखना भाता है, बुरा संगीत सुनना अच्छा लगता है, और मुख से बुरी बातें कहना रस-युक्त लगता है। उपर्युक्त व्यवहार द्वारा, आचार, उद्देश्य, आत्मबल, तथा विमलता इत्यादि सांस्कृतिक मूल्य ध्वस्त होते दर्शाए गए हैं। बुरा देखने, सुनने और कहने से मनुष्य के आचार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, ऐसे मनुष्य के आचरण द्वारा विमलता की आशा करना व्यर्थ है। वह व्यक्ति आत्मबल से भी हीन माना जाएगा, क्योंकि स्वयं पर नियंत्रण न होने से ही वह बुराई की ओर अग्रसर हुआ। आत्मबल से युक्त मनुष्य मन रूपी घोड़े की लगाम, बलपूर्वक थामे रखता है। मानव देह धारण करके, मूल्यहीनता के पथ का अनुसरण करना, मनुष्य को जीवन के वास्तविक उद्देश्य से भटका देता है। मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य है, सम्यक रीति से अपने कर्तव्यों का

निर्वहण करना। अंतर्मन में विकृतियां आ जाने से मनुष्य बुराई की ओर आकर्षित रहता है, फिर कर्तव्य पालन की सुध उसे कैसे रहेगी?

बुराई के विभिन्न पक्षों के अंतर्गत बेईमानी एक सशक्त पक्ष है, क्योंकि यह सर्वत्र व्याप्त है। राजनीति, साहित्य, शैक्षणिक, कोई भी क्षेत्र बेईमानी से अछूता नहीं है। ईमानदार व्यक्ति बेईमानों की आंखों में कांटे की तरह चुभता है। विष्णु नागर *राष्ट्रीय नाक* पुस्तक के अंतर्गत बेईमानी की कला सिखाने वाली, एक दुकान देख कर हैरान रह जाते हैं। दुकान के बोर्ड पर लिखा है 'बेईमानी की पुरानी दुकान।' दुकानदार, विष्णु नागर का स्वागत करता है यह कहते हुए, कि उनकी ईमानदारी मोहल्ले भर में प्रसिद्ध है। विष्णु नागर दुकानदार के तेवर देखकर कृत्रिम भयभीत हो जाते हैं। अपनी ईमानदारी की छवि को कोसते हुए वे लिखते हैं-"ईमानदार के रूप में अपने मोहल्ले के लोगों से, इतनी प्रतिस्पर्धा अच्छी नहीं कि उसकी महक बेईमानी सिखाने वाले ईमानदार तक भी पहुंच जाए। पहली बार अपनी ईमानदारी पर मुझे सच्चा दुख हुआ।"(87) बेईमानी सिखाने वाले व्यक्ति को ईमानदार कहकर, विष्णु नागर बेईमान लोगों के विकृति पूर्ण व्यवहार की तीखी भर्त्सना करते हैं।

उपर्युक्त कथन के द्वारा विष्णु नागर मानव मात्र को बुराई की ओर उन्मुख होता दर्शाते हैं। वर्तमान समय की यह कितनी बड़ी विडंबना है कि किसी ईमानदार को अपनी ईमानदारी के प्रति दुख की अभिव्यक्ति करनी पड़े। अपनी ईमानदारी को सुरक्षित रखने के लिए, व्यक्ति को पग- पग पर जब कष्टों का सामना करना पड़ता है तो एक दिन उसे अपनी ईमानदारी पर दुख होने लगता है, क्योंकि कष्ट सहते-सहते उसकी कमर टूट जाती है, उसके साथ उसके परिवार वाले भी अनेक कष्टों का सामना करने को बाध्य हो जाते हैं, तब उसके मन में न चाहते हुए भी उपर्युक्त विचार आ जाता है। विष्णु नागर ने, अप्रत्यक्ष रूप से बेईमानी की मूल्यहीनता दर्शाने के उद्देश्य से उपर्युक्त कथन लिखा है।

भारत के इतिहास को खंगालने से ज्ञात होता है कि उस समय के लोग जीवन मूल्यों के प्रति, प्रखरतम रूप से कटिबद्ध थे। उस समय के लोग नैतिक मूल्यों के रक्षण के प्रबल आग्रही थे। इस तथ्य की पुष्टि, अरुणेश नीरन तथा दिनेश कुशवाहा द्वारा संपादित *मूल्यों के निर्माण कलश* पुस्तक के अंतर्गत सवेन्द्र विक्रम सिंह द्वारा रचित आलेख "धरती पर धूल- कण खोजती वर्षा की बूंदे" से की जा सकती है। इतिहासकार मेगास्थनीज का कथन उद्धृत करते हुए वे

लिखते हैं- "किसी भारतीय को कभी झूठ बोलने का दोषी नहीं पाया गया है, सत्य और सद्गुण को भारतीय बहुत ऊंचा स्थान देते थे।" (60)

सवेन्द्र विक्रम सिंह के कथन द्वारा स्पष्ट है कि विदेशी इतिहासकार मेगास्थनीज जब भारत आया, तो यहां रहते हुए उसने जो तथ्य एकत्रित किए, उन तथ्यों के आधार पर उसने उपर्युक्त कथन लिखा। जितना समय वह भारत में रहा, उसने निरीक्षण करते हुए पाया कि कोई भी भारतीय असत्य भाषण नहीं करता। यद्यपि व्यक्तिगत स्तर पर वे लोग कभी-कभी असत्य बोलते भी होंगे लेकिन एक विदेशी के सम्मुख उन्होंने अपने आप को सत्यभाषी ही सिद्ध किया, ताकि भारतीय संस्कृति की गरिमा अक्षुण्ण रहे, विदेशी व्यक्ति भारतीयों के आचरण में कुछ त्रुटि न निकालने पाए, इसके प्रति वे लोग पर्याप्त सजग रहे। उस समय के लोग सत्य को सभी मूल्यों में सर्वोच्च स्थान देते थे, इसलिए मेगास्थनीज ने सत्य को प्रमुख मूल्य मानते हुए, पृथक वर्णित किया है। हरीश नवल द्वारा रचित व्यंग्य रचना में दर्शाया गया मानवीय व्यवहार, इतिहास में वर्णित मानवीय व्यवहार से बिल्कुल विपरीत है।

‘डिरामा राव नरसिंह अवतार’ व्यंग्य रचना में हरीश नवल, एक पौराणिक कथा के मंचन का प्रसंग वर्णित करते हैं। इस नाटक के मुख्य पात्र हैं-प्रहलाद, हिरण्यकश्यप तथा भगवान नरसिंह। हिरण्यकश्यप, अपनी शक्ति के मद में चूर होकर स्वयं को भगवान मानता था। वह अपनी प्रजा को भी विवश करता था कि सभी प्रजा -जन, उसे भगवान मानते हुए उसी की पूजा करें। उसके आदेश के विरुद्ध आचरण करने वालों को वह भीषण यातनाएं देता था। उसका पुत्र प्रहलाद जब ईश्वर भक्त बन जाता है, और बार-बार समझाने पर भी नहीं मानता, तो हिरण्यकश्यप उसे मृत्यु के घाट उतारने का आदेश देता है। ईश्वर की कृपा से प्रह्लाद हर बार बच जाता है। अंत में हिरण्यकश्यप, प्रहलाद को गरम खंभे से बांधने का आदेश देता है। इससे पहले, कि सेवक उसकी आज्ञा का पालन कर पाएं, खंभा टूटता है और ईश्वर नरसिंह के रूप में प्रकट होते हैं, नाटक में यहां तक की कथा तो यथावत दर्शाई गई है। आगे की कथा को हरीश नवल वर्तमान संदर्भ से जोड़ देते हैं। वे नाटक के मंचन में, नरसिंह पर हिरण्यकश्यप को भारी पड़ता दर्शाते हैं। हरीश नवल, हिरण्यकश्यप का कथन उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "तू चरित्र, मैं भ्रष्टाचार हूं। तू नीति, मैं अनीति हूं।" (127)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से स्पष्ट है कि वर्तमान परिदृश्य में नरसिंह का नहीं, अपितु हिरण्यकश्यप का पलड़ा भारी है। वर्तमान समय में सच्चरित्रता को नहीं, भ्रष्टाचार को प्रश्रय

प्राप्त है। नैतिकता का नहीं, अनैतिकता का बोलबाला है। उपर्युक्त कथन द्वारा सच्चरित्रता तथा नैतिकता का हनन दृष्टिगत होता है। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार करना अथवा भ्रष्टाचार को मानना, व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर निर्भर करता है, या समकालीन परिस्थितियों पर। उपर्युक्त कथन के विषय में गिरिराज शरण अग्रवाल द्वारा संपादित पुस्तक *सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य* के अंतर्गत श्रीलाल मित्तल, "भ्रष्टाचार" आलेख में लिखते हैं- "नेताओं, अफसरों की चढ़ोती को भ्रष्टाचार कहना ही असूलन एकदम गलत है।" (115)

श्रीलाल मित्तल के कथन से स्पष्ट है कि किसी नेता अथवा किसी बड़े प्रशासनिक अफसर को उपहार स्वरूप, कुछ दिया जाना भ्रष्टाचार नहीं कहलाता। नेता या अफसर किसी व्यक्ति का रुका हुआ काम आगे सरका देते हैं, तो उन्हें भी इतनी मेहनत मशक्कत का कोई पारितोषिक तो दिया ही जाना चाहिए। कार्य संपन्न हो जाने के पश्चात, आभार की अभिव्यक्ति के लिए यदि कोई उपहार दिया जाए तो इसमें भ्रष्टाचार कैसा? दूसरी स्थिति यह है कि जब तक भ्रष्टाचार करने का सुअवसर न प्राप्त हो, तब तक सदाचारी बने रहें, अवसर मिलते ही एक क्षण के लिए, भ्रष्टाचारी बन जाएं। उपर्युक्त पंक्ति की व्यावहारिक कुरूपता वर्णित करते हुए श्री लाल मित्तल आगे लिखते हैं- "विज्ञापन मिलने के चक्कर में अच्छे-अच्छे संपादकाचार्य सिद्धांतों से डिग गए।" (117) अर्थात्, छद्म रूप में सिद्धांतवादी बने रहो, और व्यावहारिक रूप में, जैसे ही कोई लाभ उठाने का सुअवसर हाथ लगे, लपक कर झपट लो। हाथ आए अवसर को, हाथ से जाने देना, वर्तमान स्वार्थ केंद्रित समय में बुद्धिमानी नहीं माना जाता।

यहां हरीश नवल ने सदाचार तथा नैतिकता का क्षरण दर्शाया है। हिरण्यकश्यप का भगवान नरसिंह पर भारी पड़ना, भ्रष्टाचार और अनैतिकता के प्रसार की ओर इंगित करता है। समाज में फैले हुए ऐसे हिरण्यकश्यपों से बचने के लिए, सदाचारी मनुष्यों को फूंक- फूंक कर कदम रखना होगा। धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (मूल्य परिभाषा कोश: भाग 6) में रामकृष्ण सराफ नैतिकता को परिभाषित करते हुए लिखते हैं- "शील एवं शुचितापूर्ण, जीवन जीना ही नैतिकता की अभिव्यक्ति है।" (58) अर्थात् नीति युक्त तथा परिष्कृत जीवन जीना नैतिकता का परिचायक है। परिष्कृत जीवन अर्थात् कलुषरहित जीवन, नैतिकता के अंतर्गत माना जाता है। ऐसा जीवन, जिसके व्यवहारिक पक्ष के अंतर्गत भ्रष्ट आचरण के लिए कोई स्थान नहीं होता, नैतिकता से युक्त कहा जाता है।

कबीर ने अपना जीवन समग्र रूप से, निष्कलुषता का भाव अपनाते हुए व्यतीत किया। वे इस नश्वर संसार में, जैसी पवित्र देह धारण करते हुए अवतरित हुए, अंत तक उन्होंने उसे वैसा ही पवित्र रखा। कमलापति पांडेय, *आधी साखी कबीर की* पुस्तक में कबीर का कथन उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "दास कबीर जतन से औढ़ा, जस की तस धर दीन्ही चदरिया।" (122) अर्थात् संसार में जन्म लेकर, उन्होंने अपने शरीर द्वारा कोई अनैतिक काम नहीं किया, किसी को कष्ट नहीं दिया, किसी के द्वारा स्वार्थ सिद्ध नहीं किया, किसी को अपमानित नहीं किया, अर्थात् जिन-जिन कर्मों को मानव देह के लिए निषिद्ध किया गया है, वे कर्म उन्होंने नहीं किए। ईश्वर ने जैसा पावन स्वरूप प्रदान करते हुए, उन्हें संसार में भेजा था, कबीर ने उसकी पावनता को अक्षुण्ण रखा, और संसार से विदा होते समय यथारूप ही ईश्वर को सौंप दिया। वर्तमान समय में ऐसी उच्च विचारधारा का अभाव है। कबीर सदृश उच्च वैचारिकता का धारक होना यद्यपि कठिन है, परंतु उसके लिए प्रयास करना, अपेक्षित ही नहीं अनिवार्य भी है।

5.4 प्रार्थना, धर्म, धैर्य और स्थैर्य। इन सांस्कृतिक मूल्यों का हनन, हरीश नवल द्वारा रचित व्यंग्य पुस्तक, *वाया पेरिस आया गांधीवाद* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

'आटे की थैली में सपना' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने समाज में प्रचलित अंधविश्वासों पर कठोर प्रहार किया है। कुछ लोग, कर्महीनता अपनाते हुए भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं, सत्य तो यह है कि बिना कर्म किए, किसी कार्य में भी सफलता नहीं मिलती। हरीश नवल स्वयं अपना उदाहरण देते हुए यह सिद्ध करते हैं कि भाग्य के भरोसे न रहते हुए, कर्मठता के भाव को अपनाना चाहिए, तभी जीवन में सफलता पाई जा सकती है। मानव जगत को भाग्यवादी न बनने का संदेश देते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "हम भी वार्षिक परीक्षा के दिनों में प्रार्थना करते थे कि अचानक ही नंबरों की भरमार हमारे पेपरों पर हो जाए, पर कभी ऐसा हुआ नहीं।" (37)

हरीश नवल, सभी को भाग्य के भरोसे न रहते हुए, परिश्रम का अवलंब ग्रहण करने का परामर्श देते हैं। वे मनुष्य जगत को सजगता धारण करने की ओर प्रेरित करते हैं ताकि मनुष्य भाग्य का सहारा लेते हुए, हाथ पर हाथ धरकर न बैठा रहे, और जीवन में कर्म की प्रधानता को प्रश्रय देने में विश्वास करे।

उपर्युक्त कथन के अंतर्गत सांस्कृतिक मूल्य, प्रार्थना तथा धर्म का विखंडन दर्शाया गया है। प्रार्थना एक शाश्वत सांस्कृतिक मूल्य है, परंतु हरीश नवल द्वारा दर्शाए गए कथन के अंतर्गत

व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के लिए, प्रार्थना की गई है, विशेषकर उस समय जब स्वयं परिश्रम न करते हुए केवल प्रार्थना के द्वारा ही समग्र कार्य की सिद्धि, की आकांक्षा की गई है। कर्म करना मनुष्य का मानवोचित धर्म है। मनुष्य अपने जीवन में कर्तव्यों का निर्वहण भी तभी कर सकता है, जब वह अपने जीवन में कर्मशीलता को अपनाता है। कर्महीन मनुष्य, दायित्वविहीन ही सिद्ध होता है क्योंकि कर्महीनता, आलस्य की द्योतक है। आलसी मनुष्य अपने लिए आवश्यक कार्य करने में ही प्रवृत्त नहीं होता, तो परिवार अथवा समाज के लिए कर्तव्यपरायण कैसे सिद्ध होगा? तमाम दार्शनिक ग्रंथ ऐसी सूक्तियों से भरे पड़े हैं, जिनमें कर्म की प्रधानता पर बल दिया गया है। आलस्ययुक्त मनुष्य को भाग्य पर आश्रित दर्शाते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने *श्रीरामचरितमानस* में लिखा है- "कादर मन कहूँ एक अधारा, दैव दैव आलसी पुकारा।" (744)

उपर्युक्त कथन के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास ने समझाया है कि कायर मनुष्य के पास अपनी कायरता को छिपाने के लिए एक ही आधार रहता है भाग्य का, वह अपनी असफलता का दोष भाग्य के माथे मढ़कर, अपना बचाव करना चाहता है। गीता के अंतर्गत भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन को कर्मशीलता का उपदेश दिया है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अंतर्गत भगवान कृष्ण अर्जुन को कर्म करने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं-"यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥" (127) अर्थात् हे अर्जुन! यदि मैं सावधानी से अपेक्षित कर्म न करूँ, तो सर्वत्र अव्यवस्था फैल जाएगी क्योंकि लोग तो समग्र रूप से मेरा ही अनुसरण करेंगे। मानव देह धारण करते हुए, यदि ईश्वर के लिए सजगता पूर्वक अपेक्षित कर्म करना अनिवार्य है, तो मनुष्य के लिए भी आवश्यक है कि वह परीक्षा के दिनों में किसी दैवी चमत्कार के घटित होने की प्रतीक्षा न करे, अपितु एकाग्रता से अपनी पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित करे। कर्म के महत्व को दर्शाती हुई एक कहावत भी है 'ईश्वर उसी की मदद करते हैं, जो अपनी मदद स्वयं करता है' अर्थात् कर्मशील व्यक्ति की प्रार्थना पर ईश्वर की भी कृपा रहती है। उसकी मेहनत व्यर्थ नहीं जाती, उसके कार्य की संपन्नता के दौरान कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। भाग्य के भरोसे रह कर, अकर्मण्य बने रहना कर्तव्य परायणता के पथ का, बाधक सिद्ध होता है आलस्ययुक्त मनुष्य ही भाग्य की दुहाई दिया करते हैं।

प्रेम जन्मेजय और श्रीलाल शुक्ल द्वारा संपादित पुस्तक *हिंदी हास्य व्यंग्य संकलन* के अंतर्गत राधाकृष्ण "एक गांधीवादी बैल की आत्मकथा" व्यंग्य रचना में, बैल को मनुष्य से अधिक

कर्मठ बताते हैं। बैल और मनुष्य की तुलनात्मकता करते हुए, वे जानवर को मनुष्य से श्रेष्ठतर मानते हुए, व्यंग्यात्मक कथन कहते हैं। उनसे मिलने के लिए कुटीर उद्योग भंडार से एक बैल आता है और उन से निवेदन करता है कि वे उसकी व्यथा- कथा को प्रकाशित करवा दें। व्यंग्यकार पूछता है कि समाज के लिए उसके साक्षात्कार की क्या उपयोगिता है? राधाकृष्ण, बैल का मानवीयकरण करते हुए उसके कथन को वर्णित करते हुए लिखते हैं- "उपयोगिता है और जरूर है, मैं ओवरटाइम भी करता हूं, लेकिन मुझे ओवरटाइम के लिए कुछ नहीं मिलता।" (91)

हरीश नवल और राधाकृष्ण के व्यंग्य कथन के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि मनुष्य तो अपनी बेहतरी के लिए भी कर्म नहीं करना चाहता, और बैल पशु होते हुए भी निरंतर कर्मरत है, अपने लिए नहीं अपितु समाज की बेहतरी के लिए। व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल भाग्य की अपेक्षा, कर्म करने की दिशा में प्रेरित करते हैं। स्वामी विवेकानंद मानव जीवन में, कर्म के महत्व को मुक्त कंठ से स्वीकार करते थे। महेश शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक *युगद्रष्टा विवेकानंद* के अंतर्गत उनके कथन को उद्धृत करते हुए महेश शर्मा ने लिखा है- "हमें कर्म करते रहना चाहिए, तथा यह पता लगाना चाहिए कि उस कार्य के पीछे हमारी प्रेरक शक्ति क्या है?" (149)

स्वामी विवेकानंद ने स्पष्ट किया है कि समग्र प्राणी जगत के लिए कर्म करना अनिवार्य है। मनुष्य द्वारा किया गया कार्य किस कार्य की सिद्धि को सुनिश्चित करेगा, इस तथ्य पर अवश्य ध्यान केंद्रित करना चाहिए। मनुष्य द्वारा जो भी कार्य किया जाए, उसके अंतर्गत लोकमंगल की भावना का निहित होना आवश्यक है। प्रत्येक मानव समुदाय में, अनुचित कार्य करने वाले लोग भी होते हैं, अराजकता फैलाने वाले संगठन भी कार्यरत तो रहते ही हैं परंतु अपने कार्यों के द्वारा वे समाज का अहित करते हैं। उनके कार्य के पीछे जो प्रेरक शक्तियां हैं, वे विध्वंसक है, इस प्रकार की कर्मशीलता विनाशकारी है। उपर्युक्त कथन के माध्यम से स्वामी विवेकानंद मानव जगत को पर्याप्त सजगता धारण करने का संदेश देते हैं ताकि मानव कर्मशील भी रहे और अपने कर्मों के द्वारा समाज में सकारात्मक कर्मशीलता को बढ़ावा दे।

'धैर्य दुर्लभ' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, वर्तमान समय में जीवन की भागदौड़ पर व्यंग्य प्रहार किया गया है। वर्तमान समय में कहीं भी चले जाइए, सर्वत्र भागमभाग दृष्टिगत होगी, लोग जल्दबाजी में नजर आएंगे। वर्तमान अर्थ-प्रधान संस्कृति के अंतर्गत अधिकांश लोगों का एक ही

लक्ष्य है, अधिक से अधिक धन एकत्रित करना। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए, अधिक परिश्रम भी करना पड़ेगा। समाज के अधिकांश परिवारों की यही आकांक्षा रहती है कि परिवार के अधिक से अधिक लोग धन प्राप्ति के कार्यों में संलग्न रहें। इन प्रयासों के फलस्वरूप धन तो अधिक मात्रा में मिल जाता है, परंतु धैर्य दुर्लभ हो जाता है।

सुबह होते ही परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के पास कार्यों की, एक लंबी सूची रहती है। सुबह शीघ्र उठना, नहा कर तैयार होना, नाश्ता करना और कार्यालय चले जाना, प्रतिदिन यही दिनचर्या रहती है। स्त्रियां, यदि नौकरीपेशा हों, तो उनके पास पुरुषों से अधिक कार्य रहता है। नाश्ते का प्रबंध करना, दोपहर के भोजन का प्रबंध करना, बच्चों को विद्यालय के लिए तैयार करना इत्यादि अनेक कार्य संपन्न करने होते हैं। इसके पश्चात स्वयं तैयार होकर कार्यस्थल पर पहुंचना होता है, इतने कार्यों के क्रियान्वयन में धैर्य के लिए स्थान ही नहीं रहता, और मनुष्य के व्यवहार में स्वाभाविक रूप से अधीरता समाविष्ट हो जाती है। धैर्य की खोज करने के लिए हरीश नवल एक व्यक्ति को प्रतीक बनाते हैं। वह व्यक्ति जहां भी जाता है, उसे अधैर्य ही मिलता है। धैर्य को अप्राप्य अनुभव करते हुए, उस प्रतीकात्मक मनुष्य की मनोदशा वर्णित करते हुए हरीश नवल लिखते हैं- "उस दिन वे बाजार में धैर्य लेने गए, कहीं नहीं मिला। खूब खोजा, जगह-जगह परखा, लेकिन धैर्य कहीं था नहीं।" (47)

मानव जगत में धैर्यहीनता का होना, कोई छोटा-मोटा अभाव नहीं है, धैर्य के अभाव में मनुष्य का चित्त असंतोषजनक रहता है, अशांत रहता है। मनुष्य धन-प्राप्ति के लिए संघर्ष करता है ताकि उसे सुखी जीवन जीने के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध हों, परंतु अधीर मन में सुख का वास कैसे होगा? वर्तमान समय की यही सबसे बड़ी विडंबना है! कार्यों की अधिकता से मनुष्य का हर पल किसी न किसी कार्य के लिए निश्चित होता है, यदि किसी कारणवश, किसी कार्य की संपन्नता में निश्चित समय से अधिक समय लग जाता है तो आगे जितने भी कार्य संपन्न किए जाएंगे, उनकी गुणवत्ता तो प्रभावित होगी ही, मनुष्य भी अधीर हो उठेगा। यंत्र-तुल्य जीवन जीने से मनुष्य, अपने परिवार, अपने पड़ोसी तथा अन्य रिश्तेदारों के लिए समय नहीं निकाल पाता। उसी प्रतीकात्मक मनुष्य के अनुभव को वर्णित करते हो हरीश नवल ने आगे लिखा है- "सारा बाजार छान मारा, भ्रष्टाचार था, व्यवसाय था, अनैतिकता थी, उद्वेग था, वासना थी लेकिन धैर्य कहां था?" (48)

ऊपर लिखित पंक्तियों के द्वारा धैर्य तथा स्थैर्य का अपकर्ष दर्शाया गया है। विषय वासनाओं की ओर उन्मुख होता हुआ मनुष्य, अनैतिकता की राह पर चल पड़ता है। हरीश नवल के कहने का भाव यह है, कि हर जगह तलाश करने के पश्चात भी, केवल विसंगतिपूर्ण परिवेश देखने को मिला, नकारात्मकता ही दृष्टिगत हुई, सकारात्मक भाव ढूँढने से भी नहीं मिले। धैर्यहीनता, मनुष्य के चारित्रिक गुणों का क्षरण करती है। धैर्यहीन व्यक्ति का विवेक कुंठित हो जाता है और अधीरता में वह कोई अनुचित निर्णय भी ले सकता है। अधीर होने की स्थिति में मनुष्य अपना, दूसरों का, यहां तक कि कभी-कभी समग्र समाज का भी अहित कर डालता है।

व्यक्ति परिवार में रहते हुए, समाज में विचरण करते हुए चाहे धैर्य धारण न करे, परंतु एक नागरिक के रूप में, नेताओं के आश्वासनों के प्रति अवश्य धैर्यशील बना रहता है। राष्ट्र की स्वतंत्रता के पश्चात, विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों ने शासन की बागडोर संभाली। शासकीय कुर्सी तक पहुंचने से पहले, भारतीय जनता के समक्ष अनेक सब्जबाग दिखाए। जैसे ही वे सिंहासनारूढ़ हुए, वैसे ही वे सिंहासन से धैर्यपूर्वक चिपक गए और जनता अगले चुनाव तक धैर्य धारण करने पर विवश होती रही। इस विषय में *धंधे मातरम* पुस्तक में पीयूष पांडे भारतीय जनता को धीरज धरने का आग्रह करते हुए लिखते हैं- "कई सरकारों ने कोशिश की है कि समाजवादी ट्रेन को उसके स्टेशन तक पहुंचाया जाए, लेकिन समाजवादी ट्रेन अटकी तो अटकी ही रही। इसलिए अच्छे दिन को लेकर भी थोड़ा सब्र रखें।" (25)

उपर्युक्त कथन के द्वारा पीयूष पांडे आजादी के बाद का समय वर्णित करते हैं। देश की आजादी के पश्चात, सत्तासीन नेताओं ने देश में समाजवाद की स्थापना का आश्वासन दिया था, परंतु वह संकल्प, व्यवहारिक रूप से क्रियान्वित न हो सका। कालांतर में नेता लोगों ने अच्छे दिनों के आगमन का चारा डाल कर बेचारी जनता से वोट ऐंठने में सफलता प्राप्त की। जनता धैर्य पूर्वक अच्छे दिनों के आगमन की प्रतीक्षा में रत है।

वर्तमान समय में जब धैर्य दुर्लभ हो गया है तो बचे-खुचे धैर्यवान लोगों के धैर्य की परीक्षा लेना तो और भी ज्यादा गलत है। विसंगतियों के कूप में आकंठ डूबा मनुष्य, जब विसंगति रहित मनुष्य को, उपदेश देता है तो परिष्कृत हृदय मनुष्य का धैर्य जवाब दे जाता है। इस विषय में *बेईमानी की परत* पुस्तक के अंतर्गत हरिशंकर परसाई ने लिखा है- "मुझ जैसा धैर्यवान श्रोता भी उपदेश देने वाले से कभी-कभी कह देता है, हे भाई! तुम्हारे बड़े- बड़े रतनारे

नयनों से क्या यह नहीं सूझता कि मेरे कंधों पर यह जो घड़े जैसी कोई चीज रखी है, वह मेरा सिर है?" (54)

हरिशंकर परसाई के कहने का भाव यह है कि उपदेशक महोदय के उपदेशों का भार बहुत अधिक हो चुका है, उनका मस्तक अब और अधिक भार वहन नहीं कर सकता। उपदेशक मनुष्य इतना धैर्यहीन होता है कि जब तक अपने ज्ञान की झोली पूर्ण रूप से उड़ेल नहीं देता, धैर्य नहीं धरता। उसके उपदेश केवल दूसरों के लिए होते हैं, वह स्वयं तो उपदेशों के बिना भी काम चला लेते हैं। उपदेशक महोदय महान त्यागी हैं, वे अपने दुर्लभ उपदेशों को लोक हितार्थ समर्पित कर देते हैं। ऐसे मनुष्यों के संबंध में हरिशंकर परसाई ने आगे लिखा है- "डबरे की कीचड़ में नहाने वाला गंगा स्नान करने वाले को क्यों उपदेश देता है?" (54)

अर्थात् विकृतियों से आवृत मनुष्य, सदवृत्तियों के धारक मनुष्य को शिक्षा देने का साहस कैसे संजो लेता है? स्वयं काजल की कोठरी में रहने वाला दूसरों को सफेदपोश बनने की नसीहत कैसे दे लेता है? यह प्रश्न विचारणीय है। वास्तव में ऐसे व्यक्ति उपदेशों के माध्यम से अपने जमीर को झूठा आश्वासन देते हैं कि उनके कर्म तो उजले हैं, उन्होंने अपने जीवन में कोई कलुषित कार्य नहीं किया, अतः उन्हें दूसरों को उपदेश देने का पूर्ण अधिकार है। सांस्कृतिक मूल्य के अंतर्गत धैर्य एक शाश्वत मूल्य है, *मनुस्मृति* में महाराज मनु ने धर्म के दस लक्षण कहे हैं, जिनमें सर्वप्रथम उन्होंने धैर्य को परिगणित किया है, जिससे मानव जीवन में, धैर्य का महत्व स्वयंप्रमाणित हो जाता है। *भारत दर्शन* पुस्तक के अंतर्गत जगराम सिंह, मनु महाराज के कथन को उद्धृत करते हुए लिखते हैं-

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शोचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्या सत्यं अक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥" (19)

महाराज मनु के कथन से स्पष्ट है कि धर्म के दस लक्षणों में, धैर्य को सर्वप्रथम माना गया है। धैर्यवान व्यक्ति ही क्षमाशील हो सकता है, अपनी इंद्रियों को वश में रख सकता है, तथा धर्म के अन्य गुणों को आत्मसात कर सकता है।

5.5 सदाशयता, निर्वेद, उद्यम, श्रमशीलता, अध्यवसाय, ध्यान तथा साधना। प्रस्तुत सांस्कृतिक मूल्यों का हनन, हरीश नवल द्वारा रचित व्यंग्य पुस्तक *इक्यावन व्यंग्य रचनाएं* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

'यूनिवर्सिटी में श्राद्ध' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, वर्तमान समय में लोगों की हृदय दर्जे की, स्वार्थी वृत्ति की ओर संकेत करते हैं। भारतीय संस्कृति में, गुरु-शिष्य परंपरा का गौरवशाली इतिहास रहा है। राम, कृष्ण, अर्जुन, चंद्रगुप्त, कबीर, छत्रपति शिवाजी, स्वामी दयानंद तथा स्वामी विवेकानंद इत्यादि महापुरुषों ने अपने जीवन में गुरु को सर्वोच्च सम्मान दिया था। वर्तमान समय में अधिकांश अभिभावक, अपने बालकों को गुरु के प्रति आदर-सम्मान देने के संस्कार नहीं दे पाते, क्योंकि तेज रफ्तार जिंदगी के अंतर्गत, वे स्वयं भी स्वार्थवश ही किसी से संपर्क साधते हैं। विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा अन्य विद्यालयों में जब प्रविष्टि का समय निकट आता है, तब यकायक अभिभावक-वर्ग सक्रिय हो उठता है। वे लोग अपने पड़ोस में रहने वाले अध्यापकों से मैत्री भाव दर्शाना प्रारंभ कर देते हैं। उनका घर चाहे, अध्यापक के घर से पन्द्रह गलियां छोड़कर ही क्यों न हो, वे उसे अपने पड़ोस में ही स्थित मानेंगे। हरीश नवल, विश्वविद्यालयों में दाखिले के मौसम को वर्णित करते हुए लिखते हैं- "पिछले दिनों मेरे प्रति लोगों की श्रद्धा, बेहद बढ़ी हुई थी, बल्कि सिर पर चढ़ी हुई थी। विश्वविद्यालय में कनागत के दिन चल रहे थे। घोर श्राद्ध का मौसम था।" (17)

हरीश नवल के कथन से स्पष्ट है कि इससे पूर्व, लोग उनके प्रति इतनी श्रद्धा का भाव नहीं दर्शाते थे। हरीश नवल, अध्यापक वर्ग को कोओं की संज्ञा देते हैं। जिस प्रकार श्राद्ध के दिनों में कोए, पुचकार -पुचकार कर छत पर बुलाये जाते हैं और मालपूए खिला-खिला कर, तृप्त किए जाते हैं, उसी प्रकार दाखिले के दिनों में, अध्यापकों के प्रति लोगों के व्यवहार में उच्च स्तर का आदर-भाव समाविष्ट हो जाता है। आते-जाते उन्हें दुआ सलाम करना, उन्हें घर आने का निमंत्रण देना, कभी कभार उनके घर जाकर, संपर्क बढ़ाने का प्रयत्न करना, उनके कार्यों में सम्मिलित हो जाता है। शिक्षक-वर्ग से सहायता प्राप्त करने में कोई बुराई नहीं है। प्रत्येक शिक्षक संवेदनशील होता है, उसके द्वारा यदि किसी विद्यार्थी को विश्वविद्यालय अथवा महाविद्यालय में प्रवेश मिलता है तो उसे प्रसन्नता ही होती है। कार्य की सिद्धि के उपरांत उसी अध्यापक को देखकर कत्री काट जाना बुरा है। मतलब निकल जाने के बाद पहचानना तो दूर, लोग कतरा कर निकल जाना चाहते हैं, यह बात गलत है। लोगों के उपेक्षा पूर्ण रवैये को वर्णित करते हुए, हरीश नवल ने आगे लिखा है- "अभी तो तेरहवीं यानी तेरह दिन भी, कनागत को बीते नहीं हुए हैं, लोग मुझे भूल गए हैं। श्रद्धा का स्थान फिर उपेक्षा ने ले लिया है।" (19)

हरीश नवल द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि विश्वविद्यालय में दाखिले का समय समाप्त हो जाने के पश्चात लोग गिरगिट की तरह रंग बदल लेते हैं। वर्तमान समय में लोग

इतने स्वयं-केंद्रित हो गए हैं कि कार्य सिद्ध हो जाने के बाद, अपने दायरे में पुनः सिमट जाते हैं, श्रद्धा का भाव नौ दो ग्यारह हो जाता है और उपेक्षा साल भर के लिए स्थायी भाव में स्थित हो जाती है।

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से, सदाशयता, विनीतता तथा निर्वेद, सांस्कृतिक मूल्य क्षरित होते दृष्टिगत होते हैं। स्वार्थ सिद्ध होने के बाद उपकारी व्यक्ति को विस्मृत कर देना, मनुष्य के अंतर्मन में सदाशयता तथा विनीतता का अभाव दर्शाता है। उस व्यक्ति के द्वारा, उपकार करने वाले व्यक्ति के प्रति उपेक्षा का भाव दर्शाता है, कि उसे अपने द्वारा किए गए उपेक्षित व्यवहार के प्रति तनिक भी ग्लानि नहीं है। जैसा व्यवहार अभिभावकों द्वारा, अध्यापकों के प्रति दर्शाया जाता है, बालक भी उसी का अनुसरण करता है। प्रेम जन्मेजय ऐसे अभिभावकों के होनहार नौनिहालों को, माता-पिता के पद चिन्हों पर चलते हुए दर्शाते हैं। वे, *मैं कोई झूठ बोलया* पुस्तक में एक शिष्य द्वारा, गुरु के सम्मुख मस्तक झुकाने के परिप्रेक्ष्य में, उसके अंतर्मन के भावों को वर्णित करते हुए लिखते हैं-गुरुदेव! कबीर दास के कहे अनुसार, गुरु-गोविंद में आप को श्रेष्ठ मानकर मैं पहले प्रणाम करता हूं। (सिद्धांत वाक्य: श्रेष्ठ वही होता है, जिससे काम निकलता हो।)" (134)

प्रेम जन्मेजय के कथन द्वारा यह स्पष्ट है कि वर्तमान शिष्य श्रद्धावश गुरु के समक्ष नतमस्तक नहीं होता, अपितु गुरु के सामने स्वार्थवश सिर झुकाता है। वह गुरु को गोविंद से इसलिए श्रेष्ठ नहीं मानता, कि गुरु के लिए उसके अंतर्मन में असीम आदर की भावना है, बल्कि इसलिए श्रेष्ठतर मानता है क्योंकि गुरु के माध्यम से उसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि करनी है। वर्तमान समय में प्रत्येक क्षेत्र मूल्यहीनता से आप्लावित है। कम से कम, भारतीय संस्कृति के अंतर्गत गुरु शिष्य संबंध की समृद्ध परंपरा का हनन नहीं होना चाहिए। यदि केवल इसी परंपरा को यथावत रखा जाए तो अन्य क्षेत्रों की मूल्यवत्ता भी अक्षुण्ण रह सकती है। विद्यार्थी जीवन में, मनुष्य के अंतर्मन में जीवन-मूल्यों का बीजारोपण यदि हो जाता है तो उसका समग्र जीवन जीवन-मूल्यों से समन्वित हो जाता है। जीवन-मूल्यों से संपृक्त मनुष्य, समाज और राष्ट्र के लिए परम हितकारी सिद्ध होता है।

रामकिशोर शर्मा द्वारा संपादित *कबीर ग्रंथावली* के अंतर्गत रामकिशोर शर्मा, गुरु के प्रति कबीर के अनन्य श्रद्धापूर्ण विचार उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "बलिहारी गुरु आपणे, द्यौं हाडी कै बार। जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार ॥" (107)

अर्थात् मैं समग्र दिन के अंतर्गत उस गुरु के प्रति कितनी बार बलिहारी जाऊं, जिन्होंने विद्यादान देकर मुझे मनुष्य से देवता बनाने में यत्किंचित भी विलंब नहीं किया। कबीर ने समाज में प्रचलित बाह्याडंबरों, पाखंडों तथा हर प्रकार के भेदभाव के प्रति लोगों में चेतना का प्रसार किया था, इसलिए वे हर मत के लोगों में लोकप्रिय थे। समाज के अधिकांश लोग, उन्हें विलक्षण व्यक्तित्व का स्वामी समझते थे, और देवता मानकर उनकी पूजा करते थे। कबीर इसका सारा श्रेय अपने गुरु को देते हैं। सामान्य जीवन में भी ऐसा ही होता है। बालक, अल्पायु से ही विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल भेजा जाता है। विद्या के प्रत्येक सोपान को विद्यार्थी, गुरु की सहायता से ही तय करता है। एक बालक की प्रतिभा को परख कर, गुरु ही तराशता है, निखारता है, इसलिए मानव जीवन में गुरु का स्थान बहुत ऊंचा है।

'नाच न जाने चंपकलाल' व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल समाज के अंतर्गत कुछ ऐसे दुर्लभ चरित्रों पर व्यंग्य संधान करते हैं, जो पलायनवादिता के मार्ग पर अग्रसर होते हुए, अपनी असफलता का कारण अपेक्षित साधनों की अनुपलब्धता को ठहराते हैं। ऐसे व्यक्ति 'नाच न जाने आंगन टेढ़ा' के मुहावरे को सार्थक सिद्ध करते हैं। हरीश नवल अपने छात्रों द्वारा उपर्युक्त मुहावरे का उत्तर पूछे जाने पर, उत्तर तो बता देते हैं, परंतु इसके लिए कोई सटीक उदाहरण उन्हें याद नहीं आता। छात्रों को अगले सप्ताह तक टालने के बाद, वे अपने स्कूल के मास्टर खेमचंद से उपर्युक्त मुहावरे का उदाहरण पूछते हैं। मास्टर खेमचंद उन्हें अपने मोहल्ले में रहने वाले चंपकलाल के विषय में बताते हैं, जो उपर्युक्त मुहावरे का सजीव उदाहरण है। चंपकलाल, शिक्षा के क्षेत्र में बार-बार अनुत्तीर्ण होते रहे, और इसका सारा दोष अध्यापक वर्ग पर डालते रहे। इस विषय में मास्टर खेमचंद द्वारा चंपकलाल के कथन को उद्धृत करते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "मैंने भी श्रेष्ठतम उत्तर लिखे थे, परंतु परीक्षक को जांचने की अकल ही नहीं थी, वरना क्या मैं फेल हो सकता था?" (130)

हरीश नवल ने चंपकलाल द्वारा दायित्वों के निर्वहण के संबंध में, पलायनवादी प्रवृत्ति प्रदर्शित की है। किसी भी कार्य में मन न लगाने वाले नितांत कर्महीन मनुष्य परिस्थितियों से पलायन करते हैं, और अपनी असफलता के लिए दूसरों को दोषी सिद्ध करके, दायित्वों से पल्ला झाड़ लेते हैं। चंपक लाल की घोर आलसी वृत्ति उन्हें गुरु-द्रोही भी सिद्ध करती है। वे स्वयं परीक्षा की तैयारी नहीं करते, और अनुत्तीर्ण होने पर, परीक्षक की गुणवत्ता को कलुषित करने का दुस्साहस करते हैं। चंपकलाल के पिता ने आखिरकार, उन्हें किसी और कार्य में लगाने की कोशिश की, परंतु नतीजा वही निकला- 'ढाक के तीन पात'। हर काम में चंपकलाल

के असफल रहने का जो कारण मास्टर खेमचंद ने बताया, उसे वर्णित करते हरीश नवल ने आगे लिखा है- "उनमें बुद्धि, श्रम और लगन, केवल तीन चीजों की कमी थी, शेष सभी कुछ उनके पास था। मसलन आलस्य, खीझ, क्रोध, मूर्खता इत्यादि।" (130)

उपर्युक्त कथन द्वारा उद्यम, आत्मबल, श्रमशीलता, अध्यवसाय, ध्यान तथा साधना इत्यादि सांस्कृतिक मूल्य खंडित होते दर्शाए गए हैं। आत्मबल से हीन होने के कारण चंपकलाल उद्यम नहीं कर सके, न ही श्रमशीलता को अपना सके। किसी भी विद्या को सीखते समय शिक्षार्थी को, उस विद्या के विभिन्न चरणों पर ध्यान केंद्रित करना पड़ता है, तथा उसमें पारंगत होने के लिए, अन्य सांसारिक विषयों से ध्यान हटाते हुए, साधनारत रहना पड़ता है, परंतु चंपकलाल में उपर्युक्त सभी गुणों का अभाव था। वास्तव में चंपकलाल, चरम सीमा तक शरीफ तथा ईमानदार था, यदि मध्यम दर्जे का भी रहा होता, तो उसे शिक्षा के क्षेत्र में निरंतर असफलता का सामना न करना पड़ता। इस विषय में, शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों पर व्यंग्य प्रहार करते हुए, प्रेम जन्मेजय ने *कौन कुटिल खल कामी* पुस्तक में लिखा है- "यदि आप शरीफ और ईमानदार हैं, बिना परीक्षा दिए डिग्री हासिल नहीं करना चाहते हैं, तो आपके लिए पेपर आउट करवाने वाले पलक पांवड़े बिछाए बैठे हैं।" (129)

प्रेम जन्मेजय ने कलात्मक भाषा का प्रयोग करते हुए, वर्तमान शिक्षा क्षेत्र में विसंगति पूर्ण व्यवहार दर्शाया है। चंपकलाल परीक्षा देने तो जाता ही था, यदि वह उपर्युक्त स्तर तक ही शरीफ और ईमानदार होता, तो अपने माथे पर हमेशा अनुत्तीर्ण रहने का कलंक न लगाता। प्रेम जन्मेजय ने अप्रत्यक्ष रूप से, शिक्षा क्षेत्र के अंतर्गत नैतिक मूल्यों का अपकर्ष दर्शाया है। वर्तमान समय में अध्यवसाय के बल पर सफलता प्राप्त करने के प्रयास नहीं किए जाते, अपितु भ्रष्ट रीति से कार्य की संपन्नता, सुनिश्चित किए जाने पर बल दिया जाता है। समग्र परिवेश ही जब मूल्यहीनता की कालिख से आच्छादित हो जाए, तो अधिकांश लोग संस्कृति के दीपक को प्रज्वलित करने की बजाय, अपसंस्कृति की टॉर्च को जलाकर कार्य की सिद्धि करने में सुभीता समझते हैं। किसी भी कार्य को सफल बनाने के लिए सम्यक तरीका तो यही है कि पूर्ण एकाग्रता के साथ, तन्मयता को धारण करते हुए कार्य की सिद्धि के लिए प्रयास किए जाएं। अभ्यास और लगन से दुसाध्य कार्य भी सध जाते हैं। इस विषय में वाग्देव द्वारा संपादित पुस्तक *रहीम दोहावली* में रहीम ने लिखा है- "रहिमन मनहि लगाई कै, देखि लेहु किन कोय, नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय।" (87)

रहीम के कहने का भाव यह है कि किसी भी कार्य को लगनपूर्वक किया जाए तो उसकी सफलता, असंदिग्ध रूप से मिलती ही है, क्योंकि परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। लगातार ईश्वर का ध्यान करने से, उन्हें प्राप्त किया जा सकता है तो फिर सांसारिक कार्यों की सिद्धि भला क्या मुश्किल है? चंपकलाल भी यदि सम्यक ढंग से पढ़ाई अथवा किसी अन्य क्षेत्र में संलग्नता दर्शाता तो अवश्य सफल रहता।

5.6 निर्मलता, आत्मबोध, संतुलन, नैतिकता, शुभ कर्म तथा निर्विकारिता। इन सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण हरीश नवल कृत व्यंग्य पुस्तक *माफिया जिंदाबाद* के अंतर्गत रेखांकित किया गया है।

'साड़ी बिच नायिका कि नायिका बिच साड़ी' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, फिल्मों के द्वारा ध्वस्त हो रहे सांस्कृतिक मूल्यों की ओर संकेत करते हैं। चलचित्र, मनुष्य को जीवन की एकरसता से उबारने का एक सशक्त साधन बनते हैं। आज से कुछ वर्ष पहले तक ऐसे चलचित्र बनाए जाते थे, जिन्हें समग्र परिवार एक साथ बैठकर देख सकता था। चलचित्रों के माध्यम से, जीवन-मूल्यों के निर्वहण के प्रति प्रतिबद्धता को, सुनिश्चित करने का प्रयास निहित रहता था। वर्तमान समय में चलचित्र, समाज के सम्मुख कुरूपता परोस रहे हैं। चलचित्रों में नायक को पेंट कोट पहने हुए, और वस्त्रों से पूर्ण आवृत दिखाया जाता है। नायिका को वस्त्रों से आवृत करने में कृपणता दर्शाई जाती है। धन, यश और प्रसिद्धि की लालसा में नायिका भी समझौता कर लेती है। किसी फिल्म में अगर नायिका द्वारा साड़ी पहने जाने की बात होती है, तो यह खबर जंगल में लगी आग की भांति फैल जाती है। इस विषय में हरीश नवल ने लिखा है- "खबर सभी चैनलों पर है कि आगामी फिल्म में नायिका साड़ी में होगी। जब नायिका साड़ी से बेखबर होती है तो खबर नहीं बनती।" (88)

हरीश नवल, अप्रत्यक्ष रूप से फिल्म जगत की नारी को उपालंभ देते हैं कि जब वह कम वस्त्रों में बड़े पर्दे पर दिखाई देती है तो समाचार पत्रों के पत्रकारों को, दूरदर्शन के संवाददाताओं को कोई आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि यह सब देखने-सुनने के वे अभ्यस्त हो चुके हैं। जब उन्हें पता चलता है कि अगली फिल्म में नायिका, साड़ी में लिपटी दृष्टिगत होने वाली है तो वे जैसे आसमान से जमीन पर गिर जाते हैं, उनका माथा ठनकता है, अरे! यह विडंबना कैसे घटित हुई? हरीश नवल महानगरों की वर्तमान नारी के उन्मुक्त वस्त्र विन्यास के परिप्रेक्ष्य में, समय की कमी को मुख्य कारण मानते हैं इस विषय में उन्होंने आगे लिखा है- "काम पर जाने

की जल्दी में उपवस्त्र या अधोवस्त्र तो पहन लेती है पर मुख्य वस्त्र पहनने का अवकाश नहीं पाती है।" (89)

उपर्युक्त कथन के अंतर्गत हरीश नवल, अतिशयता का प्रयोग करते हैं, क्योंकि सांस्कृतिक मूल्यों का अभी इतना अकाल नहीं पड़ा है कि स्त्रियां केवल अधोवस्त्रों से आवृत होकर सार्वजनिक स्थलों पर चली जाएं। महानगरीय स्त्रियों का झुकाव, कम वस्त्र धारण करने की तरफ अवश्य है, परंतु स्त्री-जगत इतना मर्यादाहीन नहीं हुआ, जैसा कि हरीश नवल द्वारा लिखा गया है। संभवतः, स्त्री-जगत को भारतीय संस्कृति के अंतर्गत निर्देशित, मर्यादित वेशभूषा की ओर अग्रसर करना हरीश नवल का उद्देश्य रहा है और इसके लिए उन्होंने अतिरंजना का आश्रय लिया है।

फिल्मी नायिकाएं तो निर्देशकों के कहने पर अमर्यादित वस्त्र धारण करती हैं, परंतु राजनीतिक क्षेत्र में भाग्य आजमाने वाली स्त्रियां भी कम वस्त्र पहनने के मामले में कोई समझौता नहीं करना चाहती। गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा संपादित *पारिवारिक जीवन के व्यंग्य* पुस्तक के अंतर्गत रत्ना वर्मा "फैशन की राजनीति" व्यंग्य रचना में एक महिला गोष्ठी के वार्तालाप की परिकल्पना करती हैं। इस गोष्ठी में राजनीति में प्रवेश करने की इच्छुक स्त्रियां सहभागिता करती हैं। उस गोष्ठी में शामिल, एक महिला के कथन को उद्धृत करते हुए रत्ना वर्मा ने लिखा है- "आजकल राजनीति में नंगाई चल रही है। मैं स्लीवलैस राजनीति की पक्षधर नहीं हूं।" (74)

रत्ना वर्मा ने उपर्युक्त कथन के माध्यम से, राजनीतिज्ञों के निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार को निष्पक्षता के साथ दर्शाया है। राजनीतिज्ञ, क्योंकि समग्र राष्ट्र का नेतृत्व करते हैं, अतः उनका पहरावा, व्यवहार तथा व्यक्तिगत जीवन मर्यादित होना अपेक्षित है। जनता अपने नेता के पद चिन्हों का ही अनुकरण करती है। उसी स्त्री के निष्कर्षयुक्त विचारों को उद्धृत करते हुए रत्ना वर्मा ने आगे लिखा है- "यह प्रस्ताव पारित किया जाए कि जो महिला राजनीति में रहेगी, उसे लंबी बांह वाला ब्लाउज ही पहनना पड़ेगा। राजनीति में महिलाओं की नंगी बाहों से मुझे घृणा है।" (74)

रत्ना वर्मा यहां स्पष्ट कर देती हैं कि राजनीति में संलिप्त महिलाएं, राष्ट्र की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके पहनावे के प्रति समग्र राष्ट्र ही नहीं, बल्कि समग्र विश्व का ध्यान आकर्षित होता है। वे वैश्विक स्तर पर राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना की संवाहक होती हैं। भारतीय

संस्कृति के आचार-विचार का प्रसार, राष्ट्र की इन्हीं विशिष्ट महिलाओं द्वारा होता है, फिर वे चाहे फिल्मी क्षेत्र से हों या राजनीतिक क्षेत्र से। पश्चिमी पहनावे से प्रभावित महिलाओं को, उपर्युक्त महिला का कथन रुचिकर नहीं लगता। ऐसी ही एक महिला की तीखी प्रतिक्रिया को उद्धृत करते हुए रत्ना वर्मा ने आगे लिखा है- 'इन खूसट महिलाओं के बीच, हमें बैठने में शर्म आती है। ये आज भी राजनीति में पुराने फैशन ही चलाना चाहती हैं। इन्हें नहीं मालूम कि जमाना कितना बदल गया है।' (75)

उपर्युक्त कथन घोर विडंबना का संकेतक है। जो महिला अन्य महिलाओं को मर्यादित वस्त्र धारण करने का परामर्श दे, उसे खूसट और पुराने फैशन की पक्षधर कहकर तिरस्कृत करना, कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त कथन के आलोक में रत्ना वर्मा के कथन का अप्रत्यक्ष भाव यह है, कि अब राजनीति में पहले वाला जमाना नहीं रहा कि राजनेता, चरम सीमा तक सादगी पसंद हों। वर्तमान परिदृश्य के अंतर्गत राजनीति पर भी, उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगत हो रहा है।

भारत के दूसरे प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री सरलता, सादगी और नैतिक मूल्यों के संवर्धन के सशक्त उदाहरण हैं। *सांस्कृतिक उत्थान का मार्ग* पुस्तक के अंतर्गत रामसहाय ने उनकी सादगी की पुष्टि करते हुए लिखा है- "लाल बहादुर शास्त्री (इलाहाबाद) को चुनाव के लिए पार्टी के द्वारा 1200 रुपए, और एक जीप प्रचार के लिए दी गई थी, जिसमें से उन्होंने मात्र ₹800 खर्च कर लोकसभा का चुनाव जीता था। शेष रुपए पार्टी को वापस कर दिए थे।" (49) लाल बहादुर शास्त्री जैसा निर्लोभी और निस्पृह व्यक्ति, राजनीतिक गलियारे में चिराग लेकर दूढ़ने से भी नहीं मिलता। यदि वे चाहते तो पार्टी के द्वारा मिले हुए रुपयों से, मौज मस्ती कर सकते थे, या शेष रुपयों को अपनी जेब के हवाले कर सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया, उनके व्यवहार द्वारा उनके 'सादा जीवन उच्च विचार' सिद्धांत की पुष्टि होती है।

हरीश नवल फिल्मी महिलाओं के, तथा रत्ना वर्मा राजनीतिक महिलाओं के अंतर्मन में, कम वस्त्र पहनने के मोह की ओर इशारा करते हैं, परंतु प्रेम जन्मेजय, सरकारी कार्यालयों में कर्मचारियों के अनैतिक व्यवहार को कपड़े उतारने की संज्ञा देते हैं। इस विषय में वे *कोई मैं झूठ बोलया* पुस्तक के अंतर्गत लिखते हैं- "आप किसी भी सरकारी दफ्तर में चले जाइए, लोग कपड़े उतारे बैठे हैं। आप विनम्रता की कमीज, शर्म की पेंट, ईमानदारी का कोट और नैतिकता की टाई लगाए दफ्तर में पहुंचते हैं परंतु नंगों के बीच आप अपने को अजनबी पाते हैं।" (192)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से स्पष्ट है कि प्रेम जन्मेजय, वर्तमान समय में सरकारी कार्यालयों में व्याप्त, निर्लज्जता का अतिक्रमण देखते हुए क्षुब्ध हैं। सरकारी कर्मचारियों के मुंह में खून लग चुका है, वे विनम्रता, ईमानदारी और नैतिकता की भाषा से अनभिज्ञ हैं। उन्हें केवल एक ही भाषा की जानकारी है, कड़कते नोटों पर लिखी भाषा की। जो व्यक्ति नैतिकता, विनम्रता तथा ईमानदारी से विहीन है, सांस्कृतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में वह अनावृत ही दिखाई देगा। सांस्कृतिक मूल्यों से आच्छादित मानव ही, अन्य जीवों से पृथक दिखाई देता है। हरीश नवल द्वारा रचित उपर्युक्त व्यंग्य रचना में, सांस्कृतिक मूल्य लज्जा, का क्षरण दृष्टिगत होता है। उन्होंने, फिल्म-जगत से संबंधित स्त्रियों के द्वारा सहज लज्जा- भाव त्यागने की ओर इंगित किया है।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (उदात्त मूल्य: भाग 4) में मृत्युंजय उपाध्याय लज्जा को परिभाषित करते हुए लिखते हैं- "अंतःकरण की वह स्थिति विशेष, जिसमें स्वभावतः किसी बुरे आचरण की भावना का बोध होने पर संकोचवश समस्त चेष्टाएं शिथिल होती जान पड़ें, और मुंह से शब्द निकल पाना कठिन जान पड़े, लज्जा है।" (157)

मृत्युंजय उपाध्याय के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि जब कभी मनुष्य को अपने आचरण में, कोई त्रुटि दिखाई देती है तो वह संकोच से गड़-गड़ जाता है। उसके अंतर्मन में, यह विचार मंथन करता रहता है कि उसके द्वारा सम्यक चेष्टा का निर्वहण नहीं हो पाया। स्त्रियों के अंतर्मन में लज्जा शीलता को, आभूषण मानते हुए मृत्युंजय उपाध्याय ने आगे लिखा है-"लज्जा-भाव का उदय पुरुषों की तुलना में स्त्रियों में अधिक होता है और स्त्री सौंदर्य को द्विगुणित करता है। इसीलिए लज्जा को नारी का आभूषण माना गया है।" (157)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि लज्जाशीलता, नारी जगत का नैसर्गिक भाव है। यह भाव नारी के सौंदर्य में चार चांद लगा देता है। लज्जा का भाव त्यागने से नारी का स्वाभाविक सौंदर्य लुप्त हो जाता है। मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अप्राप्य वस्तुओं की ओर अधिक आकर्षित होता है। जो वस्तु सहज उपलब्ध हो जाए, उसके प्रति आकर्षण में कमी आ जाती है।

नारी प्रकृति निर्मित सर्वोत्कृष्ट, सर्वोत्तम तथा सुंदरतम कृति है। उसे अपने रूप तथा लावण्य के आकर्षण के प्रति जागरूक रहना चाहिए। रावण, जिसने अपने हाथों पर कैलाश पर्वत को उठा लिया था, जिसने समस्त देवताओं, यक्षों, किन्नरों तथा दानवों पर विजय प्राप्त कर

ली थी, वही रावण सीता के सम्मुख याचक बनकर खड़ा हो जाता है कि सीता रावण की प्रार्थना स्वीकार करते हुए उसकी ओर एक नजर तो डाले। गोस्वामी तुलसीदास *श्रीरामचरितमानस* के अंतर्गत रावण के कथन को उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "कह रावण सुनु सुमुखि सयानी, मंदोदरी आदि सब रानी। तव अनुचरी करउँ पन मोरा, एक बार बिलोकु मम ओरा।।" (706)

तुलसीदास के द्वारा कही गई उपर्युक्त चौपाई, सीता के चरित्र के संस्कृतियुक्त रूप को तथा स्त्री के सहज लज्जाशील स्वभाव को सुनिश्चित करती है।

'कंदसामि पिल्लैई और मिस्टर भगवान' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, संस्कृति के क्षेत्र में, वर्तमान समय की अतिशयतापूर्ण विसंगतियों पर कटाक्ष करते हैं। यह व्यंग्य रचना, एक तमिल व्यंग्य रचना 'पुतमइप्पित्तन' का नाट्य रूपांतरण है। इस व्यंग्य रचना के द्वारा हरीश नवल, वर्तमान समय की विडंबना को दर्शाते हैं, जिसके अंतर्गत विसंगतियों की अधिकता, ईश्वर को भी हथियार डालने के लिए विवश कर देती है। ईश्वर, समग्र सृष्टि के रचयिता हैं, उनके द्वारा किसी भी प्रतिकूल स्थिति से पलायन नहीं हो सकता, परंतु विसंगतियों का प्राचुर्य दर्शाने के लिए व्यंग्यकार, अतिशयता का भी आश्रय ले लिया करते हैं।

एक तमिल व्यक्ति कंदसामि पिल्लैई को, बाजार में भगवान मिल जाते हैं। अपना परिचय देने से पूर्व वे उसे कहते हैं कि उन्हें प्यास लगी है, वह व्यक्ति उन्हें एक आलीशान होटल में ले जाता है। ईश्वर होटल की भव्यता देखकर, उसकी प्रशंसा करते हैं। प्रत्युत्तर में, कंदसामि पिल्लैई जो कहता है, उसके कथन को उद्धृत करते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "होटल महंगा हो और मुर्गीखाने सा दिखे? यह आसान काम नहीं है, मंदिर बनाने की तरह।" (98)

हरीश नवल, भवन निर्माताओं की घोर यथार्थवादी मानसिकता का उपहास करते हैं। वर्तमान मनुष्य की सोच, हर कार्य के क्रियान्वयन के परिप्रेक्ष्य में, हानि-लाभ को सम्मुख रखकर क्रियाशील होती है। मंदिर बनवाते वक्त मनुष्य अपने मन को यह दिलासा दे लेता है कि ईश्वर तो भक्तों की भावना को देखते हैं, न कि मंदिरों की भव्यता को। वैसे भी भगवान तो भक्तों के हृदय में निवास करते हैं, मंदिर तो केवल एक साधन मात्र हैं, जिसके अंतर्गत मनुष्य ईश्वर के प्रति ध्यान, एकाग्रता पूर्वक लगा सकता है। आराधना करते समय, साधक का ध्यान सांसारिक आकर्षणों में लिप्त न हो, इसलिए मंदिरों का निर्माण किया जाता है। भव्य होटल बनाए जाते हैं, धनपतियों को आकर्षित करने के लिए। होटलों के निर्माण क्षेत्र में पूंजीपतियों के मध्य बड़ी

प्रतिस्पर्धा रहती है। सभी धनकुबेर एक से बढ़कर एक भव्य होटल बनाना चाहते हैं, ताकि वे अधिक से अधिक लोगों को आकर्षित कर सकें और अपने धन के भंडारण में बढ़ोतरी कर सकें।

हरीश नवल, कंदसामि पिल्लैई के माध्यम से होटलों के निर्माण को मंदिरों के निर्माण से कठिनतर कार्य मानते हैं। बहुत से मंदिर भी, भव्यता के आधार पर बनाए जाते हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में वही उद्देश्य निहित रहता है जोकि होटलों के मालिकों के अंतर्मन में होता है, अधिक से अधिक लोगों का ध्यान आकर्षित करना। ऐसे मंदिरों के प्रवेश के लिए टिकट की व्यवस्था रहती है। धन-प्राप्ति की आकांक्षा की पूर्ति के साथ-साथ, इन मंदिरों द्वारा समाज में भेदभाव फैलाने का काम भी प्रचुर मात्रा में किया जाता है। चुनाव के दौरान नेता लोग, मंदिर-मस्जिद, चर्च इत्यादि के नाम पर जनता को भ्रमित करते हैं, उन्मादित करते हैं, तथा जनता के कंधे पर बंदूक रखकर निशाना साधते हैं।

होटल में कॉफी पीते समय कंदसामि पिल्लैई बताता है कि कॉफी को बनाते समय, चिकरी का पाउडर इस्तेमाल किया जाता है जो उपभोक्ता को कॉफी का ही भ्रम देता है। होटल वालों द्वारा उपभोक्ताओं के साथ किए गए छल को, हरीश नवल कंदसामि पिल्लैई के कथन के माध्यम से व्यक्त करते हुए आगे लिखते हैं- "वही हिसाब है सेठ, जैसे कितने ही लोग भगवान का नाम लेकर उल्लू बनाते हैं।" (99) इस कथन के आलोक में घोर विडंबना दृष्टिगत होती है कि वर्तमान लोगों की रग-रग में, भ्रष्टाचार रच- बस गया है। अपना स्वार्थ साधने के लिए लोग भगवान का नाम भी इस्तेमाल कर लेते हैं। वे लोग, इस तथ्य तथ्य की ओर से, आंख मूंदे रहते हैं कि ईश्वर की लाठी बेआवाज होती है। छलयुक्त व्यवहार, तो किसी के साथ भी नहीं करना चाहिए क्योंकि यह नैतिक मूल्यों के विरुद्ध है, फिर अदृश्य शक्ति के विरुद्ध छल करना, तो और भी गलत बात है।

इस तथ्य को गोस्वामी तुलसीदास ने *श्रीरामचरितमानस* के अंतर्गत, श्रीराम के कथन द्वारा प्रमाणित किया है। रावण से चोट खाने के पश्चात, उसका छोटा भाई विभीषण श्रीराम की शरण में आता है तो सुग्रीव उस के आगमन को की दृष्टि से देखता है। सुग्रीव के संदेह की निवृत्ति करते हुए श्रीराम की कथन को परिकल्पित करते हुए तुलसीदास ने लिखा है- "निर्मल मन, जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।" (738) अर्थात् हृदय में कपट- भाव धारण करने वाले व्यक्ति ईश्वर को कतई नहीं भाते, क्योंकि ईश्वर के सम्मुख किसी भी प्रकार

का भाव, छिप नहीं सकता। मलिनता का भाव हृदय में रखकर, अगर कोई व्यक्ति कृत्रिम निर्मलता का आवरण ओढ़ कर ईश्वर भक्ति का ढोंग करता है तो वह उसी डाली को काटता है, जिस पर स्वयं विराजमान होता है।

संसार का विसंगति पूर्ण व्यवहार देखकर, ईश्वर व्यथित हो जाते हैं और वापस लौटने की इच्छा अभिव्यक्त करते हैं। कंदसामि पिल्लैई के व्यंग्यात्मक कथन को उद्धृत करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "अभी से तंग आ गए संसार से आप?"(113) कंदसामि पिल्लैई का उपर्युक्त कथन, संसार में व्याप्त विषम परिस्थितियों की ओर संकेत करता है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल, इस कटु सत्य से अवगत कराते हैं कि संसार में ईश्वरीय गुणों से युक्त मनुष्य भी यहां की मुश्किलें देखकर, धैर्य का परित्याग कर देता है और विपरीत परिस्थितियों से भाग जाना चाहता है।

उपर्युक्त कथन व्यंग्य के सत्यान्वेषी होने की भी पुष्टि करता है। हरीश नवल के कथन के परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक मूल्य निर्मलता, का भाव खंडित होता दृष्टिगत होता है। जो लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए ईश्वर तक को नहीं छोड़ते, उनके नाम पर सामान्य जन को उल्लू बनाने पर उतारू हो जाते हैं, उनके अंतर्मन में मलिनता का भाव, स्वयं प्रमाणित है। मनुष्यता का इससे अधिक पतन और क्या होगा कि मानव अपने स्वार्थ में अंधा होकर ईश्वर के नाम का भी दुरुपयोग करने में संकोच नहीं करता।

भगवान के नाम पर उल्लू बनाने वाली एक अन्य महत्वपूर्ण श्रेणी के लोगों के विषय में, शरद जोशी ने *राग भोपाली* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "वे कमबख्त जो काले धंधों में फंसे, पिछले वर्षों से मंदिर आना भूल चुके थे, फिर से भक्त हो रहे हैं।" (56) शरद जोशी के कहने का भाव यह है कि समाज में विद्यमान ऐसे भ्रष्टाचारी लोग, जो काले कारनामों द्वारा काला धन एकत्रित करने में व्यस्त थे, वे एकाएक, मंदिर परिसर में प्रकट हो गए, और आपादमस्तक भक्ति-भाव में लीन हो गए। ऐसे बगुला भक्तों के अंतर्मन की वास्तविक इच्छा बताते हुए शरद जोशी ने आगे लिखा है- "पुजारी का दिल जीतने के लिए मंदिर में भारी चढ़ावा चढ़ाते हैं, और मौका लगते ही एक मूर्ति बगल में मार चल देते हैं। किसी विदेशी को बेचेंगे और डॉलर कमाएंगे।" (56)

शरद जोशी के कथन से स्पष्ट है कि ऐसे लोग भगवान के नाम पर पुजारियों को, तथा मंदिर में आने वाले अन्य लोगों को, उल्लू बनाते हैं। सामान्य लोग, उन जैसे व्यस्त महापुरुषों को

मंदिर पधारते देख, चकित होते हैं और उनके भक्ति भाव की प्रशंसा करते हैं यह कहते हुए, कि भाई! भक्त हो तो इन जैसा। इतना बड़ा कारोबार चलाते हैं कि सिर खुजलाने की भी फुर्सत नहीं मिलती, परंतु मंदिर में हाजरी लगवाने सर के बल दौड़े चले आते हैं। लोगों की आंखों से भ्रम का पर्दा तब हटता है, जब वे धूर्त लोग, उनकी आंखों में धूल झोंककर, नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। हरीश नवल तथा शरद जोशी के कथन में तुलनात्मकता करने के पश्चात यह स्पष्ट है कि हरीश नवल, व्यंजनात्मक शैली में समाज के कुटिल लोगों के छलयुक्त व्यवहार पर कटाक्ष करते हैं जो भगवान के नाम पर लोगों को उल्लू बनाते हुए अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। शरद जोशी ऐसे महान भक्त शिरोमणियों की पोल खोल कर रख देते हैं, जो मुंह में राम बगल में छुरी, लेकर चलते हैं। अर्थात् मंदिर आने के परिप्रेक्ष्य में, उनका वास्तविक अभिप्राय, दुर्लभ और प्राचीन कलात्मकता से समन्वित मूर्तियों की चोरी करना होता है, ताकि इस क्रियात्मकता के द्वारा स्वार्थ में अंधी उसकी आंखों को तनिक रोशनी मिल सके। अर्थात्, उनकी लालची वृत्ति को कुछ देर के लिए संतुष्टि मिल सके।

हरीश नवल और शरद जोशी ने अपनी-अपनी व्यंग्य रचनाओं के अंतर्गत, उन लोगों का उल्लेख किया है जो भगवान के नाम पर दूसरों को उल्लू बनाते हैं। विष्णु नागर उन लोगों के प्रति सहानुभूति के भाव प्रदर्शित करते हैं, जो बार-बार उल्लू बनने से भी घबराते नहीं। इस विषय में विष्णु नागर ने *भारत एक बाजार है* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "उल्लू में ही यह जिगरा है कि वह बार-बार उल्लू बनाए जाने पर भी उल्लू बना रहता है।" (146) उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत की धर्मभीरू जनता को, संस्कृति के रक्षकों, धर्म के ठेकेदारों तथा सत्ता के मठाधीशों द्वारा बार-बार बरगलाया जाता है। परन्तु जनता फिर भी उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आते हुए उनके द्वारा किए गए भ्रष्ट व्यवहारों को भूल जाती है। उपर्युक्त प्रकार के भ्रष्ट लोगों की जब पोल खुलती है, तो कुछ समय के लिए जनता जागरूक हो जाती है, परंतु उन्हीं लोगों के द्वारा भेजे गए, मध्यस्थ लोगों के छल-भरे शब्दों के जाल में दोबारा फंस जाती है और पुनः उल्लू बन जाती है।

भारतीय परंपरा में तो गर्भस्थ शिशु भी सम्यक और असम्यक चेष्टाओं के मध्य, अंतर जानता था। महाभारत के वन पर्व के अंतर्गत, कहोड मुनि की कथा वर्णित है। कहोड मुनि रात्रि के समय विद्याध्यन करते, और दिन में अपने शिष्यों को पढ़ाते। एक दिन उन्होंने सुना कि कोई उनसे कह रहा है कि वे अपने शिष्यों को सम्यक ज्ञान प्रदान नहीं कर रहे। काफी खोजबीन करने पर उन्हें पता चलता है कि उनकी पत्नी की कोख में पल रहा बालक, उन्हें चुनौती दे रहा

है। महावीरप्रसाद अग्रवाल द्वारा संपादित *अतुल्य भारत* पुस्तक में "अतुल्य भारत के 'अष्टावक्र' तुम्हें प्रणाम" आलेख के अंतर्गत, मुरली मनोहर जोशी ने वेदव्यास द्वारा लिखित, गर्भस्थ शिशु के कथन को उद्धृत करते हुए लिखा है- "सर्वा रात्रिमध्ययनं करोषि,नेदं पिताः सम्यगिवोपवर्तते।" (18)

रात-रात भर अध्ययन करने के पश्चात भी पिता द्वारा विद्यार्थियों को, ठीक प्रकार से पढ़ाया न जाना एक अजन्मे बालक को अच्छा नहीं लगा, और उसने अपने पिता को उनकी भूल से अवगत कराया। कितना विरोधाभास है हमारी प्राचीन परंपरा की कार्यप्रणाली में और वर्तमान कार्यप्रणाली में! उस समय एक गर्भस्थ शिशु भी सम्यक चेष्टाओं के संदर्भ में पर्याप्त जागरूक थे, और वर्तमान समय में पूर्ण व्यस्क लोग भी सम्यक कार्यों के क्रियान्वयन की ओर से आंखें मूंदे बैठे हैं।

हर व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थ के वृत्त में कैद है, उसे यह मिथ्या भ्रम रहता है कि वह जो कर रहा है, वह शत-प्रतिशत औचित्यपूर्ण है। ऐसे लोग यह कहते हुए अपने मन को संतुष्ट कर लेते हैं कि जब सभी लोग टेढ़ी चाल चल रहे हों, तो अपनी चाल भी टेढ़ी कर लेना उचित है। ऐसे लोग ईमानदारी की चाल चलने वालों को भी, बेईमानी के कीचड़ में धकेल देना चाहते हैं। वे लोग निश्चयपूर्वक यह मानकर चलते हैं कि यदि समग्र परिवेश धूर्तता भरे व्यवहार से परिपूर्ण है तो कुछ लोगों के छलरहित होने से व्यवस्था में परिवर्तन नहीं आएगा। वे लोग यह भूल जाते हैं कि व्यवस्था भी तो मानव निर्मित ही है, व्यवस्थाओं को सार्थक और निरर्थक बनाना, सकारात्मक और नकारात्मक बनाना मानव के हाथ में है। आवश्यकता है, निस्वार्थ भाव और पक्के इरादे की। भारत की गौरवशाली संस्कृति को वर्णित करते हुए, मुरली मनोहर जोशी ने आगे लिखा है- "हम थे संस्कृति के वाहक और कहलाते थे जगद्गुरु। ज्ञान विज्ञान, साहित्य, स्थापत्य कला-कौशल, कृषि, व्यापार सभी में अग्रणी थे हम भारत के लोग।" (19)

हर विधा, हर कला में निपुण परंपरा के संवाहकों द्वारा, दूसरों को उल्लू बना कर अपनी स्वार्थ सिद्धि करना क्या शोभा देता है? जिनके पास समृद्ध और विराट संस्कृति के हीरक हों, उन्हें छल-फरेब के कंकर एकत्रित करने का लोभ कैसे शोभित कर सकता है? जगद्गुरु कहलाने वाले पूर्वजों के, वंशजों को अपनी पारंपरिक गरिमा अक्षुण्ण रखने के उद्योग करने चाहिए, न कि क्षुद्र-क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति हेतु महान महिमामंडित संस्कृति के खंडन की ओर प्रवृत्त होना चाहिए।

'प्यार का फार्मूला' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, मनुष्य की असम्यक आकांक्षाओं पर व्यंग्याक्षेप करते हैं। मनुष्य के पास शारीरिक और मानसिक सुख प्रदान करने के, जिन-जिन साधनों की सहज उपलब्धता होती है, मनुष्य उन्हें प्राप्त कर संतुष्टि का अनुभव नहीं करता, अपितु उनसे अलग, साधनों की इच्छा-प्राप्ति को अपने अंतर्मन में स्थान देता है। इस विषय में हरीश नवल अपनी पत्नी की मौसी से वार्तालाप को वर्णित करते हुए लिखते हैं- "हम जो हैं, उसे कबूल नहीं करते। कुछ और लादते हैं। जैसे मैं सोचता हूँ कि मेरा भाई दोस्त जैसा हो, मेरा दोस्त बिल्कुल भाई हो।" (135)

सामान्य तौर पर पढ़ते हुए, उपर्युक्त कथन अत्यंत सरल प्रतीत होता है, परंतु गंभीर अर्थ में अत्यंत जटिल है। इस कथन के इर्द-गिर्द ही मनुष्य-जीवन का समग्र चिंतन गतिशील रहता है। सुख अथवा सहयोग के जो साधन हमारे पास हैं, हम हमेशा उनसे बेहतर पाने की आकांक्षा अपने अंतर्मन में रखते हैं। हमारा भाई कितना ही सहयोगी क्यों न हो, हम उसकी तुलना अपने मित्र से करने लगते हैं। मित्र के साथ हम जिस अतरंगता से बातचीत कर सकते हैं, भाई से करते हुए झिझकते हैं। उस समय हमारे अंतर्मन में असंतुष्टि के भाव जागृत होने लगते हैं, काश! हमारा भाई मित्रवत होता। मित्र के दूरस्थ स्थित होने के कारण, वह हमारी किसी समस्या के समाधान में सहायता नहीं कर पाता, तब हम सोचते हैं कि काश! वह हमारा भाई होता, हमेशा हमारे साथ रहता, उसकी सहयोगी वृत्ति के कारण हमारे जीवन में आने वाली समस्याएं शीघ्रता से सुलझ जातीं।

प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट है कि अधिकांश मनुष्य जीवन भर, असंभव निष्कर्ष तक पहुंचने के प्रति चिंतनशील रहते हैं। अपनी पत्नी की मौसी के प्रत्युत्तर को उद्धृत करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "सानू गांव दे विच शहर वरगा सब कुज चाहिदा है तां शहर विच असि गांव वरगा चांदे हैं।" (135) हरीश नवल के द्वारा उपर्युक्त कथन में पंजाबी भाषा के प्रयोग से व्यंग्य-लेखन में कलात्मकता का समावेश हुआ है।

उपर्युक्त कथन दर्शाता है कि मनुष्य के मन में अपनी ही इच्छाओं के प्रति भी संदेह है। वह, यह सुनिश्चित नहीं कर पाता कि वास्तव में उसे स्थायी रूप में क्या चाहिए? वास्तविकता यह है कि अधिकतर मनुष्य अपनी सुविधा के अनुसार साधनों की उपलब्धता चाहते हैं। उनकी वृत्ति, उनके अंतर्मन में स्थित स्वार्थ की भावना को प्रतिबिंबित करती है। मनुष्य की इसी स्वार्थी प्रवृत्ति ने पृथ्वी के पर्यावरण को तहस-नहस कर दिया है। गर्मी के मौसम में मनुष्य ठंडक

चाहता है, सर्दी के मौसम में गर्माहट चाहता है। हर मनुष्य की यह हार्दिक इच्छा रहती है कि उसके एक इशारे से परिस्थितियां और परिवेश उसके अनुकूल हो जाए। मानव ने अपनी सुख-सुविधा को जीवन का चरम लक्ष्य बना लिया है। उसकी इच्छाओं की पूर्ति से समग्र पृथ्वी का पर्यावरण-संतुलन बिगड़ता है, तो बिगड़े। मनुष्य की यह वृत्ति समग्र रूप से स्वार्थ केंद्रित है। हर मनुष्य के लिए केवल उसी का सुख प्रथम प्राथमिकता बन गया है। अपने सुख के सामने वह अन्य मनुष्यों की सुख-सुविधा को ध्वस्त करने से भी नहीं संकोच करता तो प्रकृति निर्मित अन्य जीवों के सुख तथा रक्षण के विषय में क्या खाक सोचेगा? मनुष्य यह नहीं समझता कि पर्यावरण के असंतुलन से उसका स्वयं का जीवन भी असंतुलित हो जाएगा क्योंकि वह पृथ्वी - पुत्र है, पृथ्वी पर हो रही हर बृहद हलचल का समूचे जीव-जगत पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

हरीश नवल के कथन के समानांतर ही हरिशंकर परसाई ने भी मानव की सुविधा-भोगी वृत्ति पर प्रकाश डालते हुए *ऐसा भी सोचा जाता है* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "वेश्या की उम्र पूछो तो वह कम करके बताती है। योगी सन्यासी से पूछो तो वे हों चाहे सत्तर साल के, पर कहेंगे-उम्र याद भी नहीं रही। चार सौ सालों से ऊपर का ही होऊंगा।" (58) हरिशंकर परसाई के कथन से स्पष्ट भासित होता है कि व्यक्ति अपनी उम्र का आंकड़ा भी अपनी सुविधा अनुसार ही बताता है। जिस कथन के द्वारा उसे सुभीता लगता है, वह उसी कथन को सत्यापित करने का प्रयास करता है। यदि मनुष्य अपनी सुविधानुसार अपनी आयु घटा-बढ़ा कर बोल सकता है, तो गांव में शहर का और शहर में गांव का वातावरण संकल्पित करना कौन बड़ी बात है?

भगवान सिंह के विचार हरीश नवल के कथन से साम्य-भाव रखते हुए भी कुछ अलग तरह के हैं। हरीश नवल ने कहा है कि हम अपनी स्वाभाविक तथा वर्तमान स्थिति को स्वीकार नहीं करते। हरीश नवल ने मानवीय रिश्तों तथा पर्यावरणीय परिवेश के संबंध में विचार रखे हैं, तो भगवान सिंह ने मानवीय इतिहास के विषय में विचार प्रस्तुत किए हैं। *भारतीय परंपरा की खोज* पुस्तक के अंतर्गत उन्होंने लिखा है- "कथा को दुहराते समय बाद के युगों के लोग अपने मूल्यों के अनुसार उसमें मामूली परिवर्तन कर देते हैं, या कहें, उस पुराने सच में अपने युग का सच भी अनजाने ही जोड़ देते हैं।" (98) भगवान सिंह के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि मनुष्य अपनी सुविधा के अनुसार, इतिहास में लिखित संदर्भों में भी परिवर्तन कर लेता है।

इस बदलाव की प्रक्रिया में संभवतः उसका उद्देश्य, प्राचीनता और नवीनता में समन्वय स्थापित करना होता है।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के परिप्रेक्ष्य में आत्म-बोध तथा संतुलन, सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण दृष्टिगत होता है, क्योंकि आत्म-बोध के अभाव में ही, मनुष्य निश्चय नहीं कर पाता कि उसे अपने जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए किन-किन साधनों की परम आवश्यकता है। मनुष्य को आंतरिक संतोष प्रदान करने वाले एक प्रकार के साधन जब उपलब्ध हो जाते हैं, तो वह किसी अन्य स्थिति को बेहतर मानते हुए उसकी उपलब्धता की कामना करने लगता है। मानव की इस तरह की मनोवृत्ति, उसके कार्य-क्रियान्वयन की विधि में असंतुलन ला देती है। असंतुलित अंतर्मन चतुर्दिक परिवेश को असंतुलित करने का कारण बन जाता है।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (उदात्त मूल्य: भाग 4) में मृत्युंजय उपाध्याय ने संतुलन को सांस्कृतिक मूल्य के संदर्भ में परिभाषित करते हुए लिखा है-"मूल्यगत संदर्भ में संतुलन शब्द मनोदशा की संयमित अवस्था का अर्थ व्यक्त करता है।" (190) मृत्युंजय उपाध्याय के कथन से स्पष्ट है कि मनुष्य की मानसिक अवस्था के संयमित स्वरूप को संतुलन कहा जाता है। संयमित अवस्था में, मनुष्य का चित्त विचलित नहीं होता, द्वंद में नहीं होता, अनिश्चय की स्थिति में नहीं होता। संतुलित मानसिकता का धारक व्यक्ति, अपने पास उपलब्ध साधनों के प्रति दृढ़ निश्चयात्मक रहता है। संतुलित मानसिकता को धारण करने वाले मनुष्य का आचरण भी सम्यक रहता है, उसके व्यवहार द्वारा किसी भी प्रकार की त्रुटि की संभावना नगण्य रहती है।

'डगर पनघट की' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने वर्तमान समय की एक ज्वलंत समस्या की ओर संकेत किया है और वह है, पानी की कमी। बढ़ती आबादी और बढ़ते औद्योगिकरण ने जल-संकट की समस्या को उभारा है, जिसका जिक्र हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत किया जा चुका है। इसी व्यंग्य रचना में हरीश नवल, नैतिक मूल्यों के हनन की ओर भी संकेत करते हैं। इस विषय में हरीश नवल ने लिखा है-"सारा पानी मर रहा है, सबका पानी चुक रहा है।" (36)

हरीश नवल ने नैतिकता, शुभ कर्म और सदाचार सांस्कृतिक मूल्यों का अपकर्ष दर्शाया है। मानव ने यदि दर्शन ग्रंथों में निर्देशित शुभ-कर्मों का निर्वहण किया होता, तो व्यंग्यकार को पानी के मर जाने की, चुक जाने की विडंबनापूर्ण स्थिति वर्णित न करनी पड़ती। वर्तमान मानव,

सम्यक रीति से आचरण नहीं करता, शुभ कर्मों की ओर प्रवृत्त नहीं होता और सदाचरण के पथ पर बढ़ने के लिए अपने स्वार्थ का उत्सर्ग नहीं करता।

उपर्युक्त कथन के द्वारा यद्यपि, व्यंग्यकार का धैर्य भी चुक गया लगता है, फिर भी वह अपने व्यंग्य-कथन के माध्यम से, अपने अंतर्मन में एक क्षीण- सी आशा संजोए हुए हैं कि संभवतः उसके व्यंग्य-आघात से कहीं किसी के अंतर्मन से नैतिकता का सोता फूट पड़े, शायद सांस्कृतिक मूल्यों का नखलिस्तान, जो रेगिस्तान बनने की कगार पर है, नैतिकता की चंद बूंदों से किंचित्मात्र हरा भरा हो सके। पानी के मरने की बात कहते हुए हरीश नवल वर्तमान समय की मूल्यहीन स्थिति से जनमानस को अवगत कराना चाहते हैं। 'पानी के समग्र रूप से मरने की बात कहते हुए व्यंग्यकार ने, अतिशयता का आश्रय लिया है, क्योंकि यदि सारा पानी मर चुका होता तो व्यंग्यकार की कलम, इस पतनोन्मुख विडंबनापूर्ण स्थिति का वर्णन कैसे कर पाती ? हर स्थिति का आकलन आंकड़ों के आधार पर होता है, इसलिए हरीश नवल ने पानी के मर जाने का रूपक निर्मित किया है। वास्तव में हरीश नवल, आंखों के पानी के मर जाने की बात कहते हैं, जिसका अभिप्राय है कि वर्तमान समय में मानव अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए भ्रष्ट से भ्रष्ट कार्य करने में भी लज्जा का अनुभव नहीं करता।

स्वार्थ सिद्ध करने की आकांक्षा, मानव को किस सीमा तक गिरा सकती है, इसका उल्लेख करते हुए हरिशंकर परसाई ने *ऐसा भी सोचा जाता है* पुस्तक के अंतर्गत, नैतिक मूल्यों की धज्जियां उड़ाने वाले एक ठेकेदार के चारित्रिक अपकर्ष पर तीक्ष्ण व्यंग्य-बाण चलाया है। एक अफसर, जो करोड़ों का ठेका देने का सामर्थ्य रखता है, ठेकेदार उस ठेके को हथियाने के लिए पतन की गहरी खाई में भी खुशी-खुशी कूदने को तैयार हो जाता है। इस विषय में हरिशंकर ने उस अफसर को 'ऋषि' की व्यंग्यात्मक उपमा देते हुए लिखा है- "कोई -कोई ठेकेदार उस ऋषि को अपनी पत्नी भी समर्पित कर देते हैं। प्रातः काल जब अफसर ऋषि ठेके का वरदान देता है, तब ठेकेदार पत्नी से कहता है-धन्य है! तूने खूब पातिव्रत धर्म निभाया।"47)

हरिशंकर परसाई विषय-वासनाओं की दलदल में धंसे अफसर को, ऋषि कहते हुए उसके चारित्रिक अपकर्ष को वाणी के वैदग्ध्य द्वारा दर्शाते हैं। उसने उच्च प्रशासनिक पद पर स्थित होते हुए उसकी गरिमा को खंडित किया। वह ठेकेदार तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए। जिस कन्या को उसके पिता ने, ठेकेदार के हाथों में इसलिए सौंपा था कि वह उसके मान-सम्मान की रक्षा करेगा, और बुरे लोगों की बुरी नजरों से उसे बचाएगा। जब वह आर्थिक

लाभ की खातिर, अपनी पत्नी की अस्मिता तक दांव पर लगा देता है तब उसकी आंखों में पानी शेष कैसे रह जाएगा? हरिशंकर परसाई के कथन से, ठेकेदारी से संबंधित क्षेत्र के लोग नाक-भोंसिकोड़ सकते हैं, परंतु साहित्यकार तो वैसी ही रचना रचता है, जो समाज के दर्पण द्वारा प्रतिबिंबित होती है। हरिशंकर परसाई का उद्धरण, हरीश नवल के उद्धरण की सशक्तता के साथ पुष्टि करता है। उपर्युक्त उद्धरणों के आलोक में नैतिकता तथा लज्जा का विखंडन परिलक्षित होता है।

भारत की प्राचीन समृद्ध परंपरा के अंतर्गत तो पशु-पक्षी भी, नारी के सम्मान की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध दर्शाए गए हैं। तुलसीदास द्वारा रचित *श्रीरामचरितमानस* के अंतर्गत रावण, जब साधु का कपट वेश धारण करके सीता का हरण कर लेता है, और उसे लंकापुरी ले जाने को उद्यत होता है, तब सीता की करुण पुकार सुनकर एक गीध, सीता को बचाने के लिए सामने आता है। वह रावण को इस अनाचार से दूर रहने का आग्रह करता है। रावण अपनी शक्ति के मद में चूर होते हुए, उसे अपने मार्ग से हट जाने की चेतावनी देता है। गीध यह जानते हुए भी, कि वह युद्ध में रावण से जीत नहीं जाएगा, उससे भिड़ जाता है, और मरणासन्न हो जाता है। नारी के सम्मान की रक्षा के लिए, आत्मोत्सर्ग का इससे बढ़कर गरिमामंडित उदाहरण, समग्र विश्व की संस्कृति में नहीं मिलता। सीता की खोज करते हुए राम-लक्ष्मण जब गीधराज जटायु के पास पहुंचते हैं, तो उन्हें जटायु से, रावण द्वारा सीता का हरण किए जाने का, वृतांत पता चलता है। जटायु के त्याग तथा बलिदान को देखकर गोस्वामी तुलसी दास ने राम के कथन को उद्धृत करते हुए लिखा है- "परहित बस जिन्ह के मन माही। तिन्ह कहुं जग दुर्लभ कछु नाहीं।।" (647)

अर्थात् जिनके हृदय में दूसरों के हित का प्रयास निहित रहता है, उनके लिए संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता। जो प्राणी, दूसरों के हित के लिए अपने प्राण तक बलिदान करने को भी तैयार हो जाता है, वह यदि अपने लक्ष्य में सफल हो जाता है तो कीर्तिमान बनता है, यदि बलिदान हो जाता है, तो अमरत्व को प्राप्त करता है।

'अई अईया करूं मैं क्या?' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, वर्तमान समय में विभिन्न दूरदर्शन चैनलों द्वारा प्रसारित होने वाली, गायन-प्रतिस्पर्धाओं के अंतर्गत व्याप्त विसंगतियों को दर्शाते हैं। नृत्य, गायन, वादन, चित्रकला इत्यादि कलाएं, हमारी संस्कृति के विभिन्न अंग-उपांग हैं। इन प्रतिस्पर्धाओं के द्वारा, राष्ट्र की अनचीन्ही प्रतिभाओं को उजागर

करना बहुत अच्छी बात है, इससे भारतीय संस्कृति की समृद्धि होती है तथा गौरव में वृद्धि होती है। इन प्रतिस्पर्धाओं के प्रतिभागियों के पक्ष में, राष्ट्र के नागरिकों से मोबाइल द्वारा एस.एम.एस. करने का आग्रह करना गलत है, क्योंकि सभी लोग तो संगीत के पारखी होते नहीं, अतः उन्हें गायन-विद्या की बारीकियों का ज्ञान नहीं होता। प्रतिस्पर्धा के निर्णायक मंडल में संगीत के ज्ञाता उपस्थित होते हैं, वे इस संदर्भ में बेहतर निष्कर्ष दे सकते हैं।

व्यंग्यकार की पत्नी की मौसी, दूरदर्शन चैनलों के विसंगति पूर्ण व्यवहार पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। उसका मानना है कि प्रतिस्पर्धा में विद्यमान सभी निर्णायक, प्रतिभागियों को असमंजस में डालते हैं। जिस प्रतिभागी को वे अस्वीकृत करना चाहते हैं, उसके गायन में वे कोई न कोई, मीनमेख निकाल लेते हैं, यह कहते हुए कि सुर ठीक नहीं था, गायन के अंतर्गत कोई अदा नहीं दिखाई गई इत्यादि-इत्यादि। व्यंग्यकार की पत्नी ने मौसी को जो समझाया, उसे वर्णित करते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "जज कायदा सिखाते हैं। संस्कृति सिखाते हैं।" (147)

व्यंग्यकार की पत्नी के कहने का अभिप्राय यह था कि यह आवश्यक नहीं, कि निर्णायक हमेशा ही जानबूझकर त्रुटि निकालते हों, हो सकता है कि वे प्रतिभागी के गायन में सुधार लाने के उद्देश्य से ऐसा करते हों। मौसी ने प्रत्युत्तर में जो कहा, उस कथन को उद्धृत करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "छोटे बच्चियां दे इक शो विच जज की संस्कृति सिखानगे। ओ बच्चियां नाल वाहियात मजाक करदे ने।" (147)

मौसी के कथन के आलोक में कटु सत्यता का आभास होता है। मौसी गायन-प्रतियोगिता के दौरान निर्णायकों द्वारा, प्रतिभागियों से किए गए वार्तालाप के आधार पर उपर्युक्त कथन कहती है। निर्णायक-मंडल के कुछ निर्णायक, प्रतिभागियों के साथ द्विअर्थी मजाक करते हैं, जिसकी तरफ मौसी ने संकेत किया है। अभद्रता से पेश आने वाले निर्णायक-गण, बच्चों के सम्मुख विकृति ही परोसेंगे, संस्कृति कहां से सिखाएंगे? संस्कृति तो वही सिखा सकता है जो स्वयं सांस्कृतिक मूल्यों से समन्वित हो, 'चिराग तले अंधेरा' मुहावरे को सार्थक करने वाले लोग सम्यक आचरण निर्देशित करने का उजाला कैसे फैलाएंगे? व्यंग्यकार की पत्नी की मौसी गायन-प्रतियोगिता के, प्रबंधन को निरखते हुए क्षुब्ध है, परंतु क्या करे? विवश है। उसके गांव की एक लड़की की बेटी उस प्रतिस्पर्धा में भाग ले रही है अतः उसे, उस लड़की के पक्ष में एस.एम.एस. करना है। उसके कथन को उद्धृत करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा

है- "मैं देख रइ हें थवाडी संस्कृति... की करां, मलावी दी कुड़ी दा सवाल है, सब करना पै रया है, तुसी वी करो।" (147)

उपर्युक्त कथन के आलोक में हरीश नवल इस विडंबनापूर्ण कटु सत्य पर प्रकाश डालते हैं कि वर्तमान समय में अधिकांश लोग, विसंगतियों की भर्त्सना करने के बावजूद उनका दंश झेलने के लिए अभिशप्त हैं। मौसी जैसे तो, टीवी चैनलों की गायन प्रतियोगिता के दौरान निर्णायकों द्वारा, प्रतियोगियों के साथ अशोभनीय व्यवहार की आलोचना करती है, परंतु अपनी परिचित लड़की का पक्ष लेने के लिए, उसी प्रतियोगिता के नियमों का पालन करने के लिए विवश है। जिन विसंगतिपूर्ण व्यवहारों का, मनुष्य भरसक विरोध करता है, जब कभी उसका कोई स्वार्थ मुंह बाय सम्मुख खड़ा हो जाता है तो उसके सभी सिद्धांत भरभरा कर गिर जाते हैं। ऐसी स्थिति में सिद्धांतों के निर्माण का कोई औचित्य नहीं रह जाता। वर्तमान समय में, मूल्यहीनता का परिदृश्य, जो मानवता के चहूँ ओर आच्छादित दृष्टिगत हो रहा है, उसका एकमात्र कारण यह है कि आज के मानव के 'खाने के दांत और हैं और दिखाने के और'। जब स्वयं के स्वार्थ पर पांव पड़ता है, तो मानव उसकी पीड़ा सहन नहीं कर पाता और पांव पीछे हटा लेता है। वर्तमान मानव प्रकट में महानता से ओतप्रोत तथा उपदेशात्मकता से समन्वित, बहुत बड़ी-बड़ी बातें कहता है, परंतु प्रायोगिक धरातल पर व्यवहारिक रणनीति अपना लेता है। उसकी कथनी तथा उसके द्वारा दर्शाए गए आचरण में आकाश पाताल का अंतर देखने को मिलता है।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत निर्विकारिता तथा साधना, सांस्कृतिक मूल्य ध्वस्त होते दृष्टिगत होते हैं। गायन प्रतियोगिता के अंतर्गत एस.एम.एस. द्वारा, जब किसी गायक की गायन-कला की जांच की जाएगी, तब इस क्षेत्र के साधकों का आत्मविश्वास विचलित हो जाएगा, क्योंकि उनकी कला की परख करने में एस.एम.एस. करने वालों की संख्या की गणना भी की जाएगी। निर्णय सम्यक न होने से परिणाम, विकारयुक्त हो जाएगा, उसके अंतर्गत न्याय की संभावना क्षीण हो जाएगी।

टेलीविजन चैनल वाले एस.एम.एस. के द्वारा, प्रतियोगियों की प्रतिभा का आकलन इसलिए करते हैं क्योंकि इससे, उनके कार्यक्रम को प्रायोजित करने वाले अंतरजाल-समूह अपनी जेब भरते हैं। इस रणनीति के विषय में अंतरजाल-समूह का वास्तविक लक्ष्य बताते हुए, शशि पांडेय *चौपट नगरी अंधेर राजा* पुस्तक में लिखती हैं- "धीरे-धीरे जेबें रेतने में लगा है।

और हमारी इच्छा इंद्रिय इसके सामने पूर्ण समर्पित हो हथियार डाल दिए। जिसका अंध फायदा नेट कंपनियां खूब लूट, मौज उड़ा रही हैं।" (59)

शशि पांडेय के कथन द्वारा, हरीश नवल के कथन की पुष्टि हो जाती है। गायन प्रतियोगिता की स्वस्थ परंपरा के निर्णय के लिए संगीत के ज्ञाताओं का निर्णय ही समीचीन रहता है। इस प्रकार एस.एम.एस. की प्रक्रिया के द्वारा, कई बार अति गुणवत्ता-संपन्न प्रतियोगी, प्रतियोगिता से बाहर हो जाते हैं और उनसे कम गुणवत्ता वाले प्रतिभागी, प्रतिस्पर्धा में आगे निकल जाते हैं। इस प्रकार प्रतिभाशाली प्रतिभागियों की प्रतिभा के प्रति, अन्याय होता है।

संगीत, नृत्य तथा स्थापत्य इत्यादि कलाएं, जीवन के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण को उदात्त बनाती हैं। इन कलाओं के अंतर्गत, किसी प्रकार के स्वार्थ की मिलावट करना उचित नहीं। ये कलाएं ही मनुष्य को समय-समय पर स्मरण दिलाती रहती हैं कि हे मानव! तुझे अपने आप को अन्य जीवधारियों से बेहतर सिद्ध करना है। कला को संस्कृति से जोड़ते हुए, हरिशंकर परसाई ने *ऐसा भी सोचा जाता है* पुस्तक में लिखा है- "सांस्कृतिक प्रभाव हमारे जीवन में, आचरण में, जीवन पद्धति में, परस्पर व्यवहार में प्रकट होते हैं। इससे सौंदर्य की रचना होती है। कलाएं, संगीत, साहित्य, स्थापत्य में उपलब्धियां होती हैं।" (51)

हरिशंकर परसाई के कथन से स्पष्ट है कि कोई भी मनुष्य सांस्कृतिक मूल्यों से किस सीमा तक समन्वित है, यह उसके आचरण द्वारा प्रतिबिंबित होता है। मनुष्य-जीवन में विभिन्न कलाओं के महत्वपूर्ण योगदान को वर्णित करते हुए हरिशंकर परसाई ने आगे लिखा है- "कलाएं हमारी आत्मा का उदात्तीकरण करती हैं। हमें बेहतर मनुष्य बनाती हैं। जितनी देर हम संगीत सुनते हैं, उतनी देर हमारे मन में मैल नहीं रहता।" (51)

हरिशंकर परसाई का यह कथन दर्शाता है कि कलाओं से जुड़ाव रखते हुए मानव, मानवता के श्रेष्ठतर रूप को प्रस्तुत करता है। कलाकार कभी भी संकीर्ण मानसिकता को धारण नहीं करता। कला के सच्चे साधक के अंतर्मन में, मानव-मानव में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता। मनुष्य अपने स्वाभाविक रूप-गुण को बेहतर प्रदर्शित कर सके, मानवता के उज्ज्वलतम स्वरूप को प्रकट कर सके, इससे उत्तम बात और क्या होगी? संगीत में वह असर होता है कि संगीत सुनते समय व्यक्ति के मन में मलिनता प्रवेश नहीं कर पाती। संगीत ईश्वरीय अनुभूति है, सत्संगति है, संगीत के गायन तथा श्रवण से अंतर्मन में निर्मलता का वास होता है, इसका व्यवसायीकरण करना, सांस्कृतिक मूल्यों का हनन करना है।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य का अनुशीलन करने के पश्चात यह स्पष्ट है कि सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के लिए हरीश नवल, यथेष्ट रूप से सचेष्ट हैं। व्यंग्यकार, राष्ट्र अथवा समाज में विसंगति रहित परिवेश की स्थापना हेतु व्यंग्यात्मकता को अपनी रचनाधर्मिता का आधार बनाता है। जब-जब समाज में उसे विसंगतियों का प्राधान्य दृष्टिगत होता है, तब-तब उसकी कलम विसंगतियों के परिष्कार के लिए क्रियाशील हो उठती है। जैसा सुखी, मर्यादित, और अनुशासित व्यवहार राष्ट्र और समाज के निर्विघ्न संचालन के लिए अपेक्षित है, अगर वैसा व्यवहार नागरिकों के द्वारा दर्शाया नहीं जा रहा, तो व्यंग्य-लेखन के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि स्वतः निर्मित हो जाती है।

व्यंग्यकार के अंतर्मन में, राष्ट्र तथा समाज के परिष्कृत स्वरूप की स्थापना की मंगल कामना निहित रहती है। वह समग्र रूप से, समाज को सभी जीवन-मूल्यों से समन्वित देखना चाहता है। व्यंग्य-रचना गठित करते समय वह जिन विसंगतियां तथा विद्रूपता-पूर्ण स्थितियों की प्रतिक्रिया-स्वरूप कलम उठाता है, उस समय विशेष में, उसके अंतर्मन में जिन सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आग्रह का स्वरूप उभरता है, उसकी व्यंग्य रचनाओं में, उन सांस्कृतिक मूल्यों के निर्वहण के प्रति, कटिबद्धता लिखित रूप में सामने आ जाती है।

रामलीला उर्फ रावण का ऊंचा कद' व्यंग्य रचना के द्वारा उन्होंने जन सामान्य को राममय होने के लिए, प्रेरित किया है। राम का आचरण सांस्कृतिक मूल्यों के निर्वहण का सम्यक उदाहरण है। राम के आदर्शों को अपनाते हुए ही मानव, अपने मानवीय अस्तित्व की पुष्टि कर सकता है। हरीश नवल का यह कथन कि 'हम रावणमय होते जा रहे हैं, इस तथ्य का संकेतक है कि वे अप्रत्यक्ष रूप से, मानव-जगत को रावणमय, न बनने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। हरीश नवल के कथन की बल्देव भाई शर्मा के कथन द्वारा पुष्टि की जा सकती है। *भारत सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान* पुस्तक में बल्देव भाई शर्मा ने लिखा है- "भारत का धर्म, संस्कृति, परंपराएं और जीवन पद्धति राम से परिभाषित है। उन की जय ही अधर्म, असत्य और बुराई का नाश है।" (33)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि मानव-जगत के राममय हो जाने से, उसकी रावणमय हो जाने की समग्र संभावनाएं स्वतः समूल नष्ट हो जाएंगी। राममय मानव जगत, राम द्वारा बनाए गए जीवनादर्शों पर अपने जीवन को अग्रसर करेगा तो अपने मानवीय कर्तव्यों को, अपने आचरण द्वारा प्रमाणित भी करेगा। समग्र मानवीय परिवेश राममय हो जाने से, रावणमयता

अपने आप अदृश्य हो जाएगी, नष्ट हो जाएगी। राममय होने के लिए, क्या-क्या करना अपेक्षित है, इस विषय पर प्रकाश डालते हुए विद्यानिवास मिश्र ने *जीवन अलभ्य है, जीवन सौभाग्य है* पुस्तक में लिखा है- "सब में समभाव देखना, सब को एक दूसरे के लिए आकांक्षी पाना, संपूर्ण जीवन की एकता को बनाए रखने के लिए किसी को दुखाना नहीं.....राम यह सच्चाई जीते हैं, और हमारे लिए जीते हैं, यह मन में आए तो भारतीय संस्कृति अपने आप हृदयंगम हो जाए।" (86)

विद्यानिवास मिश्र के कथन से स्पष्ट है कि राममय होने के लिए अपने दृष्टिकोण को विशाल और उदार बनाना अपरिहार्य है। दूसरे के सुख में अपने को सुखी देखने की वृत्ति अपना अनिवार्य है। दूसरों का अहित करने के मंसूबों से अंतर्मन को मुक्त रखना जरूरी है। राम ने मानव जगत के जीवन को निर्देशित करने के लिए, पहले स्वयं को आदर्श पथ पर अग्रसर किया। यह सच्चाई जब, जो भी मनुष्य आत्मसात कर लेगा, भारतीय संस्कृति के प्रति उसकी प्रतिबद्धता स्वतः सुनिश्चित हो जाएगी।

'हम मूर्ख थे, मूर्ख हैं और मूर्ख रहेंगे' व्यंग्य रचना के द्वारा, हरीश नवल ने लोगों को भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक अधिकारियों तथा जाति और समुदाय के नाम पर लोगों को उद्वेलित करने वाले तथाकथित समाजसेवकों से सतर्क रहने का आग्रह किया है। मानव का कर्तव्य है कि वह सजगता धारण करते हुए, सम्यक रीति से अपने कर्तव्यों का पालन करता रहे। कर्तव्यों की संपन्नता के लिए किसी प्रकार के प्रपंच रचने की आवश्यकता नहीं होती। मनुष्य, स्वार्थ के अधीन होकर ही उपर्युक्त प्रकार के मक्कार लोगों के चंगुल में फंसता है। ये लोग उसे भविष्य में होने वाले फायदे के विषय में बताते हैं और उसके अंतर्मन में लोभ की भावना को जागृत करने का प्रयास करते हैं। जिस व्यक्ति ने अपने आपको स्वार्थ के पाश में जकड़ा हुआ है, वह व्यक्ति ऐसे लोगों के झांसे में आ जाता है। समाज और राष्ट्र के अंतर्गत जो लोग उच्च पदों पर विराजमान हैं, वे सामान्य -जन को मूर्ख बनाते हैं और उनके द्वारा लाभान्वित होने की आशा में कुछ लोग मूर्ख बनते हैं। इस विडंबनापूर्ण स्थिति पर, चिंता व्यक्त करते हुए हरिशंकर परसाई ने *तुलसीदास चंदन घिसें* पुस्तक में लिखा है-"अमानवीय करण बढ़ गया है, उच्च-मध्यम वर्ग में, संस्कृति का यह क्षय तेजी से हो रहा है।" (42)

हरिशंकर परसाई के कथन से स्पष्ट है कि समाज का उच्च वर्ग अपने निहित स्वार्थ की सिद्धि के लिए मध्यमवर्ग को उपकरण बनाता है, और मध्यम वर्ग अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति

होते देख उनका यशोगान करता है, उनके भ्रष्ट कृत्यों में सहयोगी बनता है। ऐसा करते हुए उसके मन में यह आशा प्रबल रूप से विद्यमान रहती है कि उनकी छत्रछाया में संभवतः कभी कोई बटेर उसके हाथ लग ही जाए। स्वार्थ सिद्धि की इस प्रक्रिया में वे इस तथ्य को विस्मृत कर देते हैं कि उनकी स्वयंकेन्द्रित मानसिकता, उन्हें मानवीय कर्तव्यों के पथ से विचलित कर रही है। विष्णु नागर संस्कृति के बढ़ते अपकर्ष को देखते हुए, *भारत एक बाजार है* पुस्तक में, संस्कृति के क्षरण के उत्तरदायी लोगों का, घृणा की सीमा तक जाते हुए उपहास करते हैं। भारत की गौरवशाली संस्कृति का उसके वंशजों ने इतना अवमूल्यन किया है कि वे संस्कृति का निर्यात तक कर देते हैं। इस विषय में विष्णु नागर ने सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण दर्शाते हुए लिखा है- "हम इतने 'उदार' हैं कि बमुश्किल दो-तीन प्रतिशत संस्कृति अपने पास रख कर बाकी सारी की सारी निर्यात कर देते हैं।" (163)

संस्कृति का निर्यात करने से यह अभिप्राय है कि अपने पास समृद्ध संस्कृति की विपुल राशि होते हुए भी हम उसका उपयोग नहीं करते, विदेशों में जाकर केवल उसका गुणगान ही करते हैं। विष्णु नागर अधिकांश भारतीयों को सांस्कृतिक मूल्यों से विहीन देखते हुए, एक विदेशी का कथन उद्धृत करते हुए भर्त्सनापूर्ण शब्दों में आगे लिखते हैं- "ऐसा क्यों है कि आपके अपने देश में सिवाय संस्कृति विहीनता के, कुछ नहीं मिलता।" (164) विदेशी व्यक्ति का उपर्युक्त कथन, एक सुसंस्कृत भारतीय का सिर लज्जा से झुकने पर विवश कर देगा। विष्णु नागर के कथन का भाव है कि विदेशों में जाकर भारतीय संस्कृति की दुहाई देने वाले लोगों से, विदेशियों का प्रभावित होना स्वाभाविक है। भारत-भ्रमण के दौरान जब वे भारतीयों के कथन से विपरीत परिदृश्य का अवलोकन करते हैं तो उपर्युक्त कथन कहने को बाध्य हो जाते हैं। बहुत से धर्म-उपदेशक, संस्कृति के संवाहक विदेशों में जाकर भारतीय संस्कृति की समृद्धि का गौरव-गान करते हैं तो सभी भारतीयों का निश्चित रूप से यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने आचरण द्वारा उनके द्वारा कथित वचनों को प्रमाणित करें। अन्यथा, विदेशी पर्यटक भारत आकर जब उनकी कथनी और करनी में अंतर देखेगा तो यही सोचने पर विवश हो जाएगा-ऊंची दुकान फीका पकवान।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात, भारतीय जनता के अंतर्मन में आशा के दीपक प्रज्वलित हुए थे यह सोचते हुए, कि परतंत्र भारत में कुछ लोग अंग्रेजों की कूटनीति द्वारा मूर्ख बनाये जाते रहे, और कुछ स्वार्थी लोग, सोचते-समझते हुए भी मूर्ख बनते रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीयों को पहले जैसा ही परिदृश्य दिखाई दे रहा है, यह स्थिति विडंबनापूर्ण है! इस विषय

को शरद जोशी ने *राग भोपाली* पुस्तक में वर्णित करते हुए लिखा है- "आजादी के इतने साल बाद क्या इस देश की एक सुस्पष्ट सांस्कृतिक नीति नहीं होनी चाहिए?... प्रश्रयवादी नीति के नाम पर भ्रष्टाचार का यह सिलसिला कब तक जारी रहेगा?" (124)

शरद जोशी ने अत्यंत आक्रोशपूर्ण शब्दों में भारतीय जनता के समक्ष यह प्रश्न इसलिए रखा है कि राजनीतिक और सामाजिक सरमाएदारों को, बुलंदियों तक सामान्य नागरिकों द्वारा ही पहुंचाया जाता है, वे अगर चयन-प्रणाली के अंतर्गत पर्याप्त भाव से सजग रहें, तो सकारात्मक परिवर्तन की संभावना हो सकती है और राष्ट्र की एक सुस्पष्ट सांस्कृतिक नीति का निर्माण हो सकता है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष प्रजातांत्रिक देश है, जहां प्रश्रयवादिता के आधार पर अकबर, नवरत्नों का निर्धारण नहीं कर सकते, अर्थात् राजनीतिक पदों पर आसीन हुक्मरान, राष्ट्र की सांस्कृतिक प्रगति के लिए अनुमोदित प्रतिभाओं को चयनित नहीं कर सकते, इसके लिए समग्र पारदर्शिता अपेक्षित है।

'गृह प्रवेश' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने बाबू रामदीन को प्रतीक बनाते हुए, समाज के अंधविश्वासी लोगों को, यह समझाने का प्रयास किया है कि भारतीय दर्शन ग्रंथों में निर्देशित, विचारों के अनुरूप आचरण को दर्शाना ही धर्म है। धर्म के नाम पर कर्मकांडों के जाल में उलझना, अंतर्मन की भटकन के अतिरिक्त कुछ नहीं। *तुलसीदास चंदन घिसें* पुस्तक के अंतर्गत हरिशंकर परसाई द्वारा लिखित कथन से हरीश नवल के विचार की पुष्टि होती है। हरिशंकर परसाई ने लिखा है-"रूढ़ियां संस्कृति नहीं हैं। सारी परंपराओं को पालते जाना भी संस्कृति नहीं है।" (39)

हरिशंकर परसाई के कथन से स्पष्ट है कि यदि हमारी परंपरा में हवन-यज्ञ के दौरान पुत्र का शामिल होना आवश्यक है, तो पुत्र की रुग्णावस्था देखते हुए उस परंपरा का खंडन आवश्यक हो जाता है, क्योंकि जीवन अलभ्य है। मानव जीवन के रक्षण के लिए परंपरा-पालन में यत्किंचित परिवर्तन किया जाना अनुचित सिद्ध नहीं होता। धर्म का स्वरूप कर्मकांडों से पृथक है, इस विषय में स्वामी विवेकानंद के कथन को उद्धृत करते हुए *संस्कृति एक नाम रूप अनेक* पुस्तक में देवेन्द्र स्वरूप ने लिखा है-"पश्चिम के प्राण यदि पाउंड, शिलिंग और पेंस में हैं तो भारत के प्राण उसके अध्यात्म में हैं, उसके धर्म में हैं।" (47) स्वामी विवेकानंद धर्म को किस अर्थ में लेते थे, उस पर प्रकाश डालते हुए देवेन्द्र स्वरूप ने आगे लिखा है- "विवेकानंद जब धर्म

की बात करते हैं तो उनका मतलब पूजा-पाठ या घंटा बजाने जैसे कर्मकांड से बिल्कुल नहीं है, आध्यात्मिक जीवन-मूल्यों से है।" (47)

स्वामी विवेकानंद के कथन के आधार पर, हरीश नवल द्वारा अंधविश्वास पर किए गए व्यंग्य प्रहार की पुष्टि होती है। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के अंतर्गत कतिपय व्यंग्य रचनाओं पर विहंगम दृष्टि डालते हुए, तथा अन्य विचारकों के कथन द्वारा, उसकी पुष्टि करते हुए यह स्पष्ट है कि हरीश नवल अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से, सांस्कृतिक क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में, विसंगतियों के निवारण के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध हैं। विसंगतियों की समग्र रूप से निवृत्ति तो मानव की इच्छाशक्ति पर निर्भर है। इतिहास साक्षी है कि ऋषि वेदव्यास रचित महाभारत के अंतर्गत दुर्योधन, महात्मा विदुर, पितामह भीष्म तथा भगवान श्री कृष्ण के समझाने पर भी अपना हठ त्यागने को राजी नहीं होता, जिसका परिणाम होता है, कौरव वंश का समूल विनाश। इसी प्रकार, हरीश नवल राष्ट्र और समाज में सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के लिए व्यंग्यात्मक-कथन द्वारा सजगता धारण करने के लिए प्रखर रूप से आग्रही दृष्टिगत होते हैं। परंतु यह लक्ष्य तभी फलीभूत होगा, जब समाज के प्रत्येक घटक के अंतर्मन से विसंगतियों की निवृत्ति के प्रति, जागरूकता तथा दृढ़ निश्चयात्मकता का भाव अंतर्निहित होगा।

हरीश नवल कृत, किसी एक पुस्तक में चीन्हें गए सांस्कृतिक मूल्य का क्षरण, उनके द्वारा रचित अन्य अन्य पुस्तकों में भी चिन्हित हुआ है। उदाहरण स्वरूप सदाचार, सांस्कृतिक मूल्य का क्षरण, 'दिवाली राम के नाम से ही मनेगी' व्यंग्य रचना के अंतर्गत रेखांकित किया गया है, यह व्यंग्य रचना, *इक्यावन व्यंग्य रचनाएं* पुस्तक में संकलित है, इसी सांस्कृतिक मूल्य का अवमूल्यन, 'डगर पनघट की' व्यंग्य रचना के अंतर्गत भी दृष्टिगत हुआ है, जोकि *माफिया जिंदाबाद* पुस्तक में संकलित है। लज्जा, सांस्कृतिक मूल्य का ध्वस्तीकरण 'संस्कृति के चार अध्याय' व्यंग्य रचना के अंतर्गत देखने में आया है, जोकि हरीश नवल द्वारा रचित व्यंग्य पुस्तक *बागपत के खरबूजे* में लिखित है। इसी सांस्कृतिक मूल्य का विखंडन 'साड़ी बिच नायिका कि नायिका बिच साड़ी' के अंतर्गत भी चिन्हित हुआ है, जोकि *माफिया जिंदाबाद* पुस्तक में संकलित है। संतुलन, सांस्कृतिक मूल्य *बागपत के खरबूजे* में रचित व्यंग्य रचना 'गृह प्रवेश' के अंतर्गत भी अवलोकित किया गया है, तथा *माफिया जिंदाबाद* के अंतर्गत, 'प्यार का फॉर्मूला' व्यंग्य रचना में भी चिन्हित हुआ है।

हरीश नवल की व्यंग्य रचनाओं के अंतर्गत सुकृत, प्रेरकता, संतुलन, लज्जा, विनय, विनीतता, निष्ठा, सुनीति, समदर्शिता, लोक कल्याण, सत्संगति, नियम, समचित्तता, सज्जनता, विश्वास, अनासक्ति, उद्देश्य, समदर्शिता, विनम्रता, धर्म-निष्ठा, आचार, आत्मबल, विमलता, नैतिकता, प्रार्थना, धर्म, धैर्य, स्थैर्य, सदाशयता, निर्वेद, उद्यम, श्रमशीलता, अध्यवसाय, ध्यान तथा साधना, निर्मलता, आत्मबोध, संतुलन, नैतिकता, शुभ कर्म तथा निर्विकारिता, सांस्कृतिक मूल्यों का विखण्डन चिन्हित हुआ है।

सांस्कृतिक मूल्यों के संदर्भ में, हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य का संक्षिप्त पुनरावलोकन करते हुए, सांस्कृतिक विसंगतियों की निवृत्ति के प्रति, उनकी प्रतिबद्धता सशक्तता के साथ सिद्ध हो जाती है। मनुष्य अपनी चैतन्य शक्ति के द्वारा जब स्वयं, अपने आचरण में विसंगतियों का अवलोकन करता है, तभी उसके परिष्कार के मार्ग पर प्रवृत्त होता है। अपने अशुद्ध आचरण के प्रति, मनुष्य तब सजग होता है, जब वह कबीर के कथन के अनुरूप आत्मावलोकन करता है। रेणु राजवंशी गुप्ता ने *असतो मा सद्गमय* पुस्तक में कबीर के कथन को उद्धृत करते हुए लिखा है-

"बुरा जो देखन मैं चला बुरा ना मिलया कोई।

जो घट देखा आपना, मुझसे बुरा ना कोई॥ (60)

इस दोहे की अंतिम पंक्ति को ध्यातव्य रखता हुआ मनुष्य, अपनी व्यवहारिक विसंगतियों के प्रति जागरूक हो जाता है, तब उसकी प्रवृत्ति विसंगतियों के निवारण की ओर उन्मुख हो जाती है। हरीश नवल के व्यंग्य कथन, मनुष्य जगत को सत्य का दर्पण दिखाते हैं, जिसके द्वारा मनुष्य का गलत आचरण प्रतिबिंबित होता है। यह मनुष्य की प्रवृत्ति पर निर्भर है कि वह दर्पण को देखते हुए आंखें मूंद ले अथवा अपने सम्यक आचरण द्वारा चेहरे पर लगी कालिमा को धो डाले।

षष्ठम् अध्याय :

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में राजनीतिक मूल्य

राष्ट्र एक निश्चित भूखंड, एक अविच्छिन्न संस्कृति तथा निष्ठावान नागरिकों का समुच्चय है। नागरिकों के सुखी एवं समृद्ध जीवन के संचालन तथा राष्ट्र के अनुशासनात्मक प्रबंधन के लिए, एक ऐसी प्रभुसत्तात्मक संस्था अपेक्षित होती है, जो राष्ट्र के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित कर सके। ऐसी संस्था राष्ट्र की राजनीतिक संस्था कहलाती है। राजनीतिक तंत्र द्वारा ऐसे अनुशासनात्मक नियम निर्मित किए जाते हैं, जिनका पालन करना प्रत्येक नागरिक के लिए अपरिहार्य होता है।

राजनीतिक तंत्र, जिन नीतियों के अंतर्गत राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के पथ पर अग्रसर होता है, वह नीति राजनीति कहलाती है। राजनीति, राजनीतिक तंत्र द्वारा निर्देशित होती है, राजनीति द्वारा निर्धारित नियम राष्ट्र के अंतर्गत, सामाजिक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में सुव्यवस्था सुनिश्चित करने में तत्पर रहते हैं। हर नागरिक अपने-अपने स्तर पर, अपने कर्तव्यों के सम्यक निर्वहण के प्रति सचेत रहे, राजनीति इसके प्रति सयत्न रहती है। राजनीति के अंतर्गत, सर्वाधिक महत्व बौद्धिकता का रहता है। नीति युक्त निर्णय लेने के लिए बौद्धिक कौशल अपेक्षित है, इस आधार पर राजनीति का अर्थ बताते हुए आशुतोष पार्थेश्वर ने *राजनीति और नैतिकता* पुस्तक में लिखा है-"राजनीति सर्वथा बुद्धि की वस्तु है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। बौद्धिक गुणों का सर्वथा अभाव राजनीति को पनपने ही नहीं दे सकता।" (156)

आशुतोष पार्थेश्वर के कथन के आलोक में, राष्ट्र की गुणवत्तायुक्त राजनीति की तस्वीर उभरती है। उपर्युक्त कथन के आधार पर राष्ट्र के सर्वोच्च पदाधिकारी, राष्ट्र के नीति नियामक, राष्ट्र के कर्ता-धर्ताओं का बौद्धिकता संपन्न होना अति आवश्यक है। वर्तमान समय में, बौद्धिक गुणों का धारक व्यक्ति राजनीति के क्षेत्र में पदार्पण नहीं कर सकता। बौद्धिक गुणों से संपन्न व्यक्ति राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति के प्रति प्रयासरत रहेगा, व्यक्तिगत उन्नति उसके लिए गौण रहेगी। ऐसे व्यक्ति के जीवन का चरम लक्ष्य राष्ट्रहित होगा। वर्तमान समय में अधिकांश राजनीतिज्ञों का राजनीति में प्रवेश करने का लक्ष्य, सत्ता के उच्च से उच्चतर पद तक पहुंचना होता है। इस विषय में शरद जोशी ने *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "पद पाना राजनीति का परम लक्ष्य है और देश उसका माध्यम है। हम सब माध्यम हैं।" (16)

शरद जोशी के कहने का भाव यह है कि चुनाव में जीत हासिल करना, तत्पश्चात किसी विभाग में मंत्री का पद हथियाने का प्रयास करना वर्तमान राजनीतिज्ञों का राजनीतिक लक्ष्य है। उन्हें चुनाव में विजित कौन करवाता है? जनता। फूलों के हार पहनाकर जनता, नेताओं को बड़े

आदर के साथ सत्ता की कुर्सी सौपती है, यह कहते हुए कि वे कृपया, इस कुर्सी पर विराजमान होकर कुर्सी और देश की शोभा में श्रीवृद्धि करें। जनता का क्या है? वह तो पांच साल हाथ मलते हुए, सत्ता पर आसीन नेताओं के द्वारा राष्ट्र की समृद्धि को दीमक की तरह चाटते हुए देखने के लिए अभिशप्त है। वर्तमान समय में राष्ट्र में व्याप्त राजनीतिक विसंगतियां, व्यंग्य लेखन का सशक्त आधार हैं।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के परिप्रेक्ष्य में गणतंत्र, महत्वाकांक्षा, राष्ट्रीय एकता, दायित्व बोध, सामाजिक अवरोधों को दूर करना, प्रजा प्रेम, मितव्ययिता, युद्धक्षय, सेवा परायणता, रहस्य गोपन, शासकत्व, उपलब्धता समानता जनहित, अखंडता, नेतृत्व प्रजातंत्र वाणी का कौशल, व्यक्ति की गरिमा, उपलब्धता, तत्परता, अपरिग्रह, न्याय, अवसरवादिता, नीतिज्ञता, प्रजातंत्र, धनार्जन, नेतृत्व, तथा गवेषणा राजनीतिक मूल्यों का क्षरण तलाश करना इस अध्याय का उद्देश्य है।

6.1 गणतंत्र, महत्वाकांक्षा, राष्ट्रीय एकता, दायित्व बोध, सामाजिक अवरोधों को दूर करना तथा प्रजा प्रेम। इन राजनीतिक मूल्यों का क्षरण, हरीश नवल कृत व्यंग्य पुस्तक *बागपत के खरबूजे* के अंतर्गत रेखांकित किया गया है।

‘खेलों के खेल, संसदीय खेल’ व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल संसद भवन में नेताओं द्वारा प्रदर्शित प्रतिस्पर्धा की भावना पर व्यंग्य-शर का संधान करते हैं। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा तो गुणात्मक होती है, उसका प्रभाव भी धनात्मक रहता है। संसद में प्रतिस्पर्धा, कब प्रतिद्वन्द्वात्मकता में परिवर्तित हो जाती है, यह दूरदर्शन में संसद की कार्यवाही के दौरान देखा जा सकता है। संसद के भीतर विपक्ष सत्तासीन नेताओं पर, और सत्तासीन नेता विपक्ष पर आग उगलते देखे जा सकते हैं। संसदीय खेल के आयोजन के सुनिश्चित समय के विषय में बताते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "संसदीय टेस्ट मैच प्रायः प्रति पांचवें वर्ष होते हैं, जिनकी रनिंग कमेंट्री सुनने और विवेचना पढ़ने को जनता आतुर रहती है।" (32)

चुनाव के दौरान सामान्य जनता के अंतर्मन में, चुनाव-परिणाम जानने की उत्सुकता रहती है। इस उत्सुकता के परिप्रेक्ष्य में जनता के मन में अपने द्वारा, चयनित नेता के विजित होने की संभावना निहित रहती है। वोटों की गणना के साथ-साथ लोगों के चेहरों पर आशा-निराशा के भाव धूप-छांव की तरह परिवर्तित होते देखे जा सकते हैं। चुनाव परिणाम घोषित होने के पश्चात जिस दल का नेता विजित हो जाता है, उस दल से संबंधित जनता की बांछें खिल

जाती हैं, हारने वाले नेता से संबंधित जनता के चेहरे की हवाइयां उड़ जाती हैं। चयनित नेता, जनता से किए गए वादों को अंतर्मन से भुलाते हुए, सत्ता की सीढ़ियां चढ़ जाता है। परंतु मतदाता अपने मन में आशा के दीपक तब तक जलाए रखता है, जब तक उसकी आशाएं धूल-धूसरित नहीं हो जातीं।

मतदाता, मन ही मन प्रण करता है कि आगामी चुनावों में वह किसी और दल के उम्मीदवार को वोट देगा। वह बेचारा यह भूल जाता है कि जिसके प्रति, वह इतना आशान्वित हो रहा है वह नेता है, मानव नहीं। अगली बार भी नतीजा वही रहता है- 'ढाक के तीन पात'। मुखौटा बदलने से व्यक्ति तो नहीं बदल जाता। हरीश नवल ने संसदीय खेल को भारत में प्रचलित विभिन्न खेलों से जोड़ते हुए व्यंग्य प्रहार किया है। बैडमिंटन के खेल को संसदीय खेल के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "संसदीय खेलों में संपूर्ण कोर्ट पर अधिकार करना, हर दल चाहता है।" (33)

हरीश नवल के कथन का अभिप्राय है कि राष्ट्र में विद्यमान प्रत्येक राजनीतिक दल, इस कोशिश में रहता है कि सत्ता पर उसी के दल का वर्चस्व रहे। यदि वे बहुमत में हैं, तो मंत्रिमंडल में अधिकतर मंत्री उन्हीं के दल के निश्चित तौर पर रहेंगे ही। ऐसी स्थिति में विपक्षी नेता, सत्तासीन दल के प्रत्येक कार्य में त्रुटि निकालने के लिए कमर कसे रखते हैं। हरीश नवल के द्वारा कथित व्यंग्य कथन के आलोक में गणतंत्र तथा महत्वाकांक्षा राजनीतिक मूल्य ध्वस्त होते परिलक्षित होते हैं। गणतंत्र शब्द की सार्थकता तभी सुनिश्चित होती है, जब नेता गण, पक्ष-विपक्ष की संकीर्ण विचारधारा से ऊपर उठकर, समवेत रूप से एक तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। एक नेता के लिए महत्वाकांक्षी होना तभी सार्थक सिद्ध होता है, जब वह अपने अंतर्मन में राष्ट्र को वैश्विक स्तर पर, अधिक से अधिक उन्नत करने की महत्वाकांक्षा पालता है।

हरीश नवल के कथन के आलोक में, यही कटु सत्य उभरता है कि नेता लोगों का ध्यान समग्र रूप से अपनी ही उन्नति पर केंद्रित रहता है। उनके अंतर्मन में हर प्रकार से अपने दल की अथवा व्यक्तिगत लाभ की महत्वाकांक्षा सन्निहित रहती है। कुश्ती के खेल को हरीश नवल ने, शक्ति और दांव का खेल बताया है। संसदीय खेलों को कुश्ती के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "संसदीय खेलों का आधार भी शक्ति और दांव ही है, सभी संसदीय टीमों के खिलाड़ी अपने दांव लगाकर एक-दूसरे को चित्त करना चाहते हैं।" (33-34)

उपर्युक्त कथन के द्वारा राजनीतिक मूल्य राष्ट्रीय एकता का भाव खंडित हुआ है, क्योंकि दूरदर्शन द्वारा संसद की कार्यवाही समग्र विश्व देखता है। नेता लोगों की परस्पर खींचतान, राष्ट्रीय एकता के भाव को गरिमाहीन दर्शाती है। नेताओं की परस्पर कलह को देखते हुए, विदेशी आक्रमणकारी शक्तियां राष्ट्र में अराजकता फैलाने का षड्यंत्र रचने लगती हैं। हरीश नवल की समकालीन व्यंग्यकर्त्री सूर्यबाला, पौराणिक ऋषि सूत जी के मुख से, अपने शिष्यों को आत्मा का ज्ञान देने की बात परिकल्पित करती हैं। सूत जी, कलिकाल में मुख्य रूप से दो प्रकार की आत्माएं वर्णित करते हैं। उनके कथन को कल्पना के आधार पर वर्णित करते हुए *धृतराष्ट्र टाइम्स* पुस्तक में सूर्यबाला ने लिखा है- "पहली उच्च श्रेणी, अर्थात् आला दर्जे की आत्माएं जो हर क्षेत्र की घटी हुई अर्थात् घाट-घाट का पानी पीकर मौज मस्ती में छकी हुई।" (94)

सूर्यबाला ने आत्मा को प्रतीक बनाते हुए, ऐसे मनुष्यों की ओर संकेत किया है जो राष्ट्र अथवा समाज के द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करने का हर गुर जानते हैं। ऐसे लोगों ने प्रत्येक घाट का पानी पी रखा है, अर्थात् वे भली भांति जानते हैं, कि किस व्यक्ति से, किस विधि द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध किया जा सकता है। ऐसे बौद्धिकता संपन्न व्यक्ति नेता लोग ही हो सकते हैं, इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए सूर्यबाला ने आगे लिखा है- "ये आत्माएं महाप्रतापी, महाबलशाली, इंद्रजाली और भयंकर उथल-पुथल मचाने वाली हैं। ये नाना दल, पार्टी, पक्ष, पंथ, कमीशन कमेटी के रूप में, नाना दंगे, नाना फसाद, नाना बंद, नाना हड़ताल, नाना उठापटक करती निर्द्वंद्व विचरण करती हैं।" (94)

सूर्यबाला ने अप्रत्यक्ष रूप से नेताओं की ओर संकेत किया है, क्योंकि उपर्युक्त सभी अहर्ताओं के अधिष्ठाता नेता लोग ही होते हैं। दल, पार्टी और पक्ष, ये शब्द तो स्पष्ट रूप से राजनीतिज्ञों से संबंधित है, हारे हुए नेता भी हाथ पर हाथ रखकर तो बैठे नहीं रह सकते, इसलिए वे किसी भी राजनीतिक दल के निर्देशानुसार राष्ट्र में दंगे, फसाद, हड़ताल और बंद इत्यादि करवाते रहते हैं और इसके बदले में राजनीतिज्ञों से पारितोषिक प्राप्त करते रहते हैं। हरीश नवल कृत व्यंग्य रचना के अंतर्गत, नेता लोग संसद भवन के भीतर ही आत्मनियंत्रण खोकर, यदि धींगामुश्ती करते रहते हैं, तो सार्वजनिक तौर पर दंगे फसाद करवाना उनके लिए कौन बड़ी बात है? उपर्युक्त किस्म के क्रियाकलाप नेताओं के लिए मात्र खेल होते हैं, क्योंकि नेता लोग आज जिसके विरुद्ध आवाज बुलंद करते हैं, कल उन्हीं का गुणगान करते पाए जाते हैं।

धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (आधुनिक मूल्य: भाग 5) में सत्येंद्र शर्मा ने महत्वकांक्षा के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को वर्णित किया है। महत्वकांक्षा के सकारात्मक पक्ष को वर्णित करते हुए उन्होंने लिखा है- "वह महत्वकांक्षा ही थी, जो भगत सिंह और उसके साथियों को प्राणों की बाजी लगाकर देश को आजाद देखने के लिए उत्प्रेरित करती है।" (192)

भगत सिंह के साथ साथ राजगुरु, सुखदेव तथा चंद्रशेखर आजाद के मन में भी, परम पावन भारत-भूमि को विदेशी दासता से मुक्त करवाने की प्रबल महत्वकांक्षा थी। इसी महत्वकांक्षा को अंतर्मन में रखते हुए, नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने साधनहीन होते हुए और परतंत्र राष्ट्र में निवास करते हुए, आजाद हिंद फौज का गठन किया। राष्ट्र अथवा समाज के हित के लिए महत्वकांक्षी होना, महत्वकांक्षा का विधिपरक रूप है। वर्तमान समय में महत्वाकांक्षा के निषेधपरक रूप का प्रसार देखते हुए सत्येंद्र शर्मा ने उसकी तीखी भर्त्सना करते हुए आगे लिखा है- "सार्वजनिक क्षेत्रों में काम करने वाले लोग अपनी अर्थ या अन्य पिपासाओं की पूर्ति में निर्लज्जता की सीमा का अतिक्रमण करते हुए अपने और अपने परिवार के लिए जीते-जी नर्क का संत्रास रचते हैं।" (193)

सत्येंद्र शर्मा के कहने का भाव है, कि यदि व्यक्ति अपनी समग्र ऊर्जा केवल अपने स्वार्थ के लिए ही व्यय कर देगा तो वह अपने आप को प्रकृति निर्मित अन्य जीवों से श्रेष्ठतर कैसे प्रमाणित कर पाएगा? यदि कोई व्यक्ति अपने और अपने परिवार को समग्र रूप से साधन-संपन्न देखना चाहता है, और इसके लिए कैसा भी, अनुचित कार्य करने की दिशा में प्रवृत्त भी हो जाता है, तो यह महत्वकांक्षा का निषेधपरक रूप है।

इतिहास में कैकेयी, रावण और धृतराष्ट्र इत्यादि की महत्वकांक्षा केवल अपने उत्कर्ष तक ही सीमित थी, उसे साकार करने के लिए वे समाज तथा राष्ट्र का अहित करने से भी बाज नहीं आए। कैकेयी के मन में अपने पुत्र भरत को अयोध्या के राज-सिंहासन पर आसीन देखने की महत्वकांक्षा थी, इसके लिए उसने जो कुचक्र रचा उसका परिणाम कितना दुखद रहा! कौशल्या और सुमित्रा सहित उसने स्वयं भी वैधव्य का दुख उठाया और अपने पुत्र की दृष्टि में अपराधी भी सिद्ध हुई। इसी प्रकार रावण के मन में सीता को पत्नी-रूप में पाने की महत्वकांक्षा थी, इस महत्वकांक्षा की पूर्ति के लिए उसने सीता का हरण किया। हनुमान, विभीषण, अंगद,

मंदोदरी, कुंभकर्ण तथा मेघनाद की भी सलाह नहीं मानी। परिणाम स्वरूप, अपने परिवार समेत खेत रहा।

धृतराष्ट्र अपनी महत्वाकांक्षा के अधीन, अपने पुत्र दुर्योधन को हस्तिनापुर के सिंहासन पर विराजमान देखना चाहता था, इसलिए उसने पांडवों द्वारा भेजे गए शांति-प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। महात्मा विदुर, भीष्मपितामह यहां तक कि पत्नी गांधारी के परामर्श पर भी कान न दिया, नतीजा क्या निकला? कौरव वंश का समूल विनाश! सत्येंद्र शर्मा के कथन का भी यही अभिप्राय है कि वर्तमान समय में राजतंत्र, प्रशासनिक तंत्र तथा व्यवसायिक तंत्र, जिसने भी केवल स्वहित साधने की महत्वाकांक्षा ठानी है और उचित-अनुचित को ताक पर रखते हुए अपनी स्वार्थ-सिद्धि की दिशा में कदम बढ़ाया है, उसे अपने जीवन में सच्चा सुख, शांति और संतोष की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि यह कहावत प्रसिद्ध है-‘बोया पेड़ बबूल का, आम कहां से होय’। नेताओं द्वारा अपना और अपने परिवार का हित-चिंतन किए जाना, गणतंत्र और राष्ट्रीय एकता की अवधारणा को छिन्न-भिन्न करता है, क्योंकि गणतंत्र और राष्ट्रीय एकता का भाव राजनीति से संबंधित है, और राजनीति असंदिग्ध रूप से राजनीतिज्ञों से संबंधित है।

‘भाजपा, जपा और अजपा-एक तुलनात्मक अध्ययन’ व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल ने भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के मुख से मुखौटा उतारने के लिए व्यंग्यात्मकता को प्रयुक्त किया है। प्रस्तुत व्यंग्य रचना में वे अष्टछाप के कवि, कुंभनदास और उनके पुत्र चतुर्भुजदास को मुख्य पात्र बनाते हैं। चतुर्भुज दास उनसे अजपा जाप के विषय में जानकारी चाहते हैं। कुंभनदास उसे अजपा जाप के विषय में तो समझा देते हैं, परंतु ‘जपा’ और ‘भाजपा’ के विषय में जानने के लिए वे अपने गांव गोवर्धन से प्रस्थान कर लेते हैं। हरीश नवल जपा और भाजपा के संबोधन चिन्हों से राजनीति संगठनों के विषय में संकेत करते हैं। दक्षिण के एक राजनीतिज्ञ के भ्रष्ट व्यवहार पर व्यंग्य प्रहार करते हुए उन्होंने लिखा है-“दक्षिण में योगेश्वर रामकृष्ण को देख अचंभा हुआ, वे दाढ़ी से तिनके निकाल रहे थे।” (98)

हरीश नवल द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन में वागवैदग्ध्यता के दर्शन होते हैं। प्रस्तुत व्यंग्य कथन में, हरीश नवल ‘चोर की दाढ़ी में तिनका’ मुहावरे का आधा प्रयोग करते हुए वाक्य में चमत्कार की सृष्टि तो करते ही हैं, इसके साथ ही राष्ट्र के कर्ताधर्ता नेताओं की भ्रष्ट करनी को भी वर्णित करते हैं। हरीश नवल द्वारा कहे गए कथन से आभास होता है कि उस नेता के भ्रष्ट व्यवहार की पोल खुल चुकी है, जिसे वे ढकने का निरर्थक प्रयास कर रहे हैं। कोई भी व्यक्ति

हो चाहे नेता हो या अभिनेता, अथवा सामान्य नागरिक हो, वह अपने उसी कृत्य को छुपाने की कोशिश करेगा जो असंगत होगा, जिसके प्रकट होने पर जनता के सम्मुख उसका सर नीचा हो जाने का खतरा होगा। इस कथन के आलोक में राजनीतिक मूल्य दायित्व बोध का हनन परिलक्षित होता है, जिस नेता को अपने द्वारा संपन्न किए गए कार्यों के दायित्व के प्रति संदेह होगा, वही अपनी दाढ़ी में से तिनके ढूँढने का प्रयास करेगा, अर्थात् वह बार-बार अपने द्वारा किए गए कार्यों का तथ्यान्वेषण करता हुआ पाया जाएगा। उसके हाव-भाव, उसके द्वारा बरती जाने वाली अतिरिक्त सतर्कता की पुष्टि करेंगे।

हरीश नवल ने किसी राजनीतिज्ञ की दाढ़ी में तिनका होने की बात कही है, अर्थात् उन्होंने अप्रत्यक्षतः उस नेता के, भ्रष्ट व्यवहार की ओर संकेत किया है। दाढ़ी में तिनका होना, 'चोर की दाढ़ी में तिनका' मुहावरे का एक अंश है। विष्णु नागर ने *राष्ट्रीय नाक* पुस्तक के अंतर्गत, वर्तमान चोरों की बदली हुई परिस्थिति की ओर इंगित करते हुए लिखा है- "वे दिन अब लद चुके जब चोर की दाढ़ी में तिनका होता था। अब तो उसके हाथ में सेल्यूलर फोन होता है। अब तिनके की क्या हैसियत कि चोर की दाढ़ी तक पहुंच सके।" (39)

विष्णु नागर के कथन से स्पष्ट है कि चोर अब कोई 'ऐरा गैरा नल्यू खैरा' चोर नहीं रहा, अब वह प्रतिष्ठित चोर हो गया है। अब वह आलीशान बंगलों में निवास करता है, हवाई जहाज और वातानुकूलित गाड़ियों में घूमता है। अब उसे चुपके से किसी के घर, सेंध लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अब उसे कुर्सी पर बैठे-बैठे ही एक छोटे से हस्ताक्षर द्वारा बड़ी से बड़ी चोरी करने में सिद्धि प्राप्त हो गई है। यही नहीं, उस जैसे शेर के आसपास मंडराने वाले सियारों के भी वारे-न्यारे हो जाते हैं। वर्तमान समय में तो ईमानदार की दाढ़ी में ही तिनका होने की संभावना है, क्योंकि ईमानदारों की संख्या कम है। ईमानदार व्यक्ति, अपने ईमान के बल पर फूला हुआ, सीना तान कर निर्भीक भाव से, समाज में विचरण करता है, परंतु बेईमानों को उसकी ईमानदारी से भय लगने लगता है। वे निरंतर इस ताक में रहते हैं कि कोई उपयुक्त अवसर हाथ लगे, और वे उस ईमानदार की लुटिया डुबो दें। बेईमानों की मानसिकता वर्णित करते हुए विष्णु नागर ने आगे लिखा है- "आप जिस ईमानदार को जब और जहां चाहें, चोर समझकर जेल में बंद कर सकते हैं।" (39)

विष्णु नागर का कथन दर्शाता है कि बेईमानों की भीड़ में ईमानदार व्यक्ति को ही ईमानदारी का दंड भुगतना पड़ता है, क्योंकि चोर तो, 'चोर चोर मौसेरे भाई' के मुहावरे को

सार्थक करता हुआ चोरों का ही पक्ष लेगा। वर्तमान समय में अधिकांश लोग महान चोरों के स्वरूप में ही गठित नजर आते हैं। राजनीतिज्ञों द्वारा बड़े-बड़े घोटाले करना, अभियंताओं द्वारा ईट-पत्थर, तथा सीमेंट-लोहे की चोरी करना, व्यापारियों द्वारा टैक्स चोरी किया जाना, विद्युत अधिकारियों द्वारा बिजली की चोरी करना इत्यादि लगभग सभी क्षेत्रों में चोरी बड़े जोर-शोर से जारी है। उपर्युक्त स्थिति के कारण, विष्णु नागर मुहावरे में यत्किंचित परिवर्तन करने के पक्षधर हैं, इस विषय में उन्होंने आगे लिखा है- "अब चोर की बजाए 'ईमानदार की दाढ़ी में तिनका' जैसा मुहावरा गढ़ा जाना चाहिए।.... चोर को तो तब कहा जाता था चोर, जब ईमानदारी की कोई कद्र थी।" (39)

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से व्यंग्यकार के हृदय की पीड़ा का घनत्व अनुभव किया जा सकता है। विष्णु नागर के कथन का भाव यह है कि पहले मानव समाज में चोरों की संख्या कम थी, कहीं-कहीं कोई अकर्मण्य मनुष्य ही चोरी को जीविका का साधन बनाता था। अब तो घाट-घाट पर चोरी के पंडे-पुजारी ही दिखाई देते हैं। राजतंत्र से लेकर प्रशासनिक तंत्र तक, बड़े-बड़े व्यवसायिक तंत्र से लेकर लघु उद्योगों तक, सभी घात लगाए बैठे रहते हैं कि कब कोई बड़ा हाथ मारने का अवसर मिले और वे लपक कर झपट लें।

कुंभनदास के कथन के माध्यम से एक अन्य नेता के विषय में बताते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है-"वे पदयात्रा करके लौटे थे और पैरों में से कांटे निकालने की कोशिश कर रहे थे, पर वे थे, कि निकल ही नहीं रहे थे।" (98) इस कथन के माध्यम से हरीश नवल, चुनाव से कुछ पहले नेताओं द्वारा किए गए उन ढकोसलों को वर्णित करते हैं, जिनके द्वारा नेता लोग जनता की आंखों का तारा बनने की कोशिश में होते हैं। चुनाव से पहले नेताओं की पदयात्रा का उद्देश्य यह होता है कि पैदल चलते हुए, वे इस सच्चाई को जानने की कोशिश करें कि सामाजिक तौर पर, उस क्षेत्र विशेष की जनता में किस प्रकार का भेदभाव देखा जा रहा है? भेदभाव का कारण पता लगते ही वे लोग जनता के मध्य वैमनस्य की ज्वाला भड़का कर, अपने वोट बैंक को पक्का करने के प्रयास में संलग्न हो जाते हैं। अपने स्वार्थ के लिए वे सामाजिक अवरोधों को दूर करने की बजाए, उन्हें बढ़ावा देते हैं ताकि जनता के मध्य दरार बनी रहे और दोनों पक्षों के लोग उन्हें अपना शुभचिंतक समझते हुए, उनकी पौ-बारह करते रहें। गरीबी हटाने का, धार्मिक स्थलों की पदयात्रा करने का, यहां तक कि लंगर में बर्तन मांजने तक का कार्य नेताओं की कार्यसूची में शामिल रहता है। उन दिनों ये लोग हवाई यात्रा त्याग करके जमीन पर उतर आते हैं और अगले पांच वर्षों के लिए अपनी हवाई यात्राएं सुनिश्चित करने के

प्रयासों में संलग्न हो जाते हैं। कुंभनदास के कथन के माध्यम से हरीश नवल, जिस नेता की पदयात्रा का वर्णन करते हैं, उस नेता के अंतर्मन में भी जनता की निगाहों में ऊंचा उठने का भाव नीहित था, परंतु विपक्ष की दृष्टि में उनका यह कदम एक राजनीतिक चाल थी, इसलिए विपक्ष द्वारा उनके इस कार्य को, राजनीतिक चाल सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया गया। पदयात्रा से वापस आने पर वे नेता, विपक्ष द्वारा उनके विरोध में किए गए प्रयासों को निष्फल सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे थे।

चुनाव जीतने के बाद विजय प्राप्त करने वाला राजनीतिक दल, पूर्व सत्तासीन दल को भ्रष्टाचारी सिद्ध करने के लिए, एड़ी चोटी का जोर लगा देता है, उनके भ्रष्ट कृत्यों की दिल खोलकर भर्त्सना की जाती है। उनके द्वारा इस तथ्य पर पूरा बल दिया जाता है कि यदि पहले ही उनके हाथों में राजतंत्र की बागडोर सौंपी जाती तो आज देश की तस्वीर कुछ और ही होती। सत्ता-सिंहासन पर आरूढ़ होते ही, नेताओं के कार्य की रूपरेखा का वर्णन करते हुए शरद जोशी ने *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "चुनाव जीतने के बाद पहले नौ-दस माह आदर्शवादी भाषण, क्रोध का प्रदर्शन यहां वहां, पिछली कमजोरियों को कोसना।" (83)

शरद जोशी द्वारा कहे गए कथन के आलोक में स्पष्ट है कि नेता लोग चुनाव से पहले भी विपक्ष की जड़े खोदने में लगे रहते हैं, और चुनाव जीतने के बाद भी आरोपों-प्रत्यारोपों का सिलसिला जारी रहता है। सत्ता पर नवीन आसीन दल, अपने वक्तव्यों द्वारा इसी बात पर अड़ा रहता है कि पूर्व सत्तासीन दल द्वारा की गई गलतियों को सुधारना, बड़ा कठिनाई भरा काम है। पिछली भूलों को सुधार कर ही विकास के मार्ग पर अग्रसर हुआ जा सकता है। पांच साल लग जाते हैं उन्हें पिछली भूलें सुधारते-सुधारते। शरद जोशी, जनता के अंतर्मन में सजगता के भाव अंतर्निहित करना चाहते हैं ताकि जनता नेताओं की चिकनी- चुपड़ी बातों में आने से स्वयं को बचा सके और इन चुनावी बगुलों में हंस कहां छिपा है, इसकी पहचान कर सके। राजनीति की बिसात पर सही मोहरों का बिछाया जाना अति अनिवार्य है।

हालांकि विपक्ष द्वारा की गई जिन गलतियों का वे बखान करते हैं, वे पाँच सालों तक भी नहीं सुधारी जातीं, अगले चुनाव से पहले सत्तासीन नेता जनता के समक्ष, पिछली गलतियां न सुधारने के परिप्रेक्ष्य में यह कारण बताते हैं कि विपक्ष द्वारा की गई भूलें सुरसा के मुंह की भांति बहुत बड़ी थीं, अतः उन्हें सुधारने में कुछ वक्त और लगेगा। यदि जनता इस बार भी उन्हें

चयनित करती है, तो वे यकीनन अगले पाँच सालों में उन गलतियों का सुधार करने का आश्वासन देते हैं। नेताओं के पास जनता को देने के लिए केवल आश्वासन होते हैं, वे बेचारे भी तो जनता से, ज्यादा भला क्या मांग लेते हैं? केवल एक वोट ही तो मांगते हैं।

अपनी गौरवशाली परंपरा पर दृष्टिपात करते हुए हमें अत्यंत हर्ष की अनुभूति होती है यह जानकर, कि हमारे इतिहास में कुछ ऐसे महान शासक हुए हैं जिनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य, अपनी प्रजा का हित-चिंतन था। *अग्निशिखा* नाटक के अंतर्गत रामकुमार वर्मा ने सम्राट चंद्रगुप्त के कथन द्वारा, प्रजा के प्रति उनके उच्च स्तरीय दायित्व बोध का वर्णन किया है। चंद्रगुप्त के कथन के माध्यम से रामकुमार वर्मा ने लिखा है- "शासन का मापदंड प्रजा का संतोष और सुख होना चाहिए।" (85) इस कथन द्वारा सम्राट चंद्रगुप्त के प्रजावत्सल शासक होने की पुष्टि होती है। जो शासक प्रजा के सुख को अपनी प्रशासन क्षमता की कसौटी समझता है, वही राष्ट्र का नेतृत्व करने में समर्थ सिद्ध हो सकता है। प्रजा अपने हित-चिंतक शासक के प्रति फिर, चरम सीमा तक विश्वासी हो जाती है। वर्तमान शासकों-प्रशासकों को अपने ही कृत्यों के प्रति विश्वास नहीं है, तभी तो वे अपनी दाढ़ी में से तिनके निकालने का उपक्रम करते दृष्टिगत होते हैं। जो शासक प्रजा के सुख-संतोष को अपने सुख का अग्रदूत समझता हो, उसके अंतर्मन में अपनी दाढ़ी में तिनके होने का संदेह ही नहीं रहता।

'बागपत के खरबूजे' व्यंग्य रचना, पुस्तक की प्रतिनिधि रचना है। इस व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, अष्टछाप के भक्त कवि कुंभनदास और उनके पुत्र चतुर्भुजदास को, व्यंग्य रचना का मुख्य पात्र बनाते हैं। कुम्भनदास, अपने पुत्र चतुर्भुजदास के बार-बार आग्रह करने पर बागपत की ओर प्रस्थान करते हैं। बागपत पहुंचने पर उन्हें दीवारों पर कुछ चित्र, चित्रित नजर आते हैं, जिनमें किसान हाथी पर चढ़े हुए हैं और वे अपने हाथ से, संकेत कर रहे हैं। वास्तव में ये राष्ट्र में होने वाले चुनावों के अंतर्गत, प्रत्याशियों के दलों के चुनाव चिन्ह थे। कुंभनदास बागपत की स्थिति देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं, उन्हें लगता है मानो वे रामराज्य में आ गए हों।

मिठाई, फल और सब्जी की दुकानें सजी हुई थीं, परंतु उन दुकानों पर कोई दुकानदार नहीं था। वास्तव में, यह नेताओं द्वारा प्रायोजित चुनावी हथकंडा था, ताकि उनकी चुनाव-रैली के आसपास भीड़ इकट्ठी हो सके। अधिक से अधिक लोगों को आकर्षित करने के उद्देश्य से उसने खाने-पीने की वस्तुएं मुफ्त में बाँटने की योजना बनाई थी। उन वस्तुओं के वितरण में

कुछ लोग तो अवश्य ही संलग्न रहे होंगे परंतु व्यंग्यकार, कभी-कभी अपनी बातों को प्रभावी बनाने के लिए अतिशयता का भी आश्रय लेता है। बागपत को अयोध्या समझकर, कुंभन दास एक स्थानीय नागरिक से राम के महल का पता पूछते हैं। वर्तमान रामरूपी शासक के विषय में उस नागरिक के कथन को उद्धृत करते हुए, हरीश नवल ने लिखा है- "उनका महल तो राजधानी में है। यहां तो वे लड़ने से पहले एक बार ही आए थे, अब तो वे जीतने पर ही आवेंगे।" (102)

हरीश नवल द्वारा कहा गया कथन राजनीतिक अवसरवादिता की ओर संकेत करता है। हरीश नवल, उपर्युक्त कथन के द्वारा सामान्य जनता को सजगता का पाठ पढ़ाना चाहते हैं, ताकि नेता लोग जनता को हर बार की तरह इस बार भी, बहला-फुसलाकर अपने पक्ष में मतदान करने को राजी न कर लें। नेता लोग जनसाधारण में केवल दो बार निश्चित तौर पर आते हैं, एक बार चुनाव से पहले जनता की झोलियों में आश्वासन डालने, और दूसरी बार चुनाव जीतने के उपरांत उनके प्रति धन्यवाद-ज्ञापन के लिए। इसके पश्चात वे राजधानी में ही निवास करते हैं, क्योंकि चुनाव प्रचार करते-करते वे बेहाल हो जाते हैं और उनकी थकान, लगभग साढ़े चार साल बाद ही उतरती है। सामान्य जनता उनके झूठे आश्वासनों से ही निहाल हो जाती है, यह सोचते हुए कि चलो कोई बात नहीं इस बार आश्वासन ही सही, संभवतः अगली बार नेता लोग अपने आश्वासनों की पूर्ति के विषय में कम से कम विचार करने हेतु ही तैयार हो जाएं।

राजनीतिज्ञों के विषय में हरीश नवल द्वारा कहे गए, व्यंग्यात्मक कथन के द्वारा प्रजा-प्रेम और जनहित, राजनीतिक मूल्य ध्वस्त होते दृष्टिगत होते हैं। राजनीतिज्ञों द्वारा जनता के समक्ष केवल अपने स्वार्थ हेतु उपस्थित होना यह दर्शाता है कि वास्तव में उनके हृदय में जनता के प्रति न तो कोई प्रेम की भावना है और न ही वे प्रजा हितार्थ कुछ करना चाहते हैं। नेता लोग सामान्य जनता से केवल वोट की अपेक्षा रखते हैं। वोटों की खेती से चुनावी फसल काटकर वे नौ दो ग्यारह हो जाते हैं और जनता माथा पीटती रह जाती है। नेताओं के द्वारा वोटों की चाहत और फिर पाँच साल का अज्ञातवास दर्शाने की समग्र प्रक्रिया को शरद जोशी ने *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक के अंतर्गत वर्णित किया है। मतदान के पश्चात सामान्य जनता की मानसिकता वर्णित करते हुए शरद जोशी ने लिखा है- "वोट एक तीर है जो एक बार छूटने के बाद पाँच साल से पहले लौटकर नहीं आता। एक चूक है जो दुरुस्त नहीं होती।" (100)

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से शरद जोशी भारतीय जनता की सीमाहीन विवशता को देखकर व्यथित होते हैं। सामान्य तौर पर यदि व्यक्ति से कोई भूल-चूक हो जाती है तो वह उसे यथाशीघ्र सुधारने का प्रयास करता है, परंतु गलत प्रत्याशी के पक्ष में मतदान करने के पश्चात, व्यक्ति के पास हाथ मलने के अतिरिक्त और कोई चारा शेष नहीं रहता, क्योंकि मतदान का कार्य तो अगले पांच वर्ष बाद ही संपन्न होना निश्चित है। नागरिक हर बार वोट देता है, हर बात पछताता हुआ पुनः अपने स्थान पर लौटता है, दोबारा पछताने के लिए। हरीश नवल रचित व्यंग्य रचना के अंतर्गत, नेताओं की स्वार्थी वृत्ति पर प्रकाश डाला गया है कि वे चुनाव के आस-पास ही साधारण जनता के मध्य विचरण करते हैं। स्वार्थी मनुष्य के विषय में महेश शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक *चाणक्य नीति* में चाणक्य के कथन को उद्धृत करते हुए महेश शर्मा ने लिखा है-

"यत्रोदकं तत्र वसन्ति हंसः तथैव शुष्कं परिवर्जयन्ति।

न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं पुनस्त्यजन्ते पुनराश्रयन्ते।।" (67)

चाणक्य के कथन का भाव यह है कि जिस प्रकार हंस, जहां जल होता है वहां निवास करते हैं और जल के सूख जाने के पश्चात वहां से अन्यत्र कहीं चले जाते हैं, उसी प्रकार स्वार्थी मनुष्य स्वार्थ सिद्ध होने तक आश्रयदाता के साथ जुड़ा रहता है, स्वार्थ सिद्ध हो जाने के उपरांत वह उसके प्रति उदासीन हो जाता है। परन्तु मानव को हंस की भान्ति बार-बार आने-जाने वाला नहीं होना चाहिए।

हरीश नवल ने भी उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत, नेताओं के स्वार्थ-युक्त व्यवहार पर प्रकाश डाला है। वे लोग चुनाव से पहले सामान्य जनता के बीच जाते हैं, चुनाव जीतने के बाद वे जनता के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझते हैं, अतः पुष्पहारों से लदकर, चाटूकारों की भीड़ में दोबारा प्रकट होते हैं। इसके पश्चात वे पांच सालों के लिए अदृश्य हो जाते हैं। उनकी तेजस्विता तो ईद के चांद से भी अधिक है, क्योंकि ईद का चांद तो फिर भी वर्ष में एक बार दर्शन दे देता है, परंतु नेता रूपी ईद का चांद तो पाँच वर्षों के पश्चात ही प्रकट होता है।

मनुष्य की प्रवृत्ति में 'स्वार्थ' तत्व की प्रबलता इस सच्चाई की संकेतक है कि मानव के चरित्र से नैतिकता का भाव क्षीणतर होता जा रहा है। नैतिकता के हनन का प्रभाव समकालीन

राजनीति पर पड़ना स्वाभाविक है। इस विषय में *राजनीति और नैतिकता* पुस्तक के अंतर्गत आशुतोष पार्थश्वर ने लिखा है- "मानव चरित्र के पतन के ही फलस्वरूप राजनीति अपने दिव्य गुणों से रहित हो गई।" (154)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर की रीढ़ की हड्डी कमजोर पड़ जाने से समग्र शरीर का ढांचा बिगड़ जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का चारित्रिक पतन, उसके नैसर्गिक गुणों की आभा को क्षीण करता है। भारत के इतिहास की ओर नजर डालने से, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, सम्राट अशोक, विक्रमादित्य तथा गुप्तकालीन शासकों के प्रजा-हितकारी रूप दृष्टिगत होते हैं, जो भारतीय परंपरा के समृद्ध और गौरवशाली स्वरूप की पुष्टि करते हैं। वे शासक जनता के द्वारा केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि ही नहीं करते थे, अपितु उनके सुख-दुख का भी पूरा ध्यान रखते थे, अर्थात् शासन के द्वारा प्रजा से केवल कर-वसूली नहीं की जाती थी, उनकी खुशहाली और सुरक्षा को भी सुनिश्चित करने के भरपूर प्रयास किए जाते थे। गुप्त काल को इसीलिए भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग कहा जाता है।

भगवतशरण उपाध्याय ने गुप्त काल के उद्भव के सम्बन्ध में *गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "एक असाधारण स्वर्णिम प्रभात, सत्य ही स्वर्ण युग का उदय।" (51) भगवतशरण उपाध्याय ने गुप्तकालीन शासन के सुप्रबंध के विषय में आगे लिखा है- "कहा जा सकता है कि अपेक्षाकृत और युगों से सर्वथा भिन्न, गुप्त युग में सुख-समृद्धि का विकास हुआ।" (52) भगवत शरण उपाध्याय द्वारा कहे गए कथन से स्पष्ट है कि राष्ट्र के अंतर्गत, सुख और समृद्धि का विकास प्रशासन के कुशल नेतृत्व के द्वारा ही संभव हुआ होगा। गुप्त काल में प्रजा, अन्य युगों की तुलना में अपेक्षाकृत, अधिक सुखी और समृद्ध जीवन बिताती थी। प्रजा का सुखी जीवन, गुप्त-शासकों के प्रजा-वत्सल स्वरूप को प्रमाणित करता है।

6.2 मितव्ययिता, युद्धक्षय, सेवा परायणता, रहस्य गोपन, शासकत्व, उपलब्धता तथा समानता। इन राजनीतिक मूल्यों का विखंडन, हरीश नवल कृत व्यंग्य पुस्तक *दिल्ली चढ़ी पहाड़* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

'चलो, चलें लाल किला मैदान' व्यंग्य रचना के माध्यम से, हरीश नवल ने प्रतिवर्ष पन्द्रह अगस्त पर दिल्ली के लाल किला मैदान में, भारत के स्वतंत्रता दिवस पर आयोजित कार्यक्रम का वर्णन किया है। यह वह स्थान है, जहां वर्ष में एक बार नेता लोग सम्मिलित रूप से जनता

के समक्ष प्रकट होते हैं। उनका यह आगमन सर्वथा निष्प्रयोजन नहीं होता, यहां पहुंच कर वे जनता के सामने राष्ट्र भक्त होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं और आगामी चुनावों में अपने आपको जनता द्वारा चयनित किए जाने की भूमिका तैयार करते हैं। हरीश नवल, उनके इस व्यवहार को वोटों की भीख मांगना मानते हैं। लाल किला मैदान में राष्ट्र का निर्धन वर्ग सारे साल नोटों की भीख मांगता है और नेता लोग लाल किला मैदान में, वर्ष में एक बार आकर अप्रत्यक्ष रूप से वोटों की भीख मांगते हैं। भिखारियों की निर्धनता के परिप्रेक्ष्य में जो कारण है, उसे वर्णित करते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "फोटो दोनों की खिंचती हैं, एक से पता चलता है कि कितनी गरीबी है, दूसरी से ज्ञात हो जाता है कि किसकी वजह से गरीबी है।" (12)

हरीश नवल का यह कथन दर्शाता है कि राष्ट्र की गरीबी का मुख्य कारण नेताओं की धनलिप्सा है। एक व्यक्ति, जो सत्तासीन होने से पहले सामान्य नागरिक की भांति जीवन बिताता था, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के चिंतन में, जिसके गालों की हड्डियां उभरी रहती थीं, पेट आंतों के बीच धंसा रहता था, राजनीति की कुर्सी मिलते ही उस व्यक्ति का समग्र रूप से कायाकल्प कैसे हो जाता है? यह बताने की आवश्यकता नहीं। विदेशी फल, सूखे मेवे खा-खाकर उसके गाल फूलकर, कश्मीरी सेब सदृश्य हो जाते हैं, और पेट अपना नवीन नामकरण करता हुआ भारी-भरकम तोंद कहलाने लगता है। कुछ इने-गिने लोग, जब राष्ट्र के संसाधनों को अपने कब्जे में ले लेंगे, राष्ट्र की संपदा से अपने घर भर लेंगे तो अन्य देशवासियों के लिए उन संसाधनों का अभाव स्वाभाविक रूप से हो जाएगा।

हरीश नवल द्वारा कथित व्यंग्य पंक्ति से मितव्ययता, धनार्जन तथा अपरिग्रह राजनीतिक मूल्य क्षरित हुए हैं। राजनेता अपने जीवन यापन के लिए, मितव्ययिता नहीं करते, अपितु राष्ट्र के धन तथा प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर दोहन करते हैं। राष्ट्र की समृद्धि से अपने घर, अपनी तिजोरियां, यहां तक कि घर की दीवारें भी सोने चांदी से भर देते हैं, जिससे अपरिग्रह की भावना का उनके हृदय में लेश मात्र भी वास नहीं हो सकता। अति संपन्न और अति विपन्न नागरिकों के बीच मध्यमवर्गीय जनता की क्या स्थिति होती है, लाल किले को साक्षी बनाकर हरीश नवल ने आगे लिखा है- "इन नोटों और वोटों की भिक्षावृत्ति के बीच तेरे दामन पर खड़ा बेचारा निरीह मतदाता विगत पचास वर्षों से, तीन बार जोर से जय हिंद बोलता है और अंटी खोलता है-वोट नेता को, नोट भिखारी को दे देता है।" (12)

हरीश नवल, भारतीय नागरिक की विडंबनापूर्ण विवशता की ओर संकेत करते हैं। भिखारी को नोट देने की परिप्रेक्ष्य में, सामान्य व्यक्ति के अंतर्मन में स्थित करुणा तथा पर-दुख कातरता की भावना निहित रहती है। सामान्य व्यक्ति सोचता है कि वह गरीब भिखारी की गरीबी को समूल नष्ट तो नहीं कर सकता, परंतु यदि उसे एक वक्त का भरपेट भोजन ही दे सके तो कुछ सीमा तक तो उसका मनुष्यत्व सार्थक हो सकेगा। विडंबना तो यह है कि जो लोग निर्धनता दूर करने में सक्षम हैं, उनकी स्वयं की निर्धनता इतनी विस्तृत है कि उसका फैलाव उनके घर की तिजोरियों से लेकर, विदेशी बैंक तक फैला है। पहले वे अपनी गरीबी दूर करेंगे, तभी तो दूसरों की गरीबी दूर करने के विषय में सोच सकेंगे।

नेता लोग, केवल अर्थ-संग्रह करते हैं, यह सत्य नहीं है, वे लोग मत-संग्रह भी करते हैं। वास्तव में मतों का अंबार ही उनका वास्तविक अर्थ-कोष होता है। धुआंधार मतों की प्राप्ति ही आगे चलकर उनके मुद्रा-कोष की अभिवृद्धि करती है। इसलिए चुनाव से कुछ समय पूर्व वे मत-संग्रह की रणनीति निर्मित करने की दिशा में विचार तंद्रित हो जाते हैं। उनका गांव-गांव, गली-गली घूमना, उनकी चुनावी रूपरेखा का प्रथम चरण होता है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए *राग भोपाली* पुस्तक के अंतर्गत शरद जोशी ने लिखा है- "वोटर उनकी अचल संपत्ति हैं... वे अपनी अचल संपदा का मूल्यांकन करने आए हैं। वे देखना चाहते हैं कि उनके वोटर उतने ही मूर्ख हैं कि नहीं, जैसे पहले थे।" (234) शरद जोशी ने स्पष्ट किया है कि नेता लोग इस शाश्वत सत्य से भली भांति परिचित हैं कि वोट रूपी संपदा के निवेश द्वारा ही वे चांदी के खनखनाते सिक्के प्राप्त कर सकते हैं। वोटों की ईंटों की बनी हुई, सुदृढ़ नींव ही धन, यश और प्रसिद्धि के आलीशान भवन के निर्माण को सुनिश्चित करती है।

शरद जोशी ने उपर्युक्त कथन के माध्यम से भारतीय जनता को आगाह भी किया है कि वह अपने वोट का मूल्य पहचाने। किसी के आग्रह करने पर, किसी के द्वारा बहकाए जाने पर, किसी के द्वारा भविष्य के सब्जबाग दिखाए जाने पर भी भ्रमित न हो। मूर्खता को त्यागते हुए, सजगता का भाव धारण करते हुए वह, योग्य प्रत्याशी के पक्ष में ही मतदान करे, ताकि नेताओं को भी यह आभास हो जाए कि जनता को बार-बार दिग्भ्रमित नहीं किया जा सकता। दिल्ली में स्थित लाल किला राष्ट्र की ऐतिहासिक स्थापत्य कला का जीवंत प्रतीक है। उसने स्थानीय शासकों के अतिरिक्त, विदेशी शासकों जैसे मुगल, पठान, अफगान तथा ब्रिटिश साम्राज्य का उत्थान तथा पतन देखा है। लाल किला, राष्ट्र के ऐतिहासिक समकालीन राजनीतिक परिदृश्य

का साक्षी है। लाल किले के प्रत्यक्षदर्शी गवाह होने के विषय में हरीश नवल ने आगे लिखा है- "वतन के लिए मरते और वतन को चापलूसी से मारते देखा है इस मैदान ने।" (13)

हरीश नवल अपने पूर्वजों की उत्कृष्ट राष्ट्रभक्ति पर भाव विभोर होते हैं, परंतु साथ ही वर्तमान परिदृश्य में चाटुकारिता के द्वारा राजनीतिक मूल्यों के अपकर्ष की ओर भी इंगित करते हुए दुखी भी होते हैं। राजनीतिक दल, एक जनप्रिय व्यक्ति की क्षेत्रीय प्रसिद्धि का मूल्यांकन करते हुए, चुनाव के दौरान उसे टिकट दे देता है। उस व्यक्ति को उक्त राजनीतिक दल के चाटुकार विभिन्न प्रचार माध्यमों द्वारा, चुनाव विजित करवाने का भागीरथ प्रयत्न करते हैं। प्रयत्न सफल हो जाते हैं; प्रत्याशी जीत जाता है; सिंहासनारूढ़ हो जाता है। जिन लोगों ने उसकी जीत सुनिश्चित करने के प्रयास में, एड़ी चोटी का जोर लगाया है, वे उसके द्वारा अपने अनेकानेक स्वार्थ सिद्ध करने की ऐसी व्यूह-रचना करते हैं, कि प्रत्याशी चाहते हुए भी उस व्यूह का भेदन नहीं कर पाता। करेगा कैसे? इन्हीं चाटुकारों के अदम्य सहयोग के फलस्वरूप उस की पांचों उंगलियां घी में है, उस घी के दो-चार छींटों पर उन चाटुकारों का भी थोड़ा-बहुत अधिकार तो बनता ही है।

हरीश नवल द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन के आलोक में समानता तथा निष्पक्षता राजनीतिक मूल्यों के क्षरण की पुष्टि होती है। अपने इर्द-गर्द मंडराते चाटुकारों, सगे संबंधियों को अपने सत्ता-सुख का भागीदार बनाना नेताओं के पक्षपाती तथा असमानता के पक्षधर होने का प्रमाण है। उनकी दृष्टि में सामान्य जनता, तथा उनके परिचितों के मध्य जमीन आसमान का अंतर है। इसीलिए वे 'अंधा बांटे रेवड़ी फिर फिर अपनों को दे 'मुहावरे को सार्थक करते रहते हैं।

समग्र राजनीतिक तंत्र, इसी प्रकार स्वार्थ के जटिल ताने-बाने में उलझा रहता है। चुनाव जीतने के बाद वतन के प्रति निष्ठा दर्शाते हुए, विजित प्रत्याशियों द्वारा जो शपथ-पत्र बांचा जाता है, उस पर पांच वर्षों के लिए धूल डाल दी जाती है। नेता लोग, चाटुकारों की प्रतिभा का आकलन करने के बाद ही उसे चाटुकार के रूप में मनोनीत करते हैं। चाटुकार बनना कोई सरल कार्य नहीं है, इस विषय में हरीश नवल के पूर्ववर्ती व्यंग्यकार शरद जोशी ने *वोट दरिया में डाल* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "चमचागिरी तो मेरिट की लड़ाई है, जिसमें ज्यादा दम होगा, वह टिकेगा। चमचे बनने के लिए प्रतिभा चाहिए।" (92)

शरद जोशी के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि चाटुकारिता का क्षेत्र, अत्यंत दुर्गम है। इस क्षेत्र में भी कड़ी प्रतिस्पर्धा चलती है। चाटुकार को हर समय अपने नेता का मुख जोहना पड़ता है। नेता का मिजाज देखकर अपनी बात कहनी पड़ती है। कभी-कभी भूलवश उसका साथी चमचा, नेताजी के मूड को भांप नहीं पाता, उस वक्त कुशल चाटुकार प्रसंग वक्रता का आश्रय ले, एक तीर से दो शिकार कर लेता है। एक तो वह अपने साथी को नेता का कोपभाजन बनने से बचा लेता है दूसरे, स्वयं भी नेता की नजरों में विश्वसनीयता का एक और सोपान तय कर लेता है। चाटुकार को राजनीति से जोड़ते हुए शरद जोशी ने आगे लिखा है- "इस देश में राजनीति क्या है? चमचों के विराट समूह पर अपने प्रभाव की जांच करते रहना ही तो राजनीति है।" (93)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि राजनीतिज्ञ लोग समय-समय पर चमचों पर अपने प्रभाव का मूल्यांकन करते रहते हैं। उन्हें भय लगा रहता है कि यदि उन पर उनकी नेतागिरी का प्रभाव कम होने लगेगा तो आगामी चुनावों की रूपरेखा पर कुठाराघात होगा। राजनीतिज्ञ रूपी सेनानायक के लिए चमचे एक ऐसी विश्वस्त सेना है, जो चुनाव रूपी समरांगण में उनके पक्ष में युद्ध करते हैं। भारतीय परंपरा में भी मतदान द्वारा यदि नेता चयनित किए जाते, तो चुनाव से पहले उसका स्वरूप क्या होता? इस प्रक्रिया को परिकल्पित करते हुए, सूर्यबाला ने *देश सेवा के अखाड़े में* पुस्तक के अंतर्गत मर्यादा पुरुषोत्तम राम के विषय में लिखा है- "जो मिला उसी से हुचक कर गले मिल गए। अब कहने को क्या, और सुनने को क्या, वोटर निहाल हो गए। राम के साथ दूसरी बात यह भी अच्छी थी कि इनका कोई बचत खाते वगैरह का कोई घपला न था-न अपने नाम से, न भाई भतीजों के नाम से।" (110)

सूर्यबाला ने व्यंग्यात्मकता का निर्वहण करते हुए भी भारत के इतिहास के अंतर्गत, राम के दृष्टांत के माध्यम से, भारतीय शासकों की उज्ज्वल और निष्कलंक छवि को अंकित किया है। राम का प्रजाजनों से गले मिलना, उनके प्रजावत्सल स्वरूप को दर्शाता है। आर्थिक दृष्टि से किसी घोटाले में लिप्त न होना, उनके निस्वार्थ और निर्लोभी प्रवृत्ति को प्रमाणित करता है। अंतिम पंक्ति को सूर्य वाला ने वर्तमान परिदृश्य के साथ संश्लिष्ट किया है। वर्तमान समय में नेता लोगों के नाम पर तो अथाह चल-अचल संपत्ति होती ही है, उनके भाई-भतीजे भी उनकी नेतागिरी की बहती गंगा में हाथ तो क्या, अपना पूरे का पूरा बदन तक धो डालते हैं।

'दिल्ली में डब्ल्यूडब्ल्यूएफ उर्फ आना जेल वाले दारा सिंह का'व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने विभिन्न पहलवानों के दंगल के विषय में अधिक बताया है, परन्तु व्यंग्य रचना के अंत में हरीश नवल, कुश्ती की लड़ाई को राजनीतिज्ञों की लड़ाई से संबद्ध करते हुए, व्यंग्यात्मक वक्रता समाविष्ट कर देते हैं। दारासिंह के विषय में यह प्रसिद्ध था कि असली दारा सिंह तो जेल में नजरबंद है, कुश्ती लड़ने वाला दारा सिंह नकली है। जेल वाले दारा सिंह की जेल से बाहर आने पर, भारतीय नेताओं के व्यवहार को देखते हुए जो प्रतिक्रिया होती है, उसके विषय में हरीश नवल ने लिखा है- "अपने नेताओं को फ्री स्टाइल लड़ता देख वह भागा नहीं, डरा नहीं, पर रोने लगा।" (58)

हरीश नवल, दारा सिंह के कथन के माध्यम से संसद भवन में नेताओं की धींगामुश्ती का उल्लेख करते हैं। वहां नेताओं का एकत्रीकरण किसी समस्या के समाधान को नहीं दर्शाता, केवल नेताओं द्वारा एक दूसरे की बात काटते हुए तथ्यों को उलझाए रखने की कोशिश ही दृष्टिगत होती है। नेता लोग इसी में अपनी शक्ति और नेतृत्व को सार्थक समझते हैं। जेल वाला दारा सिंह, नेताओं को लड़ते हुए देखकर इसलिए रोने लगा कि नेताओं ने तो उसकी रोजी-रोटी भी छीन ली। दंगल में प्रतिभागिता करना तो पहलवानों का काम था, नेताओं द्वारा उसे भी हथिया लिया गया, अब पहलवानों के पास करने को शेष बचा ही क्या? हरीश नवल ने जेल वाले दारा सिंह के शब्दों को उद्धृत करते हुए आगे लिखा है-"हम तो नकली लड़कर लाखों का मनोरंजन करते थे, और ये असल में ही लड़ कर कितना नुकसान कर रहे हैं-नहीं जानते।" (58)

जेल वाले दारासिंह ने उपर्युक्त कथन भारतीय नेताओं की ओर इंगित करते हुए कहा। संसद भवन में नेताओं द्वारा दर्शाया गया झगड़ालू व्यवहार उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है। नेता लोग, परस्पर लड़ते-झगड़ते हुए सदन की कार्यवाही में बाधा डालते हैं। सत्तासीन दल का प्रवक्ता जो विषय रखता है, उसकी बात आरंभ होते ही विपक्ष के एक नहीं अनेक प्रवक्ता, धाराप्रवाह बोलने लगते हैं। अनेक लोगों के वाग्जाल में मुख्य वक्ता उलझकर रह जाता है। उसका एक भी शब्द दूरदर्शन देखती हुई जनता के पल्ले नहीं पड़ता। इस प्रकार की अधीरता को दर्शाने वाले नेता, राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाने के प्रति धैर्यपूर्वक, क्रियाशील नहीं हो सकते।

जो लोग एक व्यक्ति की बात सुनने के लिए तैयार नहीं, वे राष्ट्र के बृहद जनसमूह की बात पर कान कैसे दे पाएंगे? पक्ष-विपक्ष के आरोप-प्रत्यारोप कब अपशब्द भरे कथन में परिवर्तित हो जाते हैं, कब नेता लोग एक-दूसरे पर लातों-घुंसी की बरसात करने लगते हैं, कुछ पता नहीं चलता। उनकी यह क्रियात्मकता, वैश्विक स्तर पर राष्ट्र की राजनीतिक गरिमा को खंडित करती है। नेता लोग अपनी लड़ाई-झगड़े के अंतर्गत, दूरदर्शिता का परिचय नहीं देते और राष्ट्र की छवि धूमिल होने के दुष्परिणाम की ओर से बेखबर बने रहते हैं। चुनाव के दौरान भी नेता लोगों द्वारा एक दूसरे पर, कीचड़ उछालने का कार्य अनवरत चलता रहता है। एक बात सत्तासीन दल द्वारा, पूर्व सत्ता पर आसीन दल के विषय में सदैव कही जाती है कि पूर्व दल ने प्रदेश का खजाना खाली कर दिया। आज तक कोई ऐसा राजनीतिक दल सुनने या देखने को नहीं मिला, जिसने प्रदेश के खजाने में बढ़ोतरी की हो।

जेल वाले दारा सिंह के द्वारा जो कथन कहा गया, उस कथन को उद्धृत करते हुए हरीश नवल ने जनसाधारण को सजगता धारण करने के लिए प्रेरित किया है। जब तक जनता अपने छोटे-छोटे स्वार्थों को ताक पर रखते हुए एक तार्किक चुनाव-प्रणाली का गठन करने के लिए प्रतिबद्ध नहीं होगी, तब तक आपस में लड़ने-भिड़ने-झगड़ने वाले उपर्युक्त प्रकार के नेता राष्ट्र की छाती पर मूंग दलते रहेंगे। सत्ता-सुख भोगने के लिए परस्पर छीना-झपटी करते ये नेता- गण, राष्ट्र के भीतर पनपने वाले गृह-कलह सुलझाने में कैसे सफल होंगे? बाहरी आक्रमणों से राष्ट्र को कैसे सुरक्षित रख पाएंगे? नेताओं की परस्पर लड़ाई को वर्णित करते हुए हरिशंकर परसाई ने *माटी कहे कुम्हार से* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "एक दूसरे को लात-घुंसा मारते हैं, एक दूसरे की धोती खींचते हैं, परस्पर गाली देते हैं।" (179)

उपर्युक्त कथन द्वारा हरिशंकर परसाई, राजनीतिक मूल्यों का अपकर्ष दर्शाते हैं। राजनीतिक पदों के अधिष्ठाताओं पर ही राजनीतिक मूल्यों के निर्वहण का गुरुतर दायित्व होता है। यदि वे ही परस्पर लड़ते-झगड़ते रहेंगे, एक दूसरे की इज्जत उछालने पर तुल जायेंगे, तो राष्ट्रीयता के सम्मान की रक्षा कैसे होगी? हरीश नवल रचित व्यंग्य रचना के अंतर्गत, राजनीतिक मूल्य युद्धक्षय तथा नेतृत्व का हनन दर्शाया गया है। धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (आधुनिक मूल्य: भाग 5) में सत्येंद्र शर्मा ने युद्धक्षय का अर्थ बताते हुए लिखा है- "युद्ध का शमन, लड़ाई का अंत, समर का न होना, युद्ध की समाप्ति।" (202)

जो नेता लोग एक दूसरे को नीचा दिखाने के उद्देश्य से, अपशब्दों से लेकर गालियों की बौछार तक, जूते-चप्पल से लेकर लात-घूसों तक मारपीट करते हैं, वे राष्ट्र के अंतर्गत अमन-शांति की स्थापना कैसे कर सकते हैं? जो नेता इतनी शीघ्र अपना आपा खोकर, एक दूसरे को चारों खाने चित करने पर आमादा दिखाई देते हैं, वे राष्ट्र में परस्पर एकता, भाईचारा और सहयोग की भावना का प्रसार कैसे कर सकेंगे? नेताओं का परस्पर लड़ना -झगड़ना राजनीतिक मूल्य 'नेतृत्व' के क्षरण का संकेतक है। राष्ट्र का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति को कई बार उग्र स्थितियों में भी, सब्र का घूंट पीना पड़ता है। जो नेता यत्किंचित भी धैर्य का अवलंबन नहीं कर पाते और दूसरे की बात अनसुनी करते हुए तुरंत खरी-खोटी सुनाना प्रारंभ कर देते हैं, उन लोगों में नेतृत्व के गुण किस प्रकार अंतर्निहित माने जा सकते हैं?

भारत में ऐसे-ऐसे शांति प्रिय नेता रहे हैं, जिन्होंने परस्पर लड़ना तो दूर, समग्र विश्व को शांति का पाठ पढ़ाया। भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री का नेतृत्व इस तथ्य का जीवंत प्रमाण है। उन्होंने ताशकंद समझौते के अंतर्गत विश्व के सामने, भारत की सहिष्णुता, शान्तिप्रियता तथा वैश्विक सद्भावना का गरिमामंडित उदाहरण रखा। सत्येंद्र शर्मा ने यजुर्वेद के कथन को उद्धृत करते हुए आगे लिखा है- "मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे॥" (205)

ऊपर लिखित मन्त्र में मनुष्य द्वारा ईश्वर से ऐसा सामर्थ्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई है कि हे ईश्वर! मनुष्य-मात्र को इतना सामर्थ्य दीजिए कि वह प्रत्येक प्राणी को मैत्री-भाव से देखे। व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल द्वारा जेल वाले दारासिंह के मुख से वर्णित, नेताओं का व्यवहार परस्पर ही मैत्रीपूर्ण नहीं है, तो वे संसार के प्रत्येक प्राणी को मित्रवत खाक देखेंगे! यदि ऐसा उदार दृष्टिकोण राष्ट्र के नेताओं के अंतर्मन में अवस्थित हो जाए, तो राजनीतिक क्षेत्र से विसंगतियों का निवारण हो जाए। प्रत्येक प्राणी को मित्र मानने की भावना, जब राष्ट्र के कर्णधारों के अंतर्मन में स्थायी भाव ग्रहण कर लेगी तो वे केवल अपना ही हित साधने के विषय में नहीं सोचेंगे अपितु, दूसरों के हितचिंतन में भी संलग्न रहेंगे। उस समय उनकी दृष्टि में प्राणी मात्र के लिए मित्रता का भाव होगा, और वे मैत्री भाव के कारण अन्य लोगों की हितैषिता के प्रति भी तत्परता के साथ क्रियाशील होंगे।

'जै जै दिल्ली की जे० जे० कॉलोनियां' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, दिल्ली के नेताओं तथा दिल्ली की झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले नागरिकों के मध्य सांठगांठ को दर्शाते हैं

। रोजी-रोटी की चिंता अपने अंतर्मन में लिए, अधिकतर निर्धन वर्ग गांवों से दिल्ली की ओर ही पदार्पण करता है, क्योंकि दिल्ली में उसे रोजगार की उपलब्धता के अधिक अवसर प्राप्त होने की संभावना रहती है। ऐसे विस्थापित ग्रामीणों को देख, दिल्ली के नेताओं की लार टपकने लगती है, उन्हें अपना वोट-बैंक और भी अधिक पुख्ता होता नजर आने लगता है।

दिल्ली में आने के बाद ग्रामीणों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या होती है, आवास की। नेता लोगों के चाटूकारों का जाल महानगर के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक बिछा रहता है। जैसे ही किसी नए पंछी के आने की भनक उन्हें मिलती है, वे गिद्ध की तरह उसके आसपास मंडराने लगते हैं, और उसकी रिहायश की समस्या हल कर देते हैं एक अदद झोपड़ी देकर। इसके साथ ही उस व्यक्ति का एक वोट अपने आका की झोली में टपका देते हैं, अर्थात् अपने सहयोग से उस व्यक्ति को कृतकृत्य कर देते हैं, जिससे लगभग यह तय हो जाता है कि आने वाले चुनावों में उस व्यक्ति का वोट, उनके नेता के पक्ष में ही जाएगा। उपर्युक्त विवरण हरीश नवल को एक रिक्शेवाले द्वारा मिलता है। हरीश नवल ने उस रिक्शेवाले के कथन को उद्धृत करते हुए लिखा है- "हम उन्हें वोट देते हैं जिताने के लिए, वो हमें झुग्गी देते हैं सिर छुपाने के लिए।" (32) उपर्युक्त कथन के अंतर्गत सेवा परायणता राजनीतिक मूल्य का हनन दर्शाया गया है। नेता-वर्ग की ओर से, निर्धन वर्ग को जो झुग्गी-झोपड़ियां उपलब्ध करवाई जाती हैं, उसके परिप्रेक्ष्य में नेता-वर्ग की सेवा भावना लक्षित नहीं होती, निश्चित रूप से स्वार्थ-भाव ही लक्षित होता है।

नेताओं को यह भली-भांति ज्ञात है कि उनके लिए निर्धन व्यक्ति, एक भरोसेमंद वोट है। पढ़ा-लिखा वोटर यत्किंचित, घाघ किस्म का होता है, उसकी अपेक्षाएं उस विस्थापित ग्रामीण से कहीं अधिक होती हैं। वह नेताओं से नौकरी मांग सकता है, पदोन्नति मांग सकता है, जबकि उन्होंने सत्ता में आने से पहले ही यह पूर्व नियोजित कर रखा होता है, कि फलां चाटूकार को नौकरी देनी है, फलां रिश्तेदार को पदोन्नति देनी है। ऐसे में नेता लोग पढ़े-लिखे लोगों को केवल आश्वासन ही दे सकते हैं। जिन लोगों को नेता वर्ग द्वारा आवास उपलब्ध करा दिए जाते हैं, वे लोग तो समग्र रूप से उस नेता के भक्त हो जाते हैं। इस प्रकार दिल्ली में ऐसी अनेक जे०जे० कॉलोनियां हैं, जिनके सर पर अलग-अलग नेताओं के वरदहस्त हैं।

वोट की खातिर नेता, झुग्गी-झोपड़ी वालों की न केवल आवास की समस्या हल कर देते हैं, अपितु राष्ट्रीय संपत्ति के खजाने की बंदरबांट करने से भी पीछे नहीं हटते। इस विषय में

हरीश नवल ने उसी रिक्शावाले का कथन उद्धृत करते हुए आगे लिखा है- "बिजली हमारी जरूरत है, डेसू वाले कहीं से भी तार खींचकर बिजली दे जाते हैं।" (32) उपर्युक्त पंक्ति के आलोक में, रहस्य-गोपन राजनीतिक मूल्य क्षरित हुआ है। क्योंकि रिक्शावाला व्यंग्यकार के सम्मुख नेताओं की स्वार्थी वृत्ति का भंडाफोड़ कर देता है। अपना वोट बैंक सुनिश्चित करने के लिए नेता लोग, राष्ट्रीय संसाधनों का दुरुपयोग करने से भी नहीं चूकते।

यह स्पष्ट है कि नेता लोग राष्ट्रीय संपत्ति को अपने घर की खेती समझ किसी के लिए भी काटकर समर्पित कर देते हैं। हरीश नवल ने नेताओं द्वारा किसी क्षेत्र विशेष की, मुख्य विद्युत तार से लोगों को बिजली उपलब्ध करवाने की बात कही है, और शरद जोशी किसी राज्य के मंत्री द्वारा अपने राज्य में, धुआंधार सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन पर, राष्ट्रीय धन को पानी की तरह बहाए जाने पर आक्षेप करते हैं। इस विषय में शरद जोशी ने *रग भोपाली* पुस्तक में लिखा है- "अपना बाजा लेकर आओ। भोपाल में बजा जाओ और ले जाओ रुपए, जितने चाहिए। सरकारी पैसा है, टैक्स की कमाई है, अपने बाप का क्या जाता है।" (121) यह व्यंग्य-कथन सत्ताधारियों के राजनीतिक अपकर्ष की ओर इंगित करता है। सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन एक बेहतर कदम है, इसके माध्यम से संस्कृति के विभिन्न उपादानों का प्रचार-प्रसार होता है; राष्ट्र के नागरिकों के अंतर्मन में अपने कर्तव्यों के सम्यक क्रियान्वयन के प्रति आग्रह में अभिवृद्धि होती है। परंतु इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजनों की भी एक निश्चित सीमा-रेखा होनी चाहिए। इसके लिए राष्ट्रीय संपत्ति का अंधाधुंध आबंटन उचित नहीं। राष्ट्रीय कोष आम नागरिक की गाढ़े खून-पसीने की कमाई से एकत्र होता है।

राजनीतिज्ञ, अपने शासनकाल की छवि को उज्ज्वल बनाने हेतु राष्ट्रीय संपत्ति का अपव्यय करते हैं। अपनी राजनीतिक छवि सुधारने के लिए वे महात्मा गांधी, लाल बहादुर शास्त्री तथा एपीजे अब्दुल कलाम जैसे सादगी भरे व्यक्तित्व का अनुसरण क्यों नहीं करते? वे ऐश्वर्य-युक्त जीवन प्रणाली का त्याग करें, सामान्य जनता में विचरण करते हुए उनकी समस्याएं जानें और उनकी समस्याओं की निवृत्ति की दिशा में कदम उठाएं तो उनकी राजनीतिक ही नहीं अपितु सामाजिक छवि भी स्वतः प्रभामंडित होगी।

नेता वर्ग तथा उनके गिर्द लिपटा समग्र राजतंत्र यह जानता है कि एक बार सत्ता की कुर्सी पर आसीन होने के बाद नेता 'न'किसी को कहेगा नहीं, कहे पर कान धरेगा नहीं। झोपड़पट्टी वालों को बिजली-पानी की उपलब्धता करवाने में नेताओं अथवा उनके चाटूकारों

की जेब से तो कुछ जाता नहीं, इसलिए इतना काम उनके द्वारा संपन्न करवा दिया जाता है। कोई पूछे इनसे कि सरकारी तार से बिजली देकर इन्होंने उन पर भला कौन सा उपकार कर डाला? इस प्रकार तो वे राष्ट्र की संपत्ति को ही चूना लगा रहे हैं। ये शब्द सुनते ही नेता लोग आग-बबूला होते हुए प्रत्युत्तर देते हैं कि सरकारी कर्मचारियों को भी काफी यूनिट बिजली मुफ्त में दी जाती है, उन पर आक्षेप क्यों नहीं लगता? उनके कार्य का पारिश्रमिक तो सरकार द्वारा दिया ही जाता है। इन बेचारे निर्धन झुग्गी-झोपड़ी वालों को बिजली-पानी की सहूलियत दे दी गई तो दूसरे लोगों के सीने पर सांप क्यों लौटने लगा? नेता जी का भाषण समाप्त होने से पूर्व ही उनकी जयजयकार के नारों से आसमान गुंजायमान होने लगता है। जनता द्वारा जयघोष करवाना नेताओं की बृहद उपलब्धि है। जिस-जिस क्षेत्र से नेताओं को वोट मिलने की पूर्ण आशा रहती है, उस क्षेत्र के लोगों को नेता लोग, समय-समय पर आशाओं के सब्जबाग दिखाते रहते हैं। इस विषय में शरद जोशी ने *हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे* पुस्तक में लिखा है- "मंत्रीमंडलों में विराजते हैं भ्रष्टाचार के महाप्रभु, सबके सिर पर स्नेह का अदृश्य हाथ फेरते हुए। चिंता न करो भाई! हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे ।" (8)

शरद जोशी द्वारा कहे गए कथन में कटार जैसी तीक्ष्णता विद्यमान है, लज्जा-शर्म वाला व्यक्ति तो कट-कट जाए। भ्रष्टाचार के महानायकों पर बड़े से बड़े प्रहार भी बेअसर सिद्ध होते हैं। अपने पास आए अभ्यर्थियों को सिंहासनासीन नेता अपने अदृश्य आशीष से नवाज़ते हैं, और उनके कार्य की पूर्णता का आश्वासन भी देते हैं। वे भली-भांति जानते हैं कि उनके पास आने वाला व्यक्ति अपने कार्य क्रियान्वयन के लिए, एक सुनिश्चित और निर्धारित मार्ग से न जाते हुए, कोई सरल पगडंडी पकड़ना चाहता है, उसके अंतर्मन में गंतव्य तक पहुंचने की शीघ्रता है।

नेता वर्ग, सामने वाले के स्तर को देखते हुए उसके कार्य की सिद्धि करता है। यदि उस व्यक्ति द्वारा उन्हें कोई बड़ा लाभांश मिलने की संभावना है, तो वे पलक झपकते ही उसका कार्य संपन्न करवा देंगे, परंतु यदि वह कोई सामान्य-सा नागरिक है तो उसके कार्य की प्रक्रिया को लटकाया भी जा सकता है। चुनाव से पहले यही नेता सर्वत्र, यही राग अलापते हैं कि वे मेवा खाने के लिए नहीं जनता-जनार्दन की सेवा के लिए राजनीति के अखाड़े में उतरे हैं। चुनाव जीतते ही वे रंग बदलने में गिरगिट को भी पछाड़ देते हैं। इस प्रकार भ्रष्टाचार की विष-बेल फलती फूलती रहती है।

वर्तमान समय में मनुष्य की आंखों पर गांधारी-पट्टी बंधी है। आम नागरिक, नेताओं द्वारा अपने क्षुद्र से स्वार्थ की पूर्ति पर बल्लियां उछलने लगता है, खुशी के मारे उसके पांव जमीन पर नहीं पड़ते। अपने संगी-साथियों के मध्य वह सहसा, अत्यधिक सम्मान का पात्र बन जाता है क्योंकि जो कार्य उसके साथी नहीं करवा पाए, वह उसने मंत्री की सिफारिश द्वारा चुटकियों में करवा डाला। इस समग्र कार्य-क्रियान्वयन का दूसरा काला पक्ष वह नहीं देख पाता कि इस समग्र कार्य विधि के द्वारा भ्रष्टाचार, सुरसा के मुंह की भांति फैलता जा रहा है। जब तक नागरिक व्यक्तिगत स्वार्थ की वृत्ति को तिरोहित करते हुए, निस्वार्थ भाव से जीवन-पथ पर अग्रसर नहीं होगा, जब तक अपने कार्य की संपन्नता धैर्यपूर्वक सुनिश्चित मार्ग द्वारा नहीं करेगा, तब तक भ्रष्टाचार की निवृत्ति केवल कपोल-कल्पना ही सिद्ध होगी।

यत्र-तत्र-सर्वत्र भ्रष्टाचार विस्तारित है, इससे सभी बखूबी वाकिफ हैं, परंतु भ्रष्टाचार उन्मूलन की बात सुनते ही सब बगले झांकने लगते हैं, क्योंकि वे स्वयं भी इसी मार्ग के पथिक रह चुके होते हैं। इस प्रकार की मनोवृत्ति के धारक व्यक्तियों के मध्य वार्तालाप की परिकल्पना करते हुए शरद जोशी ने आगे लिखा है- "जहां तक करप्शन का सवाल है, कहां नहीं है... महंगाई कितनी बढ़ गई है! मिडिल क्लास कहां जाए? तनख्वाह से तो गुजारा होता नहीं।" (9)

शरद जोशी द्वारा कही गई अंतिम पंक्ति के मूल में ही, भ्रष्टाचार के प्रसार का कारण छिपा हुआ है। लोगों का, सरकार द्वारा दिए गए वेतन से गुजारा नहीं होता क्योंकि उनकी इच्छाएं असीम हो गई हैं। उन इच्छाओं की पूर्ति के लिए अतिरिक्त धन अपेक्षित रहता है। अतिरिक्त धन पाने की लालसा मनुष्य को भ्रष्टाचार के मार्ग पर अग्रसर करती है, वह व्यक्ति भ्रष्टाचार की दलदल में जब एक बार धंसता है तो फिर उसके उबरने के आसार बहुत कम होते हैं। भारत के ऋषि-मुनियों ने राष्ट्र के शासक के लिए जो मापदंड सुनिश्चित किए हैं, क्या हमारे नेता लोगों का आचरण, उन मापदंडों पर खरा उतरता है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर नेताओं के सिवा सभी को मालूम है। *कल्याण* के हिंदू संस्कृति अंक के अंतर्गत, "आदर्श राज्यानुशासन-विज्ञान" में राजमंगल त्रिपाठी ने शासकों के लिए, भारतीय ऋषियों द्वारा निर्देशित जो दायित्व सुनिश्चित किए हैं, उन्हें वर्णित करते हुए वे लिखते हैं- "शासन सत्ता चाहे राज-सत्तात्मक, प्रजासत्तात्मक, राजप्रजा-सत्तात्मक अथवा किसी भी प्रकार की हो, शासनान्तर्गत समस्त क्रियाओं का दायित्व उसी पर होता है।" (445)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि प्रजा के लिए जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति को सुनिश्चित करना, उनकी समस्याओं का निदान करना, शासन तंत्र का ही उत्तरदायित्व है। इस दायित्व को पूर्ण करने वाला शासक ही राजनीतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा कर सकता है। वर्तमान शासक चुनाव से कुछ समय पूर्व, अपने दायित्वों के प्रति सजग होने का दिखावा मात्र करते हैं और जनता की समस्याएं न सुलझने के परिप्रेक्ष्य में, पूर्व सत्तासीन नेताओं को दोषी ठहरा देते हैं। उस समय उनके भाषणों के अंतर्गत अधिकतर यही सुनने को मिलता है कि अनेक वर्षों से खंडित शासकीय-प्रबंधन को पांच वर्षों की अल्प अवधि में सुधारा नहीं जा सकता।

धन्य हैं ऐसे राजनेता, जो केवल इसलिए हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने को विवश हैं, क्योंकि सत्ता पर आसीन पिछले राजनीतिज्ञों ने राष्ट्र की उन्नति को आगे ले जाने की बजाय पीछे धकेल दिया है। सत्तासीन दल, राष्ट्र की प्रगति को पहले वर्तमान समय की अपेक्षाओं की पूर्ति के योग्य बनाएगा, तत्पश्चात् राष्ट्र की भविष्यगत उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सकने की संभावना बनेगी। हरीश नवल कृत व्यंग्य रचना में, 'शासकत्व' राजनीतिक मूल्य का अवमूल्यन दर्शाया गया है। जो शासक वोट प्राप्ति के लिए, राष्ट्रीय संपत्ति का कुछ भाग अपने मनचाहे जरूरतमंद नागरिकों में बांटकर, अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेते हैं। वे अपनी ओर से प्रजा की सहायतार्थ कोई उपक्रम ही नहीं करते तो उनका शासकत्व उत्कृष्ट कैसे समझा जा सकता है? शासकत्व का गरिमामंडित स्वरूप दर्शाने के लिए शासक को प्रजा के हृदय में स्थान बनाना पड़ता है और किसी के दिल में जगह पाने के लिए त्याग और समर्पण अपेक्षित रहता है।

महात्मा गांधी ने अपनी त्यागपूर्ण और अपरिग्रही प्रवृत्ति के कारण, बिना कोई पद ग्रहण किए भारतीय जनता के दिलों पर निष्कंटक शासन किया। उनका यह आचरण समग्र विश्व के सम्मुख शासकत्व का उज्ज्वल उदाहरण है। इसी प्रकार लोह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल ने अपने सुदृढ़ और सशक्त शासकत्व के द्वारा, देसी रियासतों का भारत में विलयीकरण किया।

'वाह, हमारा स्वराज्य!' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र का विडंबनापूर्ण रेखाचित्र अंकित करते हैं, जिसके आलोक में भारतीय नेताओं का राष्ट्रभक्ति के मुखौटे के पीछे छिपा स्वार्थी चेहरा अनावृत हो जाता है। नेताओं की सत्तालिप्सा की लालसा देखकर राष्ट्र की जनता सकते में आ जाती है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र की स्थिति को भांपते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "अपना राज हुआ। हम गुलामों की पंक्ति से

पृथक हो गए। एक गुलाम पृथक हो, कहां जाए ? यह समस्या देश के सामने थी-कर्णधारों के सामने भी। उन्हें यही निदान समझ में आया कि वे मालिकों की पंक्ति में खड़े हो जाएं।" (92)

हरीश नवल द्वारा कही गई पंक्तियों के माध्यम से भारतीय नेताओं के चेहरे से चिपकी, देशभक्ति की परतें उतर जाती हैं और स्वार्थमंडित मुखमंडल, जनता के समक्ष बेपर्दा हो जाता है। राष्ट्र तो सभी का था, सभी का होना चाहिए था, इसके अंतर्गत समग्र स्वामित्व, यदि चंद लोगों की झोलियों में डाला जाना था तो शेष जनता बेचारी हवाई किले ही बनाती रही, जिसे नेताओं के स्वार्थी अंधड़ ने धराशायी कर दिया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अंग्रेजों के शासन के दमनकारी स्वरूप पर व्यंग्य-बाण चलाते हुए एक एकांकी का लेखन किया था, जिसका शीर्षक था-अंधेर नगरी चौपट राजा। उन्हें क्या मालूम था कि उपर्युक्त शीर्षक सार्वकालिक प्रासंगिक हो जाएगा। छद्म राष्ट्रभक्ति दर्शाने के परिप्रेक्ष्य में, नेताओं के वास्तविक लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "उनका लक्ष्य मिल्कियत हो गया, जिसके लिए वे जिए नहीं, बल्कि मरे जा रहे हैं।" (92)

उपर्युक्त कथन में व्यंग्य की अचूक प्रहारात्मकता उभर कर सामने आती है। हरीश नवल के कथन का अभिप्राय है कि धन के एकरूपीकरण के लिए, राष्ट्र की भूमि को अपनी मिल्कियत समझते हुए, उन्होंने मानव-मूल्यों के समग्र मापदंडों को तोड़कर, स्वार्थ की ज्वाला में होम कर दिया। राष्ट्र के विकास के नाम पर नेता लोग, परंपरागत मापदंडों को भी बदलने में संकोच नहीं करते। इस विषय में राहुलदेव द्वारा संपादित पुस्तक *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना* पुस्तक के अंतर्गत फारुक आफरीदी ने "आमजन के एक सशक्त पहरुआ व्यंग्यकार" आलेख में लिखा है- "मनुष्य ने अपनी सभ्यता के विकास के साथ मनुष्यता को बचाने के लिए जैसे-जैसे मनमाने मानक निर्धारित कर लिए, वैसे-वैसे मनुष्यता का भी क्षरण होता गया है। भौतिक विकास ने घात-प्रतिघातों को तो बढ़ाया ही है, स्वार्थ या स्वहित शिखरस्थ होते गए हैं।" (143-144)

मनुष्य अगर अपने स्वार्थ के लिए, पूर्वजों द्वारा बनाए गए शाश्वत मापदंडों में भी मनमाने परिवर्तन करना चाहेगा तो इसके द्वारा उसके सुख साधनों का विकास तो हो सकता है परंतु मानवता का हास होना भी निश्चित है, क्योंकि जब समष्टि-हित के स्थान पर व्यष्टि-हित प्रमुख हो जाता है तो जीवन मूल्यों के सुदृढ़ सूत्र शिथिल हो जाते हैं। व्यंग्यकार ने नेताओं के लिए 'जिए नहीं, बल्कि मरे जा रहे हैं' पंक्ति कहते हुए, उनके स्वार्थ साधने की तत्परता के प्रति आक्रामक

व्यवहार प्रदर्शित किया है। उपर्युक्त छोटी सी पंक्ति के अंतर्गत व्यंग्यकार के आक्रोश का लावा बिखर-बिखर गया दृष्टिगत होता है। जो नेता, राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए कंधे से कंधा मिलाकर कार्यरत थे, स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात इतने स्वार्थान्ध हो गए कि उन्होंने अपनी सत्ता लोलुपता की महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु, राष्ट्र का विभाजन करवा दिया। उस विभाजन की त्रासदी से कितने घर उजड़े, कितने बेगुनाहों की जानें गईं, कितनी मां-बहनों की लाज का गहना लूटा गया, इसका कुछ अंदेशा है सत्ता के भूखे भेड़ियों को? जो लोग, लोभ-लालच की दलदल में आकंठ डूबे हैं, जो जीवन-मूल्यों की अमूल्य निधियों को स्वार्थ के हवन कुंड में झोंक देते हैं, उन्हें यंत्रमानव ही कहा जा सकता है। जीवन-मूल्यों से विहीन जीवन, मूल्यहीनता की स्थिति में आ जाता है और मूल्यहीन जीवन में मनुष्य एक संवेदनहीन रोबोट की भांति कार्य करता है। राष्ट्र की मिल्कियत को हथियाकर, अन्य नागरिकों के अधिकारों पर डाका डाल कर, इस प्रकार के नेता जीवंतता की सीढ़ी से नीचे उतर जाते हैं, क्योंकि राजनीतिक मूल्यों के साथ-साथ वे मानव मूल्यों को भी रसातल में धकेल देते हैं।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के दौरान, चलचित्रों द्वारा भी प्रेरक संदेश प्रसारित होते थे। फिल्मी गीतों द्वारा जनता को यही समझाया जाता था 'हम लाए हैं तूफान से किशती निकाल के, इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के'। इस गीत के माध्यम से फिल्मकार जनता को सजगता का संदेश देता था कि बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुए और तन-मन-धन की कुर्बानी देते हुए स्वतंत्रता प्राप्त हुई है, इस स्वतंत्रता को सशक्तता, कौशल तथा समुचित प्रबंधन के द्वारा बरकरार रखना भावी पीढ़ी का दायित्व है। भावी पीढ़ी ने इस उत्तरदायित्व को कैसे संभाला, इस विषय में विडंबनापूर्ण, उपहासास्पद टिप्पणी करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "बच्चों ने उसे कहां-कहां संभाला, खूब संभाला। हवाला, घोटाला, निवाला और फिर दिवाला।" (93)

हरीश नवल ने राष्ट्र के कर्णधारों द्वारा, देश को संभाले जाने की स्वार्थी प्रविधि का उपहास किया है। राष्ट्र के नेताओं ने देश को इतने अच्छे ढंग से संभाला है कि पूछो मत, राष्ट्र की अधिकांश समृद्धि अपने लिए, अपनी आने वाली सात नहीं, सात सौ पीढ़ियों के लिए भी संभाल कर रख दी है। इससे बढ़कर भी राष्ट्र को संभालने का अन्य कोई श्रेष्ठतर तरीका हो सकता है क्या? राष्ट्र की संपत्ति को यदि नेता लोग न संभालते, तो सोने की चिड़िया के बचे-खुचे पंख भी कट गए होते। भारतीय जनता को तो नेताओं के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि अथाह संपत्ति का स्वामी होना कोई सरल बात नहीं है, मनुष्य को रात-दिन खटका लगा रहता

है कि कहीं उस संपत्ति पर कोई घात न लगा बैठे। आखिर, राष्ट्र की संपत्ति राष्ट्र के नेताओं के पास ही तो है, किसी विदेशी शक्ति द्वारा थोड़े ही लूटी गई है। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली को जनता का, जनता द्वारा, तथा जनता के लिए घोषित किया था। वर्तमान समय में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का जो स्वरूप है, उसे वर्णित करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "चंद वर्षों में नेताओं का, नेताओं द्वारा तथा नेताओं के लिए शासन में बदल गया, बल्कि भ्रष्टों का, भ्रष्टों द्वारा, भ्रष्टों के लिए बन गया।" (93)

उपर्युक्त पंक्तियों के आलोक में राजनीतिक मूल्य उपलब्धता का क्षरण हुआ है। राष्ट्र के संसाधनों की उपलब्धता तो समग्र नागरिकों के लिए होनी चाहिए, परंतु वर्तमान समय में राष्ट्र के संसाधनों को नेताओं, चुनाव के दौरान उनके सहयोगी पूंजीपतियों तथा उनके चाटुकारों द्वारा हथिया लिया जाता है। इससे राजनीतिक मूल्य समानता का भी हनन होता है, क्योंकि इसके द्वारा उपर्युक्त लोगों और सामान्य जनता के रहन-सहन में जमीन-आसमान का अंतर सुनिश्चित हो जाता है। वर्तमान शासन को भ्रष्टों का शासन बताते हुए हरीश नवल ने राजतंत्र में संलिप्त लोगों की कड़ी भर्त्सना की है। जहां दाल में काला होने की बजाए सारी दाल ही काली दृष्टिगत होती हो, तो व्यंग्यकार के पास उपर्युक्त कथन कहने के अतिरिक्त चारा ही क्या रह जाता है? अपने परिवार के किसी सदस्य द्वारा यदि किसी भी सुख-साधन का अधिक अंश ग्रहण कर लिया जाता है तो अन्य सदस्य तिलमिलाकर कहने लगते हैं कि यदि यही सुख-साधनों का बड़ा हिस्सा उड़ा ले जाएगा तो अन्य सदस्य क्या घास चरने जाएंगे? परंतु राष्ट्र की संपत्ति का उपभोग, कुछ इने-गिने लोग ही करें तो सामान्य नागरिक के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। वे सोचते हैं कि शुक्र है, उनकी व्यक्तिगत संपत्ति पर आंख नहीं रखी जा रही है। यदि वे समग्र राष्ट्र को अपना समझें तो फिर राजनीति की छवि धूमिल करने वाले नेताओं की दाल नहीं गल पाएगी।

वर्तमान स्थिति तो इससे भी अधिक विकट और भयंकर है क्योंकि अब तो नेता लोग घास भी चर जाते हैं। भ्रष्टाचार का प्रसार इतना गहरा हो चुका है कि अब 'चोर-चोर मौसेरे भाई' का मुहावरा भी अनुपयुक्त हो गया है, क्योंकि स्वार्थ-सिद्धि के लिए तो लोग रक्त के संबंधों को भी ठेंगा दिखा देते हैं, फिर मौसेरा भाई कहां याद रहेगा? इस विषय में विष्णु नागर ने *राष्ट्रीय नाक* पुस्तक में अपने चाचा के साथ अपनी बातचीत वर्णित की है। उनके चाचा इस बात से व्यथित थे कि पर्यटन विभाग के अफसर अपने मातहत से रिश्वत लेते हुए पकड़े गए। विष्णु

नागर ने अपने चाचा के कथन को उद्धृत करते हुए लिखा है- "लोग करोड़ों खाकर मजे लूट रहे हैं और यह बेचारे तीस हजार रुपयों की वजह से पकड़े गए?" (148)

विष्णु नागर ने अपने चाचा के कथन के द्वारा राष्ट्र के अंतर्गत व्याप्त भ्रष्टाचार की अप्रत्यक्ष रूप से कड़ी आलोचना की है। उच्च स्तरीय राजनीतिक पद पर प्रतिष्ठित नेता वर्ग तथा उच्च प्रशासनिक वर्ग करोड़ों रुपयों के घोटाले भी सरलता से हजम कर जाता है और उसकी ओर एक उंगली भी नहीं उठती, और यदि उठती भी है तो तुरंत मरोड़ दी जाती है। दूसरी तरफ एक अफसर, तीस हजार रुपए की रिश्त लेते हुए भी पकड़ा जाता है। चाचा की दृष्टि में अपने मातहत से रिश्त लेना कोई अनुचित बात नहीं, इस विषय में चाचा के कथन को उद्धृत करते हुए विष्णु नागर ने आगे लिखा है- "दुख इस बात का भी है कि ये आला अफसर अपने ही एक अधिकारी से रिश्त मांग रहे थे? अब इतनी भी मानवीयता नहीं बची कि अपने ही दफ्तर के आदमी से रिश्त न ले। यह तो घोर कलयुग है।" (148)

विष्णु नागर ने वक्रता के माध्यम से रिश्तखोरी की प्रवृत्ति पर भर्त्सनापूर्ण व्यंग्य प्रहार किया है। विष्णु नागर के चाचा यह मानते थे कि एक ही विभाग में कार्यरत कर्मचारियों को, अपने ही विभाग के रहस्य गोपन रखने चाहिए। अधीनस्थ कर्मचारी को उच्च अधिकारी की भ्रष्टाचारी वृत्ति का भंडाफोड़ नहीं करना चाहिए। विष्णु नागर, भ्रष्टाचारियों के चेहरे का मुखौटा उतारते हुए अपने सगे संबंधियों को भी नहीं बख्शाते। यहीं पर व्यंग्य की विशेषता, निष्पक्षता स्वयं प्रमाणित हो जाती है। येन-केन प्रकारेण अपने अर्थ-भंडार को विस्तृत किए जाना, मानव को काजल की कोठरी में धकेल देता है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति, शांतिपूर्वक निर्विघ्न रूप से हो जाए, मानव के लिए यही अभीष्ट है। यदि फिर भी उसके पास कुछ अतिरिक्त सुख-साधन शेष रह जाते हैं तो उसका प्रयोग परोपकार के लिए करना चाहिए। महेश शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक *चाणक्य नीति* के अंतर्गत महेश शर्मा ने चाणक्य के कथन का सार बताते हुए लिखा है- "धन उसी स्थिति में महत्वपूर्ण और उपयोगी होता है, जब वह किसी एक व्यक्ति के लिए न होकर संपूर्ण समाज के लिए लाभकारी हो " (133)

चाणक्य के कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि धन का संचय स्वार्थ हेतु न करते हुए, समाज कल्याण के लिए करना चाहिए, अर्थात् संचित धन का उपयोग लोक-कल्याणार्थ करना ही श्रेयस्कर है। जीवन में सच्चे आनंद की प्राप्ति उपर्युक्त क्रियात्मकता द्वारा

ही संभव है। निन्यानवे के फेर में पड़ा व्यक्ति न कभी सुखी हुआ और न कभी सुखी हो सकता है।

6.3 जनहित, अखंडता, नेतृत्व तथा प्रजातंत्र। इन राजनीतिक मूल्यों का हनन, हरीश नवल कृत व्यंग्य पुस्तक *पीली छत पर काला निशान* के अंतर्गत रेखांकित किया गया है।

'एक मोहिनी मुस्कान और तीन समाधान' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल ने अपने इलाके में, चुनाव प्रत्याशी के रूप में एक नेता के स्वरूप, चुनाव से पहले का व्यवहार और चुनाव जीतने के बाद के व्यवहार को दर्शाया है। व्यंग्य रचना में वर्णित नेता तो एक प्रतीक है, चुनाव से पूर्व सभी नेता चेहरे पर मोहिनी मुस्कान ओढ़ते हुए जनसाधारण से मिलते हैं। हरीश नवल के इलाके से जो प्रत्याशी चुनाव मैदान में उतरा था, वह जनता का सम्मान करने के साथ-साथ उनकी आर्थिक सहायता भी कर रहा था। जनता की आर्थिक सहायता करने के परिप्रेक्ष्य में जो बाहरी शक्तियां क्रियाशील थीं, उनका वर्णन करते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "पार्टी ने उन्हें प्रचार आदि के लिए एक लाख रुपये भी दिए हैं, जिससे वे आर्थिक सहायता भी करते हैं। लेकिन व्यापारी और फैक्ट्री मालिक भी उन्हें जिताने के लिए ढेरों रुपया थैलियों में पहुंचा रहे हैं।" (62)

किसी भी राजनीतिक दल की ओर से चुनाव में उतरे प्रत्याशी, अपनी जेब भी ढीली नहीं करते अपितु पार्टी फंड के द्वारा अथवा इलाके के पूंजीपतियों के द्वारा जनता की आर्थिक सहायता करने का ढोंग करते हैं। जो व्यापारी चुनाव के दौरान प्रत्याशी की आर्थिक सहायता करेगा, उस प्रत्याशी के चुनाव में विजित हो जाने के पश्चात वह उसके द्वारा अपनी पाई-पाई वसूल करेगा। हरीश नवल भी अपने इलाके के नेता की कोठी पर अपनी समस्याएं लेकर जाते हैं। वहां पहुंचते ही एक युवक उन्हें आदर सहित कुर्सी पर बैठाता है, लेकिन दक्षिण दिशा से ठंडा पेय लेकर आते हुए बैरे को इशारे से रोक देता है और व्यंग्यकार से पूछता है कि वे किस इलाके से पधारे हैं? यह पता लगते ही, कि वे उनके नेता के इलाके के ही नागरिक हैं, उसका चेहरा फूल की तरह खिल जाता है और वह बैरे से कहता है- "ओह, अपने ही निर्वाचन-क्षेत्र से हैं! इन्हें ठंडा पिलाओ।" (63)

अर्थात् ठंडा पिलाने से पहले वह युवक यह सुनिश्चित कर लेना चाहता था कि व्यंग्यकार, उनके नेता के इलाके का ही नागरिक है अथवा नहीं? यदि वह किसी अन्य इलाके से संबंधित है तो उसे व्यर्थ में ठंडा पिलाने से क्या लाभ? नेताओं के कार्यकर्ताओं के व्यवहार

द्वारा ही, राजनीति क्षेत्र की स्वार्थ-भावना पर प्रकाश पड़ जाता है। ग्रीष्म ऋतु में आम जनता की तृषा बुझाने के लिए, भारतीय परंपरा में स्थान-स्थान पर प्याऊ लगवाने के उदाहरण मिलते हैं। राजनीति क्षेत्र में ठंडा पिलाने के लिए भी स्वार्थ को प्रमुख रखा जाता है। नेताजी से साक्षात्कार करते समय, हरीश नवल ने उनके स्वरूप का वर्णन करते हुए आगे लिखा है- "धोती और खादी की मोटी बनियान में उनका मांसल शरीर, उनके खान-पान के सारे रहस्य उद्घाटित कर रहा था।" (65)

हरीश नवल ने वाणी के वैदग्ध्य द्वारा दर्शाया है कि धोती और खादी की बनियान में आवृत होकर नेता लोग, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को प्रमाणित करते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से देशप्रेम का ढिंढोरा पीटते हैं। नेताजी के शरीर को मांसल बताते हुए व्यंग्यकार ने, उनकी खानपान की विधि की ओर व्यंग्यात्मक संकेत किया है कि नेता लोग सत्ता की कुर्सी पर विराजमान होते ही लगभग पांच सालों के लिए, निश्चितता का जीवन बिताते हैं, जिसके अंतर्गत उनका विदेश-भ्रमण, उद्घाटन समारोह तथा संसद-भवन में ही आने-जाने का काम रहता है। कोई शारीरिक श्रम तो वे करते नहीं, न ही कोई उन्हें मानसिक तनाव रहता है। ऐसे में निष्क्रिय जीवन जीते हुए शरीर का मांसल बन जाना स्वाभाविक है। नेताओं की निष्क्रियता के विषय में शरद जोशी ने *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "कई मामलों में मेरा सिर शर्म से झुक जाता है, जैसे हमारे निष्क्रिय नेताओं को देखकर, जिन्हें हमने चुना है।" (137)

शरद जोशी एक नागरिक के रूप में स्वयं को उस समय अपराधी अनुभव करते हैं, जब उनके द्वारा चयनित नेता राजनीतिक मूल्यों का हास करता परिलक्षित होता है। स्वयं को प्रतीक बनाते हुए शरद जोशी ने सभी नागरिकों को सजग रहने का संकेत दिया है। आखिर अधिकांश लोग लोहे की पेड़ की भांति क्यों हो गए? जिन पर राष्ट्र में व्याप्त राजनीतिक विसंगतियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क्यों उनकी चेतना उन्हें नहीं झकझोरती कि वे इस सरल सी बात को समझ सकें कि जब भी, जिस भी नेता को चयनित करके उन्होंने सत्ता की कुर्सी सौंपी, वह नेता या तो कुर्सी से चिपका रहा, या विदेशों की खाक छानता रहा, या विभिन्न संस्थाओं द्वारा अपना अभिनंदन करवाता रहा। कोई पूछे उनसे कि वे विगत पांच वर्षों में जनता के बीच कितनी बार गए? अपने बंगले पर आए दीन-हीन लोगों की पुकार कितनी बार सुनी? अपने भाई-भतीजे और चाटूकारों को छोड़कर कितने नागरिकों की समस्याओं का समाधान किया? इसके प्रत्युत्तर में नागरिकों के पास मौन रहते हुए, सर झुकाने के सिवा और क्या विकल्प शेष रहता है?

सच्चाई तो यह है कि नेता लोग केवल चुनाव जीतने से पहले भाग दौड़ करते हैं। चार दिन की अंधेरी रातों के बाद, फिर पांच वर्षों तक उनके लिए पूर्णमासी ही रहने वाली है। शरद जोशी ने नेताओं के जीवन को निष्क्रियता पूर्ण इसलिए बताया है क्योंकि अपने कार्यकाल में वे कोई भी समाजहित अथवा राष्ट्रहित कार्य संपन्न नहीं करते। *धृतराष्ट्र टाइम्स* पुस्तक में सूर्यबाला ने सत्तासीन नेताओं की कार्यसूची वर्णित करते हुए लिखा है- "कुछ करिए-जैसे घोटाला; कुछ करवाइए-जैसे दंगे; कुछ दिलवाइये-जैसे कोटा, परमिट, लाइसेंस, ग्रांट, अनुदान।" (133)

उपर्युक्त कथन द्वारा स्पष्ट है कि नेता लोगों द्वारा किए अथवा करवाए गए किसी भी कार्य द्वारा राष्ट्रहित सधता हुआ दृष्टिगत नहीं होता। उपर्युक्त सभी कार्य नेताओं के चाटुकार अपनी और नेता की जेब भरने की आकांक्षा के अंतर्गत करते या करवाते हैं। नेताओं को जिन बृहद उत्तरदायित्वों के निर्वहण के लिए चयनित किया जाता है, यदि वे उन दायित्वों की पूर्ति करने में अक्षम सिद्ध होते हैं, तो उन्हें निष्क्रिय ही कहा जा सकता है, सक्रिय नहीं। छोटे से छोटे सरकारी अथवा गैर सरकारी कर्मचारी अक्सर, अपने अधिकारियों से फटकार पाते सुने जा सकते हैं कि उन्होंने उस कार्य को जिम्मेदारी से नहीं किया, जिस कार्य के लिए सरकार उन्हें वेतन देती है। यही बात नेताओं से पूछ ली जाए तो उनका क्या जवाब होगा?

चुनाव जीतने के बाद नेताओं की मोहिनी मूरत के दर्शन इलाका वासियों के लिए दुर्लभ हो जाते हैं। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "जीतते ही उनकी मोहिनी सूरत हमारे इलाके में कम और लोकल छोटे-मोटे अखबारों-पत्रिकाओं आदि में ज्यादा दिखाई देने लगी।" (67) जीतने के बाद नेता लोग अपने इलाके में कहां नजर आते हैं? अब उन लोगों का इलाके वासियों से क्या काम? इलाके से उन्होंने जीतना था, जीत गए, नागरिकों से वोट हथियाने थे, हथिया लिए। चुनाव जीतने के बाद नेताओं की बदली हुई प्रवृत्ति के विषय में शरद जोशी ने *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "अब वह अपनी क्रीड़ा- भूमि को छोड़ जा रहा है। वह चुनाव जीत गया है और व्यर्थ के मोहों से उसने मुक्ति प्राप्त कर ली है। उसने जनता से किए अपने वादे यही की गंदी नालियों में फेंक दिए हैं।" (194)

शरद जोशी के द्वारा कहा गया कथन, नेताओं की वास्तविक भर्त्सनापूर्ण छवि को उजागर कर देता है। चुनाव के दौरान सामान्य जनता से आत्मीयता का उसने जो मुखौटा पहना हुआ था, उसे वह उतार कर फेंक देता है। चुनाव जीतने के बाद उसकी जरूरत ही नहीं रहती।

वह जानता है कि आगामी चुनावों से पहले वह कोई नया मुखौटा लगाकर जनता के सामने आएगा और जनता के वोट का हरण कर ले जाएगा।

चुनाव के पश्चात मतदाताओं के लिए 'कहूँ क्या, आस निरास भई' कहने के सिवाय कोई और विकल्प शेष नहीं रहता, क्योंकि नेता लोग चुनाव जीतने के बाद, पैदल चलते तो कभी नजर आते नहीं। सार्वजनिक सभाओं में भी वे लोग शीशाबंद गाड़ियों में बैठकर आते हैं, और चाटूकारों द्वारा घेरकर ले जाते हुए, मंच पर विराजमान हो जाते हैं। मतदाताओं से संपर्क करने का उनके पास अवकाश कहां ? इस तथ्य का वर्णन करते हुए सुरेश सेठ ने *नशतर की मुस्कान* पुस्तक के अंतर्गत, चुनाव में विजित नेता के विषय में लिखा है- "वह जो हमारी वोटों के बल पर विजयश्री या ताज पहन सत्ता की प्राचीर में बंद हो गए। उसे इतनी फुर्सत कहां कि पांच बरस से पहले हमारे भूले हुए चेहरों को याद कर सके।" (154)

सुरेश सेठ द्वारा कहे गए कथन से स्पष्ट है कि चुनाव जीतने के बाद नेता लोगों के पास व्यक्तिगत कार्य ही इतने अधिक हो जाते हैं कि समाज अथवा राष्ट्र के विषय में सोचने के लिए उनके पास समय ही नहीं बचता। ठीक भी है, प्रत्येक नेक कार्य की शुरुआत अपने ही घर से होनी चाहिए। नेताओं के घर में धन का अभाव ही अभाव रहता है, सर्वप्रथम वे लोग उस अभाव को दूर करने की कोशिश में लगे रहते हैं, परंतु यह अभाव कभी समाप्त नहीं होता। अपने घर का अभाव दूर करने से अवकाश पाएं, तभी तो वे समाज की ओर उन्मुख हो सकते हैं। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए सुरेश सेठ ने आगे लिखा है- "उसे अभी अपने वंश की फिक्र करनी है, और सिद्ध करना है कि अगर इस देश में गरीब का बेटा गरीब ही रहता है, अभिनेता का बेटा आसानी से अभिनेता बन जाता है, तो नेता के बेटे को भी नेता बन जाने का पूरा अधिकार है।" (154)

सुरेश सेठ ने गरीब के बेटे का गरीब बने रहना दर्शाते हुए, समाज की विडंबनापूर्ण स्थिति को दर्शाया है। उन्होंने इस सत्य को उद्घाटित किया है कि राष्ट्र का राजतंत्र अथवा पूंजीपति-वर्ग, निर्धन-वर्ग की निर्धनता दूर करने का कोई उपक्रम नहीं करता। यदि समग्र समाज में कोई निर्धन न बचा, तो पूंजीपति-वर्ग अपने अभिमान की तुष्टि कैसे करेगा? नेता-वर्ग गरीब वर्ग को इसलिए गरीब बने रहने देना चाहता है क्योंकि चुनाव के दौरान, उनके द्वारा बुलंद स्वर में बोला जाने वाला एक मजबूत और पुख्ता नारा अक्षत रहे, 'गरीबी हटाओ'। समाज से गरीबी हटाने का आश्वासन, चुनाव में विजित होने का दृढ़ आधार है। इस नारे के अवलंबन से

बहुत से नेताओं के वारे न्यारे होते देखे गए हैं। चुनाव जीतने के बाद नेता के रिहायशी इलाकों का कायाकल्प हो जाता है, हो भी क्यों न? आखिर नेता ने जहां निवास करना है, उस इलाके को पर्यावरणीय दृष्टि से परिष्कृत होना ही चाहिए। नेता वर्ग राष्ट्र की अनमोल धरोहर हैं, इन्हें तो छींक भी आ जाए, तो डॉक्टरों की लाइन लग जाती है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "पूरी कॉलोनी, विशेष रूप से उनकी कोठी का निकटवर्ती इलाका काफी साफ था।" (67) अर्थात् नेता लोग, सत्तासीन होते ही अपने घर के आसपास के क्षेत्र की सौंदर्य वृद्धि के प्रति, अधिक जागरूक हो जाते हैं। चुनाव जीतने के बाद वे एक अति विशिष्ट व्यक्ति बन जाते हैं, और अपने वैशिष्ट्य को सिद्ध करने के लिए उनका चतुर्दिक परिवेश, परिष्कृत और सौंदर्य-अनुभूति से परिपूर्ण तो होना ही चाहिए। इलाकावासियों को भी लगना चाहिए कि नेता जी ने अपने इलाके का थोड़ा बहुत विकास तो किया ही है।

व्यंग्य का समाज दर्शन पुस्तक के अंतर्गत सुरेश आचार्य के कथन द्वारा हरीश नवल के कथन की पुष्टि की जा सकती है। नेताओं की स्वार्थ-केंद्रित कार्य-विधि का वर्णन करते हुए सुरेश आचार्य ने लिखा है- "आत्म केंद्रित राजनीतिज्ञों के विवेकहीन निर्णयों की सरकारों ने संपूर्ण अर्थ नीति ध्वस्त कर दी। व्यक्तिगत पसंद और नापसंद से बड़े से बड़े काम होने लगे।" (352) सुरेश आचार्य के कथन को हरीश नवल की व्यंग्य रचना के आलोक में देखते हुए कहा जा सकता है कि जिस प्रकार हरीश नवल के इलाके से विजित हुआ प्रत्याशी सरकारी खर्च से अपनी कोठी के आसपास पर्यावरण और सौंदर्य बोध से अनुप्राणित कार्य करवाता है, उसी प्रकार की कार्यप्रणाली समग्र नेताओं द्वारा क्रियान्वित की जाती है, जिससे राष्ट्र की अर्थ नीति पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त व्यंग्य रचना के अंतर्गत राजनीतिक मूल्य, जनहित का अवमूल्यन हुआ है। व्यंग्य रचना के द्वारा यह कटु सत्य उद्घाटित हुआ है कि चुनाव जीतने के पश्चात नेताओं की मोहिनी सूरत इलाकावासियों के भाग्य में नहीं रहती। नेता वर्ग इलाकावासियों से संपर्क स्थापित करने के लिए समय नहीं निकालेंगे तो सामान्य-जन की समस्याओं से अवगत कैसे होंगे? इस परिस्थिति में जनहित का कार्य संपन्न होना तो असंभव सी बात ही लगती है।

'बूढ़े आदमी की टोपी' व्यंग्य रचना पूर्ण रूप से प्रतीकात्मक है। इस व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने बूढ़े आदमी को भारत का सामान्य-जन तथा उसकी टोपी को भारत का राजतंत्र दर्शाया है। बूढ़ा आदमी, भारत के आम नागरिक का प्रतिनिधित्व करता है तथा बिल्ली,

बंदर, बूढ़ा शेर तथा बीमार चीता विभिन्न राजनीतिज्ञों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सभी राजनीतिज्ञ, अपने-अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए राजनीतिक मूल्य, अखंडता को ध्वस्त करते दृष्टिगत होते हैं। परिणामस्वरूप, राष्ट्र में अलगाववादी शक्तियां सिर उठाने लगती हैं। बूढ़े आदमी की टोपी कहीं गिर जाती है, टोपी इतनी विशाल है कि उसमें शरण लेने के लिए, अनेक जानवर घुस जाते हैं। जानवरों के नाम से, संदर्भित राजनेता के विषय में, स्वतः ही पता चल जाता है। बिल्ली के टोपी में प्रवेश करने करने के उपरांत, उसकी क्रियाशीलता वर्णित करते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "बिल्ली ने धीरे-धीरे लगभग सारी टोपी ही अपने कब्जे में ले ली। " (105)

ऊपर लिखित पंक्ति द्वारा हरीश नवल, भारत के समग्र राजतंत्र पर किसी महिला के आधिपत्य का संकेत देते हैं। इसी प्रकार चालाक बंदर, बीमार चीता, तथा बूढ़ा शेर अलग-अलग राजनीतिज्ञों के स्वरूप को प्रतिबिंबित करते हैं। टोपी में सर्वाधिक स्थान पाने के लिए सभी जानवर संघर्ष कर रहे थे, उन्हें छीना-झपटी में उलझे हुए देख बिल्ली ने फायदा उठाया और टोपी पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के प्रयास करने लगी। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "टोपी और बंदर को लेकर बीमार चीता और बूढ़ा शेर दोनों बहस करने लगे। मौका देख कर एक ओर फंसी बिल्ली, शरीर खोलने लगी।" (106)

उपर्युक्त कथन, राष्ट्र की कुछ वर्ष पहले की राजनीतिक अव्यवस्था को वर्णित करता है, जब राष्ट्र के सर्वोच्च पद पर विराजमान होने के लिए दो राजनीतिज्ञों में परस्पर ठनी हुई थी। उस पद का अधिष्ठाता होने के लिए एक अन्य मध्यस्थ नेता का अनुमोदन बहुत महत्व रखता था, इसलिए वे दोनों नेता, बंदर रूपी मध्यस्थ नेता को अपने पक्ष में करने के लिए रस्साकशी कर रहे थे।

हरीश नवल द्वारा कहा गया कथन राष्ट्र की विडंबनापूर्ण, नैतिकता-विहीन राजनीतिक स्थिति को उद्घाटित करता है। जिन राजनीतिज्ञों का चरम लक्ष्य केवल सत्ता के सर्वोच्च शिखर तक पहुंचना है, और उसके लिए भी राष्ट्रहित को ताक पर रखते हुए परस्पर खींचतान में लगे रहना है, उन्हें उस सिंहासन पर बैठने का तो दूर, ताकने तक का भी अधिकार नहीं है। जानवरों को टोपी के लिए लड़ते- झगड़ते देख बूढ़ा आदमी उदास और निराश भाव से दूर खड़ा यह प्रतीक्षा करता है, कि कब वे सभी जानवर टोपी से जरा दूर हटें और वह झटपट अपनी टोपी को संभाले। इस विषय में बूढ़े आदमी की प्रतिक्रिया तथा मानसिकता वर्णित करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "जानवरों को लड़ते-लड़ते देख दूर खड़ा हो गया और

प्रतीक्षा करने लगा कि कब वे उसकी टोपी से दूर जाएं और वह अपनी टोपी ले जाकर सिल ले। पर टोपी का तो एक सूत्र भी न शेष बचा था।" (106)

उपर्युक्त पंक्तियों के अंतर्गत, हरीश नवल ने राजनीतिक मूल्य, नेतृत्व और प्रजातंत्र के क्षरण की ओर संकेत किया है। राष्ट्र का नेतृत्व यदि दायित्ववान नेताओं के हाथों में होता तो वे निष्पक्ष भाव से सभी नेताओं के बीच से किसी का नेतृत्व स्वीकार कर लेते और आपसी टकराव में अपनी शक्ति और अमूल्य समय व्यर्थ न गंवाते। भारत एक धर्मनिरपेक्ष प्रजातांत्रिक देश कहा जाता है। जहां बेचारी जनता अपने नेताओं की परस्पर तनातनी का ही अवलोकन करने के लिए अभिशप्त हो, वहां राजनीतिक मूल्य, प्रजातन्त्र की धज्जियां तो अपने आप ही उड़ जाती हैं। अंतिम पंक्ति में एक भी सूत्र के शेष न रहने की बात कहकर, हरीश नवल ने राजनीतिक विसंगतियों के चरम अपकर्ष को दर्शाया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामान्य नागरिक द्वारा, सुखद भविष्य के लिए की जा रही अतिशय प्रतीक्षा वर्णित करते हुए, हरीश नवल के शब्दों में घोर निराशावादी भाव प्रगट हुए हैं। हरीश नवल के कथन के आलोक में, टोपी का यदि एक सूत्र भी शेष नहीं रहेगा तो टोपी सिलने की संभावना ही समाप्त हो जाएगी। अर्थात् यदि राजनीतिक तंत्र में व्याप्त, विसंगतियों के निराकरण का कोई समाधान शेष नहीं रहेगा, तो राजनीतिक क्षेत्र में अस्थिरता की अति-व्याप्ति हो जाएगी। व्यंग्यकार द्वारा, अपने कथन को सशक्तता प्रदान करने के उद्देश्य से अतिशयता का प्रयोग सहज संभाव्य है, परंतु अतिशयता इतनी सीमाहीन न हो, कि परिष्कार की कोई गुंजाइश ही न रहे। आखिर आशा पर ही तो संसार टिका है, व्यंग्यकार ही जब निराश हो जाएगा तो विसंगतियों के परिष्कार के लिए मार्ग कौन प्रशस्त करेगा?

हरीश नवल ने, बूढ़े आदमी अर्थात् राष्ट्र के सामान्य नागरिक की विडंबना पूर्ण स्थिति को दर्शाया है। सामान्य जन की प्रतीक्षा की घड़ियां पांच वर्षों से पूर्व समाप्त नहीं हो सकतीं। वोट के रूप में अपने हाथ काट कर तो वह स्वयं नेता रूपी बिल्ली, बूढ़े शेर अथवा बीमार चीते को सौंप चुका होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, आम नागरिक को अपने बेहतर भविष्य की उम्मीद की प्रतीक्षा करते हुए अनेक वर्ष बीत चुके हैं, उसकी पथराई आंखें कब से उस सुनहरे दिन की प्रतीक्षा कर रही हैं, जब उसे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की चिंता में रात- रात भर जागना नहीं पड़ेगा, वह सुख की नींद सोता हुआ अपने परिवार के भरण-पोषण के साधन जुटाने में समर्थ हो सकेगा। चुनाव से पहले नेतागण, जनता के समक्ष उनकी सभी

समस्याओं का समाधान करने का आश्वासन अवश्य देते हैं, परंतु उनके द्वारा दिए गए आश्वासनों पर क्रियात्मक कार्य कब होगा? यह किसी को ज्ञात नहीं होता। नेताओं की वोट हड़पने की नीति वर्णित करते हुए *नशतर की मुस्कान* पुस्तक में सुरेश सेठ ने लिखा है- "ये लोग उनके वोटों के रथ पर सवार हो उनकी जिंदगी का कायाकल्प कर देने का वायदा कर, शासन की टोपी पहन कर बैठ गए।" (210)

उपर्युक्त कथन के आलोक में नेताओं की अवसरवादी स्वार्थी वृत्ति उभर कर सामने आती है। शासन की टोपी पहन कर बैठ जाना, अर्थात् चुनाव में विजित होकर सिंहासन पर आरूढ़ हो जाना। चुनाव से पहले वे जनता के समक्ष ऊंचे-ऊंचे वादे करते हैं, उन्हें जनता-जनार्दन जैसे सम्मान सूचक शब्दों से संबोधित करके झाड़ पर चढ़ा देते हैं। चुनाव जीतने के बाद उनके वादों की इबारत पर स्याही पुत जाती है, अथवा उसे स्वार्थ की दीमक चाट जाती है। नेताओं की इसी मनोवृत्ति को नेताओं के ही द्वारा कहे गए परिकल्पित कथन के माध्यम से सुरेश सेठ ने आगे लिखा है- "फिलहाल सपनों के इस मकड़जाल को शिरोधार्य करो। जब हमारे नाती-पोतों का शासन आएगा, तो हम इन्हें साकार करने का प्रयोजन करेंगे।" (210)

इतिहास साक्षी है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात, भारत के ही एक बूढ़े ने फटी हुई टोपी के छः सौ सूत्र एकत्रित करके टोपी को पुनः सिल दिया था। अर्थात् लोह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल ने अपने कुशल नेतृत्व द्वारा छः सौ देशी रियासतों का भारत में विलय कर दिया था। सरदार पटेल के कुशल नेतृत्व का वर्णन करते हुए धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (आधुनिक मूल्य: भाग 5) में सत्येंद्र शर्मा ने लिखा है- "बारदौली के सामान्य जन और किसानों का नेतृत्व करते वल्लभभाई पटेल 'लोह पुरुष' और 'सरदार' होकर जनमानस में अमर हैं।" (145)

सत्येंद्र शर्मा के कथन से आभास होता है कि सरदार की पदवी, उसी को मिलती है जिसमें नेतृत्व का गुण होता है, जो समाज अथवा राष्ट्र के उत्कर्ष को अपने नेतृत्व-कौशल द्वारा सुनिश्चित करता है। राष्ट्र का नेतृत्व करने वाले नेता-गण, सत्ता प्राप्ति की स्वार्थ भावना रखते हुए यदि संघर्षरत रहेंगे तो राष्ट्र के समग्र संरक्षण का उच्चतम ध्येय पूर्ण नहीं हो पाएगा। राजनीतिक क्षेत्र के अंतर्गत संदेह की भावना बनी रहती है, इसलिए राजतंत्र से संबंधित, व्यक्तियों को सदा सतर्क रहना पड़ता है। राजनीति शास्त्र में निपुण चाणक्य, राष्ट्र और समग्र राजतंत्र की सुरक्षा के विषय में सदैव सजग रहते थे। चाणक्य की राजनीतिक सूझबूझ की श्लाघा करते हुए,

रामकुमार वर्मा ने *अग्निशिखा* नाटक के अंतर्गत लिखा है- "चाणक्य ने अपनी राजनीति में गुप्तचरों की जो प्रबल सेना संगठित की थी, उससे शत्रु की कोई अभिसंधि सफल नहीं हो सकती थी।" (6) चाणक्य इतने नीति निपुण थे कि शत्रु कितनी भी चतुराई से कोई षड्यंत्र रचे, चाणक्य की पारखी आंखों से छिप नहीं सकता था तथा सदैव निष्फल ही सिद्ध होता था। चाणक्य की दूरदर्शिता, शत्रु के मंसूबों पर पानी फेर देती थी। स्पष्ट है कि समग्र नेता-वर्ग, राजतंत्र से संबंधित होता है अतः उसे सदैव अपने आसपास के परिवेश का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते हुए सतर्क रहना पड़ता है। समय-समय पर अपने सहयोगियों की विश्वसनीयता की परख भी करनी पड़ती है, यदि वे आपस में ही सत्ता की लूट-खसोट में संलग्न रहेंगे तो 'सावधानी हटी, दुर्घटना घटी' का अंदेशा बना रहेगा।

6.4 वाणी का कौशल, व्यक्ति की गरिमा, उपलब्धता, तत्परता तथा अपरिग्रह। राजनीतिक मूल्य क्षरित होते दर्शाए हैं। इन राजनीतिक मूल्यों का विखंडन हरीश नवल द्वारा रचित व्यंग्य पुस्तक, *वाया पेरिस आया गांधीवाद* के अंतर्गत अवलोकित किया गया है।

‘आली! क्या चुनाव फिर आने वाले हैं?’ व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, एक सामान्य भारतीय नारी को प्रतीक बनाते हुए, चुनाव से पहले उसके अंतर्मन की दशा वर्णित करते हैं। समग्र व्यंग्य रचना के अंतर्गत वह स्त्री अपनी सखी से चुनाव के समीप आने की, और उस दौरान राजतंत्र की सरगर्मियों के विषय में वार्तालाप करती है। हरीश नवल उस स्त्री के माध्यम से राजनेताओं द्वारा बिछाए जा रहे मखमली जाल को इंद्रधनुष की संज्ञा देते हुए लिखते हैं- "नव इंद्रधनुष की भांति सतरंगी घोषणाएं रची जा रही हैं।" (45)

हरीश नवल द्वारा कहे गए कथन के आलोक में राजनीतिक मूल्य, वाणी का कौशल और व्यक्ति की गरिमा का भाव क्षरित हुआ है। नेताओं द्वारा की गई सतरंगी घोषणाओं द्वारा, वाणी का कौशल जनता को केवल रिझाने के लिए दर्शाया जाता है, चुनाव जीतने के बाद वे घोषणाएं, 'जो गरजते हैं वे बरसते नहीं' मुहावरे को सार्थक करती प्रतीत होती हैं। नेता वर्ग द्वारा जनता पर प्रभाव डालने के लिए की गई घोषणाएं जब कपोल- कल्पित सिद्ध होती हैं, उस समय एक व्यक्ति के रूप में नेता की गरिमा खंडित होती है, क्योंकि उस व्यक्ति के कथन पर फिर किसी को भरोसा नहीं होता। चुनाव में विजित होने के पश्चात, नेताओं द्वारा की गई घोषणाएं क्षितिज के दूसरी तरफ चली जाती हैं, तब जनता की आंखें खुलती हैं और उसे पता चलता है कि इन तिलों में तेल नहीं था।

हरीश नवल ने नेताओं द्वारा की गई घोषणाओं को सतरंगी कहते हुए व्यंग्य के साधन वक्रता को प्रयुक्त किया है। जिसका आशय है कि चुनावी मौसम में प्रत्येक राजनीतिक दल, जनता को रिझाने के लिए, लुभाने के लिए, अलग-अलग प्रकार का चारा डाल रहा है। जिस गांव, कस्बे अथवा शहर में जो-जो ज्वलंत समस्याएं हैं, जिनका निदान, प्राथमिक स्तर पर किया जाना अपेक्षित है, नेताओं के चाटुकार उन्हें सूंघते हुए वैसी ही घोषणाएं, नेताओं द्वारा करवा देते हैं। इस तथ्य से वे भली प्रकार से परिचित हैं कि घोषणाएं केवल प्रसारित करने के लिए हैं, क्रियान्वित करने के लिए नहीं। राष्ट्र का प्रत्येक सामान्य मतदाता भी यह जानता है, परंतु वह वोट देने के लिए अभिशप्त है। इस विडंबनापूर्ण सत्य को वर्णित करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "हे सखे! देख तो वायदों के चल स्वर्ण-पाश में बंधा यह रुदनशील वोटर कैसे हठात् मुस्काने लगा है।" (45)

उपर्युक्त कथन में हरीश नवल ने कलात्मक और समृद्ध भाषा का प्रयोग किया है। हरीश नवल के कथन में करुणाजन्य विरोधाभास दृष्टिगत होता है। प्रत्येक चुनाव से पहले, नेताओं द्वारा जनता को आश्वासनों के पाश में बांधा जाता है। इन पाशों को स्वर्ण युक्त इसलिए कहा गया है, क्योंकि ये मतदाता को भविष्य के स्वर्णिम सुख के मृगतृष्णा-लोक में ले जाते हैं। इन बंधनों को चल इसलिए कहा गया, क्योंकि ये अचल नहीं होते, समय-समय पर इनकी पुनरावृत्ति होती रहती है और हर पांच साल से चंद्र रोज पहले इन्हें दृढ़ता प्रदान की जाती है। यथार्थ में इन वायदों की पूर्णता के दूर-दूर तक कोई आसार नजर नहीं आते। नेताओं की कुटिल चालों को जनता जानती है, पहचानती है। नेताओं के छल-कपट से युक्त व्यक्तित्व के विषय में *भाति में भारतम्* पुस्तक के अंतर्गत, रमाकांत शुक्ल: ने लिखा है-

"शासनासन्दिकाराधनैकव्रतं, नेतृवृन्दं समालोक्य छद्मावृतम्,

यत्र नित्यं हसन्ति प्रजानां गणाः भूतले भाति तन्मामकं भारतम्।" (86)

अर्थात् जहां केवल, सत्ता की कुर्सी के पुजारी, तथा कपट-छल से परिपूर्ण नेताओं के झुंड को देखकर प्रजा जनों को नित्य-नित्य हंसी आती है, वह भारत भूतल पर शोभायमान है। रमाकांत शुक्ल: भारत की विशेषताओं को वर्णित करते हुए भी, नेताओं के विषय में व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हैं कि महान देश भारत में राजनीतिज्ञ, सिंहासन-प्रेमी तथा छल-कपट करने में पारंगत होते हैं। राष्ट्र का बुद्धिजीवी वर्ग नेताओं की वायदों से भरी पोटली को देखकर

मुस्कराता है, क्योंकि वह भली भांति जानता है कि इस पोटली में केवल हवा भरी है, चुनाव जीत जाने के बाद, नेता लोग पोटली झाड़ देंगे और हवा, वायुमंडल में विलीन हो जाएगी।

हरीश नवल के कथन से साम्य-भाव रखते हुए, शरद जोशी ने भी, चुनाव से पहले दो सखियों के मध्य वार्तालाप को वर्णित किया है। एक सखी, नेता की चिकनी चुपड़ी बातों के प्रभाव को वर्णित करती है, जिसे शरद जोशी ने *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक के अंतर्गत, वर्णित करते हुए लिखा है- "मीठी मीठी बातों का धनी, वह चतुर नट, जिसने फुसलाकर हमारा वोट हर लिया। आज मुझे सुबह की वेला वह फिर दिखाई दिया।" (189)

शरद जोशी 'देखन में छोटे लगे, घाव करे गंभीर' की उक्ति को सार्थक करते हुए प्रतीत होते हैं। राजनेता, चुनाव से पहले इसी प्रकार चाशनी में भीगी, मीठी वाणी का प्रयोग किया करते हैं और चतुर नट की भांति, जनता रूपी जमूरे को नचाया करते हैं। शरद जोशी द्वारा नेता रूपी नट का फिर से दर्शाया जाना, इस तथ्य की पुष्टि का संकेतक है, कि पिछली बार भी वह नेता इसी प्रकार जनता को भ्रमित करते हुए, वोट हथियाने में सफल हो गया था। पांच साल बाद चुनाव दोबारा होने वाले हैं, इसलिए बदली में छुपे चांद की तरह, नेता एकाएक फिर से प्रकट हो गया। चुनाव से पहले प्रत्येक राजनीतिक दल, जनता को प्रभावित करने के लिए, अपने सहयोगी पूंजीपतियों की तिजोरियां खुलवा लेता है, इस क्रियात्मकता में भी वह एक तीर से दो शिकार करता है, जनता की सेवा का ढोंग और पूंजीपतियों के काले धन को ठिकाने लगाना। नेताओं की कुटिल चालों का वर्णन करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "हर दल, एक बल बन छल जाता है। जंग लगी तिजोरियां, खुलकर राजनीतिक जंग लड़ने वाली हैं।" (46)

उपर्युक्त कथन के अंतर्गत हरीश नवल, 'जंग' शब्द को दो अर्थों में प्रयुक्त करते हैं। तिजोरियों को जंग लगने की बात कहते हुए, उनके कथन से उपहास का भाव परिलक्षित होता है। नेताओं को तिजोरियां भरने से ही अवकाश नहीं मिलता, एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, यह क्रम अनवरत रूप से चलता रहता है, क्योंकि लोभ का घड़ा कभी नहीं भरता। इस प्रकार तिजोरी, केवल एक बार खुलने की मुद्रा में होती है, भरते समय। इसके पश्चात उसे खोलने की जरूरत नहीं पड़ती, इसलिए उसका लोहा हवा और पानी के प्रभाव से जंग खा जाता है। दूसरी बार 'जंग' शब्द का प्रयोग उन्होंने युद्ध के संदर्भ में किया है। तिजोरियों द्वारा राजनीतिक जंग लड़े जाने का यह अर्थ है कि चुनाव के दौरान विभिन्न राजनीतिक दलों के मध्य, प्रतिस्पर्धा चलती रहती है। जिसके अंतर्गत उनकी तिजोरियां चुनावी युद्ध में सैनिकों की भूमिका

निभाती हैं। किस राजनीतिक दल की तिजोरी अपेक्षित लाभ पहुंचा पाती है, यह तो चुनाव-परिणाम के घोषित होने के पश्चात ही पता चलता है।

चुनाव के दिनों में नेता वर्ग के सहयोगी पूंजीपति, धन द्वारा सहयोग देते हैं, नगर अथवा गांव के शक्तिशाली लोग, विभिन्न नेताओं के चुनावी कार्यकर्ता बन जाते हैं। जनता की सेवा करने की आड़ में, व्यापारी लोगों को चोर- बाजारी का सामान निकालने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए शरद जोशी ने, *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक के अंतर्गत आगे लिखा है- "नगर के गुंडे उस समय कार्यकर्ता बन गए थे, स्मगलरों का त्याग अति सराहनीय था। चोर बाजार के व्यापारी, प्रजातंत्र के दायित्वों के प्रति जागरूक हो गए थे।" (189)

शरद जोशी के कथन से स्पष्ट है कि चुनाव जीतने के लिए नेता लोग, कई प्रकार की विधियां अपनाते हैं। जहां घी सीधी उंगली से न निकलता हो, वहां नगर के शक्तिशाली लोगों द्वारा प्रभाव डाला जाता है। जहां निर्धनता, भूख की बेचैनी हो, वहां नेता लोग व्यापारी मित्रों द्वारा, चोर बाजारी का बरसों से पड़ा हुआ, सड़ा हुआ अनाज खपा देते हैं। निर्धनों की सहायता करने के साथ-साथ व्यापारियों के गोदामों की साफ -सफाई भी हो जाती है। 'एक पंथ दो काज' । जीवनयापन की सभी प्रविधियों में राजनीति अधिक विश्वसनीय, टिकाऊ और 'हींग लगे न फिटकरी' जैसी है। इसके लिए किसी डिग्री की आवश्यकता नहीं, आयु-सीमा का कोई बंधन नहीं, किसी प्रकार के शारीरिक मापदंड अथवा अंको के आंकड़ों की जरूरत नहीं। हरिशंकर परसाई ने अपने एक परिचित का उल्लेख करते हुए *तिरछी रेखाएं* पुस्तक में, व्यंग्याक्षेप के द्वारा राजनीति को व्यवसाय के रूप में अपनाना, श्रेष्ठतर मानते हुए लिखा है-"फिर मनीषी जी ने राजनीति का व्यवसाय अपनाया। नेता हो जाना अच्छा धंधा है।" (59)

जिस व्यवसाय के द्वारा व्यक्तिगत जीवन से ऊपर उठकर, आने वाली अनेक पीढ़ियों के लिए अर्थ-संग्रह कर लिया जाए, वह व्यवसाय निश्चित रूप से अच्छा ही होगा। सामान्य मनुष्य का, अधिकांश समय धन की जोड़-तोड़ करने में ही व्यतीत होता है। कुछ धन एकत्रित हो जाने पर, प्राप्त धन के प्रबंधन के द्वारा और अधिक धन बनाने की कोशिश की जाती है, परंतु नेतागिरी एक ऐसा धंधा है कि जिसके अंतर्गत, धन खुद चल कर व्यक्ति के पास जाता है, अब भला इससे अधिक और सुभीता क्या होगा? भारत के इतिहास में तो ऐसे- ऐसे शासकों का वर्णन है, जिन्होंने प्रजा हितार्थ, व्यक्तिगत धन व्यय करने की भी उदारता दिखाई।

श्रीरामकथा के अंतर्गत, महारानी कैकयी जब महाराज दशरथ से वरदान के रूप में भरत के लिए अयोध्या का राज-सिंहासन और राम के लिए, चौदह वर्ष का बनवास मांग लेती है तो वन-गमन करने से पहले राम अपनी व्यक्तिगत संपत्ति प्रजा में बांट देते हैं, वे उसे अपने लिए संग्रहित नहीं करते। इस विचार की पुष्टि करते हुए विनोद बाला अरुण ने राम की उदारता के विषय में जानकारी देते *राम कथा में नैतिक मूल्य* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "वे अपने आश्रित सेवकों को... बुलाकर उनमें से एक-एक को चौदह वर्षों तक जीविका चलाने योग्य बहुत सा द्रव्य प्रदान करते हैं।"(244)

इतिहास के शासकों की वर्तमान शासकों से तुलना करने पर यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि वर्तमान शासक, प्रजा पर कोई भी विपत्ति आने पर, अपनी जेब से कानी कोड़ी भी खर्च नहीं करते। वे शासकीय कोष में से मनचाही राशि, मुआवजे के तौर पर देने की घोषणा कर देते हैं और स्वयं को बहुत बड़ा दानवीर समझने लगते हैं। चुनाव के दौरान वे अपने भाषणों में बार-बार अपनी उदारता का उल्लेख करते हैं कि उनके दल ने अमुक कठिन समय में जनता की आर्थिक सहायता की। दान तो वह माना जाता है जिसे अपने उद्यम द्वारा कमाया गया हो। सम्राट चंद्रगुप्त की प्रजावत्सलता की ध्वल -गाथा इतिहास प्रसिद्ध है। नंद वंश के विनाश के उपरांत, चंद्रगुप्त कुसुमपुर में कौमुदी- महोत्सव आयोजित करने की योजना बनाते हैं। उत्सव के आयोजकों से, उत्सव का सारा खर्च उनके व्यक्तिगत चंद्रकोष से व्यय करने की ताकीद करते हैं। राजकीय उत्सव जो प्रजा के मनोरंजनार्थ, आयोजित करवाए जाएं, उस पर आने वाला खर्च राजकोष ही वहन करता आया है। चंद्रगुप्त द्वारा उत्सव के आयोजन पर, व्यक्तिगत कोष का उपयोग करना यह दर्शाता है कि वे राजकोष को प्रजा की धरोहर समझते हैं और उसका निवेश प्रजा हितकारी कार्यों में ही करना चाहते हैं।

उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि करते हुए रामकुमार वर्मा ने *अग्निशिखा* नाटक में चंद्रगुप्त के कथन के माध्यम से लिखा है-"इस महोत्सव में जितने भी पण व्यय किए जाएं, वे राजकोष से व्यय न होकर मेरे 'चंद्रकोष' से व्यय किए जाएं।" (88) चंद्रगुप्त जैसे शासक के समक्ष, प्रजा-जनों का शीश श्रद्धा से कैसे नत न होगा? सम्राट चंद्रगुप्त का उपर्युक्त आचरण धन के प्रति उनकी अनासक्ति के भाव की पुष्टि करता है। सम्राट चंद्रगुप्त ने प्रजातांत्रिक शासन न होते हुए भी, प्रजा के हित को प्रमुख रखा और राजकोष पर मात्र प्रजा का अधिकार समझा, स्वयं को प्रजा और राज्य का केवल संरक्षक माना। ऐसे निर्लोभी और अनासक्त शासक के शासकत्व के अधीन, कोई भी नागरिक विसंगति पूर्ण व्यवहार करने का साहस नहीं जुटा पाता। ऐसे

शासक के कथन का 'मूल्य' होता है, और उसके कथन को प्रजा प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करती है।

'डाउन ट्यून अवार्ड समारोह का आंखों देखा हाल'व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल, एक दूरदर्शन चैनल डाउन ट्यून द्वारा, राष्ट्र के भ्रष्ट राजनीतिज्ञों में से भ्रष्टतम, राजनीतिज्ञ को चयनित करने के लिए एक कल्पित निर्णायक मंडल गठित करते हैं। सभी राजनीतिज्ञों में से हवाला के हवाले से, तीन भ्रष्ट नाम चयनित किए जाते हैं, अल्पनाथ राय, लालकृष्ण गुडबानी, गरद नाचव। इन तीनों की प्रतिभा को वर्णित करते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "इन तीनों ने अनेक अदर पीपल की तरह, जैन स्टोर से चूना बिना पैसे दिए लिया। यह चूना लाखों का था जिसे लगाने की तैयारी इन्होंने की थी।" (89)

निर्णायक मंडल तीनों प्रतिभागियों में से, अल्पनाथ राय को पुरस्कार के योग्य समझता है, क्योंकि अल्पनाथ राय की अप्रतिम योग्यता के समक्ष वे दोनों पानी भरते नजर आते हैं। इस विषय में निर्णायक मंडल में से एक निर्णायक, अपने कथन की पुष्टि करता है। उसके कथन को उद्धृत करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "डायरी में भी उनका नाम, चीनी के बोरों पर भी उनका नाम, और भी काफी नाम कमाया उन्होंने। उन्हें दिया जा रहा है डाउनट्यून का खूबसूरत प्राइज़ 'हवालाश्री" (90)

अल्पनाथ राय को, हवालाश्री का पुरस्कार दिए जाने की बात कहते हुए, हरीश नवल ने राजनीतिक परिवेश का अपकर्ष दर्शाया है। पुरस्कार पाने के उपक्रम में अल्पनाथ राय तो चौबे जी बन गए, शेष दोनों दूबे ही रह गए। वर्तमान राजनीतिज्ञ, पूंजीपतियों के साथ मिलकर राष्ट्रीय धन को भ्रष्टाचार द्वारा, उदरस्थ किए जा रहे हैं। कमीशन लेने वाले राजनीतिज्ञों को अपनी महिमा अथवा गरिमा खंडित होने का भय भी नहीं सताता। ऊंची कुर्सी पाने के आकांक्षी नेता लोग, नेतृत्व की गरिमा को अक्षुण्ण नहीं रख पाते। जहां सभी निर्लज्ज हों, वहां से लज्जा को ही दुम दबाकर भागना पड़ता है। किसी नेता को हवालाश्री के नाम से विभूषित करना वास्तव में उस पर घड़ों पानी डालने जैसा है।

उपर्युक्त कथन के आलोक में उपलब्धता, तत्परता तथा अपरिग्रह, राजनीतिक मूल्य ध्वस्त होते दर्शाए गए हैं। राजतंत्र में सत्तासीन होने का सुअवसर उपलब्ध होने पर उसका अनुचित लाभ उठाना उपलब्धता के निषेधपरक रूप को दर्शाता है। हवाला, घोटाला या अन्य किसी भी भ्रष्ट विधि से धन-संग्रह करने में तत्पर रहने से तत्परता तथा अपरिग्रह राजनीतिक

मूल्यों का विखंडन हुआ है। लोक कल्याणकारी कार्यों में तत्पर रहना, तत्परता का विधिपरक रूप है, और भ्रष्ट रीति से किसी भी कार्य का सक्रिय क्रियान्वयन, तत्परता का निषेधपरक रूप है। हवाला कांड के संदर्भ में गिरिराजशरण अग्रवाल ने *मंचीय व्यंग्य एकांकी* पुस्तक के अंतर्गत "घोटाला इतिहास" व्यंग्य एकांकी में एक पात्र के माध्यम से लिखा है- "आधुनिक भारत के इतिहास में इस कांड को 'जैन हवाला कांड' के नाम से याद किया जाता है। यह सन 1991 में निहायत शानदार ढंग से घटित हुआ था, इसने अपना रेशम का फंदा किसी एक के नहीं, बल्कि दर्जनों दिग्गज राजनीतिज्ञों के गले में डाला था।" (158)

हवाला कांड का शानदार तरीके से घटित होना, बताते हुए गिरिराजशरण अग्रवाल ने राजनीतिज्ञों द्वारा, राजनीतिक क्षेत्र का अपकर्ष दर्शाया है। दर्जनों दिग्गज राजनीतिज्ञों का, हवाला कांड में सम्मिलित होना इस तथ्य का संकेतक है कि राजनीति के हमाम में सब नंगे हैं, किस-किस को तौलिया दिया जाए? हवाला-घोटाला करने वाले राजनीतिज्ञ, अपने सदाचार को बेचकर भ्रष्टाचार खरीदते हैं। धन-प्राप्ति के लिए अपने उच्च राजनीतिक पद का दुरुपयोग करना, अपने आप को बेचने जैसा ही है। जिस व्यक्ति के भ्रष्ट कृत्य को प्रश्रय देने के लिए राजनीतिज्ञ, हवाला-घोटाला करते हैं, उस व्यक्ति के प्रति उंगली कैसे उठा सकते हैं? जब वे अनुचित कार्य को अनुचित कह ही नहीं पाएंगे तो उनके द्वारा राजनीतिक मूल्यों का निर्वहण कैसे होगा? इस तथ्य को वर्णित करते हुए बालेंदु शेखर तिवारी ने *व्यंग्यालोचन के पार-द्वार* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "पहले नेताओं की तस्वीरें बिकती थीं, आज नेता खुद बिकता है। हालात इतने फिसले और गिरे हैं कि जीवन- मूल्य भागकर शब्दकोशों में छुप गए हैं।" (86)

उपर्युक्त कथन में सच्चाई है। पहले, नेताओं के शुभ चारित्रिक गुणों के कारण जनता उनकी तस्वीरें खरीदती थी, उन चित्रों के द्वारा अपने आवास को सुसज्जित करती थी। दीपावली के पास आने पर, श्रीगणेश, माता-लक्ष्मी तथा अन्य देवी-देवताओं के चित्रों के साथ-साथ, लोगों द्वारा भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद तथा नेताजी सुभाष चंद्र बोस इत्यादि के चित्र भी खरीदे जाते थे तथा उन्हें घर की दीवारों पर सजाया जाता था। इन चित्रों को भित्तियों पर लगाने के परिप्रेक्ष्य में यह उद्देश्य नीहित रहता था कि इन्हें देख कर परिवार के बालक, जिज्ञासावश उनके विषय में पूछेंगे। आवश्यक जानकारी प्राप्त होने पर वे भी स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदान से प्रभावित होंगे, परिणामस्वरूप उनके अंतर्मन में भी राष्ट्रप्रेम के अंकुर प्रस्फुटित होंगे। वर्तमान समय में नेता के लिए धन प्राप्ति के लिए मर मिटना जीवन का चरम लक्ष्य बन चुका है। अपने जीवन को केंद्र में रखते हुए सब सुख-साधन जुटाना ही जीवन नहीं कहलाता। लोक-हितार्थ कार्य करना,

प्रजा को सुखी रखने के लिए चिंतनशील रहना आदर्श राजतंत्र की कसौटी है। जीवन-मूल्यों का शब्दकोश तक सीमित रहना कहते हुए, व्यंग्यकार का स्वर अत्यंत पीड़ायुक्त प्रतीत होता है, इसीलिए उसने अपने अंतर्मन की व्यथा उद्घाटित करने के लिए अतिरंजना का आश्रय लिया। जीवन-मूल्य यदि शब्दकोश तक ही सीमित होते तो व्यंग्यकार उनका उपयोग कैसे कर पाता? यदि वह स्वयं जीवन-मूल्यों के निर्वहण के लिए प्रतिबद्ध न होता तो उसके स्वर से करुणा का भाव प्रतिबिंबित नहीं हो सकता था।

भारत के इतिहास में धन के प्रति अनासक्त भाव दर्शाने वाले ऐसे-ऐसे अपरिग्रही शासक हुए हैं, जिनकी त्यागमयी तेजस्विता से इतिहास से लेकर, वर्तमान तक आभासित है। अयोध्या के सम्राट रघु के पास ब्राह्मण कुमार कौत्स, चौदह कोटि स्वर्ण मुद्राएं पाने की इच्छा से पधारते हैं, जो उन्हें अपने गुरु को गुरु दक्षिणा के रूप में देनी हैं। महाराज रघु की वेशभूषा देखकर ब्राह्मण कुमार बिना कुछ लिए ही वहां से प्रस्थान करने को उद्यत होते हैं। वे प्रत्यक्ष देखते हैं कि सम्राट रघु के तन पर कोई आभूषण नहीं है और उन्होंने कौत्स की अतिथि-सेवा करने के लिए जो अर्ध प्रदान किया, वह भी मिट्टी के पात्र में था।

सच्चाई यह थी कि महाराज रघु ने यज्ञांत में अपना सर्वस्व दान कर दिया था। महाराज रघु के द्वार से कोई ब्राह्मण रीते हाथ कैसे लौट सकता था? उन्होंने ब्राह्मण कुमार से तीन दिन और ठहरने की प्रार्थना की। उन्हें याद आया कि अन्य सभी राजाओं ने उन्हें वार्षिक कर दे दिया था, केवल कुबेर की ओर से कर, दिया जाना शेष था। महाराज रघु ने कुबेर से कर उगाहने के लिए प्रातः काल प्रस्थान करने का निश्चय किया। परंतु उन्हें वहां जाना ही नहीं पड़ा, क्योंकि प्रातःकाल ही कोषाध्यक्ष ने उन्हें सूचित किया कि कोषागार में स्वर्ण-वर्षा हो रही है, कुबेर ने इस तरीके से कर चुकाया। महाराज रघु की धन के प्रति अनासक्ति को वर्णित करते हुए *कल्याण* के हिंदू संस्कृति अंक के अंतर्गत, हनुमान प्रसाद पोद्दार ने "कुछ प्राचीन आदर्श परोपकारी भक्त राजा और सत्पुरुष" आलेख में महाराज रघु के कथन को परिकल्पित करते हुए लिखा है- "यह द्रव्य आप के निमित्त आया है। ब्राह्मण के निमित्त प्राप्त द्रव्य में से मैं या मेरी प्रजा कोई अंश कैसे ले सकती है?" (944)

महाराज रघु द्वारा ब्राह्मण कुमार से कहा गया उपर्युक्त कथन, शासक की अनासक्ति, निर्लोभी, तथा उज्ज्वल छवि को प्रतिबिंबित करता है। जो शासक अपना सर्वस्व दान करने के पश्चात भी, अपने पास धन का नितांत अभाव होने के पश्चात भी, धन की उपलब्धता को केवल

इसलिए ठुकरा देता है, क्योंकि प्राप्त धन को वह उस ब्राह्मण की धरोहर समझता है, जिसका संकल्प वह ब्राह्मण कुमार को देने के लिए कर चुका है। ऐसे निस्पृही शासक की प्रजा, लोभी प्रवृत्ति की धारक कैसे हो सकती थी? ब्राह्मण कुमार कौत्स ने भी, चौदह कोटि स्वर्ण मुद्राओं से अधिक मुद्राएं स्वीकार नहीं कीं। इस अनुपम त्याग का समापन शेष मुद्राएं ब्राह्मणों को दान करके संपन्न हुआ। वर्तमान समय का परिदृश्य सर्वथा विपरीत है। आज के शासकों को जो धन अधिकार-स्वरूप प्राप्त होता है, वे उतने धन से संतुष्ट नहीं हो पाते। अधिक धन प्राप्त करने के लिए वे हवाला और घोटाला विधि को अपनाते हैं। भारत के प्राचीन शासकों के प्रबंधन तथा वर्तमान शासकों के प्रबंधन में जमीन-आसमान का अंतर दृष्टिगत होता है। वर्तमान नागरिक पुरातन शासकों को स्मरण करते हुए गौरव की अनुभूति करते हैं, भविष्यगत नागरिक, अतीत के शासकों को स्मरण करते हुए शिखर तक शर्मिदा होंगे।

6.5 न्याय, अवसरवादिता तथा नीतिज्ञता। वर्णित राजनीतिक मूल्यों का क्षरण हरीश नवल कृत व्यंग्य पुस्तक *इक्यावन व्यंग्य रचनाएं* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

'हर चौराहा यहां गौशाला' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने राष्ट्र के राजतंत्र के नियामकों द्वारा पशु समाज के प्रति की जा रही अवहेलना को रेखांकित किया है। प्रकृति-निर्मित समग्र जीव-जगत के अंतर्गत मानव, पशु-पक्षी, कीट-पतंगे इत्यादि बहुत से जीव सम्मिलित हैं। प्रकृति प्रदत्त संसाधनों पर सभी जीवों का अधिकार है। परंतु मनुष्य इतना स्वार्थी है कि वह अकेला ही प्रकृति के वरदानों का उपभोग करना चाहता है। फिर मनुष्य यदि नेता हो तो क्या कहने! नेताओं द्वारा पशुओं का चारा तक उदरस्थ किए जाने के अनोचितपूर्ण व्यवहार की आलोचना करते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "जब सारी घास उनके हिस्से में आएगी तो बेचारी गाय चरेगी क्या? वे देश चरते हैं, यह घास भी नहीं चर सकती।" (161) उपर्युक्त कथन के आलोक में राजनीतिक मूल्य न्याय का हनन दर्शाया गया है। सृष्टि में हर जीव को अपने उदर पूर्ति करने का अधिकार है। उसे, इस नैसर्गिक अधिकार से भी वंचित रखना न्याय के विरुद्ध है।

हरीश नवल ने, गाय को माता मानने वाले देश में, गाय की ही निस्सहाय स्थिति का कारुणिक चित्रण किया है। अतुल राष्ट्रीय धन से क्रय किया गया पशु-चारा भी, नेताओं के सुरसा-मुख द्वारा भक्षण कर लिया जाता है। जीवित रहने के लिए भोजन-पानी, हर प्राणी की मूलभूत आवश्यकता है, उसके प्रति गिद्ध दृष्टि रखना हर दृष्टिकोण से अनुचित है। भूखे पेट,

जब गाय कूड़े-करकट के ढेर में से अपने लिए खाद्य पदार्थ तलाश करती है, तो उसकी करुण दृष्टि आते-जाते मानव समाज से प्रश्न करती है, अरे हृदयहीन मानव! कुछ भोज्य पदार्थ तो पशु-पक्षियों के लिए भी छोड़। नेताओं द्वारा देश चरने की बात कहते हुए हरीश नवल ने धन के प्रति उनकी चरम आसक्ति को अभिव्यक्त किया है।

हरीश नवल ने उपर्युक्त कथन के द्वारा, गाय के हिस्से में चारा तक उपलब्ध न होने की बात की है, परंतु प्रेम जनमेजय, समग्र जनता को बेचारी घोषित कर देते हैं। राजनीतिक तंत्र के अधिष्ठाता, समग्र चारा अपनी नांद के हवाले करते हुए जनता को बे-चारी बना देते हैं। इस विषय में प्रेम जनमेजय ने *कौन कुटिल खल कामी* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "हमारे समाज में जो 'बेचारी' जाति के जीव हैं उनका कुछ नहीं होता। वे तो बेचारे हैं ही, इसलिए कि उन्हें चारा नहीं मिलता और उनके कंधे पर चढ़े, चुनाव का संग्राम जीतकर आए चारा हड़पने वाले जो चाहें, उनका हो जाता है।" (32)

प्रेम जनमेजय के कथन के आलोक से स्पष्ट है कि सामान्य जनता को, राष्ट्रीय संसाधनों में से इतना भर भी नहीं मिलता, जिससे उनकी गुजर हो सके, उनके परिवार को पेट भर भोजन उपलब्ध हो सके। चुनावी संग्राम जीतकर आए हुए योद्धा जितना उनका जी चाहे, उतने संसाधनों पर कब्जा कर सकते हैं, लेकिन जनसाधारण को जीने लायक भी साधन उपलब्ध नहीं हो पाते। वर्तमान युग की इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है?

प्रेम जनमेजय ने राजनीतिज्ञों की अर्थलिप्सा की विकृति का चरम अपकर्ष दर्शाया है। लालच के शिखर को स्पर्श करने का असंभव संकल्प मनुष्य को, अंततः पतन की गहरी खाई में धकेल देता है। लालच का मीनार इतना ऊंचा है कि मनुष्य जैसे-जैसे उसे स्पर्श करने के लिए ऊपर चढ़ता है, वैसे-वैसे उस मीनार की ऊंचाई और भी ज्यादा बढ़ती जाती है। उसी अनुपात में मानव की मानवता, रसातल में चली जाती है। गाय, चारे की खोज में चौराहों पर पहुंचकर गौशाला का दृश्य उपस्थित करती हैं। हरीश नवल ने इसके परिप्रेक्ष्य में, ग्वालों द्वारा दर्शाई गई अवहेलना को रेखांकित किया है। अर्थप्रधान संस्कृति में ग्वाला भी उस से निर्लिप्त कैसे रह सकता है? वह केवल इतने भर से संतुष्ट नहीं होता कि गाय के द्वारा उसके समग्र परिवार को, शुद्ध दूध-घी, दही-मक्खन मिल रहा है, चूल्हा जलाने के लिए ईंधन उपलब्ध हो रहा है। वह चाहता है कि गाय के द्वारा उसे सब लाभ मिलता रहे, परंतु उसे गाय के चारे की व्यवस्था न करनी पड़े। हरीश नवल ने ग्वाले की विवशता को वर्णित करते हुए आगे लिखा है-

"उन गरीबों को ही कौन रोज-रोज घास डालता है, कहीं पांचेक वर्षों में एकाध बार घास डालती है।" (162)

ऊपर लिखित कथन में हरीश नवल ने नेताओं की अवसरवादी वृत्ति पर व्यंग्य-प्रहार किया है। नेता लोग लगभग पांच साल के बाद, जनता को चारा डालने आते हैं। उन बेचारों को आना ही पड़ता है, वोट जो लेने हैं, प्यासे को कुएं तक तो चलकर आना ही पड़ेगा। चुनाव से पहले एक बार भी, उन्हीं नागरिकों को घास डाली जाती है, जहां से काफी मात्रा में वोट मिलना सुनिश्चित होता है। जनता तक चलकर आने में उन्हें इतना श्रम करना पड़ता है कि वह दूर से ही जनता को चारा दिखाकर आश्वस्त कर देते हैं यह कहते हुए, कि अभी केवल देखने से काम चला लो, समय आने पर चारा उपलब्ध भी करवा दिया जाएगा। पर वह समय क्या कभी आएगा?

हरीश नवल द्वारा कहे गए कथन के आलोक में राजनीतिक मूल्य, अवसरवादिता का क्षरण हुआ है। 'अवसर' शब्द सकारात्मक भाव को संप्रेषित करता है। जीवन के हर क्षेत्र में तो इसका महत्व है ही, राजनीतिक तंत्र में इसका बहुत महत्व है। पांडवों की ओर से, युद्ध की स्थिति से बचने के लिए श्रीकृष्ण संधि का प्रस्ताव लेकर आते हैं। यदि धृतराष्ट्र उस अवसर को हाथ से न जाने देते और पांडवों को केवल पांच गांव प्रदान कर देते तो महाभारत का भीषण रक्तपात न हुआ होता। हरीश नवल ने नेताओं द्वारा जनता के समक्ष, पांच वर्षों में एक बार पदार्पण करने की विडंबना को दर्शाया है, लेकिन विष्णु नागर ने इसी स्थिति को उपहास के माध्यम से व्यक्त किया है। चुनाव के पास आने पर वे मंत्री द्वारा, जनता के नाम एक काल्पनिक पत्र लिखते हैं। *राष्ट्रीय नाक* पुस्तक के अंतर्गत, चुनाव निकट आने के अवसर पर मंत्री के मानसिक उद्गार को अभिव्यक्त करते हुए विष्णु नागर ने लिखा है- "सचमुच मैं अपराधी हूँ तुम्हारा कि पाँच साल गुजरने को आए और मैं तुम्हारी खबर भी न ले पाया।" (127)

मंत्री स्वयं इस अपराध को स्वीकारता है कि वह जनता का अपराधी है क्योंकि अपने कार्यकाल के दौरान उसने जनता की कोई सुधि नहीं ली। इस स्वीकारोक्ति के परिप्रेक्ष्य में भी उसकी राजनीतिक अवसरवादिता की गंध आती है। अपराध स्वीकार करते हुए मंत्री, जनता के समक्ष विनम्र और ईमानदार बनने का दिखावा करता है। मंत्री के चाटुकार बुलंद स्वर में अपने नेता की सत्यवादिता का गुणगान करने लगते हैं कि देखिए, हमारे नेता कितने महान हैं। राजनीतिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वे जनता के मध्य नहीं आ पाए, इसके लिए भी स्वयं

को कसूरवार मान रहे हैं। मंत्री अपने अंतर्मन में, जनता के लिए बुने गए स्वप्नजाल में उसे उलझाने के उद्देश्य से, अपने खोखले संकल्पों को दोहराता है कि उसके जीवन की एकमात्र इच्छा, उन सपनों को पूरा करना है, जो उसने जनता के सुखद भविष्य के लिए देखे थे। मंत्री के सारहीन संकल्पों को उसी के कथन के माध्यम से वर्णित करते हुए विष्णु नागर ने आगे लिखा है- "अब शेष जीवन में सिर्फ एक ही इच्छा रह गई है, जो करूं सिर्फ तुम्हारे लिए करूं। इसी वजह से मैं यूरोप-अमेरिका की एक महीने की यात्रा पर जा रहा हूं।" (128)

अब यह तो सोचने की बात है कि जो मंत्री स्वदेश में रहते हुए, सामान्य जनता के बीच पांच वर्षों में एक बार भी नहीं जा पाया, वह विदेश जाकर जनता का कौन सा भला करने वाला है? चुनाव से पहले सभी नेता लोग जनता को रूखे-सूखे आश्वासन ही बांटा करते हैं। कोई मंत्री, बिजली पानी मुफ्त देने की बात करता है, कोई आटा-दाल-चावल देते हुए गरीबों के पेट के जरिए उनके दिल तक पहुंच जाता है। कोई पूछे इनसे, बिजली-पानी की आपूर्ति तो राष्ट्रीय संसाधनों के अंतर्गत कर दी जाएगी, इसके अंतर्गत नेता की जेब से क्या गया? खाद्य-पदार्थों के रूप में जो निर्धन जनता के मध्य बांटा जाता है, उसकी गुणवत्ता देखते हुए गुणहीनता को भी लाज आ जाती है।

एक ओर वर्तमान शासक हैं जो पशुओं का चारा भी अपने उदर में डाल लेते हैं, दूसरी ओर हमारे इतिहास के अंतर्गत रंतिदेव जैसे शासक हुए हैं, जिन्होंने अपना सर्वस्व प्रजा हितार्थ अर्पण कर दिया। जब समग्र राजकोष रिक्त हो गया तो वे पत्नी और पुत्र सहित राज महल छोड़कर वन की ओर चले गए। वन-मार्ग पर जाते हुए वे कभी कंदमूल का सेवन करते और कभी, स्वेच्छा से किसी द्वारा दिए गए भोजन को परिवार सहित ग्रहण कर लेते। एक बार उन्हें अड़तालिस दिनों तक खाने को कुछ नहीं मिला, प्राण निकलने ही वाले थे कि एक व्यक्ति उन्हें बहुत सारा खाद्यान्न अर्पित कर गया। पत्नी और पुत्र को उनका प्राप्य देने के पश्चात, महाराज भोजन करने जा ही रहे थे कि एक क्षुधातुर व्यक्ति आ पहुंचा। महाराज रंतिदेव ने उसे भोजन कराया, इतने में एक और व्यक्ति अपने साथ कई श्वानों को लिए आ गया, महाराज ने शेष भोजन उस व्यक्ति को श्वानों सहित खिला दिया। अब उनके पास यत्किंचित, जल शेष था, तभी एक प्यासा व्यक्ति उनके पास आ पहुंचा, उसे जल का पात्र देते हुए महाराज रंतिदेव ने ईश्वर से जो प्रार्थना की, उसके द्वारा उनके उच्च शासकत्व मूल्यों से समन्वित होने की पुष्टि होती है। उनके हार्दिक उद्गारों को शाब्दिक रूप देते हुए हनुमान प्रसाद पोद्दार ने *कल्याण* के हिंदू

संस्कृति अंक में "कुछ प्राचीन आदर्श परोपकारी भक्त राजा और सत्पुरुष" आलेख के अंतर्गत लिखा है-

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥" (946)

अर्थात् हे ईश्वर! मैं राज्य प्राप्ति की अभिलाषा नहीं रखता, अलकापुरी में निवास नहीं चाहता, न ही जन्म मरण के चक्र से मुक्ति चाहता हूँ। मैं केवल दुख से तपते हुए प्राणियों के क्लेश को दूर करने में सक्षम हो सकूँ, मेरी एकमात्र यही अभिलाषा है। इस प्रसंग द्वारा अतीत के शासकों तथा वर्तमान शासकों के शासकत्व में जमीन आसमान का अंतर प्रमाणित हो जाता है।

'अहा! हमारी अपनी विधान सभा' व्यंग्य रचना हरीश नवल ने भारत की राजधानी दिल्ली के नागरिकों का प्रतिनिधित्व करते हुए लिखी। दिल्ली, भारत की राजधानी तो थी ही, कुछ वर्ष पहले उसे स्वतंत्र प्रदेश के रूप में भी मान्यता मिल गई। दिल्ली के विधायक और मुख्यमंत्री अलग से चयनित किए जाने लगे। चुनाव से पहले और बाद की स्थिति वर्णित करते हुए हरीश नवल ने लिखा है- "विधायक नाचते हैं, फिर नचाते हैं। हम भोले निरीह मतदाता खोखला गर्व पाल लेते हैं कि हमारे इशारों पर हमारे द्वारा चुने गए विधायक नाचेंगे।" (164)

उपर्युक्त कथन के अंतर्गत, राजनीतिक मूल्य, नीतिज्ञता तथा प्रजा-प्रेम का खंडन दर्शाया गया है। चुनाव में खड़े जिन प्रत्याशियों का लक्ष्य यह हो, कि चुनाव से पूर्व जनता की हां में हां मिलाते जाना और चुनाव जीतने के बाद उनसे आंख तक न मिलाना, उनके द्वारा दर्शाया गया यह व्यवहार सर्वथा नीतिज्ञता के विरुद्ध है। नीतिज्ञता को राजनीति क्षेत्र के लिए अनिवार्य बताते हुए *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (आधुनिक मूल्य: भाग 5) में सत्येंद्र शर्मा ने लिखा है-" नीतिज्ञता की अर्थ-व्याप्ति का एक केंद्र 'राजदर्शन' है जिसमें इसका अर्थ राजनीतिज्ञ, राजनीतिक विशारद या राजनीतिक बुद्धिमता है।" (138)

सत्येंद्र शर्मा के कथन से स्पष्ट है कि नीतिज्ञता शब्द का सर्वाधिक उपयोग राजनीतिक तंत्र के अंतर्गत किया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में राजनीतिज्ञों के व्यवहार में उच्च स्तरीय बौद्धिकता अपेक्षित है। नीतिज्ञता से समन्वित राजनीतिज्ञ, व्यक्तिगत प्रलोभनों से सर्वथा विरक्त रहता है। इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए सत्येंद्र शर्मा ने आगे लिखा है- "नीतिज्ञता मानव-

मूल्यां और सरोकारों से संबद्ध रहती है। वह क्षणिक स्वार्थों से परिचालित न होकर, नीति शास्त्र की विपुल आचार संहिता-जो लिखित-अलिखित और परंपरासिद्ध तथा कालजयी है, उसी को अपना अभीष्ट मानती है।" (139-140) सत्येंद्र शर्मा के कथन को हरीश नवल द्वारा कथित व्यंग्यात्मक कथन के आलोक में देखते हुए स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जो नेता चुनाव से पहले जनता के समक्ष नाचते हैं, अर्थात् अपने आप को उनका सेवक दर्शाते हैं, चुनाव जीतने के बाद जनता को उन्हीं नेताओं के समक्ष गुहार लगाने में भी नाकों चने चबाने पड़ते हैं। नेताओं का यह व्यवहार, क्षणिक स्वार्थों से परिचालित ही सिद्ध होता है।

चुनाव के निकट आने पर, जनता की सुनवाई करने का पाखंड करना, राजनीतिज्ञों के अंतर्मन में प्रजा के प्रति छद्म प्रेम की अवस्थिति का संकेतक है। चुनाव के दौरान राशन बांटना, कंबल वितरित करना, मोबाइल फोन प्रदान करना, जनता की समस्याओं के स्थायी समाधान को सुनिश्चित नहीं करता। नेताओं द्वारा इसी प्रकार के अस्थायी उपक्रमों को सारहीन बताते हुए, धर्मपाल मैनी द्वारा संपादित *मानव मूल्य व्याख्या कोश* के अंतर्गत (आधुनिक मूल्य: भाग 5) में सत्येंद्र शर्मा ने लिखा है- "प्रजा-प्रेम का आशय यह नहीं है कि जन-समुदाय या बहुसंख्यक जनता के आग्रह या दबाव में आकर तंत्र या नेतृत्व ऐसी नीतियां अपनाए, जिससे जनता की झूठी वाहवाही मिले और वे नीतियां समाज और राष्ट्र के विकास में बाधा हों।" (176)

उपर्युक्त कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि चुनाव से पहले नेता लोग रैलियां करवाते हैं, उसके अंतर्गत जनता को भविष्य में खुशहाल और सुखी बनाने के प्रयासों का काल्पनिक रेखाचित्र अंकित करते हैं। नेता लोग रैली में आए हुए लोगों के भोजन का प्रबंध करके, वाहवाही लूटते हैं। उनके इस उपक्रम के द्वारा समाज और राष्ट्र का कोई बहुत बड़ा हित नहीं होता। रैली के अंतर्गत भी नेताओं के चाटुकारों की संख्या अधिक होती है। नेता-वर्ग कोई भी ऐसी नीति निर्माण करने के प्रति कभी उद्यत होता दृष्टिगत नहीं हुआ, जिसके द्वारा राष्ट्रहित की पुष्टि हुई हो।

नेता वर्ग केवल अपनी कुर्सी बचाने की चिंता करते हैं और इसके लिए वे राष्ट्रहित तो क्या, विश्वहित की बात भी ध्यान में नहीं लाते। अपने और अपने आत्मीय-जनों के सुख को प्रश्रय देने के लिए वे सुविचारित रीति-नीति में भी स्वच्छंद रूप से संशोधन करने में संकोच नहीं करते। उपर्युक्त विचार की पुष्टि करते हुए सत्येंद्र शर्मा ने आगे लिखा है- "जब हम... किसी

समुदाय, समूह या प्रांतादि के दबावों में आकर सुविचारित रीति-नीति को संशोधित या स्थगित करते हैं तो यह तंत्र का, प्रजा प्रेम के ठीक विपरीत समाज और राष्ट्रहंता आचरण है।" (177)

सत्येंद्र शर्मा परोक्ष रूप से राष्ट्र के कर्णधारों द्वारा उपर्युक्त विसंगति पूर्ण व्यवहार किए जाने पर आक्षेप करते हैं। राजनीतिक नीतियों का निर्माण, जाति, संप्रदाय अथवा प्रादेशिकता के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। जो नीति समग्र राष्ट्र के लिए हितकारी सिद्ध हो, उसी रीति- नीति का निर्धारण करना अपेक्षित है। सच्चाई यह है कि राष्ट्र के नेता जब किसी समुदाय, समूह अथवा प्रांत के अंतर्गत किसी व्यक्ति विशेष को कोई गरिमामंडित पद अथवा सुविधा आबंटित करना चाहते हैं, तो उसी के अनुरूप नीति-निर्धारण कर लेते हैं, अथवा पूर्व निर्धारित नीति में संशोधन कर देते हैं। उस नीति को आधार बनाकर केवल वही व्यक्ति लाभान्वित होता है, जिसके लिए समग्र रीति-नीति संशोधित की जाती है। अन्य व्यक्ति बेशक सभी अहर्ताएं पूर्ण करते हों, लेकिन उन बेचारों को तो 'अपना सा मुंह लेकर रह जाना' पड़ता है। शहद का छत्ता जिसके लिए निर्मित किया जाता है, वह समग्र रस अपने पात्र में डालता हुआ छूमंतर हो जाता है और अन्य लोग मुंह ताकते रह जाते हैं। इस प्रकार की नीतियां समाज और राष्ट्र के लिए अहितकर सिद्ध होती हैं। इतिहास साक्षी है धृतराष्ट्र ने पुत्र प्रेम को, प्रजा प्रेम से बढ़कर माना परिणामस्वरूप, उसे प्रजा और पुत्र दोनों से हाथ धोना पड़ा।

हरीश नवल ने नेताओं द्वारा चुनाव से पहले किए गए व्यवहार, और चुनाव जीतने के बाद किए जाने वाले व्यवहार पर प्रकाश डाला है। चुनाव से पहले, नेता लोग प्रत्येक मतदाता की बात पर ध्यान देते हैं, उनकी समस्याओं को सुनते हैं और उस समय इस विवशता को प्रकट करते हैं कि इस समय तो वे सत्तासीन नहीं हैं, इधर वे चुनाव में विजयी हुए, उधर मतदाता की समस्या का समाधान हुआ समझो। मतदाताओं की आंखों के सामने सुखद और उज्ज्वल भविष्य की दिव्य आभा जगमगाने लगती है। मतदान करते समय उनका मन मयूर नाचने लगता है और उसके मन ही मन अपनी समस्याओं के समाधान के ख्याली पुलाव पकने लगते हैं। उनकी आंखें तो तब खुलती हैं, जब चिड़िया सारे का सारा खेत चुगकर फुर्र से उड़ जाती है। जैसे ही नेता चुनाव जीत जाता है, वह मतदाताओं को चक्करघिन्नी का नाच नचाता है। मतदाताओं के जूतों के तलवे घिस जाते हैं, नेताओं के आवास का चक्कर काटते-काटते, परंतु उनकी समस्या जहां की तहां अनसुलझी पड़ी रहती है।

चुनाव से पूर्व नेताओं को सामान्य जनता के समक्ष इसलिए नाचना पड़ता है, ताकि वह जनता को प्रसन्न करके उनके मत प्राप्त कर सके। मतों की अधिकता उन्हें चुनाव में विजय दिलवाए, और वे सत्ता की कुर्सी पर आसीन होते हुए, पाँच वर्षों तक चैन की बंसी बजाएं। कुर्सी की महिमा के विषय में वीरेन्द्र परमार ने *मुक्तांचल* पत्रिका के आलेख "कुर्सी की आत्मकथा" के अंतर्गत कुर्सी का मानवीकरण करते हुए, उसी का कथन परिकल्पित करते हुए लिखा है- "मैं कुर्सी हूँ। कुर्सी अर्थात् सत्ता, अधिकार, सुविधा, ऐश्वर्य, ख्याति, कुख्याति। मेरे सामने बड़ों- बड़ों की बोलती बंद हो जाती है।" (124)

कुर्सी के द्वारा ख्याति के साथ-साथ, कभी-कभी कुख्याति का सामना भी करना पड़ता है। यदि नेता का भ्रष्टाचार ढका रह जाए तो ख्याति, यदि उजागर हो जाए तो कुख्याति मिलती है। वर्तमान नेताओं को ख्याति अथवा कुख्याति से कोई अंतर नहीं पड़ता। इस विषय में नेताओं का रटा-रटाया उत्तर होता है कि यह तो विपक्ष की चाल है, उन्हें बदनाम करने के लिए झूठी अफवाहें उड़ाई जा रही हैं। भारतीय परंपरा में राज सिंहासन पर विराजमान होने का यह अर्थ होता था कि उस व्यक्ति को भविष्य में भारी उत्तरदायित्व वहन करने पड़ेंगे। प्रजा की देखभाल करना, उसकी समस्याओं की निवृत्ति करना, राष्ट्र का सर्वांगीण विकास करना, किसी के प्रति अन्याय न होने पाए, इसके लिए सतर्क रहना।

इस विचार की पुष्टि *रामायण* के अंतर्गत, महर्षि वाल्मीकि के कथन द्वारा की जा सकती है। राम के वन प्रस्थान करने के पश्चात्, जब भरत अयोध्या लौटते हैं तो उन्हें राम के वन जाने के परिप्रेक्ष्य में सब वृतांत पता चलता है। वे राम को वापिस अयोध्या लौटाने के लिए, चित्रकूट जाते हैं। चित्रकूट में राम से राज्य ग्रहण करने का अनुरोध करते समय भरत, स्पष्ट रूप से कहते हैं कि शासक के महान उत्तरदायित्व को वहन करने का सामर्थ्य उनमें नहीं है। महर्षि वाल्मीकि ने भरत के कथन को परिकल्पित करते हुए लिखा है- "राजानं मानुषं प्राहुर्देवत्वे सम्मतो मम। यस्य धर्मार्थसहितं वृत्तमाहुरमानुषम्।।" (347)

भरत के कहने का अभिप्राय यह है कि यद्यपि सभी लोग राजा को, एक मनुष्य मानते हैं, तथापि भरत की दृष्टि में शासक देवताओं की श्रेणी में परिगणित किए जाने योग्य है, क्योंकि शासक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वहन करता है। उसके आचरण को निभाना साधारण मनुष्य के लिए असंभव है। उस समय राजा के कर्तव्य इतने कठिन होते थे कि साधारण मनुष्य के लिए, उसे अपने आचरण में ढालना दुःसाध्य होता था। वर्तमान समय में तो ऐसी

स्थिति है कि लोग जीवनयापन के लिए नेतागिरी को सबसे सुगम मार्ग समझते हैं क्योंकि इसके लिए अधिक अध्यवसाय की, अपेक्षा नहीं की जाती। राष्ट्र के राजतंत्र पर अयोग्य नेताओं का आधिपत्य है, इस विडंबना को दर्शाते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "अनेक अनुभवहीन विधायक हमारे नियामक बने बैठे हैं।" (166)

हरीश नवल, राजनीतिक क्षेत्र की घोर विसंगति की ओर संकेत करते हैं। जिन लोगों को केवल मतगणना के आधार पर, राष्ट्र के सर्वोच्च पदों पर आसीन कर दिया जाता है, उस उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर विराजमान होने के लिए उनकी योग्यता का मापदंड क्या है? राजनीति शास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में, उन्होंने कभी भूले -भटके कदम रखा है? सुकरात, प्लेटो और चाणक्य के राजनीतिक सूत्र क्या पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाने के लिए ही हैं? हमारे राष्ट्र की यह विडंबना नहीं तो और क्या है कि बड़े-बड़े चिकित्सकों, अभियंताओं, पुलिस और सेना के अधिकारियों को बनाने वाला शिक्षक, उस सम्मान का धारक नहीं बन पाता, जिसका वह अधिकारी है। शिक्षक की नौकरी पाने के लिए भी कई प्रकार की अहर्ताओं का होना आवश्यक माना जाता है, कई प्रकार से उसकी योग्यता को आंकने के पश्चात यह सुनिश्चित किया जाता है कि विद्यार्थियों को पढ़ाने का उसका कितने वर्षों का अनुभव है। राष्ट्र की बागडोर सौंपते वक्त, नेता से नहीं पूछा जाता कि उसके पास जनता का नेतृत्व करने का कोई अनुभव है? राष्ट्र की किसी समस्या को सुलझाने के लिए वह सीना तान कर आगे बढ़ा है? जनता के हित के लिए उसने निस्वार्थ भाव से कभी सेवा की है? राष्ट्र हित के लिए कभी कोई बलिदान दिया है?

शासक के गुरुतर दायित्व के निर्वहण के लिए, राजनीतिज्ञों को प्रथमतः स्वयं को उस पद के सुयोग्य प्रमाणित करना अपेक्षित है। उपर्युक्त कथन को गुप्त काल के अंतर्गत शासक के लिए अनिवार्य विद्या-प्राप्ति के प्रमाण से प्रमाणित किया जा सकता है। भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग, गुप्त काल में शासक को बहुत सी विधाएं सीखनी पड़ती थीं, इस कथन की पुष्टि करते हुए भगवतशरण उपाध्याय ने *कालिदास का भारत* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "समुद्रगुप्त शास्त्रों के तत्वों में पारंगत था।... राजा का आरंभिक कर्तव्य था, अपनी जिम्मेदारी और दायित्व के स्वरूप को समझना, जो केवल धर्म शास्त्रों के सांगोपांग अध्ययन से ही हो सकता था।" (127)

जो शासक, शासकीय पद ग्रहण करने से पूर्व विद्याध्ययन में, कुछ वर्ष लगाएगा, वह शासकीय पद के अधिग्रहण के पश्चात धर्म शास्त्रों में निर्देशित, निर्देशों को अमल में भी अवश्य

लाएगा, क्योंकि हर मनुष्य अपनी विद्या तथा कला का उपयोग करना चाहता है, ताकि संसार में उसके प्राप्त ज्ञान का विस्तार हो। इस प्रकार सीखी हुई विद्या का प्रयोग करते हुए, वह जो कार्य करेगा वह गुणवत्तायुक्त तो होगा ही, उसके अंतर्गत न्याय और प्रजाहित का भाव भी संलग्न रहेगा। शासक के विद्याध्ययन के विषय में भगवतशरण उपाध्याय ने आगे लिखा है- "धार्मिक शिक्षा के सिवा राजा (1) शास्त्र, यथा मानवधर्मशास्त्र (2) पराति संधानविद्या, और दूसरी विद्याएं भी अध्ययन करता था।" (128)

शासक के लिए राजनीति शास्त्र का ज्ञान भी होना आवश्यक है। प्रत्येक राष्ट्र को अपने शत्रु राष्ट्र के आक्रमणों के प्रति सावधान तो रहना ही पड़ता है। पड़ोसी राष्ट्र, चाहे प्रकट में मित्रता का व्यवहार दर्शाए, परंतु राज्य विस्तार का लालच उनके अंतर्मन में रहता ही है, और वे सदा इसी ताक में रहते हैं कि पड़ोसी राष्ट्र को दुर्बल बनाने के प्रयास किए जाएं और जैसे ही अवसर प्राप्त हो, उस पर आक्रमण कर अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया जाए। इस विषय पर रोशनी डालते हुए, और शासक के लिए राजनीति शास्त्र का अध्ययन आवश्यक मानते हुए भगवतशरण उपाध्याय ने आगे लिखा है-"जिस राजा का जनपद चारों ओर से स्वाभाविक शत्रुओं (प्रकृत्यमित्र) से घिरा हो, उसके लिए राजनीति के सभी प्रयोग, जिनमें कूटनीति (परातिसंधान) भी शामिल है, सीखना आवश्यक है।"(129)

भगवतशरण उपाध्याय के कथन से स्पष्ट है कि गुप्तकाल के अंतर्गत संभावित शासक के लिए अनेक विद्याओं का अध्ययन अपेक्षित था। स्वभाविक शत्रु के विषय में बताते हुए भगवतशरण उपाध्याय ने (प्रकृत्यमित्र) के रूप में पड़ोसी देशों की वास्तविक धारणा की पुष्टि कर दी है। यह सच्चाई है कि किसी भी कार्य की गुणवत्ता की परख के लिए, उस कार्य की संपन्नता के उद्देश्य के प्रति, किया जाने वाला अध्यवसाय अत्यधिक महत्व रखता है। जितना परिश्रम किया जाएगा, परिणाम भी उसी अनुपात में गुणवत्ता से संपृक्त होगा। वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात किया जाए तो पर्याप्त विरोधाभास परिलक्षित होता है। वर्तमान समय में जिस व्यक्ति के पास योग्यता न हो, केवल मुखौटे लगाने का हुनर हो, बड़ी सफाई से झूठ को सच प्रमाणित करने में सिद्धहस्तता प्राप्त हो, यत्किंचित चाटुकारिता की प्रविधि का ज्ञान हो, वह व्यक्ति तुरंत राजनीति में घुसपैठ करने को उतावला हो जाता है। इस विचार की पुष्टि करते हुए *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक के अंतर्गत, सुरेश आचार्य ने लिखा है- "प्रायः जिलों, शहरों और मुहल्लों में सज्जन समुदाय द्वारा निरस्त किए गए निठल्ले और विकृत सोच वाले लोगों ने जैसे एक जमा-जमाया धंधा पा लिया, जिसे न पूंजी की आवश्यकता थी, न परिश्रम की। न जिसे

दूरदृष्टि चाहिए थी, न वैचारिक क्षमता की कोई आवश्यकता थी।" (71) इस प्रकार के व्यक्ति, जब राष्ट्र के शासन का कार्यभार संभालेंगे तो गुणवत्ता पाताल में चली जाएगी और राष्ट्र के अंतर्गत सभी क्षेत्रों में विषम और विसंगतिपूर्ण परिस्थितियां देखने को मिलने लगेंगी। उपर्युक्त साक्ष्य और अतीतकालीन साक्ष्य से तुलना करते हुए, दोनों स्थितियों में पर्याप्त वैषम्य स्वतः प्रमाणित हो जाता है।

6.6 प्रजातंत्र, धनार्जन, नेतृत्व, तथा गवेषणा। इन राजनीतिक मूल्यों का विखंडन, हरीश नवल द्वारा लिखी गई व्यंग्य पुस्तक *माफिया जिंदाबाद* के अंतर्गत चिन्हित हुआ है।

सपनों के डिजाइनर' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने भारतीय राजनीति के विद्रूपतापूर्ण कटु सत्य की ओर इशारा किया है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात लोकमान्य तिलक का नारा 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' केवल नारा बनकर रह गया। भारत अनेक वर्षों तक, विभिन्न विदेशी शक्तियों के अधीन रहा। हमारे राष्ट्र के वीरत्व में वह शक्ति थी, जिसके बल पर सदियों से श्रृंखलाबद्ध भारतीयता को आजाद किया गया। पराधीनता की कड़ियां सरलता से नहीं टूटीं, इसकी एक-एक कड़ी को तोड़ने के लिए कितने वीरों के कंधे टूटे, कितने देशभक्तों ने लाठियों के वार सहे, कितने मस्तक धड़ से अलग हुए, इसकी गणना करना असंभव है। असंख्य वीर-देशभक्तों के रक्तरंजित शरीर पर स्वतंत्र भारत की नींव रखी गई।

राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए भारतीयों ने जो सपने बुने थे, 15 अगस्त 1947 के बाद उन्हें वे स्वप्न पूर्ण होते दिखाई देने लगे, लेकिन भीषण प्रतीक्षा के बाद, अथक परिश्रम के बाद, असंख्य बलिदानों के पश्चात, जब मनुष्य के समक्ष परिणाम के रूप में कुछ हाथ नहीं लगता तो उसकी स्थिति अत्यंत निराशाजनक हो जाती है। स्वाधीनता के पश्चात भारतवंशियों ने सोचा था कि अब उन्हें, सुखी और खुशहाल जीवन के स्वप्न नहीं देखने पड़ेंगे, क्योंकि उनके सपने तो अब साकार स्वरूप ग्रहण कर लेंगे। परंतु यह विडंबना ही रही कि उन्हें बिल्कुल विपरीत परिदृश्य देखने को मिला, जिससे उन्हें आसमान से धरती पर गिरने का एहसास हुआ। उस स्थिति को वर्णित करते हुए हरीश नवल ने लिखा है-"ये हमारे अपने नए कारीगर उन पुराने विदेशी कारीगरों से कहीं आगे निकल गए, जो कभी-कभी कोई एकाध सपना पूरा कर दिया करते थे।" (25)

हरीश नवल ने वक्रता के माध्यम से राष्ट्र के निर्माणकर्ताओं, नियामकों अर्थात् राजनीतिज्ञों को कारीगर के विशेषण से मंडित किया है। मनुष्य, परिष्कृत परिवेश की प्राप्ति

हेतु प्रयास करे, परंतु उसे पहले से भी ज्यादा अस्वच्छ, परिवेश दृष्टिगत हो तो इससे अधिक वेदनापूर्ण स्थिति और क्या होगी? तब उसे अनुभव होगा कि उसका समग्र परिश्रम मिट्टी में मिल गया। भारत के सामान्य नागरिक को भी कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ। आम भारतीय के लिए, राष्ट्र केवल कहने मात्र को स्वतंत्र हुआ। वास्तविक स्वतंत्रता तो राजनीति के मठाधीशों को प्राप्त हुई, क्योंकि उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक राष्ट्र की समृद्धि को तहस-नहस करने का अधिकार मिल गया। इस विषय को उद्घाटित करते हुए हरीश नवल ने आगे लिखा है- "वे चोट से, खोट से, नोट से हमें लूटते रहे और बदले में सपने परोसते रहे। ऐसे सपने, जिन्हें केवल वे अपनी शर्तों से हमारे लिए पूरा कर सकते थे। जो अपनी आत्मा उनके पास गिरवी रख आया, उसके सपनों को पूरा करने की कोशिश होने लगी।" (26)

उपर्युक्त कथन के माध्यम से, व्यंग्य के सत्यान्वेषी होने की पुष्टि होती है। हरीश नवल ने, राजनीतिक क्षेत्र की विसंगति को सत्यता के साथ उभारा है। नेता लोग कभी शक्ति द्वारा तथा कभी भ्रष्टाचार द्वारा भारतीयों से वोट छीनने में कामयाब होते रहे हैं। छल, बल और धन के प्रयोग से वे राजसिंहासन पर आरुढ़ होते रहे। निर्बल नागरिक को शक्ति के द्वारा, सबल नागरिकों को आश्वासनों के द्वारा, अपने परिचितों, संबंधियों तथा चाटूकारों को अर्थ-लाभ प्रदान करते हुए वे अपना उल्लू सीधा करते रहे। जिस नागरिक ने अपने ईमान को उठाकर ताक पर रख दिया, वे उसी के सपनों को साकार करने लगे। राजनीति के उच्च सिंहासन पर सज्जित नेता वर्ग अभी अपने स्वप्न पूर्ण करने में व्यस्त है। आखिर उन लोगों ने भी स्वतंत्रता के पश्चात अपने उज्ज्वल भविष्य के विषय में कुछ स्वप्न देखे होंगे, उनके पूर्ण होते ही वे जनता के सपनों को भी पूर्ण करने के विषय में अवश्य विचार करेंगे, परंतु वह समय कब आएगा, यह अब तक विचाराधीन है। नेताओं की उपर्युक्त वैचारिकता के विषय में हरीश नवल ने आगे लिखा है- "स्वप्न महल के निर्माताओं के सपने तभी पूर्ण होते हैं, जब गुलामों के सपने अपूर्ण रहते हैं।" (26)

हरीश नवल ने उपर्युक्त कथन के माध्यम से स्पष्ट किया है कि जब तक नेता वर्ग के सपनों को साकार स्वरूप नहीं मिलता, तब तक जनता के स्वप्न अधूरे ही रहेंगे। अपने सपनों को, अपनी आने वाली अनगिनत पीढ़ियों के लिए साकार करते-करते जब वे थकित हो जाएंगे, तब कहीं जनता के एकाध स्वप्न को पूर्ण करने के विषय में सोचेंगे। राष्ट्र के नियामकों का इतना उपकार ही कम नहीं, कि वे सामान्य जनता की आंखों से स्वप्न देखने का अधिकार नहीं छीन रहे। हरीश नवल द्वारा कथित उपर्युक्त कथन के आलोक में राजनीतिक मूल्य, प्रजातंत्र का

विखंडन हुआ है, क्योंकि राजनीतिक तंत्र के साथ-साथ अन्य सभी तंत्रों पर भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, चयनित नेता वर्ग का ही शासन-अनुशासन चलता है। राष्ट्र केवल कहने भर को ही प्रजातांत्रिक गणराज्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राष्ट्र में विद्यमान स्थितियों पर विचार प्रकट करते हुए सुरेश आचार्य ने *व्यंग्य का समाज दर्शन* पुस्तक में लिखा है- "जो लोग सार्वजनिक मंचों पर न्याय, नीति, मर्यादा, ईमानदारी, योग्यता और निष्पक्षता के बड़े-बड़े आप्त सिद्धांत वाक्यों के उद्घोष कर रहे थे, आमतौर पर अपने व्यक्तिगत जीवन में वे अन्याय, अनीति, मर्यादा भंग, बेईमानी, अयोग्यता और पक्षपात के दोषी थे।" (70)

सुरेश आचार्य के कथन से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व जो लोग राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए विराट और निष्पक्ष कार्य करने के लिए कटिबद्ध दृष्टिगत होते थे, स्वतंत्रता प्राप्त होते ही राष्ट्रभक्ति के कृत्रिम मुखोटे उतारने लगे, राष्ट्रहित का भाव तिरोहित हो गया और व्यक्तिगतहित की साधना प्रमुख हो गई। नेताओं द्वारा राष्ट्र पर मर मिटने की प्रतिबद्धता स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद दम तोड़ती नजर आई। वे देशभक्ति के नारे, राष्ट्र की प्रगति के इरादे खोखले और भ्रामक सिद्ध हुए। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए सुरेश आचार्य ने महीपसिंह के कथन को उद्धृत करते हुए आगे लिखा है- "कल तक त्याग और बलिदान की दुहाई देने और देशभक्ति के तराने गाने वाला नेतावर्ग सत्ता मिलते ही भूखे भेड़ियों की तरह धन और यश कमाने पर टूट पड़ा है।" (74)

महीपसिंह ने, नेताओं की सत्तालिप्सा की प्रवृत्ति पर आक्रोश की अभिव्यक्ति की है। परतंत्रता के दौरान राष्ट्र के लिए, सर्वस्व अर्पण करने की बात कहने वाला नेता, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात गिरगिट की तरह रंग बदलता है तो यही कहा जाएगा कि अतीत में कही गई, सर्वस्व बलिदान करने की बातें केवल जलहीन मेघ सदृश थीं। सच्चे बलिदानियों के जज्बों में कभी अंतर नहीं आता। महाराणा प्रताप के अंतर्मन में मातृभूमि के प्रति प्रेम की चिंगारी तब भी सुलगती थी, जब वे शासक थे। जब वे परिवारसहित वन-वन भटके, तब भी धधकती रही, जब वे अकबर को हराकर पुनः सिंहासनासीन हुए, तब भी उस चिंगारी की लौ मंद नहीं पड़ी। झूठ की आंच पर राष्ट्रप्रेम की रोटियां सेंकी नहीं जा सकतीं। भारतवासियों के सम्मुख वही सच्चाई तब मुख्य रूप में प्रकट हुई, जब स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सभी भेड़िए तो एक घाट हो लिए, और भेड़ें दूर से ही उनका मुंह जोहती रहीं। गनीमत इतनी है कि ये भेड़िए एक बार भूख मिटाने के बाद, कुछ वर्षों बाद अपनी कंदरा से बाहर निकलते हैं और शक्ति अथवा श्रद्धा से, भेड़ों से अगले कुछ वर्षों का भोजन प्राप्त कर पुनः कंदरालीन हो जाते हैं। अतीत की ओर

देखने से पता चलता है कि उस समय शासक होना सबसे कठिन और श्रम-साध्य कार्य था। राजपद के उच्चाधिकारी, अर्थात् राजा को कतई विश्राम न था। गुप्तकालीन शासक के प्रजा-हितार्थ श्रम को वर्णित करते हुए, भगवतशरण उपाध्याय ने *कालिदास का भारत* पुस्तक के अंतर्गत लिखा है- "राज पद के साथ कितना अथक परिश्रम और चिंताएं संबद्ध थीं। इस प्रकार अपने सुख के प्रति उदासीन रहकर राजा प्रतिदिन अपनी प्रजा के लिए श्रमशील रहता था।" (122-123)

उपर्युक्त कथन भारत के प्राचीन शासकों की प्रजावत्सल छवि को प्रतिबिंबित करता है। उस समय शासक होने का अर्थ था व्यक्तिगत सुख की तिलांजलि, वर्तमान समय में शासक होने का अर्थ है, स्वसुख की प्रश्रयांजलि। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार, अपराध तथा अमानवीयकरण अधिकांश तौर पर राजतंत्र के संरक्षण में फल-फूल रहा है। राजनीतिज्ञ, प्रजा की रक्षा में तो भला क्या तत्पर होंगे, उन्हें तो अपनी सुरक्षा के भी लाले पड़े रहते हैं। एक विधायक के घर से बाहर निकलते ही, सात-आठ गाड़ियों का रक्षक-दल साथ चलता है। भारत के इतिहास के पृष्ठ पलटने पर ज्ञात होता है कि उस समय शासक के संरक्षण में प्रजा अपने आप को उसी तरह सुरक्षित महसूस करती थी, जिस प्रकार बालक माता-पिता के संरक्षण में स्वयं को सुरक्षित अनुभव करता है। प्रजा को सुरक्षित अनुभव देख राजा, अपने शासन और कर्तव्य निर्वहण की ओर से निश्चित हो जाता था। राजा के अंतर्मन के भावों की अभिव्यक्ति करते हुए भगवतशरण उपाध्याय ने आगे लिखा है- "यह कहते हुए राजा सगर्व संतोष का अनुभव करता था कि मेरे राज्य में कोई अपराधी दुष्टाचरण करने का साहस नहीं कर सका। ऐसे सर्वांगपूर्ण बचाव के नीचे प्रजा उन्नति करेगी ही।" (124)

भगवतशरण उपाध्याय के कथन से स्पष्ट है कि तत्कालीन शासक का समग्र समय प्रजा के हित-चिंतन में ही बीतता था। उनके राज्य में कोई अपराध करने का दुस्साहस न करे, प्रजा को किसी प्रकार का दुख-क्लेश न हो, प्रजा के जीवन में किसी प्रकार का अभाव न रहे, इसी व्यवस्था को बनाए रखने में शासक सदैव प्रयत्नशील रहता था। जब चतुर्दिक, ऐसा निर्भीक, सुखी और शांतिपूर्ण परिवेश होगा तो सामान्य जनता की उन्नति का सिंहद्वार तो खुलेगा ही।

'द्रवित होने का सुख' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल राष्ट्र के राजनीतिज्ञों का चुनाव से पहले द्रवित होना दर्शाते हैं, अर्थात् चुनाव से पहले नेता, करुणापूर्ण, कृत्रिम मुस्कराहट से युक्त, दयालु भाव-भंगिमा का प्रदर्शन करते हैं। चुनाव जीतने के तुरंत बाद

उनकी करुणा अदृश्य हो जाती है। सामान्य जनता के मध्य जाकर, नेताओं के व्यवहार के विषय में उपहासास्पद टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है- "अपने द्रवित बल से उनसे वोटों की सुभिक्षा लेते हैं। जनता को समीप पा, जब कर्मवीर अत्यधिक द्रवित होने लगते हैं, ऊंचे उठने लगते हैं-जमीन से उठ जाते हैं और जनता की पहुंच से बाहर हो जाते हैं।" (31)

हरीश नवल, नेताओं को कर्मवीर की उपाधि से विभूषित करते हुए, उनकी स्वार्थयुक्त कर्मण्यता का उपहास करते हैं। सामान्य जनता के मतदान के द्वारा विजित प्रत्याशी, एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में, राष्ट्र के फलक पर उभरता है। जीतने के पश्चात वह सामान्य नागरिक की परिधि से बाहर निकल कर एक विशिष्ट वर्ग के दायरे में सम्मिलित हो जाता है। इतनी उच्च-अवस्था पाने पर वह आम नागरिक की पहुंच से दूर हो जाता है, इस तथ्य को विस्मृत करते हुए कि उन्हीं के मत-प्रतिदान द्वारा वह शिखर तक पहुंचा है। ऊंचाई पर पहुंच कर नीचे की ओर देखना, वह नेता अपने पद की गरिमा के विरुद्ध समझता है। जमीन पर वे तभी कदम रखता है, जब उसे द्रवित होने के लिए राष्ट्र के, संसाधनों द्वारा द्रव्य प्राप्त होने के आसार नजर आते हैं। इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए हरीश नवल ने प्रखर राजनीतिक अपकर्ष को दर्शाते हुए आगे लिखा है- "वे आकाश में उड़ते हैं, वृत्ति भी आकाशमार्गीय हो जाती है-द्रव्य चेतना के उभरने से वे भी द्रवित होते रहते हैं और उनका हरण करने के नए-नए उपायों की खोज में वास्कोडिगामा हो जाते हैं।" (32)

हरीश नवल ने वक्रता के माध्यम से द्रव्य, अर्थात् धन के प्रति नेताओं के आसक्ति-भाव को प्रतिबिंबित किया है। चुनाव जीतते ही उनके तेवर सातवें आसमान तक पहुंच जाते हैं। तब उनके कदम धरती पर नहीं टिकते, क्योंकि वे किसी भी स्थान पर आने-जाने के लिए हेलीकॉप्टर या वायुयान का प्रयोग करते हैं। जब उन्हें किसी साधन द्वारा द्रव्य-प्राप्ति की गंध मिलती है, तब वे उसकी प्राप्ति हेतु आकाश से उतरकर धरती पर आते हैं, और उस द्रव्य की खोज में अनुसंधानकर्ता बन जाते हैं।

उपर्युक्त कथन के आलोक में, राजनीतिक मूल्य नेतृत्व, धनार्जन तथा गवेषणा का हनन हुआ है। अपने अमूल्य मत के द्वारा, जनता उनके प्रति अप्रतिम विश्वास की अभिव्यक्ति करते हुए, उनके नेतृत्व को स्वीकार करती है। नेतृत्व करने वाले में दृष्टिबोध का होना परम आवश्यक है। इस आभ्यांतरिक गुण को अभिव्यक्त करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने *श्रीरामरामचरितमानस* के अंतर्गत लिखा है-

"मुखिआ मुखु सो चाहिए, खान पान कहूँ एक।

पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ॥" (592)

अर्थात् यदि समग्र राष्ट्र को एक शरीर माना जाए, तो नेता का आचरण मुख के समान होना चाहिए। जिस प्रकार मुख अपने द्वारा ग्रहण किए गए खाद्य पदार्थ को शरीर के सभी अंगों में यथायोग्य वितरित करता है, मुख का समदर्शी व्यवहार, समग्र शरीर को समभाव से पालित-पोषित करता है। उसी प्रकार नेता को राष्ट्र के संसाधन, समग्र नागरिकों में इस प्रकार आबंटित करने चाहिए, कि कोई भी नागरिक जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु साधन रहित न हो। नेतृत्व एक उच्च दायित्व से परिपूर्ण, समदर्शिता और सर्वपोषण के भाव से युक्त मूल्य है। इस दृष्टि से समन्वित होने के लिए, नेतृत्वकर्ता का विवेकवान होना परम आवश्यक है।

चुनाव के पश्चात नेता की आकाशगामी होने की सत्यता, शिल्पा श्रीवास्तव द्वारा संपादित पत्रिका *अट्टहास* के अंतर्गत, दिलीप तेतरबे द्वारा लिखित व्यंग्य रचना "मैडम शो की पैतरेबाजी" से पुष्ट की जा सकती है। चुनाव में विजित होने के पश्चात, नेता के कथन को परिकल्पित करते हुए दिलीप तेतरबे ने लिखा है- "जीत के बाद वोटर अपने घर में और हम नभ में पुष्पक विमान पर सवार होंगे। बिना कोई व्यवसाय किए धन का व्यवसाय करेंगे।" (39)

उपर्युक्त कथन हरीश नवल द्वारा कहे गए व्यंग्य कथन से, साम्य भाव रखता है। हरीश नवल ने भी चुनाव जीतने के बाद नेताओं की हवाई यात्राओं के विषय में लिखा है। दोनों व्यंग्यकारों के कथन का मूल अभिप्राय एक ही है कि चुनाव जीतने के बाद नेताओं का अधिक समय वायुयानों में यात्रा करने में, और अर्थ सिद्धि के उपायों के अन्वेषण में व्यतीत होता है। नेताओं का जनता की पहुंच से दूर हो जाना यह प्रमाणित करता है कि वर्तमान राजनीति स्वार्थ की राजनीति है। चुनाव में विजय प्राप्त करने के पश्चात नेता लोग ऐसे गायब होते हैं जैसे गधे के सिर से सींग। हरिशंकर परसाई ने *कहत कबीर* पुस्तक के अंतर्गत, दिलीप तेतरबे के कथन से सहमति दर्शाते हुए राजनीति के व्यवसायीकरण के विषय में लिखा है- "जैसे जैसे हम आगे बढ़े, राजनीति में से 'नीति' गायब हो गई और 'राज व्यवसाय' हो गया। अब व्यवसाय में सिद्धांत, आदर्श वगैरह को नष्ट कर देना पड़ता है, तो वे नष्ट हो गए।" (141)

हरिशंकर परसाई ने राजनीति के, व्यवसाय में रूपांतरित होने के कटु सत्य को उद्घाटित किया है। राजनीति तो नैतिकता की निरंतरता का भाव है। यदि राजनीति की

अवधारणा से नीति को निकाल दिया जाएगा तो 'राज' एक व्यवसाय का रूप धारण कर लेगा और व्यवसाय के अंतर्गत सिद्धांतों और अनुशासनात्मक तथ्यों के प्रति अवहेलना का भाव अपनाया जाता रहेगा। हरिशंकर परसाई ने व्यवसाय के क्षेत्र में सिद्धांतों का न होना भी व्यंग्यात्मकता के आधार पर कहा है। जीवन के सभी क्षेत्रों में सैद्धांतिक मापदंडों का होना आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं मापदंडों के आधार पर मूल्यबद्धता सुनिश्चित होती है। भगवतशरण उपाध्याय ने *गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास* पुस्तक के अंतर्गत, गुप्तकाल की व्यवसायिक सैद्धांतिकी के विषय में लिखा है- "निश्चित मूल्य से अष्टांश बड़ा-घटाकर बेचना भी अनुचित है और इस प्रकार अनुचित रूप से बेचा माल, सौ साल बाद भी लौटाया जा सकता है।" (259)

भगवतशरण उपाध्याय के कथन के आलोक में गुप्तकाल के स्वर्णयुग होने की पुष्टि होती है। यद्यपि माल के सौ साल बाद लौटाने की बात कहते हुए, इतिहासकार ने किंचित्मात्र, अतिरंजना का आश्रय लिया है, तथापि यह तो सुनिश्चित हो ही जाता है कि गुप्तकाल के दौरान व्यवसायिक क्षेत्र में भी अनुशासनात्मक मापदंडों का पालन करना अपेक्षित था। उस समय व्यवसाय का अर्थ था, एक निश्चित मापदंड के आधार पर क्रय-विक्रय करना, विभिन्न वस्तुओं के राज्य द्वारा सुनिश्चित किए गए मूल्यों के आधार पर ही लाभांश प्राप्त करना। वर्तमान समय में प्रत्येक क्षेत्र से सिद्धांतों को निष्कासित कर दिया गया है और जितना अधिक हो सके, उतना लाभांश प्राप्त करने की प्रवृत्ति पर बल दिया गया है।

'राजनीति का भेड़िया और सूचना तंत्र की भेड़' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, हरीश नवल ने सूचना-तंत्र के राजनीतिकरण से बचाव के विषय में संतोष की अभिव्यक्ति की है। हरीश नवल ने राजनीतिज्ञों की भ्रष्ट वृत्ति के कारण उन्हें भेड़िए तथा सूचना तंत्र को प्रतीकात्मक रूप से भेड़ कहा है। सभी राजनीतिज्ञ, भेड़िए सदृश वृत्ति के धारक नहीं होते। यदि ऐसा होता तो सूचना तंत्र की भेड़ आखिर कब तक अपनी खैर मनाती! अपने कथन को प्रभावी बनाने के लिए कभी-कभी व्यंग्यकार, अतिशयता का भी आश्रय लेता है। सूचना तंत्र के राजनीति में आबद्ध न होने पर, हरीश नवल एक और तो निश्चितता दर्शाते हैं, परंतु दूसरी ओर राजनीतिज्ञों की नैतिकता से विहीन वृत्ति पर व्यंग्याक्षेप भी करते हैं। मूल शब्द 'नीति' में 'इक' और 'ता' प्रत्यय जुड़ने से 'नैतिकता' शब्द की उत्पत्ति होती है। अर्थात् राजनीति का अर्थ है, नैतिकता युक्त राज अथवा शासन। अपने मूल स्वरूप में राजनीति का अर्थ सकारात्मक होता है। राजनीति के क्षेत्र में छल, कपट और स्वार्थ की अधिकता से, इसके स्वरूप में विकृति समाविष्ट हो जाती है। राजनीति के कालिमायुक्त स्वरूप के लिए भ्रष्ट नेताओं को उत्तरदायी मानते हुए हरीश नवल ने

लिखा है- "राजनीति अपने आप में बुरी नहीं है, पर जैसा इसका प्रयोग व उपयोग भ्रष्ट नेता कर रहे हैं उसके कारण वह बुरी दिखती है। आजादी के कुछ वर्षों बाद ही भारत में भ्रष्टाचार की तूती बजनी शुरू हो गई थी।" (72)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि राजनीति में भ्रष्टाचार के प्रविष्ट होने से ही, राजनीति बुराई के आवरण में आवृत नजर आती है। जिस प्रकार सामान्य अवस्था में, भोजन का अधिग्रहण मनुष्य को शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ, सबल, और स्फूर्तिवान बनाता है, परंतु यदि उसमें मिर्च, मसाले, घी इत्यादि की मात्रा अधिक हो जाए, तो भोजन हितकारी होने की जगह अहितकर सिद्ध होता है। इसी प्रकार वास्तविक स्वरूप में राजनीति एक गरिमामंडित प्रबंधन है, परंतु इसके अंतर्गत जब कुटिलता, व्यक्तिगत स्वार्थ और राष्ट्रहित के प्रति उदासीनता का भाव प्रमुख हो जाता है, तो राजनीति दूषित हो जाती है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात, तत्कालीन नेताओं के हाथों में तो मानो बटेर लग गई। समग्र राष्ट्र में उन्हें केवल अपना या अपने परिचितों का हित साधना ही याद रहा। स्वतंत्रता-प्राप्ति के उद्देश्य को पूर्ण करने में अन्य राष्ट्रवासियों का सहयोग वे बिल्कुल भूल गए। चुनाव के दौरान नेताओं के द्वारा, व्यक्तिगत हित को प्रश्रय देने की वृत्ति का वर्णन करते हरीश नवल ने आगे लिखा है- "जहां भी चुनाव हुए, देशहित के स्थान पर स्वहित का परचम फहराता नजर आया और राष्ट्रपूजा के बदले व्यक्ति पूजा का घनघोर उदय हुआ। राक्षसी वृत्तियां मानवता का भक्षण करने लगीं, ऐसे में विकास तो नजर आया, पर वास्तविक प्रगति नहीं हो पाई।" (73)

हरीश नवल द्वारा कहा गया कथन दर्शाता है कि भारत की स्वाधीनता का अधिकतम लाभ राजनीतिज्ञों ने तत्परता पूर्वक उठाया। राजनीतिज्ञों के सत्तासीन होने पर सामान्य जनता उनसे यह अपेक्षा रहती है कि वे राष्ट्रहित के कार्यों के प्रति तत्परता प्रदर्शित करें, परंतु वे स्वहित साधने में तत्पर हो जाते हैं जिससे राजनीतिक मूल्य तत्परता का हनन होता है। स्वहित का परचम लहराने की बात कहते हुए, हरीश नवल ने व्यंग्य के सत्यान्वेषी होने की पुष्टि की है। राष्ट्र को समाहत करने के स्थान पर, व्यक्तियों को समाहत किया जाने लगा। आदर देने के लिए व्यक्ति भी चुन-चुन कर वही लिए गए, जो नेताओं की स्वार्थ सिद्धि में चार चांद लगा सकते थे। केवल अपने स्वार्थ की सिद्धि के विषय में सोचना, और समाजहित अथवा राष्ट्रहित को ताक पर रखना राक्षसी वृत्ति है। इस संदर्भ में तो राक्षस भी इनसे उन्नीस ही सिद्ध होंगे, क्योंकि राक्षस भी केवल अपने उदर-पूर्ति के लिए, जीव-भक्षण किया करते थे, वे अपने भविष्य की उदर पूर्ति के लिए, जीवों का वध करके अपनी गुफाएं नहीं भर लिया करते थे।

वर्तमान राक्षसी वृत्ति की वृद्धि-दर असीम है, क्योंकि इसके धारणकर्ता, व्यक्तिगत हित के लिए मानवता के पथ का भी परित्याग कर देते हैं। भारतीय संस्कृति यही सिखाती है कि मनुष्य द्वारा किए गए कार्य का प्रतिफल उसे अवश्य मिलता है। जब वह शासन संबंधी कोई कार्य करता है, तो उसे राज्य द्वारा पारिश्रमिक प्रदान किया जाता है; जब वह समाज से संबंधित कोई काम करता है, तो उसे प्रसिद्धि मिलती है; जब वह निस्वार्थ भाव से लोक-कल्याण के लिए कोई कार्य करता है, तो उसे ईश्वर द्वारा उसका शुभ फल प्राप्त होता है। इसी तथ्य को प्रमाणित करते हुए भारत के पूर्व राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम ने अपने जीवन के दृष्टांत द्वारा अरुण कुमार तिवारी और राकेश शर्मा द्वारा अनुवादित पुस्तक *जीवन वृक्ष* के अंतर्गत लिखा है- जब ईश्वर किसी व्यक्ति को किसी एक पद पर बैठाता है तो वह ध्यान रखता है कि उसे पद के यथायोग्य प्राप्ति भी हो। यदि कोई व्यक्ति उससे आगे जाकर और अधिक लेता है तब वह अवैध लाभ लेने जैसा होता है।" (48)

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम आज़ाद के अंतर्मन में, अधिकांश नेतावर्ग के समान अधिक से अधिक संसाधन बटोरने की लालसा नहीं थी। वे भी राजनीतिक तंत्र के उच्च पदस्थ अधिकारी थे, परंतु उन्होंने अपने पद का कभी अनुचित लाभ नहीं उठाया, कभी भी राष्ट्र के सुख-संसाधनों को, समृद्धि को अपने और अपने परिवार के लिए संग्रहित नहीं किया। यदि सभी राजनीतिज्ञ उनके जैसी प्रवृत्ति से समन्वित हो जाएं तो राष्ट्र में रामराज्य का स्वरूप पुनर्गठित हो जाए। हरीश नवल ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि भारत में भेड़ियों जैसे, भ्रष्ट नेताओं का वर्चस्व न हो। इस विषय में उन्होंने जयशंकर प्रसाद के कथन को उद्धृत करते हुए आगे लिखा है- "राजपुत्र भेड़िए होते हैं।" (73)

जयशंकर प्रसाद ने किसी विशेष राजपुत्र के संदर्भ में उपर्युक्त कथन कहा होगा, क्योंकि हरीश नवल के कथन द्वारा तो यह विशेषण सभी राजपुत्रों पर आरोपित हुआ प्रतीत होता है। राम, विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप, कृष्णदेव राय और भी अनेक भारतीय राजपुत्रों की प्रजावत्सलता इतिहास प्रसिद्ध है, उन्हें भेड़ियों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। जिस कोटि के नेताओं को हरीश नवल ने भेड़िए की संज्ञा दी है, उनके विषय में *व्यंग्य यात्रा* पत्रिका के अंतर्गत श्रवण कुमार उर्मिलिया ने "एक और कीचड़जीवी" व्यंग्य रचना के अंतर्गत लिखा है- "भेड़िए की कारगुजारी का पता लगाने के लिए हमें जंगल की खाक छाननी पड़ेगी।" (39)

अर्थात् भेड़िए की कार्य-क्रियान्वयन की प्रविधि जानने के लिए उसी के क्षेत्र में जाना अनिवार्य है। भेड़िया, जिस परिवेश में अधिकतर निवास करता है, वही जाकर उसके संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। राजतंत्र रूपी वन में घुसने के बाद, नेता रूपी भेड़िए के विषय में भेड़ रूपी जनता को जो जानकारियां मिली, वे चौंकाने वाली थीं। इस विषय पर रोशनी डालते हुए श्रवण कुमार उर्मिलिया ने आगे लिखा है-"यह कभी दलाल बन जाता है तो कभी कमीशन एजेंट, कभी जोड़-तोड़ का नायक तो कभी सांठगांठ का संयोजक।" (39)

ऊपर लिखित कथन के माध्यम से, नेताओं के घोर अवसरवादी होने के विषय में तो पता चलता ही है, येन-केन- प्रकारेण, रंगा सियार होने की भी वृत्ति प्रमाणित होती है। ऐसे नेताओं के गिरगिट की प्रजाति से अभिन्न संबंध होने की पुष्टि होती है। जो नेता अवसर के अनुसार अपना व्यवहारिक स्वरूप परिवर्तित कर ले, उस पर जनता को विश्वास कैसे होगा?

राजनीतिक मूल्यों के क्षरण के परिप्रेक्ष्य में, हरीश नवल द्वारा रचित व्यंग्य रचनाओं का अवलोकन करते हुए, हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के परिप्रेक्ष्य में गणतंत्र, महत्वाकांक्षा, राष्ट्रीय एकता, दायित्व बोध, सामाजिक अवरोधों को दूर करना, प्रजा प्रेम, मितव्ययिता, युद्धक्षय, सेवा परायणता, रहस्य गोपन, शासकत्व, उपलब्धता समानता जनहित, अखंडता, नेतृत्व प्रजातंत्र वाणी का कौशल, व्यक्ति की गरिमा, उपलब्धता, तत्परता, अपरिग्रह, न्याय, अवसरवादिता, नीतिज्ञता, प्रजातंत्र, धनार्जन, नेतृत्व, तथा गवेषणा राजनैतिक मूल्य क्षरित होते दृष्टिगत हुए हैं। राजनीतिक मूल्यों के हनन के परिप्रेक्ष्य में, एक पुस्तक द्वारा दर्शाए गए राजनीतिक मूल्य का क्षरण अन्य पुस्तकों में भी चिन्हित हुआ है। जैसे अवसरवादिता राजनीतिक मूल्य का विखंडन *बागपत के खरबूजे* व्यंग्य पुस्तक की, व्यंग्य रचना बागपत के खरबूजे के अंतर्गत रेखांकित किया गया है, यही मूल्य हर चौराहा यहां गौशाला व्यंग्य रचना के अंतर्गत भी चिन्हित हुआ है, जोकि *दिल्ली चढ़ी पहाड़* व्यंग्य पुस्तक में संकलित है। इसी प्रकार धनार्जन राजनीतिक मूल्य का अवमूल्यन *दिल्ली चढ़ी पहाड़* पुस्तक के अंतर्गत, चलो चलें लाल किला मैदान व्यंग्य रचना में दृष्टिगत हुआ है, तथा द्रवित होने का सुख व्यंग्य रचना के अंतर्गत भी रेखांकित किया गया है, जोकि *माफिया जिंदाबाद* व्यंग्य पुस्तक के अंतर्गत लिखित है।

खंडित होते राजनीतिक मूल्यों के लिए केवल नेता वर्ग ही समग्र रूप से दोषी नहीं कहा जा सकता। इसके लिए कुछ सीमा तक नागरिक भी जिम्मेदार हैं, क्योंकि नेताओं का चयन जनता द्वारा ही किया जाता है। 'चलो लाल किला मैदान' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, आर्थिक मूल्य

धनार्जन का क्षरण दर्शाया गया है। आर्थिक मूल्य को राजनीतिक मूल्यों के अंतर्गत संश्लिष्ट किया गया है।

जनता अपने मताधिकार का उपयोग यदि सोच समझ कर करे, और योग्य उम्मीदवार को राष्ट्र का नेतृत्व करने के लिए चयनित करे तो राजनीतिक तंत्र की मूल्यहीन स्थिति पर कुछ हद तक नियंत्रण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, चुनाव प्रणाली में भी संशोधन करना आवश्यक है। चुनाव का नामांकन पत्र भरते समय उम्मीदवार के लिए भी कुछ अहर्ताओं का सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है। हरीश नवल ने इस विचार की पुष्टि 'अहा, हमारी विधान सभा' व्यंग्य रचना के अंतर्गत की है, यह कहते हुए कि अनेक अनुभवहीन विधायक हमारे नियामक बन बैठे हैं। हरीश नवल द्वारा उन्हें अनुभवहीन कहना, अप्रत्यक्ष संकेत है कि राजनीतिज्ञों के लिए, राजनीतिक क्षेत्र का अनुभव होना अपेक्षित है। राजनीतिक क्षेत्र में उम्मीदवार को अनुभव तब प्राप्त होगा, जब वह राजनीतिक शास्त्र का विद्याध्ययन करेगा, और तत्पश्चात् उसका अभ्यास करेगा। यह तो स्वयं प्रमाणित है कि प्रत्येक कला अथवा विधा को व्यवसाय बनाने के लिए, उसका ज्ञान होना आवश्यक है। यह घोर विडंबना है कि राष्ट्र के नीति-निर्माण के नियामकों से राजनीति शास्त्र का ककहरा पढ़ने की अहर्ता भी अपेक्षित नहीं की जाती। हरीश नवल के कथन की पुष्टि करते हुए शरद जोशी ने *वोट ले दरिया में डाल* पुस्तक में लिखा है- "जब संसार में सब विषय की ट्रेनिंग की आवश्यकता है तो मिनिस्ट्री का भी ट्रेनिंग आवश्यक है।" (121)

हरीश नवल तथा शरद जोशी के कथन दर्शाते हैं कि जिस प्रकार डॉक्टर बनने के लिए, इंजीनियर बनने के लिए यहां तक कि एक लिपिक बनने के लिए भी कुछ न्यूनतम योग्यता, निर्धारित की जाती है। उस निर्धारित मापदंड के अनुसार, जिस प्रार्थी की योग्यता सर्वाधिक प्रमाणित होती है, निश्चित रूप से उसका चयन अपरिहार्य हो जाता है। इसी प्रकार जिन लोगों के हाथ में समग्र राष्ट्र का प्रबंधन दिया जाता है, उनके लिए भी कोई योग्यता निर्धारण प्रविधि का होना अपेक्षित है। भारतीय इतिहास के अंतर्गत राजपद पर आसीन शासक के लिए कई विद्याओं का ज्ञाता होना आवश्यक था। इस विचार की पुष्टि *कालिदास का भारत* पुस्तक के अंतर्गत, भगवतशरण उपाध्याय के कथन से की जा सकती है- "जो विधाएं या शास्त्र राजा के अध्ययन के लिए अनिवार्य थीं, वे चार थीं, आन्वीक्षिकी, अर्थात् तर्कशास्त्र तथा मानसशास्त्र; त्रयी अर्थात् तीन वेद, श्रुक्, यजुः और साम; वार्ता अर्थात् कृषि-वाणिज्य आदि व्यवहारिक कलाएं और शासन या राजनीति का शास्त्र दंड नीति।" (129)

भगवतशरण उपाध्याय द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन के आलोक से यह स्पष्ट है कि कालिदास ने जिस समय का वर्णन किया है, उस दौरान शासकीय पद का ग्रहण, अत्यंत श्रमसाध्य होता था। शासन का कार्यभार संभालने के लिए संभावित राजा को अनेक चरणों से होकर न केवल गुजरना पड़ता था, अपितु इसके अंतर्गत स्वयं को सुयोग्य भी सिद्ध करना पड़ता था। भगवतशरण उपाध्याय ने कौटिल्य के कथन के द्वारा उपर्युक्त विद्याओं की व्याख्या करते हुए राजनीति के विषय में लिखा है- "उचित और अनुचित, और बल तथा अबल का परिचायक राजनीतिशास्त्र ही है।" (130) इस कथन के परिप्रेक्ष्य द्वारा यह सिद्ध होता है कि कौटिल्य के काल में, जो राजवंश सिंहासनासीन था, उसके लिए सांख्य योग, तीन वेद, औचित्य-अनौचित्य, तथा राजनीति शास्त्र का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक था। राजनीति शास्त्र के अंतर्गत शासक, न केवल अपने शासन तंत्र के सबल और दुर्बल पक्ष का सूक्ष्म पर्यवेक्षण कर सकता था, बल्कि अपने शत्रुओं के बलाबल का भी पूर्वानुमान लगा सकता था।

योग्य शासकों की आचार परंपरा को वर्णित करते हुए, भगवतशरण उपाध्याय ने आगे लिखा है- "राजनीति शास्त्र के प्रणेताओं के विवक्षित मार्ग पर अग्रसर होता हुआ राजा (शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना) कार्यशील हो, यही एक शासक की आचार परंपरा थी।" (151) भगवतशरण उपाध्याय द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन से यह प्रमाणित होता है कि भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग, गुप्तकाल के अंतर्गत, शासक एक कठोर अनुशासनबद्ध जीवन जीता था। राजनीति शास्त्र के चिंतकों द्वारा निर्दिष्ट किए गए मार्ग का अनुसरण करता था। जाहिर है कि इस कार्य की सिद्धि के लिए, शासक के लिए राजनीति शास्त्र का अध्ययन तो अपेक्षित था ही, समय-समय पर उसे शास्त्रों का पुनरावलोकन भी करना पड़ता था। राजनीति शास्त्र के प्रणेताओं द्वारा निर्देशित आचार परंपरा का निर्वहण करते हुए, शासन कार्य किया जाएगा तो शासन तंत्र का प्रबंधन, सुशासन की अभिधा से अभिहित क्योंकर न होगा? वर्तमान समय में राजनीति शास्त्र महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में, एक शैक्षणिक विषय बनकर रह गया है। इतिहासकार तथा व्यंग्यकारों के कथन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि राजतंत्र के अंतर्गत राजनायकों का प्रशिक्षित तथा अनुभवी होना अपेक्षित है।

उपसंहार :

सृष्टि के आरंभ में आदिमानव, अन्य पशुओं की भांति वन में विचरण करता, गुफाओं में निवास करता, तथा छोटे-छोटे जीव-जंतु अथवा वनस्पतियों को अपने आहार के रूप में प्रयुक्त करता। बौद्धिकता के विकास के साथ-साथ मानव की अंतश्चेतना में सामाजिकता का भाव उदित हुआ। समाज के निर्माण में स्वरक्षण की भावना भी निहित थी। सामाजिक स्वरूप की अवधारणा के साथ-साथ ही विसंगतियों का प्रादुर्भाव भी हुआ। क्योंकि जहां दो बर्तन होंगे, स्वाभाविक रूप से टकराएंगे ही। मानव द्वारा समूह में रहने के साथ-साथ, परस्पर मतभेदों का भी सूत्रपात हुआ, अपने स्वार्थ को प्रश्रय देने की भावना भी बलवती हुई, कालांतर में स्वार्थ साधने की प्रक्रिया में औचित्य-अनौचित्य को भी ताक पर रखा जाने लगा। जहां विसंगति होगी, व्यंग्य वहां अनिवार्य रूप से उपस्थित रहेगा।

विसंगतियों से समाज को बचाने के लिए, चिंतकों और दार्शनिकों ने कुछ अनुशासनात्मक मानदंड बनाए, जिन्हें जीवन-मूल्य कहा गया। समाज के अंतर्गत विसंगतियों के निवृत्ति के लिए, मर्यादा के कुछ आधार बनाए गए, जिनके अनुपालन से समाज में अनुशासन रहे, शांति रहे तथा मनुष्य सदाचार की वृत्ति को धारण करे। समाज की निर्बाध गतिशीलता के लिए, समाज के सर्वांगीण विकास के लिए, सर्वत्र संतोष और शांति की स्थापना के लिए जीवन-मूल्यों को आचरण में डालना अनिवार्य किया गया। जीवन मूल्यों के विघटन से व्यंग्य का बीज अंकुरित होता है। व्यंग्य की उपस्थिति तो तब से है, जब आदि मानव ने वाणी का प्रयोग करना भी नहीं सीखा था, अर्थात् भाषा का विकास नहीं हुआ था, मानव भाव भंगिमाओं के द्वारा ही अपने अंतर्मन के भावों का संप्रेषण करता था। उस समय व्यंग्य के साधन वैदग्ध्य के उपभेद, क्रिया वैदग्ध्य द्वारा ही एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य को अपने मनोभावों से अवगत कराता था। आग को मानवकृत प्रथम आविष्कार के रूप में जाना जाता है। उस आविष्कार के मूल में भी प्रकृति द्वारा दिया गया अप्रत्यक्ष दिशा निर्देश निहित था। आदिमानव ने दो पत्थरों के घर्षण से चिंगारियां निकलती देखी, तो उसकी मेधा शक्ति ने उसे दिशा निर्देश दिया कि इन चिंगारियों द्वारा, वह भीषण शीत से अपनी रक्षा कर सकता है। यह प्रकृति द्वारा दर्शाया गया क्रिया वैदग्ध्य था।

उपर्युक्त विचार द्वारा यह स्पष्ट है कि व्यंग्य की उपस्थिति, जीवन-मूल्यों के गठन से पूर्व हो चुकी थी। पुरातन समय में संयुक्त परिवारों के अंतर्गत, रात्रि के समय दादा-दादी, नाना-

नानी अथवा अभिभावकों द्वारा बालकों को कहानियां सुनाने का रिवाज था, क्योंकि रेडियो अथवा दूरदर्शन का आविष्कार तब तक नहीं हुआ था। बच्चों के मन-बहलाव के लिए ही नहीं, अपितु उनके अंतर्मन में जीवन-मूल्यों के निर्वहण के प्रति आग्रह जागृत करने के लिए भी कहानियां सुनाई जाती थीं। इस प्रकार बालकों के अवचेतन मन में आरंभ से ही करणीय-अकरणीय के मध्य अंतर स्पष्ट करने का हुनर आ जाता था।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में जीवन मूल्यों के बिंदु अन्वेषित करने से पूर्व, व्यंग्य के संदर्भ में विभिन्न विचारकों एवं चिंतकों की अवधारणा के अनुरूप, व्यंग्य की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि निर्मित करने का प्रयास किया गया, तथा सुरेश माहेश्वरी द्वारा गठित किए गए व्यंग्य के सिद्धांत को शोध कार्य का आधार बनाया गया। इसी प्रकार जीवन मूल्यों के संदर्भ में भारतीय विचारकों के विचारानुसार जीवन मूल्यों की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि को गठित करने का प्रयत्न किया गया। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के परिप्रेक्ष्य में, जीवन मूल्यों के सामाजिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक पक्ष को शोध कार्य का विषय बनाया गया। धर्मपाल मैनी कृत मानव मूल्य व्याख्या कोश के पांच भागों को जीवन मूल्यों का आधार बनाया गया। हरीश नवल के पूर्ववर्ती कतिपय व्यंग्यकारों के विषय में संक्षिप्त उल्लेख करना भी अपेक्षित था।

हरीश नवल के व्यंग्य कथन को निष्पक्षता से विश्लेषित करने के लिए आलोचनात्मक शोध प्रविधि अपनाई गई। विभिन्न मनोविज्ञानिकों के उद्धरणों के प्रयोग से मनोविश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का आश्रय लिया गया। हरीश नवल के व्यंग्य कथन की विभिन्न व्यंग्यकारों के कथन से समता अथवा विषमता दर्शाने के लिए तुलनात्मक शोध प्रविधि को प्रयुक्त किया गया। हरीश नवल द्वारा जीवन-मूल्यों की स्थापना के लिए किए गए प्रयासों को ऐतिहासिक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित करने का प्रयास किया गया। हरीश नवल से दूरभाष पर संपर्क करके उनके द्वारा संचालित वेबीनारों में प्रतिभागिता करते हुए, सहायता ली गई। कदम कदम पर माननीय निर्देशक द्वारा, निर्देशन तथा अप्रतिम सहयोग असंदिग्ध रूप से उल्लेखनीय है। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के अंतर्गत, सामाजिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में शौर्य, मैत्री, संवेदनशीलता, स्वास्थ्य-रक्षण, शरीर-रक्षा, पारिवारिकता, प्रेम, अध्यवसाय, गार्हस्थ्य, उपकारशीलता, अनासक्ति, करुणा, कोमलता, निर्विकारिता, प्रसन्नता, विश्वास, उर्ध्व-चिंतन, सद् व्यवहार, निर्मलता, शुचिता, स्थिरचित्तता, व्रत पालन, संबद्धता, सूझ-बूझ तथा आत्मीयता का विखंडन दर्शाया गया है। सामाजिक जीवन की निर्विघ्न गतिशीलता के लिए, शांति, अनुशासन तथा सामंजस्य बनाए रखने

के लिए उपर्युक्त सामाजिक मूल्यों का निर्वहण अपेक्षित है। इन मूल्यों का स्थायित्व और संवर्धन किसी राष्ट्र के सामाजिक ढांचे को सुदृढ़ करता है।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के अंतर्गत, चिकित्सक समाज, मित्र, पत्रकार, विद्यार्थी, साहित्य तथा परिवार इत्यादि के अंतर्गत विद्यमान विसंगतियों पर तीक्ष्ण आक्षेप किए गए हैं। कुछ सामाजिक विसंगतियां जैसे दहेज, कन्या भ्रूण हत्या, पारिवारिक विघटन तथा राष्ट्र में सर्वत्र फैले हुए पाखंडी बाबाओं पर भी व्यंग्य प्रहार किया जा सकता था। बहुत सम्भव है कि हरीश नवल अपनी आने वाली व्यंग्य पुस्तकों के अंतर्गत, उपर्युक्त विसंगतियों को व्यंग्यात्मकता का आधार बनाएं।

राष्ट्रीय मूल्यों के संवर्धन हेतु, हरीश नवल ने कर्तव्य परायणता, राष्ट्रभाषा प्रेम, अतीत गौरव, राष्ट्र निर्माण, बलिदान, राष्ट्र-विकास, विकासप्रियता, रचनात्मकता, सर्जना, सरसता, शिवत्व, तन्मयता, चारुता, भव्यता, मनोहरता, कल्याण-भावना, सौंदर्य-बोध, मंगलकामना, रक्षण, भलाई, परहित, मनुष्यत्व, मनोविनोद, करुणा, स्वाधीनता, उत्तुंगता, निष्कलुषता, राष्ट्रीय-एकता, उत्सर्ग, विश्व-बंधुत्व तथा परमार्थ-दृष्टि, राष्ट्रीय मूल्यों के हनन की ओर संकेत किया है। राष्ट्रीय मूल्यों का क्षरण दर्शाते हुए हरीश नवल ने पुलिस विभाग, वणिक विभाग, विदेश विभाग, परिवहन विभाग, राष्ट्रीय पुरस्कारों से संबंधित विभाग इत्यादि क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों की ओर, सजगता धारण करने के लिए आग्रह किया है। हरीश नवल ने अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि राष्ट्रीय क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों के द्वारा, सामान्य नागरिक का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है, उसके कार्य क्रियान्वयन की विधि में बाधा पड़ जाती है। भ्रष्टाचार का अवगाहन किए बगैर कार्य संपन्न नहीं होता, और भ्रष्टाचार का मुंह बंद करने के लिए न चाहते हुए भी, उसे भ्रष्टाचारी बनना पड़ता है, न बने तो उसका कार्य आगे से आगे विलंबित कर दिया जाता है। अर्थ सिद्धि न होने पर, सरकारी कर्मचारियों द्वारा जब यह ठान ही लिया जाता है कि अमुक व्यक्ति का कार्य नहीं करना, तो उसके अंतर्गत सैंकड़ों त्रुटियां निकाल दी जाती हैं।, नागरिक, लाख ढोल पीटे जाए, परंतु उसकी पुकार नक्कारखाने में किसी को सुनाई नहीं देती। ईमानदार व्यक्ति, माथा पीट कर यही सोचता है कि राष्ट्रीय हम्माम में जब सभी आवरणहीन हैं तो उसे व्यर्थ लज्जाशील बनने की क्या आवश्यकता है?

यह राष्ट्र की विडंबना है! जब तक भ्रष्टाचार उन्मूलन के लिए सख्त कानून नहीं बनेंगे, तब तक राष्ट्रीय मूल्यों के संवर्धन का कार्य द्रुतगति से अग्रसर नहीं हो सकता। परंतु सख्त

कानून बनाएगा कौन? क्या भेड़ियों को बकरियों के संरक्षण का दायित्व सौंपा जा सकता है? ऐसा नहीं है कि समग्र प्रशासन तंत्र में सभी भ्रष्टाचार के समर्थक हैं, ईमानदार लोग भी हैं परंतु उनकी संख्या आटे में नमक के बराबर है।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी पृथक गौरवशाली और समृद्ध संस्कृति होती है। एक ऐसी जीवन पद्धति, जो वहां के निवासियों के द्वारा एक स्वर से स्वीकृत हो, मान्य हो, जिसके निर्वहण से वहां के निवासियों का जीवन सुख-शांति तथा परस्पर सामंजस्य सहित व्यतीत हो। पश्चिमी देशों की संस्कृति भारतीय संस्कृति से भिन्न है, अतः भारतीयों के लिए यह अपेक्षित हो जाता है कि वे पश्चिम के भौतिकतावाद को प्रश्रय न देते हुए, भारत की सर्वहितैषिता से युक्त संस्कृति का अनुगमन करें। पश्चिमी संस्कृति के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण, स्वच्छता, कर्तव्यपरायणता तथा राष्ट्र के प्रति समर्पण भावना का सम्मान करते हुए, इन प्रवृत्तियों को अपने आचरण में ढालना तो प्रशंसनीय है, परंतु वहां का स्वच्छंदतावाद, पारिवारिक प्रेम का अभाव, तथा स्वयंकेन्द्रित प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है।

भारतीय संस्कृति स्वतंत्रता की तो पक्षधर है, परंतु स्वच्छंदता की नहीं। हरीश नवल ने अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से अंधविश्वास, स्वच्छंदतावाद, किटी पार्टी संस्कृति, तथा अर्थ प्रधान संस्कृति के फैलाव द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों का अपकर्ष दर्शाया है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत तो परहित के प्रति संलग्नता का भाव, प्रखर रूप से दृष्टिगत होता है, परंतु वर्तमान समय में मनुष्य में इतना धैर्य नहीं कि वह अपने हित से परे, परहित के विषय में विचार कर सके।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के अंतर्गत, सुकृत, सत्संगति, प्रेरकता, मंगलाचरण, संतुलन, उत्सर्ग, सुनीति, सच्चरित्रता, लज्जा, धैर्य, विनय, विनीतता, निष्ठा, विश्वास-वृत्ति, समदर्शिता, निर्विकारिता, लोक-कल्याण, सत्संगति, नियम, सज्जनता, विश्वास, अनासक्ति, उद्देश्य, विनम्रता, धर्मनिष्ठा, आचार, आत्मबल, विमलता, सदाचार, धर्मसम्मान, सदाशयता, निर्वेद, श्रमशीलता, अध्यवसाय, ध्यान, साधना, आत्मबोध तथा शुभ कर्म, सांस्कृतिक मूल्य, क्षरित होते दर्शाए गए हैं। जिन स्वार्थों के वशीभूत होकर सांस्कृतिक मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है, अथवा हो रहा है उसका विरोध करने के उद्देश्य से सांस्कृतिक क्षेत्रों के अंतर्गत, फैलती हुई विसंगतियों पर व्यंग्याक्षेप किए गए हैं।

समाज को अपसंस्कृति की ओर धकेलने वाली विध्वंसक शक्तियों की परवाह न करते हुए, निर्भीक भाव से उनके विरुद्ध व्यंग्यधर्मिता का निर्वहण, हरीश नवल की विसंगति निवारक क्षमता को प्रमाणित करता है। साहित्य समाज का दर्पण है और साहित्यकार उस दर्पण का निर्माता। समाज की जैसी स्थिति होगी, साहित्य रूपी दर्पण से वैसा ही प्रतिरूप भासित होगा। दर्पण में अगर व्यक्ति पाखंड के, मिथ्याचार के, स्वार्थ के तथा छल कपट से युक्त मुखौटों के साथ, उपस्थित रहेगा तो दर्पण वैसा ही छायाचित्र प्रस्तुत करेगा। दानवी प्रवृत्तियों को अंतर्मन में धारण करते हुए लोग यह आशा क्यों करते हैं कि दर्पण उन्हें अप्सराओं अथवा देवदूतों की प्रतिच्छवि दर्शायेगा।

साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ क्रांतिकारी परिवर्तनों का सहायक भी है, और क्रांति का अग्रदूत भी। क्रांति के लिए जिस तीक्ष्ण और प्रहारक शक्ति की अपेक्षा है वह शक्ति व्यंग्य के पास ही है। यदि साहित्यकार समय के प्रवाह के साथ बह गया तो संस्कृति की गंगा का शोधन कौन करेगा? वर्तमान समय में राष्ट्र का लगभग हर क्षेत्र विसंगतियों से युक्त है। विसंगतियों के निराकरण हेतु अभिधात्मक रीति की बजाए, व्यंजनात्मक रीति से प्रेरित करना अधिक सफल सिद्ध होता है। राष्ट्र की स्वतंत्रता के पश्चात, पद-लोलुपता के भीषण चक्रवातों ने राजनीति के भवन की नीति रूपी नींव को हिला दिया, अब केवल राज का ऊपरी ढांचा ही अक्षत दिखाई देता है। राजनीतिक अधःपतन के ध्वंसात्मक आरंभ के अंतर्गत अर्थ, यश, सत्ता तथा सुख सुविधाओं के साधनों को अधिकाधिक प्राप्त करने की लपलपाती जीभ की तृषा अभी तक समाप्त नहीं हुई। हरीश नवल ने नेताओं की धन, यश और सुविधाभोगी प्रवृत्ति को दर्शाते हुए तो व्यंग्य प्रहार किया ही है, चुनाव से पहले उनकी घुटना टेक प्रवृत्ति तथा चुनाव के पश्चात उनकी गिरगिटी वृत्ति को भी उद्घाटित किया है। चुनाव के दौरान आश्वासनों की शहद में डूबी हुई, उनकी कृत्रिम वाणी को भी व्यंग्य लेखन का आधार बनाया जा सकता था। हरीश नवल ने राजनीतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में, गणतंत्र, महत्वकांक्षा, राष्ट्रीय एकता, दायित्व बोध, सामाजिक अवरोधों को दूर करना, अवसरवादिता, प्रजा-प्रेम, जनहित, मितव्ययता, धनार्जन, अपरिग्रह, समानता, नेतृत्व, युद्धक्षय, सेवा-परायणता, रहस्य-गोपन, शासकत्व, वाणी का कौशल, व्यक्ति की गरिमा, उपलब्धता, तत्परता, न्याय, प्रजातंत्र, तथा गवेषणा, राजनीतिक मूल्यों के विखंडन पर व्यंग्य संधान किया है।

राष्ट्र के सर्वोच्च पदों पर आसीन किए जाने की विसंगति पूर्ण चुनाव प्रणाली को हरीश नवल, शरद जोशी तथा सुरेश आचार्य सदृश व्यंग्यकारों के कथन द्वारा तो प्रमाणित किया ही

गया है, ऐतिहासिक तथ्यों के माध्यम से भी इसकी पुष्टि की गई है। यद्यपि व्यंग्य लेखन का लक्ष्य, विसंगतियों का सत्यान्वेषण करना तथा नकारात्मकता का विध्वंस करते हुए सकारात्मकता की प्रतिष्ठा करना है, तथापि हरीश नवल ने प्रस्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन करते हुए, राष्ट्र के अंतर्गत, सकारात्मक पक्षों का भी उल्लेख किया है।

'राजनीति का भेड़िया और सूचना तंत्र की भेड़' व्यंग्य रचना के माध्यम से हरीश नवल ने इस सत्य को उद्घाटित किया है कि यद्यपि नेता लोग अनुकूल और प्रतिकूल सभी परिस्थितियों का राजनीतिकरण कर देते हैं, परंतु फिर भी सूचना तंत्र का अभी राजनीतिकरण नहीं हो पाया, यह एक सकारात्मक पक्ष है। पश्चिमी गायक माइकल जैक्सन के भारत आगमन पर युवा वर्ग में भले ही कितना उत्साह प्रसारित हुआ हो, परंतु 'दीवाली राम के नाम से ही मनेगी' व्यंग्य रचना के अंतर्गत भारतीयों द्वारा, भारतीय संस्कृति के निर्वहण के प्रति हरीश नवल का स्वर आशाजनक ध्वनित हुआ है।

उपर्युक्त विवरण के परिप्रेक्ष्य में, तथा विभिन्न व्यंग्यकारों के कथन के आलोक द्वारा यह स्पष्ट है कि व्यंग्य एक सौद्येश्य पूर्ण विधा है। समग्र जीव-जगत में मानव को ही वह सामर्थ्य प्रदान किया गया है कि वह अपने उद्देश्य को सफलतापूर्वक पूर्ण कर सके। यह उसकी बौद्धिक क्षमता और हार्दिक संवेदना के अनुपात पर निर्भर है कि वह व्यष्टिगत हितकारी उद्देश्य को प्राथमिकता देता है अथवा समष्टिगत हित से अनुप्राणित उद्देश्य की स्थापना की और अग्रसर होता है। मनुष्य की अंतश्चेतना ही उसके उद्देश्य के मार्ग को निर्देशित करती है। सर्वप्रथम, चेतना के द्वारा ही किसी कार्य के क्रियान्वयन के प्रति संवेदना जागृत होती है, तत्पश्चात् अंतर्मन में उस कार्य को क्रियात्मक रूप देने की इच्छा जागृत होती है, इसके पश्चात् मनुष्य उस कार्य को क्रियात्मक रूप देता है। मनुष्य की चेतन शक्ति उसे अपने कर्तव्य के प्रति सजग करते हुए, उसके आचरण में कर्तव्य परायणता का भाव स्थापित करती है। मानवोचित कर्तव्यों का निर्वहण ही उसे पशुता की श्रेणी से पृथक करता है।

साहित्य के अंतर्गत जिन मूल्यों की बात निर्दिष्ट की जाती है, उसकी सार्थकता अथवा उसकी पुष्टि तभी सिद्ध होती है, जब उन जीवन-मूल्यों को समाज अपने आचरण द्वारा प्रमाणित करता है। एक विसंगति युक्त, भ्रष्टाचार से अनुप्राणित, व्यवस्था के विरुद्ध स्वर बुलंद करने में व्यंग्य की सशक्त भूमिका है। मूल्यों का निसृण रचनाकार के अंतर्मन से उद्घाटित नहीं होता क्योंकि मूल्यों का निर्वहण केवल रचनाकारों का दायित्व नहीं है, समग्र समाज द्वारा उनका

अनुपालन अपेक्षित है। व्यंग्यकार, व्यंग्य रचना का गठन करते समय समाज में विद्यमान विकृतियों का सूक्ष्मावलोकन करता है। विसंगतियों को देखते हुए वह सत्यता और निर्भीकता के साथ उनकी अभिव्यक्ति कर देता है, यद्यपि उस समय वह अपने समक्ष घटित होने वाली, विषम परिस्थितियों की परिकल्पना कर लेता है, परंतु फिर भी वह विकृतियों की निवृत्ति का उद्देश्य फलीभूत करने के लिए, जोखिम उठाने को तैयार हो जाता है, अर्थात् कलुषित चेहरों से आवरण हटा देता है। अव्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस दर्शाने का पुरस्कार हरिशंकर परसाई को लाठियों के प्रहार के रूप में मिला, क्योंकि वे अव्यवस्था को सुव्यवस्था में परिवर्तित करने के लिए प्रयासरत थे।

उत्कृष्ट और प्रखर व्यंग्यकार के रूप में हरीश नवल की व्यंग्य रचनाओं में भी समाज और राष्ट्र के अंतर्गत, सकारात्मक परिवर्तन के लिए अकुलाहट स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। 'विक्रमार्क, बुढ़िया और सहाय रोहिल्ला' व्यंग्य रचना के अंतर्गत, उन्होंने संतान का अपनी माता के प्रति अवहेलना पूर्ण रवैया दर्शाया है। मां के रूप में स्त्री, प्रकृति की रचना-धर्मिता का प्रतिनिधित्व करती है क्योंकि प्रकृति ने सृजन की शक्ति से उसे ही सम्मानित किया है। यद्यपि, मनुष्य अपनी जन्मभूमि तथा अपनी जन्मदात्री के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता, तथापि उनका यथोचित आदर सत्कार तो कर ही सकता है। 'मिसेज पॉल की कुट्टू पार्टी' व्यंग्य रचना के अंतर्गत भी हरीश नवल ने सास रूपी मां के प्रति, बहू के स्वार्थी व्यवहार पर आक्षेप किया है। 'मंड़ी नहीं है नर्सिंग होम मंड़ी' व्यंग्य रचना में उन्होंने चिकित्सक-समाज के भ्रष्ट आचरण को रेखांकित किया है। चिकित्सक, जिसे ईश्वर के तुल्य माना जाता है, वर्तमान समय में वह उस स्थिति से विचलित होकर पतन की गहरी खाई में गिर गया है। धन के प्रति उसकी लिप्सा पाशविक स्तर तक बढ़ गई है, इसके लिए वह मानव शरीर के अंतरंग अंगों के व्यापार में सम्मिलित होना भी अशोभनीय नहीं मानता। 'मिलना डिग्री का चिमनलाल बंसल को' व्यंग्य रचना में हरीश नवल ने शैक्षणिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों की ओर इंगित किया है। 'दवे साहब की बैठक से' व्यंग्य रचना में, साहित्यिक क्षेत्र की विसंगतियों को उभारा गया है। 'नाच न जाने चंपकलाल' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल ने, अकर्मण्यता का त्याग करते हुए, मानव जगत को अध्यवसाय अपनाने के लिए प्रेरित किया है, क्योंकि इसी वैचारिकता के अधीन मनुष्य के जीवन का प्रयोजन सिद्ध होता है। यही चैतन्यता मनुष्य जीवन को एक दृष्टि देती है और जिजीविषा-संपन्न बनाती है। इस विचार के अंतर्गत मनुष्य चरैवेति-चरैवेति का अनुगमन करता हुआ, निरंतर कर्मशील रहता है।

'एक मोहिनी मुस्कान और तीन समाधान' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल ने नेताओं के चुनाव से पहले, और चुनाव के बाद बदलते हुए व्यवहार को निष्पक्षता के साथ वर्णित किया है। 'दिल्ली चढ़ी पहाड़' व्यंग्य रचना के अंतर्गत हरीश नवल ने व्यंग्य की बड़ी तीखी, बारीक और चुभन भरी चोट की है। ग्रीष्मावकाश में अधिकतर दिल्लीवासी, पर्वतागामी हो जाते हैं, बगैर इस तथ्य पर चिंतन-मनन किए कि जिस प्रकार, मानव निर्मित यंत्रों की एक निश्चित धारण क्षमता होती है, उसी प्रकार प्रकृति निर्मित अवयव भी एक निश्चित सीमा तक भार वहन कर सकते हैं। अपरिमित वाहनों और इंसानों के भार से पर्वतों की सहनशक्ति जवाब दे गई और उन्होंने जरा-सा हिल कर अपनी कमर सीधी करनी चाही, उनके इस उपक्रम में कितनों की कमर टूटी, इस विडंबनापूर्ण गणना का आकलन अत्यंत कठिन भी है, और वेदना पूर्ण भी। हरीश नवल ने अप्रत्यक्ष: मानव को पृथ्वी के अवैध दोहन से होने वाले दुष्परिणामों की ओर से, सचेष्ट किया है।

हरीश नवल के व्यंग्य कथन, शाश्वत जीवन मूल्यों के प्रति उनकी प्रखर प्रतिबद्धता की पुष्टि करते हैं, इससे प्रख्यात आलोचक सुवास कुमार के कथन की भी पुष्टि हो जाती है जिसके अंतर्गत उन्होंने किसी भी श्रेष्ठतम रचना को अंततः व्यंग्य ही माना है। क्योंकि व्यंग्य सहृदय में हलचल उत्पन्न करता है, व्यंग्य में प्रखर व्यंजनात्मक संप्रेषण क्षमता होती है। संस्कृत के आचार्यों ने भी उत्तम काव्य को व्यंग्य ही कहा है। हरीश नवल की व्यंग्य प्रहारात्मकता का वर्तमान कोरोना संकट से सूत्रबद्ध होना, इस तथ्य की पुष्टि का संकेतक है कि हरीश नवल का व्यंग्यालोचन, भविष्यगत आपदाओं को सूंघने की घ्राण शक्ति रखता है, जो एक नवल उपलब्धि है।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के परिप्रेक्ष्य में जीवन मूल्यों के प्रति उनकी उच्च कोटि की प्रतिबद्धता देखने को मिलती है। उनके व्यंग्य साहित्य के अध्ययन से राष्ट्र और समाज में व्याप्त विसंगतियों के विषय में प्रामाणिक जानकारी मिलती है। समाज, संस्कृति, तथा राजनीति के क्षरण के विषय में हरीश नवल के अध्ययन द्वारा ज्ञान प्राप्त हुआ, क्योंकि समाचार पत्र में अथवा दूरदर्शन पर प्रसारित-प्रचारित जानकारी कभी-कभी एकपक्षीय भी सिद्ध होती है, परंतु साहित्यकर्मियों का कार्य पक्षपात रहित और सत्यान्वेषण पर आधारित होता है। हरिशंकर परसाई और गिरीश पंकज जैसे व्यंग्यकार, सरकारी नौकरी को तिलांजलि देते हुए व्यंग्य कर्म में प्रवृत्त हुए; शरद जोशी ने सारी आयु व्यंग्य लेखन के माध्यम से जीविका-उपार्जन किया; बालेंदु शेखर तिवारी व्यंग्य आलोचक न होने की स्थिति में स्वयं को अधूरा समझते हैं; हरीश

नवल ने व्यंग्य लेखन में प्रवृत्त होने के लिए गीत-संगीत का क्षेत्र त्याग दिया, यद्यपि इस क्षेत्र के द्वारा वे असीम धनार्जन और यशार्जन कर सकते थे।

उपर्युक्त तथ्यों से सिद्ध होता है कि व्यंग्य-लेखन प्रतिबद्धता का साहित्य लेखन है। व्यंग्य, एक समर भूमि का निर्माण करता है और उसके योद्धाओं को युद्ध क्षेत्र में अटल और अडिग भाव से डटे रहना पड़ता है। उसके लिए एक ही स्थिति शेष रह जाती है- 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पर आवे।' व्यक्ति जिस कार्य के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञता के साथ संलग्न हो जाता है, उसके अंतर्मन में, उस कार्य की पूर्णता की इच्छा भी चरम सीमा तक विद्यमान रहती है। जो समाज के परिष्कार की इच्छा अपने हृदय में ठान लेता है, संसार के अन्य आकर्षण उसे विचलित नहीं कर सकते।

प्रकृति स्वयं उच्च कोटि की व्यंग्यकार है। अपने द्वारा निर्मित समग्र जीव जगत को, वह जीवन जीने के मौलिक सुख साधन उपलब्ध करवाती है। अपने द्वारा उत्पन्न किए गए सभी जीवों में से मनुष्य को इसलिए बौद्धिकता संपन्न बनाया ताकि वह प्रकृति की सुंदरता को नष्ट होने से बचाए और अस्वच्छता की स्थिति न उत्पन्न होने दे, परंतु मानव अत्यंत कृतघ्न सिद्ध हुआ, अन्य जीवों ने तो प्रकृति के सौंदर्य को अक्षुण्ण बनाए रखा, किंतु मानव ने अपने स्वार्थ के लिए सभी सीमाएं लांघ डालीं। परिणाम स्वरूप प्रकृति ने अपना व्यंग्यकर्त्री रूप उद्घाटित किया और पर्यावरण को स्वच्छ करने के लिए मैदान में उतर आई। मानव की विकृत मानसिकता तथा स्वार्थ मंडित कार्यप्रणाली को प्रकृति ने अपनी प्रखर अवहेलना माना तथा इस अवहेलना का प्रतिकार उसने करोना संकट की व्याप्ति के रूप में लिया।

वर्तमान समय में स्वार्थ से आप्लावित, असत्य, छल- कपट तथा पाखंड से सराबोर व्यक्तित्वों के, वास्तविक स्वरूप को दर्शाने के लिए, व्यंग्य सर्वोत्तम साधन है। हरीश नवल ने अपने व्यंग्य साहित्य में मिलावट, कुपोषण, अनेक क्षेत्रों के माफिया, अवसरवादी राजनीतिज्ञ, प्रशासनिक अधिकारी, शिक्षा-संस्थान, नारी-निकेतन इत्यादि की आड़ में बढ़ते हुए अमानवीयकरण, निरंतर पतित होती मूल्यबद्धता पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। शाश्वत जीवन-मूल्यों की अवहेलना के विरुद्ध स्वर बुलंद करना उनकी असीम निर्भीकता और अप्रतिम साहस का संकेतक है। जिस युग में अधिकांश लोग, केवल अपनी स्वार्थ-लिप्सा की आग बुझाने में लगे हैं, ऐसी विषम परिस्थिति में हरीश नवल आग में हाथ डालने का खतरनाक काम कर रहे हैं। क्योंकि वे बेहतर मानव समाज संरचना के आकांक्षी हैं, जीवन-मूल्यों की स्थापना और संवर्धन

के प्रति चिंतित हैं। यदि चिंतित न होते, तो केवल कागज काले करने के लिए अथक परिश्रम करने की क्या आवश्यकता थी? जीवन-मूल्यों के विघटन का जब भी इतिहास लिखा जाएगा, व्यंग्यकारों का साहित्य, संदर्भ सामग्री का कार्य करेगा। क्योंकि जीवन मूल्यों का विघटन दर्शाने के लिए उद्धरणों की आवश्यकता होगी, तब वे उद्धरण हरीश नवल सहित अन्य व्यंग्यकारों की रचनाओं से उद्धृत किए जाएंगे। व्यंग्य-लेखन की सबसे विशिष्ट उपलब्धि है, अपनी विसंगतियों के ढोल की पोल भी खोल देना। हरीश नवल ने 'पीपली और मैं' व्यंग्य रचना में स्वयं को धिक्कार योग्य कहा है, तथा 'ददा! अगले जन्म की भोर न करना' तथा 'आज की शताब्दी त्रयी' व्यंग्य रचना में साहित्यिक जगत की अर्थ-लिप्सा, यश-लिप्सा, तथा पद-लिप्सा को सत्यता और निष्पक्षता के साथ उल्लेखित किया है।

वर्तमान समय में पर्यावरणीय अस्वच्छता तो है ही, विकृत मानसिकता की अधिकता से अंतर्मन भी प्रदूषित हो गए हैं। बकौल मुक्तिबोध, व्यंग्यकार दुनिया को बेहतर और साफ बनाने के लिए रचना करता है। प्रकृति मानव से पहली अपेक्षा तो यह करती है कि वह पर्यावरण को परिष्कृत रखे, तथा अपने अंतर्मन को भी विकृतियों से रहित रखे। यदि फिर भी विकृतियों की अवस्थिति हो जाए तो उनकी निवृत्ति के उपाय करे। व्यंग्यकार के रूप में हरीश नवल ने भी यही किया है। वर्तमान काल खंड में यत्र-तत्र-सर्वत्र विसंगतियों का ही प्राधान्य देखने को मिलता है, अतः व्यंग्य विधा पर कार्य करने की संभावनाएं अनंत हैं। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के अंतर्गत, शैक्षणिक मूल्य, साहित्यिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, पर्यावरणीय मूल्य पर स्वतंत्र रूप से शोध कार्य किया जा सकता है। यद्यपि संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत शोध कार्य में भी उपर्युक्त मूल्यों का उल्लेख किया गया है। हरीश नवल की कलम, व्यंग्य लेखन के प्रति पर्याप्त भाव से प्रतिबद्ध है, उसे विराम लेने का अवकाश कहां ? क्योंकि जब तक राष्ट्र और समाज में विसंगतियां हैं तब तक व्यंग्यकारों की व्यंग्य यात्रा जारी रहेगी। उनके द्वारा रचित आगामी व्यंग्य पुस्तकें, भी आने वाले शोधार्थियों के शोध कार्य में सम्मिलित होते हुए, जीवन मूल्यों के संवर्धन के लिए प्रेरक सिद्ध होंगी।

हरीश नवल की व्यंग्य रचनाओं के अंतर्गत वर्तमान कोरोना संकट की संबद्धता शोध कार्य में कई स्थानों पर रेखांकित की गई है, जिससे शाश्वत जीवन मूल्यों की स्थापना तथा संवर्धन के प्रति हरीश नवल का आग्रह प्रमाणित होता है। किसी भी लेखन कार्य को प्रमाणिक बनाने के लिए यद्यपि सर्वेक्षण पद्धति का भी आश्रय लिया जाता है, परंतु इसे फिर भी पूर्ण रूप से प्रमाणित नहीं माना जा सकता, वर्तमान भ्रष्टाचारी और विसंगति पूर्ण युग में तो विशेष रूप

से। जनता से जानकारी एकत्रित करते हुए, सच-झूठ में भेद करना अत्यंत कठिन है! वर्तमान समय में जब कागजों में ही, भवनों का निर्माण हो जाता है, वृक्षारोपण हो जाता है, सेतु निर्मित हो जाते हैं तो फिर बातचीत में सत्य-असत्य के आंकड़ों का परीक्षण कौन करता है? किसी भी कार्य में संलग्न व्यक्ति, उस कार्य के प्रति निष्ठा का, प्रबंधकीय सत्य का तथा कार्य की गुणवत्ता का सबसे सशक्त प्रमाण होता है। जितनी सच्चाई के साथ मनुष्य अपना निरीक्षण कर सकता है, उतनी सच्चाई के साथ किसी दूसरे का नहीं।

हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य, का अध्ययन/अनुशीलन करते समय, संलग्न व्यक्ति यदि अपने आप को सुधार ले, अपने भीतर सकारात्मक परिवर्तन अनुभव करे, इससे बढ़कर व्यंग्यकार के व्यंग्य लेखन में विसंगति निवारक क्षमता की सिद्धि अन्य किसी उपकरण से नहीं हो सकती। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति समाज का एक घटक है, नागरिक के रूप में राष्ट्र की महत्वपूर्ण इकाई है। हरीश नवल के व्यंग्य कथनों का कबीर, हरिशंकर परसाई तथा शरद जोशी जैसे पूर्ववर्ती व्यंग्यकारों से साम्य-भाव उन्हें, व्यंग्य परंपरा के संवाहक के रूप में स्थापित करता है। कन्हैयालाल नंदन द्वारा विभिन्न व्यंग्यकारों के आलेखों से सुसज्जित पुस्तक *परसाई परंपरा का वाहक व्यंग्यकार हरीश नवल* उपर्युक्त कथन की सशक्तता के साथ पुष्टि करता है।

उपलब्धियां :

1. हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य का अनुशीलन करते हुए उनके व्यंग्यात्मक कथनों का, व्यंग्य प्रणेता हरिशंकर परसाई से प्रखर साम्य- भाव उन्हें व्यंग्य परंपरा का संवाहक सिद्ध करता है।
2. हरीश नवल के व्यंग्याक्षेपों का, वर्तमान कोरोना महामारी के परिप्रेक्ष्य में जो कारण हैं, उनसे संश्लिष्ट होना उन्हें प्रखर तथ्यान्वेषक तथा दूरद्रष्टा सिद्ध करता है।
3. अपने व्यंग्यात्मक कथनों के अंतर्गत, मुहावरेदार शैली का प्रयोग उनकी मौलिक रचनात्मकता को प्रमाणित करता है।
4. व्यंग्य लेखन समाज और राष्ट्र में व्याप्त विसंगतियों के विरोध में, एक आक्रामक स्वर है, और आक्रमण के मूल में आक्रोश की अवस्थिति होती है, हरीश नवल का व्यंग्य लेखन आक्रामक होते हुए भी धैर्य का अतिक्रमण नहीं करता । आक्रोश की अभिव्यक्ति करते हुए हरीश नवल की व्यंग्यात्मकता में असंयत शब्दावली कहीं भी प्रयुक्त नहीं की गई।

संभावनाएं :

वर्तमान समय में मानव की स्व-केंद्रित प्रवृत्ति की प्रचुरता से सर्वत्र, विसंगतियों का प्राधान्य देखने को मिलता है, ऐसी स्थितियां व्यंग्य लेखन की आधारशिला सिद्ध होती हैं। हरीश नवल ने राजनीतिक अपकर्ष दर्शाते हुए, आजादी के बाद त्याग की राजनीति को स्वार्थ की राजनीति में बदलते हुए दर्शाया है। उन्होंने नेताओं की अर्थ-लिप्सा, उनकी सुविधा-भोगी प्रवृत्ति, कथनी और करनी में अंतर, पक्ष-विपक्ष की परस्पर खींचतान, तथा चुनाव से पहले तथा चुनाव के बाद, उनके बदलते हुए तेवर निष्पक्षता के साथ वर्णित किए हैं। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य पर केवल राजनीतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में, शोध कार्य किए जाने की संभावना हो सकती है। इस विषय को आजादी के बाद के व्यंग्यकारों ने अपनी व्यंग्यधर्मिता का सर्वाधिक निशाना बनाया है, अतः उपर्युक्त विषय के संदर्भ में प्रचुर मात्रा में उद्धरण मिल सकते हैं।

हरीश नवल ने व्यंग्य की परिणिति को करुणा में स्वीकार किया है, इसलिए उनकी व्यंग्य रचनाओं में, व्यंग्य के किसी भी तत्व अथवा साधन का प्रयोग किया गया हो, व्यंग्य कथन के मूल में, करुणा ही दृष्टिगत होती है। हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य में करुण रस विषय पर भी शोध की उज्ज्वल संभावना है।

हरीश नवल ने अपने व्यंग्य साहित्य के अंतर्गत मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग किया है, उनकी कतिपय व्यंग्य रचनाओं के शीर्षक भी मुहावरों में हैं, यद्यपि उन्होंने उसके अंतर्गत भी कुछ मौलिक परिवर्तन किया है, जैसे 'जिसकी लाठी उसके कुत्ते' तथा 'नाच न जाने चंपकलाल' इत्यादि। कुछ व्यंग्य रचनाओं के शीर्षक, बिना मुहावरों में फेरबदल किए, यथातथ्य भी लिए गए हैं, जैसे देर आए दुरुस्त आए, अपने मुंह मियां मिट्टू इत्यादि। इसके अतिरिक्त हरीश नवल ने अपने व्यंग्य साहित्य के अंतर्गत उर्दू, संस्कृत तथा पंजाबी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग बहुलता के साथ किया है, अतः हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के कला पक्ष को आधार बनाकर भी शोध कार्य करने की प्रखर संभावना दृष्टिगत होती है। इस विषय के पक्ष में जो विशिष्ट बात ध्यान देने योग्य है वह यह है, कि हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के परिप्रेक्ष्य में कला पक्ष का विश्लेषण केंद्र में रखते हुए भी, विसंगतियों के उन्मूलन के प्रति उनका आग्रह रेखांकित रहेगा ही, क्योंकि व्यंग्य का उद्देश्य, प्रखर रूप से जीवन-मूल्यों की स्थापना करना है।

वर्तमान समय में व्यंग्य मीडिया के अंतर्गत, अत्यंत लोकप्रिय हो रहा है। वर्तमान समय में लोगों के पास विस्तृत आलेखों को पढ़ने का समय नहीं है, अतः संक्षेप में लिखी गई

व्यंग्यात्मक टिप्पणी अथवा व्यंग्याक्षेप से अनुप्राणित कार्टून्स के द्वारा, व्यंग्यकार सामान्य जनता में समाज और राष्ट्र के अंतर्गत व्याप्त विसंगतियों के प्रति जागरूकता लाने का प्रयास करते हैं। मीडिया और व्यंग्य के मध्य अंतर्संबंध, हरीश नवल के व्यंग्य साहित्य के परिप्रेक्ष्य में- इस विषय पर भी भविष्यगत विद्यार्थी शोध कार्य कर सकते हैं।

साक्षात्कार

मान्यवर! मुझे आप द्वारा रचित व्यंग्य साहित्य पर शोध करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरी जिज्ञासा है कि साहित्य की अन्य विधाओं में भी रचनात्मकता करते हुए आपने, सर्वाधिक साहित्य रचना व्यंग्य विधा के अंतर्गत करने का विचार किस कारण से किया?

हरीश नवल- भीतर के आक्रोश को प्रकट करने के लिए व्यंग्य विधा सबसे अधिक कारगर लगी। समाज में व्याप्त विसंगतियां, विडंबनाएं, और विद्रूप आदि के विरुद्ध, जब हम लड़कर, बहस कर कुछ हासिल नहीं कर सकते तब व्यंग्य द्वारा हम अपनी लड़ाई बिना लड़े-भिड़े, बिना अपशब्द प्रयोग किए कर सकते हैं। इसलिए मैंने यद्यपि कहानी, उपन्यास, कविता, संस्मरण, नाटक आदि विधाओं में भी लिखा, किंतु भीतरी विरोध सबसे अधिक प्रकट हुआ व्यंग्य विधा से।

रमणीक- व्यंग्य लेखक की गर्दिश कभी खत्म नहीं होती-यह वाक्य, व्यंग्य प्रणेता हरिशंकर परसाई द्वारा कहा गया था, व्यंग्य यात्रा के अंतर्गत आपको भी कुछ कठिनाइयां पेश आईं?

हरीश नवल- हां, अवरोधक हुए व्यंग्य लिखने के कारण। एक बार एक बड़ी राजनीतिक पार्टी के अध्यक्ष ने पुलिस भेज कर परेशान किया। व्यंग्य-लेखन के कारण पदोन्नति जहां तक हो सकती थी, नहीं हो सकी। कई व्यक्ति सहन न करने के कारण, शत्रु भाव रखने लगे और कुछ ने साथ छोड़ दिया।

रमणीक- ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित होने पर आपकी शैक्षणिक अथवा साहित्यिक रचनात्मकता पर कोई प्रभाव पड़ा?

हरीश नवल- अच्छा प्रभाव पड़ा। एक बड़ा कर्तव्य अपने को इस सम्मानित पुरस्कार के सर्वथा योग्य सिद्ध करने का था। जब आपके आगे ऐसे पुरस्कार जुड़ते हैं, दायित्व बढ़ जाता है। पाठक, आलोचक आदि की अपेक्षाएं और भी बढ़ जाती हैं। अतः लेखन में जो लापरवाही पहले होती थी, वह समाप्त हुई। दोहराव, भटकाव, आत्मश्लाघा बलवती न हो, उसके प्रति क्रियाशील रहा।

रमणीक- हरिशंकर परसाई के अतिरिक्त आप किस व्यंग्यकार से सर्वाधिक प्रभावित रहे?

हरीश नवल- बेढब बनारसी से। परसाई जी से पूर्व बैढब जी के लेखन का प्रभाव पड़ा था। उनकी रचना "लेफ्टिनेंट पिगसन की डायरी" ने बहुत नए आयाम और प्रभाव प्रदान किए थे।

रमणीक- आपके आत्मकथ्य द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि आपने दूरदर्शन के धारावाहिकों में कथा-पटकथा लेखन कार्य भी किया, उपर्युक्त कार्य में और पुस्तक लेखन में आपके अनुसार, मौलिक अंतर क्या है?

हरीश नवल- पटकथा लेखन मूल लेखन नहीं होता। वह किसी और कृति/रचना आदि पर आधारित होता है। साहित्यिक कृतियां यानी पुस्तक की कथा/भाव आदि को छोटे या बड़े पर्दे पर प्रकट करने के लिए उसकी पटकथा तैयार की जाती है। पटकथा लेखन तकनीकी लेखन है, उसका व्याकरण नितांत भिन्न है। वह कैमरे की दृष्टि से ही लिखा जाता है।

-
 ?
 ल- जित I-विस और
 जक, क, ीतिक,
 ने, जाए? है,
 हो हो-उसक
 है?
 - मे?
 ल- और
 अस्य, विनोद, अस, णी, 'स
 ऑफ मर' साथ-साथ' यर'
 रसाई, जोशी, और नहीं, और र्ण,
 और और सम्मान
 - बहुत-बहुत वाद। और
 और

श्रीश मकर

ग्रन्थ सूची

1. आधार ग्रन्थ :

नवल, हरीश. *बागपत के खरबूजे*. भारतीय ज्ञानपीठ, 1987.

- - - *दिल्ली चढ़ी पहाड़*. शुभम प्रकाशन, 1997.
- - - *पीली छत पर काला निशान*. अभिरुचि प्रकाशन, 1997.
- - - *वाया पैरिस आया गांधीवाद*. नवराज प्रकाशन, 2004.
- - - *मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएं*. डायमंड पॉकेट बुक्स, 2012.
- - - *माफिया जिंदाबाद*. सत्साहित्य प्रकाशन, 2013.

2. सन्दर्भ ग्रन्थ :

अग्रवाल, गिरिराजशरण. सम्पा. *साहित्यिक परिवेश पर व्यंग्य*. प्रभात प्रकाशन, 2011.

- - - *पारिवारिक परिवेश पर व्यंग्य*. प्रभात प्रकाशन, 2011.
- - - *सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य*. प्रभात प्रकाशन, 2011.
- - - *मानव चरित्र पर व्यंग्य*. प्रभात प्रकाशन, 2011.
- - - *मंचीय व्यंग्य एकांकी*. सत्साहित्य प्रकाशन, 2014.
- - - *पुलिस व्यवस्था पर व्यंग्य*. प्रभात प्रकाशन, 2017.

अग्रवाल, महावीरप्रसाद. *अतुल्य भारत*. प्रभात प्रकाशन, 2017.

अग्रवाल, वासुदेव शरण. *कला और संस्कृति*. साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, 1958.

अमृतराय. *सहचिन्तन*. सर्जना प्रकाशन, 1966.

अरुण, विनोदबाला. *राम कथा में नैतिक मूल्य*. प्रभात प्रकाशन, 2019.

अवस्थी, ओम प्रकाश. *आलोचना की फिसलन*. पुस्तक भंडार, 1976.

- अग्निहोत्री, पी.डी. *श्रृंगार प्रकाश*. मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, 1939.
- आचार्य, विश्वनाथ. *साहित्य दर्पण*. मोतीलाल बनारसीदास, 1977.
- आचार्य, लोकमणिदाहाल. सम्पा. *ध्वन्यालोक*. भारतीय विद्या प्रकाशन, 1991.
- आचार्य, सुरेश. *व्यंग्य का समाज दर्शन*. अनुज्ञा बुक्स, 2018.
- आबिद, रिज़वी. संकलनकर्ता. *चाणक्य सूत्र*. धीरज पॉकेट बुक्स, 1988.
- उपाध्याय, भगवतशरण. *गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास*. हिंदी समिति सूचना विभाग, 1962.
- उपाध्याय, भगवतशरण. कालिदास का भारत. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1971.
- उपाध्याय, भुवनेश्वर. सम्पा. *व्यंग्य व्यंग्यकार और जो जरूरी है*. वनिका पब्लिकेशंस, 2019.
- उपाध्याय, रामजी. *भारतीय धर्म और संस्कृति*. लोक भारती प्रकाशन, 2014.
- उप्रेती, थानेशचंद्र. *ध्वन्यालोक एक अध्ययन*. परिमल पब्लिकेशंस, 1987.
- ओमप्रकाश. सम्पा. *बिहारी सार्धशती*. अनीता प्रकाशन, 1990.
- कलाम, ए. पी. जे. अब्दुल. *जीवन वृक्ष*. प्रभात प्रकाशन, 2019.
- कांत, सुरेश. *कुछ अलग*. अमन प्रकाशन, 2018.
- कुमार, विनोद. *संघर्ष के साथ-साथ*. दिल्ली पुस्तक सदन, 2018.
- कुमार, विजय. *कुसीं तू बड़भागिनी*. सत्साहित्य प्रकाशन, 2011.
- कोहली, नरेंद्र. *अवसर*. हिंद पॉकेट बुक्स. 1983.
- - - *त्राहि-त्राहि*. वाणी प्रकाशन, 2015.
- कृष्णकृपामूर्ति. *श्रीमद्भगवद्गीता*. भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट, 1983.
- खेमराज, श्रीकृष्णदास. *मूल बीजक*. श्री वेंकटेश्वर मुद्रण यंत्रालय, 2014.

- गर्ग, शेरजंग. *व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न*. आलेख प्रकाशन, 2014.
- - - . संपा. *व्यंग्य वैविध्य*. मेधा बुक्स, 2010.
- गुजराती, अशोक. *व्यंग्य के रंग*. सत्साहित्य प्रकाशन, 2011.
- गुप्त, ओम प्रकाश. *व्यंग्य पर एक बहस*. हिंदी बुक सेंटर, 2013.
- गुप्ता, बजरंग लाल. *भारतीय सांस्कृतिक मूल्य*. प्रभात प्रकाशन, 2018.
- गोस्वामी, तुलसीदास. *श्रीरामचरितमानस*. गीता प्रैस 2010.
- चतुर्वेदी, बरसाने लाल. *हिंदी साहित्य में हास्य रस*. हिंदी साहित्य संसार, 1957.
- चतुर्वेदी, पंडितज्वालाप्रसाद. *भर्तृहरि त्रय शतक*. रणधीर प्रकाशन, 2003.
- चतुर्वेदी, पुरुषोत्तमशर्मा. *ध्वन्यालोकसारः*. चौखंबा अमर भारती प्रकाशन, 1977.
- चार्ल्स, आरगरूपे. *अंडरस्टैंडिंग लाफ्टर द किंग ऑफ विट एंड ह्यूमर*. मिनेसोटा नेल्सन हाल, 1978.
- जन्मेजय, प्रेम. *कौन कुटिल खल कामी*. ग्रंथ अकादमी, 2011.
- - - *कोई मैं झूठ बोलया*. ग्रंथ अकादमी, 2014.
- जालान, घनश्यामदास. प्रकाशक. *छांदोग्योपनिषद्*. गीता प्रेस, 1956.
- जोशी, ज्योतिष. *जैनेंद्र और नैतिकता*. वाणी प्रकाशन, 2012.
- जोशी, शरद. *हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे*. भारतीय ज्ञानपीठ, 2017.
- - - *राग भोपाली*. राजकमल प्रकाशन, 2011.
- - - *वोट ले दरिया में डाल*. राजकमल प्रकाशन, 2016.
- - - *शाश्वत नीम झरता थीम*. वाणी प्रकाशन, 2014.
- ज्ञा, प्रभात. सम्पा. *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद*. प्रभात प्रकाशन, 2016.

- तिवारी, बालेन्दुशेखर. सम्पा. *21वीं सदी की नई व्यंग्य रचनाएं*. अरविंद प्रकाशन, 2017.
- - - *व्यंग्यालोचन के पार-द्वार*. क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, 2016.
- तिवारी, अजय. *आलोचना और संस्कृति*. वाणी प्रकाशन, 2007.
- तिवारी, द्वारिकानाथ. *प्रेम योग*. 23 वां संस्करण, स्मृतिग्रंथमाला, 2010.
- त्यागी, रवीन्द्रनाथ. *कृष्णवाहन की कथा और व्यंग्य*. माहेश्वरी वाणी प्रकाशन, 2016.
- - - *गरीब होने के फायदे*. प्रभात प्रकाशन, 2018.
- द्विवेदी, दशरथ. *अभिनव रस सिद्धांत*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1973.
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद. *कबीर*. हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, 1942.
- देसाई, बाबूराव. *हिंदी व्यंग्य विधा शास्त्र और इतिहास*. चिंतन प्रकाशन, 2022.
- नवल, हरीश. *कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्यकारों की*. हिंदी साहित्य निकेतन, 2016.
- नागर, अमृतलाल. *मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं*. ज्ञानभारती, 1987.
- नागर, विष्णु. *राष्ट्रीय नाक*. राजकमल प्रकाशन, 2004.
- - - *.भारत एक बाजार है*. राजकमल प्रकाशन, 2011.
- निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. *गीतिका*. दसवां संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2007.
- नीरन, अरुणेश तथा दिनेश कुशवाह. संपा. *मूल्यों के निर्माण कलश*. प्रभात प्रकाशन, 2013.
- प्रकाशिका. *गीत गुंजन*. संघमित्रा सेवा प्रतिष्ठान सेविका प्रकाशन, 2009.
- परसाई, हरिशंकर. *कहत कबीर*. राजकमल प्रकाशन, 2015.
- - - *तुलसीदास चंदन घिसे*. राजकमल प्रकाशन, 2015
- - - *माटी कहे कुम्हार से*. वाणी प्रकाशन, 2014.

- - - *ऐसा भी सोचा जाता है*. वाणी प्रकाशन, 2013.

- - - *बेईमानी की परत*. वाणी प्रकाशन, 2016.

- - - *तिरछी रेखाएं*. वाणी प्रकाशन, 1996.

- - - *दो नाक वाले लोग*. वाणी प्रकाशन, 2018.

पराशर, अरविंद. सम्पा. *रामचरितमानस की प्रतीकार्थ विवेचना*. सनातन धर्म कॉलेज होशियारपुर. 2006.

पांडे, गोविंद चंद्र. *साहित्य सौंदर्य और संस्कृति*. हिंदुस्तानी एकेडेमी, 1994.

पांडे, कमलापति. *आधी साखी कबीर की*. प्रकाशन संस्थान, 2010.

पांडे, पीयूष. *धंधे मातरम*. प्रभात प्रकाशन, 2017.

पांडेय, शशि. *चौपट नगरी अंधेर राजा*. दिल्ली पुस्तक सदन, 2018.

पार्थेश्वर, आशुतोष. *राजनीति और नैतिकता*. प्रभात प्रकाशन, 2017.

पोद्दार, हनुमानप्रसाद. संपा. *विदुरनीति*. संस्करण तिरेपनवां, गीता प्रेस, 1994.

पोखरियाल, रमेश. *भारतीय संस्कृति सभ्यता एवं परंपरा*. डायमंड बुक्स, 2015.

- - - *मूल्य आधारित शिक्षा*. प्रभात प्रकाशन, 2021.

प्रसाद, कमला तथा प्रकाश दुबे. संपा. *हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएं*. संस्करण तृतीय, वाणी प्रकाशन, 2013.

प्रसाद, जयशंकर. *अजातशत्रु*. प्रसाद प्रकाशन, 1982.

बाजपेयी, पंडितकिशोरीदास. *कल्याण*. गीता प्रेस, 2015.

बिश्नोई, संतोष. *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य निबंधों की परंपरा और रविंद्र नाथ त्यागी*. विकास प्रकाशन, 2020. भगवानसिंह. *भारतीय परंपरा की खोज*. सस्ता साहित्य मंडल, 2016.

- मधुरेश. *राग दरबारी का महत्व*. लोकभारती प्रकाशन, 2015.
- मंजूनाथ, एस. ए. *हिंदी व्यंग्य साहित्य एक समीक्षात्मक अध्ययन*. अलका प्रकाशन, 2017.
- महता, हर्ष कुमार. *अभिनय सिद्धांत भरत से विश्वनाथ तक*. यूनिस्टार बुक्स, 2013.
- महर्षि,वाल्मीकि.श्री मद्वाल्मीकिरामायण. गीताप्रेस,2012.
- मॉरिस, चार्ल्स. *वैरायटी ऑफ ह्यूमन वैल्यूज*. क्रिएटर मीडिया पार्टनर्स, 2018.
- मार्शल, अर्बन. *फंडामेंटल ऑफ एथिक्स*. रीड बुक्स, 2007.
- माहेश्वरी, सुरेश. *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य का मूल्यांकन*. द्वितीय संस्करण. विकास प्रकाशन, 2021.
- मिन्हास,सुखदेवसिंह. सम्पा. *जीवन साहित्य एवं कला में राम*. निर्मल पब्लिकेशंस, 2018.
- मिश्र, अरुणप्रकाश. संपा. *रचना और आलोचना*. पार्श्व प्रकाशन, 1994.
- मिश्र, जयराम. *मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम*. लोकभारती पेपर बैक्स, 2016.
- मिश्र, विद्यानिवास. *जीवन अलभ्य है जीवन सौभाग्य है*. प्रभात प्रकाशन, 1991.
- मूर,जीई. *प्रिंसिपिया एथिक्स*. केंब्रिज विश्वविद्यालय, 1958.
- मेघ, रमेशकुंतल. *सौंदर्य मूल्य और मूल्यांकन*. निर्मल पब्लिशिंग हाउस, 2008.
- मैनी,धर्मपाल. *भारतीय जीवन मूल्य*. भारतीय संस्कृति संस्थान, 2010.
- मैनेनी,एसआर. *सोशियोलॉजी*. इलाहाबाद लॉ एजेन्सी,2008.
- राहुलदेव.सम्पा. *चयन और चिंतन व्यंग्य के संग*. वनिका पब्लिकेशन, 2017.
- - - *समकालीन व्यंग्यकार आलोचना का आईना*. यश पब्लिशर्स, 2018.
- राजपाल, हुकमचंद. *समकालीन कविता में मानव मूल्य*. शारदा प्रकाशन, 1993.
- वर्मा, रामकुमार. *रिमझिम*. साहित्य भवन, 1964.

- वर्मा, रामकमार. *अग्निशिखा*. राजपाल एंड संस, 1971.
- वर्मा, विनीता. *जीवन सरल है*. प्रभात पेपरबैक्स, 2015.
- वाग्देव. संपा. *रहीम दोहावली*. प्रभात पेपरबैक्स, 2020.
- वेदव्यास. *श्रीमहाभारतं*. एजुकेशन कमेटीज़ प्रैस, 1834.
- - - *श्रीमद्भद्रवद्गीता*. भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, 2011.
- शर्मा, श्रीनिवास. *सूरसागर और उनका भ्रमरगीत*. अशोक प्रकाशन, 2000.
- शर्मा, महेश. *सरल गीता*. प्रभात प्रकाशन, 2008.
- शर्मा, महेश. संपा. *चाणक्य नीति*. प्रभात पेपर बैक्स, 2016.
- शर्मा, जयराम. *ऋग्वेद*. डीएवी प्रकाशन, 2009.
- शर्मा, जयराम. *अथर्ववेद*. डीएवी प्रकाशन, 2009.
- शर्मा, बल्देवभाई. *भारत सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान*. प्रभात प्रकाशन, 2018.
- शास्त्री, माधवाचार्य. *क्यों?* माधव विद्या भवन, संवत् 2015.
- शर्मा, रामकिशोर. संपा. *कबीर ग्रंथावली*. संस्करण बारहवां, लोकभारती प्रकाशन, 2018.
- शास्त्री, कृष्णानंद. संपा. *हितोपदेश*. भारतीय संस्कृत भवन, 1984.
- शुक्ल, चण्डिकाप्रसाद. *ध्वन्यालोक*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1983.
- शुक्ल, श्रीलाल तथा प्रेम जन्मेजय. सम्पा. *हास्य व्यंग्य संकलन*. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, 2015.
- शुक्ल, रमाकांत. *भाति में भारतम्*. देववाणी परिषद, 2001.
- शुक्ल, रामजीलाल. *नवीन मनोविज्ञान और शिक्षा*. ग्रंथमाला कार्यालय कार्यालय, 2001.
- शुक्ला, बाबूलालशास्त्री. *हिंदी नाट्य शास्त्र*. चौखंबा संस्कृत संस्थान, 1985.

- शुक्ल, रामचंद्र. *हिंदी साहित्य का इतिहास*. प्रभात प्रकाशन, 2020.
- श्रीधरन, ई.सम्पा. *सशक्त मूल्यों का तेजस्वी भारत*. प्रभात प्रकाशन, 2014.
- श्रीवास्तव, सुरेशचंद्र. व्याख्याकार. *पातंजलयोगदर्शनम्*. चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, 1973.
- सहाय, राम. *सांस्कृतिक उत्थान का मार्ग*. प्रभात प्रकाशन, 2018.
- सरस्वती, सत्य प्रकाश. *यजुर्वेद*. डीएवी प्रकाशन, 2008.
- सिद्धार्थ, सुशील. सम्पा. *व्यंग्य समय शरद जोशी*. किताबघर प्रकाशन, 2017.
- सिंह, अरुणकुमार तथा सिंह आशीषकुमार. *मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास*. मोतीलाल बनारसीदास, 2019.
- सिंह, जगराम. *भारत दर्शन*. प्रभात पेपरबैक, 2020.
- सिंह, नामवर. *कविता के नए प्रतिमान*. राजकमल प्रकाशन, आठवां संस्करण, 2009.
- सेठ, सुरेश. *नशतर की मुस्कान*. मानसी प्रकाशन, 2018.
- स्वरूप, देवेन्द्र. *अखंड भारत*. प्रभात प्रकाशन, 2018.
- - - *संस्कृति एक नाम-रूप अनेक*. प्रभात प्रकाशन, 2020.
- स्वामी, उरुक्रमानन्द. *स्वामी विवेकानंद जीवनी और उपदेश*. अद्वैत आश्रम, 2012.
- सुभाषचंद्र. *हिंदी व्यंग्य का इतिहास*. भावना प्रकाशन, 2017.
- सूर्यबाला. *धृतराष्ट्र टाइम्स*. विद्या विहार, 2010.
- - - *देश सेवा के अखाड़े में* विद्या विहार, 2011.
- सोनाने, चंदर. *देश समाज और संस्कृति*. विद्या विहार, 2018.
- हाईट, गिलबर्ट. *एनाटॉमी ऑफ़ स्टायर*. प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रैस, 1962.
- हाथरसी, काका. *श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य कविताएं*. प्रभात प्रकाशन, 2018.

3. कोश ग्रन्थ :

आष्टे, शिवराम. *संस्कृत इङ्गलिश प्रैक्टीकल डिक्शनरी*. मोतीलाल बनानारसीदास, 2000.

झा, तारिणीश. *संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ*. रामनारायण लाल प्रकाशन, 1957.

जोगा सिंह. *पंजाबी कोश*. पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाबी विश्वविद्यालय, 2016.

नगेंद्र. *मानविकी पारिभाषिक कोश*. राजकमल प्रकाशन, 1965.

त्रिपाठी, राधा वल्लभ. *नाट्यशास्त्र विश्वकोश*. प्रतिभा प्रकाशन, 1999.

पाठक, रामचंद्र. *आदर्श हिंदी शब्दकोश*. भार्गव बुक डिपो, 2004.

मिश्रा, स्वस्ति. *अंग्रेजी अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश*. हारपर कॉलिन्स प्रकाशन, 2012.

मैनी, धर्मपाल. *मानव मूल्य व्याख्या कोश*. किताबघर, 2009.

वर्मा, धीरेन्द्र. *हिंदी साहित्य कोश*. ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संवत् 1963.

श्यामसुन्दरदास. *हिंदी शब्द सागर*. काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, 1922.

4. पत्रिकाएं :

श्रीवास्तव, शिल्पा. संपा. *अट्टहास*. फरवरी, 2021.

सिन्हा, मीरा. "व्यंग्य कल और आज". *मुक्तांचल*. अप्रैल-सितंबर 2021, वर्ष 08 अंक 30-31.

जन्मेजय, प्रेम. *व्यंग्य यात्रा*. अप्रैल-सितंबर 2016, अंक 15-16.